आकर ग्रंथमाला—१४

जसवंतसिंह ग्रंथावली

संपादक

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

प्रकाशक

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराण

प्रथम संस्करण

संवत् २०२६

१६०० प्रतियाँ

मूल्य :

मुद्रक

शंभुनाथ वाजपेयी,

नागरी मुद्रण, वाराणसी

आकर ग्रंथमाला का परिचय

नागरीप्रचारिणी सभा ने अपने हीरकजयंती के अवसर पर जिन भिन्न-भिन्न साहित्यिक अनुष्ठानों का श्रीगणेश करना निश्चित किया था, उनमें से एक कार्य हिंदी के आकर ग्रंथो के सुसंपादित संस्करणों की पुस्तकमाला प्रकाशित करना था। जयंतियो अथवा बड़े बड़े आयोजनों पर एकमात्र उत्सव आदि न कर स्थायी महत्व के ऐसे रचनात्मक कार्य करना सभा की परंपरा रही है जिनसे भाषा और साहित्य की ठोस सेवा हो। इसी दृष्टि से सभा ने हीरकजयंती के पूर्व एक योजना बनाकर विभिन्न राज्य और केंद्रीय सरकार के पास भेजी थी। इस योजना में सभा की वर्तमान विभिन्न प्रवृत्तियों को संपुष्ट करने के अतिरिक्त कतिपय नवीन कार्यों की रूपरेखा देकर आर्थिक संरक्षण के लिये सरकारो से आग्रह किया गया था। इनमे से केंद्रीय सरकार ने हिंदी शब्दसागर के संशोधन, परिवर्धन तथा आकर ग्रंथो की एक माला के प्रकाशन में विशेष रुचि दिखलाई और ५-३-५४ को सभा की हीरकजयंती का उद्‌घाटन करते हुए राष्ट्रपति देशरत्न डा० राजद्रप्रसाद ने घोषित किया—————'मै आपके निश्चयो का, विशेषकर इन दो (शब्दसागर संशोधन तथा आकर ग्रंथमाला) का, स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पॉच वर्षो में बीस बीस हजार करके दिए जायँगे देने का निश्चय हुआ है। इसी तरह से मौलिक प्राचीन ग्रंथो के प्रकाशन के लिये पचीस हजार रुपए की, पॉच पॉच हजार करके, सहायता दी जायगी। मै आशा करता हूँ कि इस सहायता से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप काम में अग्रसर होगे।'

केंद्रीय शिक्षामंत्रालय ने ११-५-५४ को एफ० ४-३-५२ एच० ४ संख्यक एतत्संबंधी राजाज्ञा निकाली। राजाज्ञा की शर्तो के अनुसार इस माला के लिये संपादकमंडल का संघटन तथा इसमें प्रकाश्य एक सौ उत्तमोत्तम ग्रंथों का निर्धारण कर लिया गया है। संपादकमंडल तथा ग्रंथसूची की संपुष्टि भी केंद्रीय शिक्षामंत्रालय ने कर दी है। ज्यों ज्यो ग्रंथ तैयार होते चलेंगे, इस माला मे प्रकाशित होते रहेंगे। हिंदी के प्राचीन साहित्य को इस प्रकार उच्च स्तर के विद्यार्थियों, शोधकर्त्ताओं तथा इतर अध्येताओं के लिये सुलभ करके केंद्रीयसरकार ने जो स्तुत्य कार्य किया है, उसके लिये वह धन्यवादार्ह है।

—०—

प्रकाशकीय

अपनी स्थापना के समय से नागरी लिपि एवं हिंदी साहित्य के उन्नयन एवं विकास के विभिन्न विधायक संकल्पों के साथ ही नागरी प्रचारिणी सभा ने हिंदी के युगनिर्माता एवं मूर्धन्य साहित्यकारों की ग्रंथावलियों का संपादन और प्रकाशन भी करती चली आ रही है। हिंदी के सुप्रसिद्ध गंभीर, शीर्षस्थ विद्वानों का सहयोग इस क्षेत्र में सभा को सतत मिलता रहा। फलतः कबीर ग्रंथावली, जायसी ग्रंथावली, तुलसी ग्रंथावली, सूरसागर (दो भाग,) भूषण ग्रंथावली, भारतेंदु ग्रंथावली, रत्नाकर (कवितावली), पृथ्वीराज रासो, बाँकीदास ग्रंथावली, ब्रजनिधि ग्रंथावली, श्री निवास ग्रंथावली आदि का प्रकाशन सभा ने किया है।

अपनी हीरक जयंती के अवसर पर सभा ने इस दिशा में केंद्रीय सरकार की सहायता से योजनाबद्ध रूप से आकर ग्रंथमाला के रूप में नूतन योजना आरंभ की। इस ग्रंथमाला में अब तक भिखारीदास ग्रंथावली, (दो भाग,) मानराज विलास, गंगकबित्त, पद्माकर ग्रंथावली, मतिराम-ग्रंथावली, मधुमालतीवार्ता, नागरीदास ग्रंथावली [दो खंड], दादू-दयाल ग्रंथावली और रसलीन ग्रंथावली, कृपाराम ग्रंथावली का प्रकाशन सभा कर चुकी है। इधर धनाभाव के कारण यह कार्य कुछ शिथिल था। किंतु ग्रंथमाला का कार्य चलता रहा। जसवंतसिंह ग्रंथावली यंत्रस्थ है और शीघ्र ही प्रकाशित हो रही है।

बोधा ग्रंथावली (सं०-पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र) एवं ठाकुर ग्रंथावली (सं०-श्री चंद्रशेखर मिश्र) को शीघ्र ही प्रकाशित करने का हमारा संकल्प है। केंद्रीय सरकार के शिक्षा विभाग की आर्थिक सहायता से यह संकल्प मूर्त हो रहा है। इसके लिये सभा सरकार के प्रति कृतज्ञ है और हमें विश्वास है कि शीघ्र ही इस दिशा में सभा उत्तरोत्तर अपने प्रयास में सफलतापूर्वक अग्रसर होती चलेगी।

इस ग्रंथमाला के चतुर्दश पुष्प के रूप में जसवंतसिंह ग्रंथावली का प्रकाशन अब हो रहा है। हिंदी साहित्य के मूर्द्धन्य विद्वान् और मध्यकालीन हिंदी साहित्य के मर्मज्ञ आचार्य पं० विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र को इसका

संपादन कार्य पंद्रह सोलह वर्ष पूर्व सौंपा गया था। किंतु अनेकानेक विघ्नबाधाओं के कारण इस कार्य मे देर होती गई। इस विलंब से एक बड़ा लाभ अवश्य हुआ कि जसवंतसिंह की कतिपय अज्ञात कृतियों का भी संधान इस बीच मिल गया और उन्होंने इस ग्रंथावली को पूर्णता प्रदान की। अब तक जसवंत सिंह अपने रीतिग्रंथ भाषाभूषण के [illegible] लिये मुख्यत: जाने जाते थे। अब इस ग्रंथावली से उनके [illegible] ग्रंथों-अपरोक्षसिद्धांत, सिद्धांतबोध, सिद्धांतसार, आनंदविलास आदि का परिचय भी हिंदी जगत् को मिल जायगा। संपादन कला के वरिष्ठ विद्वान् के हाथों संपादित इस ग्रंथावली से हिंदी साहित्य की गौरववृद्धि अवश्य होगी इसमें संदेह नहीं। व्याकरण, छंद:शास्त्र, साहित्यशास्त्र, [illegible] आदि को ध्यान में रखकर बड़ी सावधानी के साथ इस ग्रंथसंपादन में इसका पाठ निर्धारण हुआ है। इस प्रकार सुसंपादित होकर चिरप्रतीक्षा के बाद यह ग्रंथावली हिंदीजगत् को समृद्ध बनाती हुई अब प्रकाश में आ रही है। संपादक ने जिस, श्रम, वैदुष्य और मनोबल के साथ इस कार्य को सपन्न किया है तदर्थ वे धन्यवादार्ह हैं।

महाराज जसवंत सिंह रीतिकालीन आचार्यों मे प्रथम पंक्ति की शोभा बढानेवाले आचार्य हैं। अब तक इन पर आधुनिक शोधदृष्टि से कोई सर्वांगीण कार्य नहीं हुआ था। इस दृष्टि से इस ग्रंथावली का महत्व विशेष बढ जाता है। सरलतापूर्वक रस, भाव, अलंकार आदि का ज्ञान करानेवाला भाषाभूषण के समान दूसरा ग्रंथ नही है। संस्कृत साहित्य-शास्त्र के ग्रंथो में जो स्थान साहित्यदर्पण या चंद्रालोक आदि का है, हिंदी साहित्य में उससे कम ऊँचा स्थान इस ग्रंथ का नहीं है। महाराज जसवंतसिंह साहित्यशास्त्र के ही स्रष्टा और आचार्य नहीं थे अपितु दर्शनसंदर्भित ग्रंथरचना में भी उनकी उत्कट रुचि थी—इसकी सूचना इस ग्रंथावली से प्राप्त होती है। उनके समय की गद्य भाषा और शैली का परिचय भी इस ग्रंथावली से मिलता है, जो शोधदृष्टि से कम महत्व की बात नहीं है। हमें पूर्ण विश्वास है कि हिंदी साहित्य के अध्येता इस ग्रंथावली को पाकर परितुष्ट होंगे और तत्कालीन हिंदी साहित्य का नया आयाम—उनको दिखाई पड़ेगा।

करुणापति त्रिपाठी
प्रकाशन मंत्री

भारत के तत्कालीन प्रधान मंत्री स्वर्गीय जवाहरलालजी नेहरू को वह अर्पित कर दिया गया तब सावकाश हुआ। कतिपय मास विश्राम में व्यतीत करने के अनंतर जब इसमें फिर हाथ लगाया और मुद्रण-कार्य आगे बढा तब मगध विश्वविद्यालय में हिंदी का प्रोफेसर अध्यक्ष एवम् कला-अधिकाय् का दशप या अधिष्ठाता होकर चला गया। पर पुस्तक के मुद्रण का कार्य चलता रहा। हाँ, गति अवश्य मंद हो गई, कारण सन् १९६४ में मेरे मझले पुत्र चंद्रभूषण मिश्र, एम्०ए०, पी- एच० डी० रिसर्च स्कालर की सहसा हृद्‌गति अवरोध से निधन हो जाने पर ऐसा धक्का लगा कि काम बंद हो गया और मैंने समझ लिया कि अब यह कार्य न हो सकेगा। सन् १९६८ में मगध विश्वविद्यालय से निवृत्त होकर जब वाराणसी आ गया तब सितंबर १९६७ की सरस्वती में उल्लिखित सामग्री के संचयन में लगा और पूना के गीतामाहात्म्य की प्रति प्राप्त कर उसके संपादन में अकेले ही हाथ लगाया। इसी बीच मेरे ज्येष्ठ पुत्र चंद्रशेखर मिश्र का हृद्रोग के आक्रमण से मई १९७० में सहसा देहावसान हो गया। नियति ने विश्वेश्वर की सेवा से महाकालेश्वर की शरण में भेज दिया। पं० सुधाकर पांडेय, वर्तमान प्रधान मंत्री, के तगादे इतने हुए कि मै ऐसी दारुण स्थिति में भी इसे परिपूर्ण करने में लगा ही रहा। वे स्वर्गीय चंद्रशेखर के सहपाठी हैं और उनका मेरे प्रति पुत्रवत् सौहार्द रहा है। उन्होंने ही प्रेरित करके यह कार्य संपादित करा लिया। इधर हिंदीकाव्य की कई प्राचीन ग्रंथावलियाँ उनके प्रयास और संपादकत्व में सभा से निकली हैं। इसलिये उनके अनुरोध की रक्षा के लिये यह कार्य यथासंभव शीघ्र समाप्त करना पड़ा। आधी भूमिका वाराणसी में ही लिख गई थी। यहाँ आकर इतनी दूर से सारी सामग्री को आकलित कर अंतिम रूप देना कठिन था। इधर मैं एम्० पी० मे आ बसा और उधर वे स्वयम् एम्० पी० हो गए तो मैंने इस कार्य को तुरंत समाप्त कर देना ही श्रेयस्कर समझा। उनके ऐसा सहृदय व्यक्ति फिर मिले या न मिले। इससे उनके कार्यकाल में ही यह प्रकाशित हो जाए यही सर्वतोभावेन विचार्य रहा है। अतः इसके प्रकाशित कराने का श्रेय मैं उन्हीं का समझता हूँ। यथासंभव आकर ग्रंथमाला के लिये स्वीकृत आदर्श के अनुरूप ही सारा संभार है। फिर भी यदि कोई त्रुटि हो तो उसे मेरे कर्मों का ही फल समझा जाए। दोषों की सूचना

मिलने पर उनके परिमार्जन का जीवित रहते पूरा प्रयास करूँगा यही विपश्चितों से निवेदन है।

(विश्वनाथप्रसाद मिश्र)

प्रोफेसर 'नवीन' शोधपीठ,
अध्यक्ष स्नातकोत्तर हिंदी अध्ययनशाला,
विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म०प्रदेश)

वासंत नवरात्र, २०२९ वि०
३, विश्वविद्यालय आवास,
कोठी रोड, अवंतिकापुरी।

संकेत

भाषाभूषण

हस्तलेख

१. याज्ञिक–याज्ञिक संग्रह, काशी नागरीप्रचारिणी सभा,
लिपिकाल सं० १७५७।
२. जोध–जोधपुर, पुस्तक प्रकाश, लिपि० सं० १८१७।
३. जग–जगन्नाथ मिश्र (भरतपुर) लिखक, लिपि० सं० १८१८।
४. हरि–हरिकवि, टीकाकार, टीका निर्माणकाल सं० १८३४।
५. राधा–राधाकृष्ण, लिखक, लिपि० सं० १८३९।
६. साहु–साहुराम––नामांकित हस्तलेख, लिपि० सं० १८४…।
७. सोहन–सोहनसिंह जू देव लिखक, लिपि० सं १८५१।
८. गोकुल–गोकुलचंद, लिखक, लिपि० सं० १८५६।
९. संमे–हिंदी साहित्य संमेलन (प्रयाग), लिपि० सं० १८५६।
१०. शिव–शिवराम, लिखक, लिपि० सं० १८८६।
११. मया–मयाशंकर, संग्राहक, याज्ञिक संग्रह, लिपि० सं० १८९१।
१२. दल–दलपतिराय वंशीधर, टीकाकार, टीका, निर्माण०
सं० १८६५, लिपि० सं० १९०७।
१३. तारा–ताराचंद केवलजी कवि, लिखक, लिपि० सं० १९४८।
१४. खोज–खोजविभाग, काशीनागरीप्रचारिणी सभा, लिपि० अनुल्लिखित।
१५. पूना–पूना भंडारकर इंस्टीच्यूट, लिपि० अनुल्लि०।
१६. भरत–भरतपुर की प्रति, लिपि० अनुल्लि०।
१७. भवा–भवानीशंकर याज्ञिक, संग्राहक, लिपि० अनुल्लि०।
१८. सभा–काशी नागरीप्रचारिणी सभा, लिपि० अनुल्लि०।

मुद्रित

१९. मन्ना–मन्नालाल द्वारा प्रकाशित, मुद्रणकाल सं० १९४३।
२०. वेंक–वेंकटेश्वर प्रेस, मुद्रणकाल सं० १९५१।
२१. ग्रिय–ग्रियर्सन साहब, संपादक, लालचंद्रिका के साथ, मुद्रण सं० १९५३।
२२. वही–पूर्वगामी संकेत।

चिह्न

+ –हस्तलेख में संशोधित पाठ ।

÷ –हस्तलेख में मूल पाठ ।

× –अभावसूचक ।

, –अक्षरलोपसूचक ।

ष़—ख ।

———

आधार प्रतियाँ

भाषाभूषण

१—प्राप्तिस्थान—याज्ञिक संग्रह ५४५। १९, काशीनागरीप्रचारिणी सभा
लिपिकाल—भाषाभूषण की समाप्ति पर लिपिकाल नहीं दिया गया है।
पर इस हस्तलेख में छत्रकविकृत विजय मुक्तावली भी है
जिसका रचनाकाल १७५७ है।

आकार—लंबाई ११."२, चौड़ाई ६."७
लेख अंश—लंबाई ९."४, चौड़ाई ४."६
पंक्ति प्रतिपृष्ठ—१७ से ३२
अक्षर प्रति पंक्ति—१८ से २३
पत्र — १ से ७ (पूरा हस्तलेख १०० पत्र का है, शेष में विजय-
मुक्तावली है) ।

स्वरूप—प्राचीन। सुस्पष्ट सुंदर लिपि। स्थित अच्छी है। कहीं जीर्ण-
शीर्ण नहीं है।
लिपि—देवनागरी।
पुष्पिका—इतिमहाराज जसवंतकृत भाषाभूषन संपू०।

२—प्राप्तिस्थान—जोधपुर।
लिपिकाल—संवत् १८१७।
आकार—लंबाई १०."५ चौड़ाई ६."५
पंक्ति०—१७
अक्षर०—५५ से ५७
पत्र—५
स्वरूप—प्राचीन
लिपि—देवनागरी
पुष्पिका—इतिश्री भाषाभूषन संपूर्ण ॥ सं० १८१७ माघ बदि १० शुक्रे।

३—प्राप्तिस्थान–याज्ञिक संग्रह २६४।१४, काशी नागरीप्रचारिणी सभा।

लिखक–श्री जगन्नाथ मिश्र, भरतपुर।

लिपिकाल–सं० १८१८।

आकार–लंबाई ८"।।।, चौड़ाई ५"।।

लेख्य अंश–लंबाई ५."७ चौड़ाई ३"।

पंक्ति०–१०

अक्षर०–२३

पत्र –८ (यह हस्तलेख २३६ पत्रों का है। भाषाभूषण पत्र १०० से ११६ तक है। इसके पूर्व चंद गुसाई कृत अरिल्ल, घनआनंद की वियोगवेली, कालिदास का वधूविनोद, नंददास की मानमंजरी, अनेकार्थमंजरी, रसमंजरी, विरहमंजरी और पश्चात् देव का अष्टयाम, बलभद्र का नखशिख और मतिराम का रसराज है। सभी ग्रंथों का लिखक एक ही है।)

पुष्पिका– ('रसराज' के अंत में) लिषितं मिश्र जगन्नाथ भरथपुर मध्ये ॥ चिरंजीव लाला बुधसिंह जी पठनार्थ ॥ संवत् १८१८ वर्षे श्रावन बदि ६ रविवासरे शुभं ॥

स्वरूप–प्राचीन

४— याज्ञिक संग्रह ३७२।२७०

टीकाकार–हरि कवि।

आकार–लंबाई ६."३ चौड़ाई ४."७

लेख्य अंश–लंबाई ७."१ चौड़ाई ३.२"

पंक्ति०–१०-११

अक्षर०–३०से३८।

पत्र–५८ (प्रथम पत्र और अंतिम पत्र नहीं हैं)

स्वरूप–प्राचीन। सुंदर लिपि। स्थिति अच्छी।

लिपि–देवनागरी।

५—प्राप्तिस्थान–भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पूना।

संख्या–४१३।१८९२-९५

खराकलि–धाकृष्ण

लिपिकाल—सं० १८३१

आकार—लंबाई ९."२ चौड़ाई ४."६

लेख्य अंश—लंबाई ७" चौड़ाई २.७"

पंक्ति०—८

अक्षर०—३०

पत्र—१६

स्वरूप—प्राचीन। सुस्पष्ट सुंदर लिपि। स्थिति अच्छी।

लिपि—देवनागरी।

पुष्पिका—॥इति श्रीमन्महाराजाधिराज धर्मधराधीस जसवंतसिंह राठोड

विरचितं भाषाभूषण संपूर्णम् ॥ दोहा ॥
लिख्यौजु राधाकृष्ण नैं भाषाभूषन ग्रंथ ॥
जो कोई सीखै सुनैं लहै अर्थ को पंथ ॥१॥
अष्टादश सत त्रिशनव संवत यही प्रमान ॥
शाढ़शुक्ल तिथि प्रतिपदा शुक्रवार पहिचान ॥२॥
श्री शुभं वरदा भवः ॥ कल्याणमस्तु ॥

६—प्राप्तिस्थान—याज्ञिक संग्रह

संख्या—४१७।१६

लिपिकाल—१८४...।

आकार—लंबाई ९.८" चौड़ाई ७"

लेख्य अंश—लंबाई ७.१" चौड़ाई ४.२"

पंक्ति०—१३-१४

पत्र—२८

स्वरूप—प्राचीन। सुंदर लिपि। स्थिति अच्छी। किनारा कटा फटा।

पुष्पिका—॥ इती भाषाभूषन संपूर्ण। संवत् १८४ ॥

(हस्तलेख पर 'साहुराम' नाम अंकित है)।

७—लिपिकाल—सं० १८५१

आकार—लंबाई १०" चौड़ाई ६.५"

लेख्य अंश—लंबाई ७.५" चौड़ाई ४.५"

पंक्ति०—१४ से १६

अक्षर०–१८

पत्र–१७

स्वरूप–प्राचीन।

लिपि–देवनागरी।

पुष्पिका–इति श्रीमन महाराजधिराज श्री महाराजा श्रीराजा जसवंत सिंघ भूपेन विरंचिते ॥ भाषाभूषन संपूर्न. समापति ॥ भादौ सुदि ११ सुक्रे संवत् १८५१ मुकाम मुकेवलारी ॥ लिख्यतं श्री महाराजाधिराज श्री राजा सौहनसिंघ जू देव ॥१॥

८—प्राप्तिस्थान–याज्ञिकसंग्रह ५०४।१६, काशी नागरीप्रचारिणी सभा।

लिखक–लाला गोकुलचंद

लिपिकाल–सं० १८५६

आकार–लं० ५.२″ चौ० ३.८″

लेख्य अंश–लं० ३ ८″ चौ० २.८″

पंक्ति०–६ से ११

अक्षर०–१० से १२

पत्र–५४ खंडित (भाषाभूषण १३ से ३८ तक, १६, २४ संख्यक पत्र नहीं हैं।

स्वरूप–स्पष्ट लिपि, यत्रतत्र धूमिल। बीच में पत्र फटे।

पुष्पिका–॥ इती श्री महाराज जससिंह राठौर विरचिते भाषा भूषन समाप्तं ॥ सुभमस्तू ॥ श्रीरस्तु श्री कल्यानमस्तू ॥ मिती० पोथी श्रीरामलालजी की लिषतं लाल गोकलचंद मिती आसौज सु ८ दीतवार संवत् १८५६।

विशेष–इसमें व्यासक संहार, विरह अंग (वोजिद) और प्रेमपच्चीसी (देव) भी हैं। आरंभ में भाषाभूषण के कुछ पत्र नहीं हैं।

९—प्राप्तिस्थान–हिंदी साहित्य संमेलन (प्रयाग)

लिपिकाल –१८५६ (अमिती मागीभ बुदि १)।

आकार– लं० ६″ चौ० ४″

लेख्यअंश–लं० ४.४″ चौ० ३″

पंक्ति०—६
अक्षर०—१८
पत्र—२६
लिपि—देवनागरी।

पुष्पिका—इति श्री भाषाभूषन अलंकार ग्रंथ संपूर्ण ॥ श्री ॥ दोहा ॥
प्रति दुसरी तैं लिष्यौ सोध्यो नाहि सम्हार ॥ लेषक दोस न दीजियो लीज्यो चतुर बिचार ॥ मिती मार्गीश्र बुदि १ संवत् १८५६. का ॥ श्रीरस्तु: ॥

१०. सं० ८२८।५८४
लिखक —शिव
लिपिकाल—सं० १८८६
आकार —८.६", ५.८"
लेख्य अंश—५.६", ३.६"
पंक्ति० —१५
अक्षर० —१६ से १८
पत्र —१४६ (भाषाभूषन ६७ से ८४ तक)
स्वरूप —प्राचीन। लिपि सुंदर। स्थिति अच्छी।
लिपि —देवनागरी
विशेष —भाषाभूषण से पूर्व इसमें इतने ग्रंथ और हैं—
बिहारी सतसई, अनेकार्थमंजरी (नंददास), फुटकल. रसराज (मतिराम)।

पुष्पिका — इति श्रीमंत महाराज धराधीश जसवंत सिंघ राठौर विरचित भाषाभूषन-समाप्तं ॥ सं० १८८६
परसपरइ हरिराम करि लेखिन हैं शिवराम ॥
माघ सुदी त्रयोदसी भृगु को ··· ··· याम ॥ ५ ॥ छ ॥
··· ··· ··· ··· ··· १ संमत कृते जा ··· न ॥
जो या की ··· ··· के दूर ख न ··· सार ···

११. प्राप्तिस्थान—याज्ञिकसंग्रह १०६ ग।२२, संग्रहकर्ता·मयाशंकर जी याज्ञिक
लिपिकाल —सं० १८६१

आकार —८.६', ५.३
लेख्य अंश —७" ३.६"
पंक्ति —२०
अक्षर० —१४ से १७
पत्र —१४
स्वरूप —लिपि सुस्पष्ट सुंदर। स्थिति अच्छी।
लिपि —देवनागरी
पुष्पिका —इति श्री भाषाभूषन समाप्तं सं० १८६१
आश्विन शुक्ल १४ गुरौ शुभं।

१२. प्राप्तिस्थान —आर्यभाषा पुस्तकालय, काशीनागरीप्रचारिणी सभा।
संख्या —१७८
संकलयिता और टीकाकार — दलपति राय वंशीगोपाल
(विवरण यों दिया है—

नवत सुरासुर मुकुट महि प्रतिबिंबित अलिमाल ॥
किए रत्न सब नीलमनि सो गणेश रच्छिपाल ॥ १ ॥
भाषाभूषन अलंकृति कहुं यक लक्षनहीन
श्रम करि ताहि सुधारि लो दलपति राइ प्रबीन ॥ २ ॥
कहूं कहूं पहिले धरे उदाहरन सरसाइ
कहूं नए करिकै धरे लच्छन लच्छित पाइ ॥ ३ ॥
अर्थ कुवलयानद को बाध्यौ दलपति राइ
वंसीधर कबि ने धरे कहूं कबित्त बनाइ ॥ ४ ॥
मेद पाट श्रीमाल कुल विप्र महाजन काइ
बासी अमदाबाद के बंसी दलपति राइ ॥ ५ ॥
जैसें रीझि जंवाहिरी लेत जंवाहिर पेषि
त्यौ कबिजन सब रीझिहैं अति अद्भुत श्रम देषि ॥ ६ ॥
दरबिलोम जस को न किय नहिं बिवरिअ उरभार
अपने चित्त विनोद को कीन्हो यहै प्रकार ॥ ७ ॥
भौहैं कुटिल कमान सी सर से पैने नैन।
बेधत ब्रज अबलानि हिय बंसीधर दिन रैन ॥ ८ ॥

-सं० १६०७
-६" ४.७"
-६.२" ३"
-६-१०
-२१ से २४
-४३
-प्राचीन । लिपि सुंदर । स्थिति अच्छी ।
-इति श्री भाषाभूषन समास मिति सावन बदि ५ सन् १२५७ साल ॥ संवत् १६०७ ॥ मुकाम बलिरामपुर षास ॥

त-भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पूना ।

-१५१३।१८६१-६५
-कवि ताराचंद केवलजी
-सं० १६४८
-७.५" ६"
-५.२" ४.२"
-१६
-१४ से १७
-१९
-प्राचीन । लिपि सुस्पष्ट सुंदर । स्थिति अच्छी ।
-देवनागरी ।
-इति श्रीमन्महाराजाधिराज मरुस्थलाधिश श्री राठौर कुलावतंश श्रीजशवंतसिंह कृत भाषा भूषण संपूर्ण । ६ ॥ ६ लखितंग ॥ कवि । ताराचंद । केवलजी संवत १६४८ ना वर्षे श्रावण शुक्ल ४ अणहिल्लपुर पट्टन नगरे ॥ ६ ॥

न-खोज विभाग, काशी नागरीप्रचारिणी सभा

-१३७५
-भूषन कवि ?
-१०.१" ४.३
-७.७" ३"

पंक्ति० —१३
अक्षर० —४४ से ४८
पत्र —६
स्वरूप —प्राचीन। लिपि सुंदर। स्थिति अच्छी। किनारा फटा फटा।
लिपि —देवनागरी।
पुष्पिका —इति श्री भूषन कवि विरचिते भाषाभूषनं ग्रंथे अर्था० शब्दा० संपूर्ण।

१५. प्राप्तिस्थान—भंडारकर ओरियंटल इंस्टीच्यूट, पूना।

संख्या —१४५८।१८८८-९१
आकार —१०.७" ५.२"
लेख्य अंश —८.१" ४"
पंक्ति० —१३
अक्षर० —३२-३३
पत्र —११
स्वरूप —प्राचीन। लिपि सुस्पष्ट सुंदर। स्थिति अच्छी। किनारा फटा फटा।
लिपि —देवनागरी
पुष्पिका —इतिश्रीभाषाभूषण अलकार संपूर्णम्॥ श्रीरस्तु॥ श्री॥

१६—प्राप्तिस्थान—याज्ञिकसंग्रह (भरतपुर से प्राप्त)

संख्या —२५७.१६
आकार —११.४" ६.८"
लेख्य अंश —६",५"
पंक्ति० —२३—२४
अक्षर० —१८— ६
पत्र —१३ (३ और १० खंडित)
स्वरूप —लिपि स्पष्ट। यत्रतत्र धूमिल। पत्र फटे।

लिपि —देवनागरी ।

पुष्पिका —इति श्री महाराजाधिराज श्रीध यशवंतसिंह जो विर-
—चितं भाषाभूषण समाप्तमस्तु शुभं भवतुः भरथंपुरः
—परोपकारार्थः राम ।

१७—प्राप्तिस्थान—याज्ञिकसंग्रह, ग्रंथस्वामी भवानीशंकर याज्ञिक।

संख्या —१०६ ख । २२

आकार —८.५'',५.३''

लेख्य अंश —६.५'',३.८''

पंक्ति० —१४

अक्षर० —१८ से २०

पत्र —७१

स्वरूप —लिपि सुस्पष्ट सुंदर । स्थिति अच्छी ।

लिपि —देवनागरी ।

पुष्पिका —इति श्री भाषा भूषन समाप्तम् ॥

विशेष —इसमें उदाहरण रूप में अन्य कवियो के छंद भी संगृ-
—हीत हैं—

केशवदास, सेनापति, काशीराम, गंग, ऊधोराम, सुंदर, नरोत्तम, देवीदास, नंददास, मंडन, मतिराम आदि के।

१८—प्राप्तिस्थान—आर्यभाषा पुस्तकालय, काशी नागरीप्रचारिणी सभा ।

संख्या —६७

आकार —८.८'',५.५''

लेख्य अंश —६.६'',४.३

पंक्ति० —१८—१६

अक्षर० —१८ से २०

पत्र —१४

स्वरूप —प्राचीन, लिपि सुंदर । स्थिति जीर्णशीर्ण ।

लिपि —देवनागरी ।

पुष्पिका —भाषाभूषण समाप्तोयं शुभम् भूयात ॥

मुद्रित प्रति

१९–इसके संपादक मन्नालाल कवि हैं। जो आधार ग्रंथ है इसमें आवरण पृष्ठ नहीं है। इसके साथ रसिक मोहन भी है। उसके अंत में संवत १९४३ चैत्र शुक्ल ९ लिखा है।

पुष्पिका –इति श्रीमन्महाराज यशवंतसिंह कृत भाषाभूषण –संपूर्णम् ॥

२० आवरण पृष्ठ—

॥ श्रीः ॥

भाषाभूषण

जिसमें नायक नायिकादिकों के अलंकार वर्णित हैं।

जिसको

श्री १०८ श्रीमान् महाराजाधिराज योधपुराधीश यशवंत सिंहदेवजी ने निर्मित किया।

वही

डुमराव निवासी पं० नकछेदी तिवारी द्वारा परिशोधित कराय खेमराज श्री कृष्णदास ने

बंबई

स्वकीय 'श्रीवेंकटेश्वर' छापाखाना में छाप कर प्रगट किया।

आश्विन संवत् १९५१ वि०

रजिस्ट्री हक यंत्रालयाधीश ने स्वाधीन रक्खा है।

पुष्पिका –इति श्रीमन्महाराजधिराज श्री यशवंत सिंह देव बहादुर मरुस्थलाधिपति कृत भाषाभूषण समाप्त ॥

२१—यह ग्रियर्सन साहब द्वारा संपादित बिहारी सतसई की लालचंद्रिका टीका के साथ दिया गया है। रोमी अक्षरो में मुद्रित है। इसका समय सं० १९५३ है।

दोवा

हस्तलेख

जोध —जोधपुर से प्राप्त, 'फुटकर कविता'-ग्रंथसंख्या ३११ 'सरस्वती भवन,' उदयपुर।
लिपिकाल अनुल्लिखित।

चिह्न

[ ] बड़े कोष्ठकों से घिरे पाठ सुझाव के हैं।

प्रबोध नाटक :

हस्तलेख

उदय उदयपुर, सरस्वती भवन, प्राप्तिस्थान, लिपिकाल सं० १७९५ भादो बदी ६ भौमवार। लिखक उदयराम, लिखायत कवि नंदराम।

जोध —जोधपुर, पुस्तक प्रकाश, प्राप्तिस्थान, लिपिकाल अनुल्लिखित।

खोज —खोज विभाग, काशी नागरीप्रचारिणी सभा—प्राप्तिस्थान, लिपिकाल अनुल्लिखित।

चिह्न

छूट सूचक चिह्न।

आनंदविलास

हस्तलेख

उदय —उदयपुर, सरस्वती भवन, लिपिकाल, सं० १७३३।
जोध —जोधपुर, पुस्तक प्रकाश, लिपिकाल सं० १८६६।

अनुभवप्रकाश

हस्तलेख

उदय —उदयपुर, सरस्वती भवन, प्राप्तिस्थान, लिपिकाल, सं० १७३३।

जोध —जोधपुर, पुस्तक प्रकाश, प्राप्तिस्थान, लिपिकाल सं० —१८६६ ।

अपरोक्षसिद्धात

हस्तलेख

उदय —उदयपुर, सरस्वती भवन, प्राप्तिस्थान, लिपिकाल सं० १७३३ ।

जोध —जोधपुर, पुस्तक प्रकाश, प्राप्तिस्थान, लिपिकाल सं० १८६६ ।

सिद्धांतबोध

हस्तलेख

उदय— उदयपुर, सरस्वती भवन, प्राप्तिस्थान, लिपिकाल, सं० १७३३ ।

खोज —खोज विभाग, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, प्राप्ति-स्थान, लिपिकाल, सं० १७६० ।

जोध— जोधपुर, पुस्तक प्रकाश, प्राप्तिस्थान, लिपिकाल, सं० १८६६ ।

सिद्धातसार

हस्तलेख

सर —सरस्वती भवन, उदयपुर, लिपि० सं० १७३३ ।

उदय —उदयपुर, सरस्वती भवन, लिपि सं० १७४६ ।

जोध —जोधपुर, पुस्तक प्रकाश, लिपि सं० १८६६ ।

मुद्रित

पंचक —वेदांत पंचक, संपादक, विश्वेश्वरनाथ रेऊ, प्रकाशन सन् १९२३ ।

दोवा

जोध —प्राप्तिस्थान-सरस्वती भवन, उदयपुर ।

संख्या—३११ 'फुटकर कविता'

पत्र—४५० से ४७८ ।

छंद–दोहा ६० कबित्त।

(वास्तविकता यह है कि इसमें ५४ तक संख्या दोहों की है। पर इसमें भी '३८' संख्या दो बार है। अतः कुल दोहे ५५ हुए। इसके अनंतर दोहा न होकर कबित्त है और 'मतिराम' का है। उस पर '५५' संख्या दी गई है। संख्या ५६-५७ पर 'देव' के दो कबित्त हैं। ५८ पर 'मतिराम' का कबित्त फिर दिया गया है। ५६ पर भी कबित्त है पर कवि के नाम का पता नहीं चलता। ६०-६१ पर मुबारक के तिलशतक के दो दोहे हैं। फिर अंत में एक सवैया है। इसी सवैये पर '१' संख्या है। ऊपर के '६१' को ६० लिखा गया है और इसे '१' कबित्त।

प्रबोध नाटक

१–उदय

प्राप्तिस्थान–सरस्वती भवन, उदयपुर

संख्या –४२१ पत्र – १८

आकार –६॥" ८॥" लिपिकाल–सं० १७९५, भादो बदी ६, भौम।

पंक्ति –२३-२८

अक्षर० –२४ से २७

पुष्पिका –इतिश्री श्री श्री श्री श्री श्री जसवंत सिंह जी कृत प्रबोधचंद्रोदय नाटक समाप्त। संवत् १७१५ भादवा बदि ६ भौमे श्रीरस्तु॥ कल्याणमस्तु शुभं भवतु श्री लिषायत कवी नंदरांम लिषतं लेषक उदैराम॥ श्री॥

२–जोध

प्राप्तिस्थान–पुस्तक प्रकाश, जोधपुर।

संख्या –४१७। विशेष संख्या ३, बंध १

लिपि० –अनुल्लिखित।

पुष्पिका –इतिश्री महाराजाधिराज महाराज श्रीजसवंतसिंह जी कृत प्रबोध नाटक भाषा संपूर्णः॥ श्रीरस्तुः कल्याणः।

३–खोज

खोज विभाग, काशी नागरीप्रचारिणी सभा।

पुष्पिका–इतिश्री महाराजा श्री जसवंतसिंघजी कृत प्रबोध चंद्रोदय नाटक ग्रंथ संपूर्ण ॥

आनंदविलास

१–जोध

प्राप्तिस्थान–पुस्तक प्रकाश, जोधपुर प्रकाश, जोधपुर। सामान्य सं० ११६४, विशेष संख्या १११।

रचनाकाल–सं० १७२४।

लिपिकाल–सं० १८६६ (इसी जिल्द में 'सिद्धांतसार' के अंत में यह संवत्। लिखक दोनो का एक ही है।)

आकार –६'' ८'

पंक्ति प्रतिपृष्ठ–१६

अक्षर प्रतिपंक्ति–१६

लिपि –देवनागरी

पुष्पिका –संवत् सत्रह सै बरष। ता ऊपर चौबीस।

सुकल पक्ष कार्तिक बिषै। दसमी सुत रजनीस ॥२०१॥
इति श्री आनंदविलास ग्रन्थ संपूर्ण। महाराजा श्री श्री श्री श्री श्री श्री जसवंतसिंघजी कृत ॥श्री॥ श्रीरस्तुः ॥ शुभंवतुः॥

२–उदय

प्राप्तिस्थान–सरस्वती भवन, उदयपुर। ग्रंथ सं० ६०६।

रचनाकाल–सं० १७२४

लिपिकाल–सं० १७३३।

आकार –६.४'' ७.५''

पंक्ति प्रतिपृष्ठ–१२

अक्षर प्रतिपंक्ति–२१

लिपि –देवनागरी

पुष्पिका —संवत सत्रह सै बरष । ता ऊपरि चौबीस ।
सुक्ल पष्य कातिक बिषै । दसमी सुतरजनीस ॥ २०१ ॥
इति श्री आनंदबिलास ग्रंथ संपूर्णः ॥ महाराजा श्री श्री श्री श्री जसवंतसिंघजी कृत ॥ स० १७३३ मार्ग क्रि० ६ गुरे ॥ राजि श्री रामसिंघ जी राज्ये ॥

सिद्धातसार

१–उदय

प्राप्तिस्थान—सरस्वती भवन, उदयपुर । सं० ६४
लिपिकाल —सं० १७४६
आकार —४"–६॥"
पंक्ति प्रतिपृष्ठ—६
अक्षर प्रतिपंक्ति–२७
पत्र —१५
लिपि —देवनागरी
पुष्पिका —इतिश्रीमहाराजाधिराज महाराजा श्री श्री श्री श्री श्री जसवंतसिंघजी कृत सिद्धांतसार ग्रंथ संपूर्णः । श्री महाराजा सूर्यसींघ जी बचनातु दबे माधव लीषतं श्रीरस्तु । सं० १७४६ वर्षे मार्गसिर्ष बदी १४ गुरे ग्रंथ संपूर्णोयं ॥

२–जोध

प्राप्तिस्थान—पुस्तक प्रकाश, जोधपुर। सामान्य सं० १३०५, विशेष संख्या १२२ वेष्ठन १
लिपिकाल—सं० १८६९
आकार —६" ८"
पंक्ति प्रतिपृष्ठ—१६
अक्षर प्रतिपक्ति- १३ से १६
पत्र —१७
लिपि —देवनागरी
पुष्पिका – इति श्री महाराजाधिराज महाराजा श्री श्री श्री श्री श्री

जसवंतसिंघजी कृत सिद्धांतसार ग्रथ समाप्तः ॥ श्री ॥
संवत् १८६६ जेठ ब ५ ॥

३—सर

प्राप्तिस्थान —सरस्वती भवन, उदयपुर (दूसरा हस्तलेख) सं० ६०३ ।
लिपिकाल —सं० १७३३ ।
आकार —६·४",७·५"
पंक्ति प्रतिपृष्ठ—१२
अक्षर प्रतिपंक्ति—२१
पत्र —३६३ से ४१५ तक, ५३
(इस हस्तलेख में १७ ग्रंथ विभिन्न कवियों के और हैं) ।
लिपि —देवनागरी

पुष्पिका —इतिश्री महाराजाधिराज श्री श्री श्री श्री श्री
जसवंतसिंघ जी कृत सिधातसार ग्रंथ संपूर्णः ॥
सं० १७३३ का० शु० १४ ॥

४—पंचक

प्राप्तिस्थान —जोधपुर ।

इसमें अनुभवप्रकाश, अपरोक्षसिद्धात, आनंदविलास, सिद्धातबोध और सिद्धांतसार इन पाच ग्रंथो का संपादन वेदातपंचक के नाम से किया गया है । सपादक हैं श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ । यह राज परिषद् (स्टेट कौंसिल) जोधपुर के आदेश से प्रकाशित हुआ था । प्रकाशन काल सन् १९२३ है ।

पुष्पिका —इत श्री महाराजाधिराज महाराजा श्री श्री श्री जसवंत सिंघ जी कृत सिद्धांतसार ग्रंथ समाप्त ॥

छूटक दोहा

पुस्तक प्रकाश, जोधपुर ।
इसमें केवल ३६ ही छंद हैं ।

जोधपुर नरेश महाराज जसवंत सिंह

जन्म : सं० १६८३]　　　　[निधन : सं० १७३५

जसवंत सिंह

जीवनवृत्त

महाराज जसवंतसिंह राजस्थान के पश्चिमी भाग में अवस्थित मारवाड़ के प्रसिद्ध नरेश थे। विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में कन्नौज के राठौर नरेश जयचंद्र के पौत्र सीहाजी ने आकर मारवाड़ में अपना राज्य स्थापित किया। इस वंश में राव मालदेव बड़े पराक्रमी हुए। राव चंद्रसेन स्वातंत्र्याभिमानी हुए और महाराज जसवंतसिंह (प्रथम) तो औरंगजेब ऐसे बादशाह की भी अवहेलना करनेवाले हुए[1]। राठौड़ की प्रशस्ति रणबंका होने की ही है—

बलहट बंका देवड़ा किरतब बंका गोड़।
हाड़ा बंका गाढ में रणबंका राठोड़॥

इनकी युद्धवीरता का गुणगान मुसलमानी इतिहासकारों ने भी किया है[2]।

राठौड़ वंश में आगे चलकर राजा गजसिंह हुए। इन्हीं के दो पुत्रों में छोटे राजा जसवंतसिंह (प्रथम) थे। राजा गजसिंह स्वयम् अच्छे योद्धा तो थे ही, विद्वानों का आदर-सत्कार भी करते थे। प्राचीन काव्यों से प्रकट होता है कि इन्होंने अपने समय के १४ कवियों को लाखपसाव (स्वेच्छा से जागीर का दान) दिया था[3]।

राजा गजसिंह के बड़े कुमार थे अमरसिंह। वे स्वभाव से बड़े उद्धत थे। पिता ने उनके औद्धत्य के कारण उन्हें अधिकारच्युत कर दिया था। वे बड़े वीर एवम् पराक्रमी थे। उनका अमर्ष इतना अधिक था कि किसी की कड़ी बात सहन नहीं कर सकते थे। आगरे की वह घटना इतिहासप्रसिद्ध ही नहीं, लोकप्रसिद्ध भी है जिसके अनुसार शाहजहाँ के दरबार में सलावत खां द्वारा 'गँवार' कह देने पर उन्होंने भरी सभा में उसे (सलावत खां को) कटार से

---

१. मिलाइए 'मारवाड़ का इतिहास'-विश्वेश्वरनाथ रेऊ।

२. देखिए 'सहरुल मुताखरीन'- सैयद गुलाम हुसेन।

३. देखिए 'गुणभाषाचित्र'—हेमकविकृत और 'गुणरूपक'—केशवदास चारणकृत।

से ही मार डाला था और स्वयम् घोड़े को किले पर से बाहर कुदाकर निकल भागे थे। आगरे के किले के बाहर पत्थर का घोड़ा उस ऐतिहासिक घटना की स्मृति प्रतीक रूप से अब भी प्रकट कर रहा है। अमरसिंह ने कितनी फुरती से सलावत खां के कलेजे में कटार घुसेड़ दी थी इसका पता यह बहुप्रचलित दोहा देता है—

उण मुख ते गग्गो कह्यो इण कर लई कटार।
वार कहण पायो नहीं जमदढ़ हो गई पार[1]॥

उनके विक्रम को संकेत यह जनप्रसिद्ध कवित्त भी देता है—

साह को सलाम करि बैठ्यो है अमरसिंह,
कटि तें कटार हाथ गही है गुसागरा।
जान ही सलावत पै मारी जो कटारी कारी,
फूटि चल्यो जैसे सो कुसुभन को गागरा।
राजा गजसिंह बेटा अटल अमरसिंह,
करी रजपूती जैसे नौलसिंह नागरा।
सवा पाव लोहे तें हिलाइ डारी पादशाही,
होती समसेर तौ छुड़ाइ लेतौ आगरा॥

बनवारी कवि (रचनाकाल सवत् १६६०) ने इस घटना का बड़ा ओजपूर्ण वर्णन किया है—

धन्य अमर छिति छत्रपति अमर तिहारो मान।
साहजहाँ की गोद में हन्यो सलावत खान॥
उत गंकार मुख सो कढी इतै कढ़ी जमधार।
'वार' कहन पायो नहीं भई कटारी पार[1]॥

राजा गजसिंह के दूसरे पुत्र और इन्हीं अमरसिंह के छोटे भाई जसवंतसिंह थे, जो पिता के देहावसान पर सिंहासनारूढ़ हुए।

जसवंतसिंह का जन्म सं० १६८३ की माघ बदी ४ तदनुसार २६ दिसंबर १६२६ ई० में बुरहानपुर (दक्षिण) में हुआ था। राजा गजसिंह के

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचद्र शुक्ल, पृ० ३५७।

देहावसान पर सं० १६९५ की जेठ सुदी ३ (६ मई, १६३८) को शाहजहाँ ने इन्हें 'राजा' की पदवी से विभूषित किया। १९-२० दिनों के अनंतर आषाढ़ बदी ७ (२५ मई) को आगरे में इनका राजतिलक हुआ। उस समय ये केवल साढ़े ग्यारह वर्ष के थे। इसलिये राज की देखभाल के लिये कूपावत राजसिंह नियुक्त किए गए। ढाई वर्ष में राजसिंह का परलोकवास हो गया। तब देखभाल का कार्य चांपावत महेशदास को सौंपा गया। ये दोनों ही राजा गजसिंह के विश्वासभाजन थे।

ख्यातें कहती हैं कि जिस समय राजा गजसिंह स्वर्ग सिधारे कुमार जसवंतसिंह विवाहार्थ बूँदी गए हुए थे। पिता के स्वर्गवास का समाचार पा ये आगरे चले गए। वहाँ शाहजहाँ ने स्वयम् अपने हाथ से इनका राजतिलक किया था। वहाँ से दिल्ली, पालम, लाहौर, पेशावर, फिर हरिद्वार होते सं० १६९७ की जेठ सुदी (मई, १६४०) में जोधपुर पहुँचे। वहाँ राजतिलक का उत्सव धूमधाम से मनाया गया। इन्होंने ३ हाथी और २२ घोड़े अपने सरदारों और चारणों को दिए। जोधपुर के तिलकोत्सव के अनंतर ही वस्तुतः राजकार्य का प्रबंध विधिवत् इन्होंने विश्वासपात्र सरदारों के परामर्श से आरंभ किया। ये प्रख्यात विक्रमादित्य की भाँति वेश बदल कर नगर का निरीक्षण भी किया करते थे।

इनका शाहजहाँ ने कई बार संमान किया। राज की दो वर्ष की देखभाल के अनंतर बादशाह ने इन्हें कंधार भेजा। एक वर्ष बाहर रहकर ये जोधपुर लौटे। श्रीमहेशदास को बादशाह ने मनसबदार बना दिया। इसलिये उन्हें शाही दरबार में रहना पड़ता था इसलिये जसवंतसिंह ने मेड़तिया गोपालदास को प्रधान बनाया। मुहणोत नैणसी को पहाड़ी प्रदेश में उपद्रव शांत करने के लिये ससैन्य भेजा।

इन्हें लाहौर और फिर औरंगजेब के साथ कंधार जाना पड़ा। कंधार-विजय में विफलता ही हाथ लगी, पर पराक्रम विशेष दिखाया गया। यह घटना सं० १७१० वैक्रम की है। इसके पूर्व औरंगजेब दो बार कंधार में बुरी तरह विफल हो चुका था। बादशाह इनके पराक्रम से बहुत प्रसन्न था। सं० १७१२ (सन् १६५५) से इन्हें महाराज की पदवी प्राप्त हुई। इनके देश में इससे पहले महाराज की पदवी किसी को नहीं प्राप्त हुई थी।

यह पदवी पाने के अनंतर सीसोदिया सर्वदेव की कन्या से विवाह करने ये मथुरा गए, वहाँ से फिर जोधपुर।

सन् १६५७ में शाहजहाँ बीमार पड़ा। उस अवसर पर यह समाचार फैला कि बादशाह की मृत्यु हो गई। औरंगजेब और मुराद उस समय दक्षिण में सूबेदार थे। उन्हें जब यह समाचार मिला तब वे दोनों दिल्ली पर अधिकार कर लेने के विचार से चल पडे। पता लगते ही महाराज जसवंतसिंह और दारा उनका दमन करने को भेजे गए। महाराज प्रधान बनाए गए। एक लक्ष मुद्रा और मुगल सेना इनके अधिकार में दी गई। २२ उमराव इनके अधीन थे। उनमें १५ मुसलमान और शेष हिंदू थे। औरंगजेब ने उन १५ मुसलमान उमरावों को फोड़कर अपनी ओर कर लिया। उज्जैन के निकट फतेहाबाद ग्राम के परिसर में बागी शाहजादों से इनकी भिड़ंत हुई। ६ घंटे अनवरत युद्ध के अनंतर शादजादे जीत गए। राठौर सिपाहियों ने १० सहस्र मुगलों को धराशायी किया। महाराज अपने प्रिय घोडे महबूब सहित लोहूलुहान हो गए। रत्नसिंह ने महाराज को बरबस मारवाड़ भेजा। वह स्वयं वीरतापूर्वक लड़ता रहा।[१] उसी प्रकार सुजानसिंह भी लड़ता रहा। मुगलों के पैर उखड़ गए। कासिम खा आदि आगरे भागे, पर विजय शाहजादों की ही हुई।

सांभर के खजाने से पचास हजार रुपये लेकर पुनः सेना इकट्ठी की गई। शाही फरमान के अनुसार महाराज ने जोधपुर का शासन मुहणोत नैणसी को सौंपा और स्वयम् आगरे को प्रस्थान किया। एक महीने आगरे ठहरे, दाराशिकोह से मिले। धौलपुर के पास औरंगजेब से दूसरी लड़ाई हुई। इसमें भी महाराज की सेना हार गई। रुस्तम खां, छत्रसाल (बूँदी), रूपसिंह (रूपनगर) वीरगति को प्राप्त हुए।

इसी समय शाहजहाँ बंदी बना लिया गया और मुराद का अंत हो गया। महाराज जसवंतसिंह मारवाड़ लौट गए। औरंगजेब इनकी वीरता का लोहा मान गया था। उसने उद्योग करके आगरे के मिर्जा राजा जयसिंह को भेजकर इन्हें सम्मानपूर्वक बुलवाया और गुप्त संधि की। फिर बंगाल में

---

१. देखिए 'वचनिका राठौर रतनसिंहजी री महेसदासोत खिड़िया जगा री कही'।[१]

शाहशुजा का सामना करने के लिये उसने अपने पुत्र मुहंमद के साथ इन्हें भेजा। वहाँ जाकर शाहशुजा से युद्ध करना ठीक न समझ ये जोधपुर लौट गए। सन् १६५९ में इन्हें सतहजारी मनसब देकर गुजरात का सूबेदार बनाया गया। दो वर्ष बाद शाइस्ता खाँ के साथ शिवाजी से मोरचा लेने के लिये ये भेजे गए। औरंगजेब की चाल समझकर इन्होंने शिवाजी से युद्ध करना ठीक नहीं समझा। शाइस्ता खाँ की जो दुर्गति हुई उसका हेतु इनका शिवाजी से मिल जाना भी माना जाता है। अंत में ये लोग वापस बुला लिए गए। इनके स्थान पर राजा जयसिंह और शाहजादा मुअज्जम भेजे गए।

सन् १६७० में ये तीसरी बार गुजरात के सूबेदार बनाए गए। वहाँ तीन वर्ष रहकर पठानो का दमन करने के लिये काबुल भेजे गए। इनके आक्रमण से पठानों के छक्के छूट गए। जीवन के शेष दिन सीमांत प्रदेश के जमरोज स्थान में ही बीते।

काबुल जाने के पहले इन्होंने जोधपुर का शासन बड़े लड़के पृथ्वीसिंह को सौंप दिया था। उनके संबंध में कहा गया है कि एक बार औरंगजेब के दरबार में जाने पर उसने इसके दोनों हाथ पकड़कर कहा कि बोलो, अब क्या कर सकते हो। उन्होंने उत्तर दिया कि आपने मेरे दोनों हाथ अपने हाथ मे ले लिये यह आपकी महती कृपा है। अब मैं सारे संसार का विजेता हो सकता हूँ। इस पर बादशाह ने कहा कि यह दूसरा 'कुट्टन' है। वह जसवंत सिंह को कुट्टन[1] कहा करता था।

औरंगजेब ने पृथ्वीसिंह को सिरोपाव दिया। कहते हैं कि उसमें विष था। कुछ इतिहासलेखक इसे नही मानते। मृत्यु मे उनकी छोटी माता को हेतु कहते हैं। जो हो, पृथ्वीसिंह की मृत्यु हो गई। समाचार जब महाराज

---

१. गंग कवि 'कुट्टन' के संबंध में यो भनते हैं।

कहा नीच की प्रीत कहा कोटू का कीणाँ।
कहा चिड़ी की लात कहा गाडर का घीणाँ॥
कहा कृपन का दान कहा पाहन का बूटा।
कह विषधर से नेह कहा केहरि का टूटा॥
गंग कहै गुनवंत सुनि फुटी नाव क्यौं खेइयै।
गुन औगुन समझैं नहींते कुट्टन क्यों सेइयै॥

जसवंतसिंह को मिला तब ये बड़े दुःखी हुए और तिलांजलि देते हुए कहा कि तिलांजलि तुझे ही नहीं मारवाड़ को भी देता हूँ।[१]

औरंगजेब ने एक ढेले से कई शिकार किए–(१) पठानों के आक्रमण का अवरोध (२) जसवंत सिंह का सजातीयों से पार्थक्य, (३) यदि महाराज आक्रमण में हत हो गए तो कंटकशोधन भी। यह कल्पना भी की जाती है कि महाराज के मारवाड़ से दूर रहने में औरंगजेब की कूटनीति नहीं उनकी धर्म-नीति ही हेतु थी। दूर रहने से धर्म की रक्षा भी थी और दबदबा भी बना था। 'जजिया' लगाने की हिम्मत बादशाह को नहीं हुई। कहते हैं कि औरंगजेब के मंदिरविध्वंस का समाचार जब महाराज को चला, तब उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों सभी की सभा में रोषावेश में कहा था कि यदि बादशाह यह कार्य नहीं रोकते तो मुझे मसजिद तोड़ने को बाध्य होना पड़ेगा[२]। किसी ने कहा कि बादशाह इससे बहुत अप्रसन्न होंगे, तो उन्होंने उत्तर दिया कि भरी सभा में यह बात उनके अप्रसन्न होने के लिये ही कही गई है। कोई न कोई यह समाचार उन तक पहुँचाएगा ही। समाचार पाकर यदि उन्होंने अपना अकार्य नहीं रोका तो उनके अप्रसन्न होने पर जो मैं कह रहा हूँ उसे कर दिखाऊँगा।

काबुल में इनके दूसरे राजकुमार श्रीजगतसिंह की मृत्यु हो गई। कहीं-कहीं इनके दो राजकुमारों की मृत्यु की बात लिखी गई है[३]। जगतसिंह की मृत्यु के ढाई वर्ष बाद महाराज का देहावसान हो गया। कुछ इतिहास लेखक मानते हैं कि महाराज की मृत्यु बादशाह द्वारा विष दिलाने से हुई थी[४]। उनकी मृत्यु पर औरंगजेब ने कहा था 'दरवाजए कुफ्र शिकस्त'

---

१. भारत के देशी राज्य।

२. वही।

३. लेटर मुगल्स, भाग १, पृ० ४४।

४. वी० ए० स्मिथ आक्सफोर्ड हिस्ट्री आव् इंडिया, पृ० ४३८। स्मिथ ने टाड और मनूची का उल्लेख करके लिखा है कि यदि इनके कथनों को सत्य माना जाय तो विषप्रयोग ही सिद्ध होता है।

अर्थात् धर्मविरोध का द्वार ध्वस्त हुआ[१]। इससे भी विष देने की बात मानने को जी करता है।

ख्यातों से पता चलता है कि रानियाँ और परदायतें मिलाकर इनकी मृत्यु पर पंद्रह महिलाएं सती हुईं। सरकार ने पाँच रानियों और सात परदायतों का सती होना लिखा है[२]। केवल दो रानियाँ गर्भवती होने के कारण सती नहीं हुईं। दोनों से दो संतानें हुईं जिनमें से एक की मृत्यु हो गई। एक संतति आगे चलकर अजितसिंह नाम से प्रसिद्ध हुई जिनके लिये वीरवर दुर्गादास ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी।

महाराज की मृत्युतिथि इस छंद में कथित है--

सतरै संमत पौस पैंत्रीसै। दसमी बार ब्रहस्पति दासै।
मुर धर छत्र जसो महाराजा। सुरपुर गयो लिया ब्रद साजा[३]॥

कृतियाँ

काशी नागरीप्रचारिणी सभा की 'खोज' में महाराज जसवंतसिंह की निम्नलिखित कृतियाँ विवृत हुई हैं---

अनुभवप्रकाश--(१-७२, २-१५)
अपरोक्षसिद्धात--(१-७१, २-१४ २६-२०१)
आनंदविलास--(१-७३, २-१७)।
प्रबोधचद्रोदय--(२--१२)।
भाषाभूषण --(२-४७, ६-१७६, ६-२५१, २०-७०, २३-१८३, २६-२०१, २९-१७१, दिल्ली ३२-४३)।
सिद्धांतबोध --(२-१६)।
सिद्धातसार --(२-४६)।

'राजस्थान में हिंदी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज' से निम्नलिखित ग्रंथों का पता चलता है--अनुभवप्रकाश, अपरोक्षसिद्धात, आनंदविलास, इच्छाविवेक, प्रबोधचंद्रोदय, भाषाभूषण, सिद्धातसार। अंतर यह है कि

---

१. तवारीख मुहम्मद शाही।

२. हिस्ट्री आव् औरंगजेब' भाग ३, पृ० ३७३।

३. राजरूपक।

सिद्धांतबोध का पता इसे नहीं है और इच्छाविवेक नवीन रचना मिली है। राजस्थान की खोज में ये सब हस्तलेख सरस्वतीभंडार (उदयपुर) के हैं। उदयपुर के सरस्वतीभंडार से हमारे शोध के फलस्वरूप इनके कुछ दोवा मिले हैं जो शृंगार रस के हैं।

जोधपुर के पुस्तकप्रकाश से निम्नलिखित ग्रंथों का पता चलता है—आनंदविलास, अनुभवप्रकाश, अपरोक्षसिद्धांत, सिद्धांतबोध, सिद्धांतसार, प्रबोध नाटक, भाषाभूषण, छूटक दोहा। यहां इच्छाविवेक नहीं है। छूटक दोहा नवीन रचना है। उदयपुरवाले दोवा से यह भिन्न है और नीति-वैराग्य की रचना है। इच्छाविवेक कोई स्वतंत्र रचना नहीं है। अनुभव-प्रकाश के आरंभ के इच्छा विषयक ६ छंदों (२ से ७ तक) का ही नाम इच्छाविवेक रखा गया है। इस प्रकार महाराज जसवंतसिंह की जिन कृतियों का पता चला वे सब ये हैं—अनुभवप्रकाश, अपरोक्षसिद्धांत, आनंदविलास, प्रबोध नाटक, भाषाभूषण, सिद्धांतबोध, सिद्धांतसार, दोवा, छूटक दोहा।

इनमें से अनुभवप्रकाश, अपरोक्ष सिद्धांत, आनंदविलास, सिद्धांतबोध और सिद्धांतसार ये वेदांतपंचक के नाम स राजपरिषद् (स्टेट कौंसिल), जोधपुर के आदेश से श्रीविश्वेश्वरनाथ रेऊ के संपादकत्व मे प्रकाशित हुए थे। इस पंचक का नाम पंचरत्न भी है जो खोज (२-१४) की पुष्पिका से ज्ञात होता है। ये पांचों तत्त्वज्ञानविषयक ग्रंथ हैं। आनंदविलास का दूसरा नाम आनंदविसर्ग भी मिलता है (खोज २-१४)। इसका संस्कृत में उल्था भी हुआ था। उल्था किसने किया, पता नहीं। पर उसके अंत में जसवंत-सिंह की प्रशस्ति[1] होने से स्पष्ट है कि यह किसी दरबारी संस्कृत पंडित का कर्तृत्व है। इस ग्रंथ के हिंदी रूप का निर्माणकाल यों है—

संवत सत्रह सै बरष ता ऊपर चोबीस।
सुकल पख्य कार्तिक बिषै दसमी सुत रजनीस॥

---

१. श्रीमद्योधपुरं पुरंदरपुरस्पर्द्धिष्णुजिष्णुव्रतं।
तत्र श्रीजसवंतसिंहतरणिः क्षोणींद्रचूडामणिः।
येनानंदविलासकाव्यरचनारश्मिव्रतं तन्वता।
मोहध्वांतमुदस्य सर्वजगतां चिच्चक्षुरुन्मीलितम्॥

संस्कृत उल्था में निर्माणकाल यों है—

संवदंबुनिधि[४] पक्ष[२] भूमि[७]भृद्भूमि[१] योगजनिते तु वत्सरे।
ऊर्ज्जमासि धवले दले कृतिः सोमयुक्तदशमीदिनेऽभवत् ॥

पहले के अनुसार निर्माणकाल संवत् १७२४ कार्तिक शुक्ल दशमी बुधवार हुआ। दूसरे के अनुसार निर्माणकाल सं० १७२४ कार्तिक शुक्ल दशमी सोमवार हुआ। संस्कृत का 'सोम' ठीक होने से 'सुत रजनीस' पाठ ठीक नहीं है। 'सोमयुक्त' को ध्यान में रखने से 'युत रजनीस 'या' 'जुत रजनीस' पाठ ठीक ठहरता है।

इनके अन्य किसी ग्रंथ में निर्माणकाल नहीं दिया है। वेदातविषयक इन पाच ग्रंथो में से आनंदविलास के आरंभ में गणेशवंदना है—

एकदंत गजबदन सु गवरीनंद।
विघन हरत अति गनपति करत अनंद ॥

इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वेदांतपंचरत्न या वेदांत-पंचक में सबसे प्रथम यही रचा गया।

सं० २०२४ में मै पूना विश्वविद्यालय में मौखिकी के लिये गया और अपनी सहज संधानवृत्ति के अनुरूप ही वहा के जयकर ग्रंथालय के हिंदी हस्तलिखित ग्रंथ देखने लगा तो संख्या ४६४ पर महाराज की एक पुस्तक नई मिली 'गीता माहात्म्य 'इसकी प्रतिलिपि मँगा ली गई।

सं० २०२५ में सरस्वती में श्री अगरचंद नाहटा का एक लेख प्रकाशित हुआ जिससे पता चला कि इनके गीता के पद्यात्मक और गद्यात्मक अनुवाद भी हैं। इन दोनो ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ भी बडे गहरे प्रयास के अनंतर प्राप्त कर ली गईं। इस प्रकार अब इनके तीन आध्यात्मिक अनुवाद ग्रंथ भी इसी में जुड़ जाते हैं। गीता का पद्यात्मक अनुवाद सूत्रागम प्रकाशक समिति गुड़गांव से सं० २०१४ में प्रकाशित हो चुका है।

गीता के गद्यात्मक अनुवाद की दो प्रतियाँ अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में थीं। एक प्रति १८ अध्यायों की परिपूर्ण थी। इसका विवरण नाहटा जी ने अपने लेख मे दिया है। पर जिस समय मैंने प्रतिलिपि के लिये महाराज के विविक्त मंत्री को लिखा उन्होंने बताया कि उक्त प्रति नही मिल रही है। इसलिये मैंने दूसरी प्रति की प्रतिलिपि मँगवाई। इसमें केवल १४ अध्याय ही हैं और बीच में भी एक पन्ना नहीं है।

सभा के अधिकारियो ने नाहटा जी से प्रतिलिपि प्राप्त करा देने के लिये कहा तो उन्होने ग्रंथावली के संपादन मे संयुक्त कर लेने की बात कही। पर मै उस समय काशी में था नहीं इसलिये उस संबंध मे अधिकारी कुछ निर्णय करने में असमर्थ रहे। बाद में मैने नाहटा जी को प्रतिलिपि के लिये लिखा तो उन्होने अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर का उल्लेख कर दिया।

इनकी सारी रचना दो प्रकार की है—साहित्यविषयक और अध्यात्म-विषयक। साहित्यविषयक रचना का निर्माण अध्यात्मविषयक रचना से पूर्व मानना चाहिए। इनकी समस्त रचना का अनुमित क्रम इस प्रकार है—

साहित्यखंड-[illegible] दोवा, प्रबोध नाटक।

अध्यात्मखंड-आनंदविलास, अनुभवप्रकाश, अपरोक्षसिद्धांत।

सिद्धातबोध, सिद्धातसार, श्रीमद्भगवद्गीता टीका भाषा (गद्य), श्रीमद्भगवद्गीता भाषा दोहा (पद्य), गीता माहात्म्य, छूटक दोहा।

महाराज जसवंतसिह का जन्म संवत् १६८३ मे हुआ था। सं० १७२४ में ४१ वर्ष की वय में वे वेदातविषयक ग्रंथो के निर्माण मे लगे। इसलिये साहित्यविषयक रचना मे वे २५ वर्ष की वय में अवश्य प्रवृत्त हो गए होगे। अत: इनके रचनाकाल का आरंभ सं० १७०८ के आसपास माना जा सकता है।

शिवसिहसरोज में भूल से इन्हे बघेला और तिरवा (कन्नौज) का राजा लिखा गया है। इनका समय सं० १८५५ दिया गया है। लिखा है—'यह महाराज संस्कृत, भाषा, फारसी आदि में बड़े पंडित थे। अष्टादश पुराण और नाना ग्रंथ साहित्य इत्यादि सब शास्त्रो के इकट्ठे किये। शृंगारशिरोमणि ग्रंथ नायिकाभेद का, भाषाभूषण अलंकार का और शालिहोत्र ये तीन ग्रंथ इनके बनाए हुए बहुत अद्भुत हैं। सं० १८७१ में स्वर्गवास हुआ।'

वास्तविकता यह है कि भाषाभूषण के रचयिता जोधपुर के नरेश थे और शृंगारशिरोमणि तथा शालिहोत्र के रचयिता तिरवा (कन्नौज) के राजा। शिवसिंहसरोज के अनुगमन के कारण ग्रियर्सन साहब ने भी यही भूल की है। उन्होंने तिरवा मे बघेलो के आने का ऐतिहासिक विवरण भी

जोड़ दिया है। ग्रियर्सन साहब ने शिवसिंहसरोज के ही आधार पर अपना हिंदी साहित्य का इतिहास (वर्नाक्यूलर लिटरेचर आव् नदर्न हिंदुस्तान) भी प्रस्तुत किया है उसमें शिवसिंह सरोज मे हुई भूलें ज्यो की त्यो मौजूद हैं।

अन्य ग्रंथों का संकेत

श्रीमद्भागवत भाषा-पद्य

श्री सूत्रागम प्रकाशक समिति, गुड़गांव से जसवंतसिंह की जो पुस्तक 'श्रीमद्भगवद्गीता भाषा दोहा' प्रकाशित हुई है उसके प्रकाशकीय में लिखा है–

'इस बार समिति के पास एक ७०० वर्ष की पुरानी हाथ लिखी पुस्तक रद्दी मे से हाथ लगी। इसमें राजा जसवंतसिंहकृत श्रीमद्भागवत अधूरा और श्रीमद्भगवद्गीता, ये दोनो दोहे और चौपाइयो में अच्छी कविता के रूप में हैं।'

श्रीमद्भगवद्गीता केवल दोहो में है। इससे स्पष्ट है कि श्रीमद्भागवत दोहे-चोपाई दो छंदो में हैं।

आगे इसी पुस्तक के 'कृतज्ञता प्रकाश' में फिर लिखा है–

'एक भावुक महानुभाव ने रद्दी में से एक ४०० वर्ष की पुरानी पुस्तक लाकर दिखाई। पुस्तक में श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगवद्गीता हिंदी भाषा की कविता चौपाई और दोहो मे राजा जसवंतसिंहकृत पढ़कर आश्चर्य हुआ···परंतु खेद है कि भागवत के आदि के ७५ पत्र कम हैं और गीता का भी एक अध्याय कम पाया। हमने इन कठिनाइयों को पार करके गीता की रचना को ठीक ठीक किया और समिति की ओर से प्रकाशित करने का निश्चय किया।'

इससे यह पता चलता है कि श्रीमद्भागवत आरंभ में खंडित है। पर कितना खंडित है और कितना प्राप्त है इसका अनुमान केवल '४५ पत्र कम हैं' के आधार पर करना कठिन है। यह भी नहीं लिखा गया कि गीता का कौन सा एक अध्याय नहीं है जो ठीक ठीक किया गया। मुद्रित प्रति का विश्लेषण करने पर दिखाई देता है कि सोलहवें अध्याय में ८ दोहों

के अनंतर फिर से संख्या १ आरंभ होती है और उन आरंभिक ८ दोहो में जो बाते कही गईं वे उनके ७ दोहो मे दूसरे शब्दों से रखी गई हैं। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ये ८ दोहे तो पुराने हैं फिर पूरा अध्याय नया लिखा गया है, जिसमें भूल से पुराने आठ दोहे भी रह गए हैं। इस अध्याय के इस नए अंश की भाषा स्पष्ट ही नई प्रतीत होती है। व्रजी के बदले कहीं खड़ी ही खड़ी दिखती हैं--पाया मैंने आज ये आ तुज पाऊँ अन्य।

इन सबके स्पष्टीकरण के लिये समिति को लिखा गया और कहा गया कि यदि श्रीमद्भागवत का खंडित हस्तलेख वहाँ सुरक्षित हो तो उसकी प्रतिलिपि मुझे दी जाए, पर कोई उत्तर नही मिला।

स्वात्मानुभव

स्वर्गीय चंद्रशेखर मिश्र ने जोधपुर स ४-३-५६ के पत्र में लिखा है कि जसवंतसिंह की रचना स्वात्मानुभव है। पत्र में उसके उद्धरण नहीं दिए गए हैं। जो सामग्री जोधपुर से आई उसमे इस नाम की रचना नहीं है। इसलिये यह कहना कठिन है कि यह कोई स्वतंत्र रचना है। और मुझे अनुपलब्ध रह गई है या यही 'अनुभवप्रकाश रचना है जो इस ग्रंथावली में मुद्रित है।

नायिका भेद

उन्होने वहीं से अपने दूसरे पत्र में लिखा है कि इनका नायिकाभेद का भी एक ग्रंथ है। पर सामग्री में वैसी कोई स्वतंत्र रचना नहीं है। 'दोवा' नाम से जो अंश इस ग्रंथावली मे संगृहीत है उसके विश्लेषण से स्पष्ट है कि नायिकाभेद से उसका संबंध है। पर यह कृति व्यवस्थित रूप मे लिखी नहीं है। यदि उपर्युक्त अनुमान इसी अंश के आधार पर किया गया हो तो उनकी नायिकाभेद की कोई और रचना उन्हें उपलब्ध नहीं थी। 'दोवा' से यह कल्पना अवश्य की जा सकती है कि नायिकाभेद की रचना भी वे करना अवश्य चाहते थे। भाषाभूषण के आरंभ में जो रस-नायिकाभेद का संक्षिप्त संग्रह है उसके आधार भानुदत्त मिश्र के ग्रंथ हैं रसतरंगिणी और रसमंजरी। इनमें से पहली रचना रस-भाव विषयक है और दूसरी नायिकाभेद विषयक। भाषाभूषण में केवल भेदो का उल्लेख किया गया है, उदाहरण नहीं हैं। हो

सकता है कि पहले उदाहरण देकर विस्तार से लिखने का विचार रहा है, पर किसी कारण वह व्यवस्था न हो सकी हो, इसी से जितने अंश उदाहरण रूप में बन गए हों वे ही 'दोवा' नाम से संकलित रह गए हों। शेष अंश निर्मित ही न हुआ हो। 'भाषाभूषण' बन जाने के अनंतर नायिकाभेद का स्वतंत्र ग्रंथ लिखने का विचार छोड़ दिया गया हो अथवा नायिकाभेद का कोई ग्रंथ हो और उसी में से संक्षिप्त भेदोपभेद उल्लेख मात्र इसमें कर दिया गया हो। इस प्राप्त अंश के आधार पर कोई निश्चय नहीं हो सक रहा है। हो सकता है कि अध्यात्म के ग्रंथों के निर्माण में लग जाने से इधर फिर प्रवृत्ति ही न हुई हो आदि आदि तर्क-वितर्क की परंपरा भर होकर रह जाती है।

जसवंतसिंह रा दूहा

श्रीयुत किशोरीवल्लभ गोस्वामी ने बीकानेर के राजकीय पुस्तकालय से महाराज जसवंतसिंह की रचनाओं का जो विवरण इधर भेजा है उसमें उनकी इस पोथी का उल्लेख है। उनकी संख्या भी उन्होंने २०१ लिखी है। इस बीच महाराज बीकानेर के विविक्त सचिव श्रीबाबूरामजी निवृत्त हो गए। नए सचिव महोदय ने कोई उत्तर देने का कष्ट या अनुग्रह नहीं किया। न अनुमति मिली और न प्रतिलिपि हुई। २०१ दोहे का तात्पर्य क्या है, यह भी स्पष्ट नहीं है। इस ग्रंथावली में 'दोवा' और 'छूटक' नाम से जो संग्रह हैं उनमें 'दोवा' में दोहे–सोरठे के अतिरिक्ति कोई दूसरा छंद नहीं है। सोरठा भी दोहा ही है। सौराष्ट्र में दोहे को यों उलटकर लिखने की प्रवृत्ति रही है इसी से इसे सोरठिया दोहा कहते हैं। यही शब्द छोटा होते होते सोरठा रह गया है। पर 'छूटक' में दोहे-सोरठे के अतिरिक्त एक कुंडली या 'कुंडलिया' भी है। इसमें भी आरंभ में दोहा होता ही है। शेष चार पंक्तियाँ रोले की होती हैं। उसकी प्रत्येक पंक्ति में २४ ही मात्राएँ होती हैं। 'दोवा' में ५५ और 'छूटक दोहा' में ३६ छंद हैं। सब मिलाकर ९१ छंद हुए। 'कुंडली' को तीन छंद मानें तो ९३ छंद हुए। कुछ शीर्षक भी दिए गए हैं। यदि पंक्तियों को ही गिनकर २०१ संख्या की गई हो तो ९३ को दूना करने से १८६ पंक्तियाँ होती हैं और दोहे-सोरठे आदि शीर्षकों की भी पंक्तियाँ गिनें तो १५ वे भी हैं। इस प्रकार २०१ की विधि मिल जाती है। पर यह सब अब अनुमान ही अनुमान है। बिना मूल देखे कुछ भी कहना संभव नहीं है।

विवेकसिंधु

उक्त गोस्वामी जी ने अपने पत्र में 'अपरोक्ष सिद्धांत' आदि के साथ अंत मे एक पुस्तक 'विवेकसिंधु' भी इन्हीं के नाम पर लिख भेजी है। हस्तलेखो में एक ही विषय के कई कवियो के ग्रंथ एक साथ लिख डालने का चलन था। इसलिये यह निश्चय करना कठिन है कि विवेकसिंधु रचना इन्हीं की है या किसी अन्य की। जब तक उल्लिखित हस्तलेख न देखा जाए, पक्का कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पता लगाने में अधिक समय लगेगा और अब अधिक समय लगाने में मै समर्थ नहीं रहा। इसके संपादन में १५-१६ वर्ष यो ही लग चुके, यही क्या कम है।'

महाराज जसवंतसिह पर अन्यो की रचनाएँ

इस ग्रंथावली के साथ महाराज की प्रशस्ति या व्याजस्तुति में लिखे गए अन्य कवियों की रचनाओ को भी परिशिष्ट में देने का संकल्प था। पर बहुत प्रयास करने पर भी ऐसी रचनाओ की अनुलिपि अनुपलब्ध ही रही। तेसीतेरी ने एक ऐसे संग्रह का उल्लेख किया है जिसमे बहुत से राजा-महाराजाओं की व्याजस्तुति व्याजनिंदा के छंद संगृहीत हैं। ऐसी रचना का नाम 'विसहर' है। इसमें महाराज जसवंतसिंह जी पर भी कुछ कवियो की कुछ रचनाएँ संगृहीत हैं। दूसरी कृति महाराज के देवलोक प्रस्थान पर विभिन्न कवियो की रचित रचनाओ का संग्रह है। इसका नाम 'जसवंतसिह रा देवलोक रा कवित्त' है। इसकी अनुलिपि भी आयास-प्रयास के अनंतर हाथ नहीं लग सकी।

संपादन कार्य

भाषाभूषण के लगभग अर्धशतक हस्तलेखो का पता चलता है। पर सबका उपयोग कठिन था। जो हस्तलेख सभा के विभिन्न संग्रहों में थे और जोधपुर, उदयपुर में जो हस्तलेख मिले उनका पूरा उपयोग किया गया। मुद्रित ग्रंथों का भी उपयोग इस उद्देश्य से किया गया कि वे भी किसी न किसी हस्तलेख के आधार पर ही मुद्रित हुए होगे। इन सबमें प्रथम दो प्राचीन और महत्वपूर्ण हस्तलेख हैं। उनके पाठो को वरीयता देने का प्रयास है। सब मिलाकर २१ आधार-ग्रंथो का उपयोग किया गया है। इनमे सं० १७३७ से सं० १९४८ तक के हस्तलेख हैं। पाँच हस्तलेखो

में लिपिकाल नहीं दिया गया है। इन हस्तलेखों का समय भी १७५७ से १९४८ के बीच कहीं न कहीं होगा। अनुमान से ये सभी उन्नीसवीं शती के प्रतीत होते हैं। फिर भी सुविधा के लिये इन सबका उल्लेख अंत में किया गया है। इतने अधिक आधार-ग्रंथों के प्रमाण से अब तक भाषाभूषण का कोई संस्करण संपादित नहीं हुआ है।

कुछ हस्तलेखों या आधार-प्रतियों में बढ़ोतरी मिलती है। उससे स्पष्ट होता है कि जहाँ जहाँ किसी प्रकार के अभाव का अनुभव किया गया वहाँ वहाँ अंश बढ़ाए गये हैं। केशवदास ने अलंकार के सामान्य और विशिष्ट भेद किए हैं। सामान्य के भी चार भेद हैं, उन सबके लेने से ग्रंथ बढ़ेगा कहकर उसे छोड़ने का उल्लेख है। केशवदास का प्रभाव परंपरा पर कितना अधिक था इसका इसी से संकेत मिलता है। छंद ४१ के पाठांतर में यह दोहा आया है—

> अलंकार सामान्य अरु कहे बिसिष्ट प्रकार।
> सबद अरथ ते जानिये पुनि उनके व्यवहार॥
> ग्रंथ बढै सामान्य ते राजभूमि परसंग।
> ताते कछु संछेप ते कहि बिसिष्ट के अंग॥

भाषाभूषण में संक्षेप में शृंगार रस, नायिकाभेद और विस्तार से अलंकारों का विवेचन है। पूरे ग्रंथ में २११ दोहे हैं। आरंभ के पाँच दोहों में से प्रथम में गणेश की वंदना है। दूसरे, तीसरे और चौथे में ईश्वर से प्रार्थना है। पाँचवें में श्रीकृष्ण से मन के मिलने पर भी लाल न होकर उसके उज्ज्वल होने की विशेषता का कथन है। मंगलाचरण से ग्रंथ का प्रथम प्रकाश समाप्त होता है। दूसरे प्रकाश का आरंभ छठे दोहे से होता है और तेईसवें दोहे तक जाता है। इसमें नायिकाभेद का लक्षण कथित है। आरंभ में नायकभेद है। अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट नायकों के चार भेद दिए हैं। फिर पति, उपपति, वैशिक के लक्षण हैं। इसके अनंतर नायिकाभेद आरंभ होता है। पहले पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी इन चार के लक्षण हैं। फिर स्वकीया, परकीया और सामान्या का कथन है। इसके अनंतर अवस्थाभेद से मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा का विचार है। फिर विदग्धा, लक्षिता, गुप्ता, कुलटा, मुदिता, अनुशयना, प्रोषितपतिका, कलहांतरिता, खंडिता, अभिसारिका, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा,

स्वाधीनपतिका, प्रवत्स्यत्पतिका, गर्विता, अन्यसंभोगदु:खिता, धीराधीरादि नायिकाओ के भेदो का लक्षण बताया गया है। अंत में तीन प्रकार के मान की चर्चा है।

तीसरे प्रकाश मे पहले आठो सात्विको का नामोल्लेख है फिर दस हावों के लक्षण दिए गए हैं। ये दस हैं—लीला, विहृत, विलास, ललित, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित्, कुट्टमित, मोट्टायित और बिब्बोक। वियोग की दश दशाओ का लक्षण इसके अनंतर है। ये दसो हैं—अभिलाप, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, व्याधि, जड़ता, उन्माद और मरण। इनमें से मरण का उल्लेख छोड़ दिया गया है। इसके अनंतर नौ रसो और उनके स्थायी भावो का उल्लेख है फिर आलंबन-उद्दीपन, अनुभाव और संचारी भाव के लक्षण हैं। फिर तैंतीसो संचारियो का नाम गिना दिया है।

चौथे प्रकाश में अर्थालंकारों का लक्षण और उदाहरण एवम् भेदादि का विवेचन है। पाँचवें मे शब्दालंकारों का विचार, समस्त अलंकार संख्या, ग्रंथप्रयोजन, नामहेतु, फल का कथन है। अलंकारो के संबंध में कहा है—

> अलंकार सब अर्थ के कहे एक सौ आठ।
> किये प्रगट भाषा विषै देखि संसकृतपाठ ॥

इस दोहे का अर्थ कई प्रकार से किया जा सकता है अर्थ को अलंकार से जोड़कर यदि अर्थालंकारो की संख्या एक सौ आठ (१०८) मानी जाए तो भाषाभूषण में इतने अर्थालंकारों का कथन नहीं है। चंद्रालोक में अर्थालंकार 'अलंकृतयः शतम्' कहकर सौ गिनाए गए हैं। कुवलयानंद में भी उपमा से हेतु पर्यंत उन्ही सौ अलंकारो की व्याख्या है। अंत मे यह श्लोक है—

> इत्थं शतमलंकारा लक्षयित्वा निदर्शिताः।
> प्राचामाधुनिकानां च मतान्यालोच्य सर्वतः ॥१६८॥

इस प्रकार अर्थालंकार सौ ही हैं। अतः 'अर्थ' का कोई दूसरा अर्थ करना ही श्रेयस्कर है। 'अर्थ' का 'प्रकार' अर्थ कर लेने से शब्द और अर्थ' के समस्त अलंकारो की संख्या १०८ ऐसा अर्थ किया जा सकता है। पूना, बैंक और प्रिय मे 'शब्दार्थ' पाठ कर ही दिया गया है। प्रतीत होता

है 'सबदार्थ' या सबदर्थ रहा होगा जो लिखक के प्रमाद से 'सब अर्थ' हो गया होगा। भाषाभूषण में शब्दालंकारों की संख्या ६ ही रखी गई है—

> सब्दालंकृत बहुत हैं अच्छर के संजोग।
> अनुप्रास षटबिधि कहे जे हैं भाषाजोग ॥

इसलिए सौ अर्थालंकारो के साथ इन छह को जोड़ने से १०६ ही संख्या बैठती है।

यदि 'कहे' का अर्थ 'कहे गए हैं' अर्थात् कहे जाते हैं माना जाय तो कहा जा सकता है कि इन्होने संस्कृत के १०८ अलंकारो का उल्लेख किया है। चंद्रालोक में १०० अर्थालंकारो के अतिरिक्त शब्दालंकार आठ कहे हैं–छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, लाटानुप्रास, स्फुटानुप्रास, अर्थानुप्रास, पुनरुक्तप्रतीकाश, यमक और चित्र। इस प्रकार १०८ की संख्या हो जाती है। यदि अनुप्रास की एक ही संख्या मानी जाए तो १०४ ही होगी। पूर्वोक्त अर्थ करने में भी बाधा है। एक तो यह कि दूसरे दल में 'किये प्रगट भाषाविषै देखि संसकृत-पाठ' से यही मानना पड़ेगा कि भाषा मे सारी संख्या गृहीत है। दूसरे 'कहे' शब्द का इस दोहे में ही नहीं शब्दालंकारसंख्या-परिगणनवाले दोहे में भी प्रयोग है। दोनो में एक ही अर्थ संगत प्रतीत होता है। इस प्रकार भाषाभूषण में १०८ अलंकारों का वर्णन होना चाहिए। छह शब्दालंकारों को घटा देने पर १०२ संख्या बचती है। चंद्रालोक-कुवलयानंद के सौ अलंकारो में से प्रत्यनीक ही एक ऐसा है जिसका लक्षण उदाहरण बहुत कम हस्तलेखो में मिलता है और जहाँ मिलता है वहाँ पाठभेद बहुत है। इसके हेतु की कल्पना यही हो सकती है कि किसी कारण से भाषाभूषण की पहली प्रति में 'प्रत्यनीक' के लक्षण-उदाहरण का दोहा छूट गया। बाद में उसका सुधार हुआ। कुछ हस्तलेखो में दूसरों ने अपने से दोहे गढ़कर रखे। प्रत्यनीक के लक्षण-उदाहरण वाले दोहे के चार रूप मिले हैं—

> १–दुख दै अरि के पच्छ कौ प्रत्यनीक इहि भाइ।
> दृगनि दबाए कंज ते चढे कान मै जाइ ॥ (हरि, दल)
>
> २–प्रत्यनीक सो प्रबल रिपु ता हित सा कर जोर।
> नैनसमीपी स्रौन पर कज चढ्यौ करि दोर ॥
>
> (सोहन, शिव, सभा, बेक)

३–प्रत्यनीक बलवंत के पच्छ विषे जय होइ।
कंज चढ़े स्रुति जयकरन नैनपक्ष के जोइ ॥ (मया, भवा)

४–प्रत्यनीक बलवान अरि दुख पावै परिवार।
जनमेजै तिळ्छक-खुनस अहिकुल दीने जार ॥ (पूना)

इनमें से चौथा रूप स्पष्ट पृथक् है। यह तो दूसरे का गढ़ा हुआ है। शेष तीन रूप मूल संस्कृत के आधार पर हैं—

प्रत्यनीकं बलवतः शत्रोः पक्षे पराक्रमः :
जैत्रनेत्रानुगौ कर्णावुत्पलाभ्यामधःकृतौ ॥११८॥

मूल संस्कृत से बहुत कुछ मिलता पहला रूप है। यह हरि कवि की टीका में सबसे प्रथम मिलता है। यद्यपि हरि कवि की टीका में अन्यत्र पाठभेद बहुत है और मूल संस्कृत के निकट रखने का प्रयास अन्यत्र भी है तथापि यह मान लिया जा सकता है कि प्रत्यनीक भाषाभूषण में गृहीत रहा होगा, पर मूल हस्तलेख में किसी प्रकार छूट गया होगा। बाद में बढ़ाया गया होगा। तब तक उसकी कुछ अनुलिपियाँ हो चुकी होंगी। उन अनुलिपियों की परंपरा प्राप्त नहीं है। जो भी हो, अकेले प्रत्यनीक को छोड़ देने में कोई तुक नहीं जान पड़ता। प्रत्यनीक को भाषाभूषण मे मान लेने से १०० अर्थालंकार ज्यों के त्यों हो जाते हैं। उपमा में लुप्तोपमा का पृथक् विचार है और उत्तरालंकार के दो रूप गूढोत्तर और चित्रोत्तर पृथक्-पृथक् दिए गए हैं। इन दो को भी स्वतंत्र मान लें तो संख्या १०२ हो जाती है।

भाषाभूषण नवीन ग्रंथ बनाने का प्रयोजन यह है—

ताही नर के हेत यह कीनो ग्रंथ नवीन।
जो पंडित भाषानिपुन कबितानिषै प्रवीन ॥

जो व्यक्ति 'भाषा' अर्थात् ब्रजभाषा हिंदी मे निपुण है और कविता में प्रवीण है ऐसे पंडित व्यक्ति के लिये यह नवीन ग्रंथ लिखा गया है। जो कविता करनेवाले हैं, कविता करने की भाषागत निपुणता जिनके पास है उनके लिये यह पुस्तक लिखी गई है। यह एक प्रकार की कविशिक्षा की ही पुस्तक है भले ही यह वैसी न हो जैसी केशवदास की कविप्रिया है। कविप्रिया में काव्यरचना के पूर्वांग और सभी आनुषंगिक विषयों का विस्तार से विवेचन है। इसमें कवियों के लिये अपेक्षित रसप्रवाह और अलंकारप्रवाह का संक्षिप्त कथन है। फिर भी अलंकार का प्राधान्य है

इसी से इसका नाम भाषाभूषण रखा गया, 'भाषारस' आदि नाम नहीं रखे गए—

> लच्छन तिय अरु पुरुष के हावभाव रसधाम।
> अलंकारसंयोग ते भाषाभूषन नाम॥

इसमें अलंकार का योग नहीं संयोग है—सम्यक् प्रकार से योग, विशेष रूप से उसकी नियोजना, उसका अपेक्षाकृत विस्तार से विचार है। 'भाषा' मे जो अलंकार आ सकते हैं उन्हीं का ग्रहण है इसी से भाषा नाम की सार्थकता है। •

अंत मे फलश्रुति है—

> भाषाभूषन ग्रंथ को जो देखै चित लाइ।
> बिबिधि अर्थ साहित्यरस समुझै सबै बनाइ॥

चित्त लगाकर भाषाभूषण ग्रंथ को जो देखता अर्थात् अध्ययन करता है वह विविध अर्थ और साहित्यरस को भली भाँति समझ सकता है। साहित्य को समझने के लिय यह ग्रथ लिखा गया है। जो काव्य का निर्माण करते हैं उनके लिये उपयोगी है ही जो उसको ग्रहण करते हैं, जो सहृदय हैं, पाठक हैं, उनके लिये भी उपयोगी है। इस प्रकार इस ग्रथ को उपयोगिता को अनेक दृष्टियो से ध्यान मे रखकर इसका प्रणयन किया गया है।

भाषाभूषण ग्रंथ हिदी के आगे के कृतिकारो और लक्षणग्रंथ निर्माताओ के लिये भी आदर्श हो गया। हिदी मे जिन ग्रंथों का आरंभ से ही प्रचार रहा उनमें केशवदास की कविप्रिया और जसवतसिह के भाषाभूषण दोनो का सब से अधिक महत्व है। जो रचना करते थे वे ही नही, जिनकी पहुँच संस्कृत तक नहीं थी वे भी इसी ग्रंथ को आधार बनाकर अलंकार के • ग्रंथ का निर्माण लक्षण-लक्ष्य-सहित कर डालते थे। जो संक्षिप्त शैली से उदाहरण भी आधे दोहे में देते थे वे ही इसके अनुगामी नही हुए, जो पूरे दोहे में लक्षण और सवैये या कवित्त ऐसे बडे छंद में उदाहरण प्रस्तुत करते थे वे भी लक्षण के लिये इसकी सहायता लेते थे।

हिदी के कर्ताओ को किस प्रकार के ग्रंथ की आवश्यकता है, भाषा भूषण के रचयिता ने इसे भली भाँति समझ लिया था। इसी से हिदी के प्रवाह के अनुरूप शृंगार रस का संक्षिप्त कथन ही नहीं किया, अलंकारो के उदाहरणों में भी जहाँ कुवलयानंद मे उदाहरण शृंगारी नहीं हैं वहाँ वैसे

उदाहरण नए बनाकर रखे। भाषाभूषण में सभो उदाहरण शृंगार के नहीं हैं, शपथ लेने भर के लिये दो चार भक्ति के भी हैं। पर अधिकाश शृंगारी ही हैं। हिंदी में शृंगार की धारा भक्ति की धारा से सबद्ध है। इसी से हिंदी की परपरा मे शृंगार राधा-माधव का ही वर्णित होता है। आलंबनरूप में नायक-नायिका वे ही होते हैं।

जसवतसिंह जी ने प्रथम प्रकाश के मगलाचरण मे ही इसका सकेत दे दिया है। लोकनियम के अनुसार आदि मे गणेश की विनती करके वे उस परात्पर ब्रह्म को नमस्कार करते हैं जिसकी इच्छा से ससार का निर्माण हुआ। इच्छा के सबध में उन्होने अपने अध्यात्मविषयक ग्रंथो में बहुत कुछ कहा है। उसका विस्तृत विचार अनुभव प्रकाश मे है। इन्ही का इच्छाविषयक विचार इच्छाविवेक नाम से पृथक् पुस्तिका के रूप मे भो मिलता है। यह जगल्लीला इच्छा से प्रवर्तित करनेवाले में 'करुणा' भी है, कृपा या अनुग्रह भी, श्रीमद्भागवत ने जिसे 'पोषण' नाम दिया है और पुष्टिमार्ग मे 'पुष्टि' के रूप में जो मुख्य तत्व है। इसका सकेत इस दोहे में है—

करुना करि पोषत सदा सकल सृष्टि के प्रान।
ऐसे ईस्वर को हिये रहो रैनिदिन ध्यान॥

पर जब तक लीला पुरुषोत्तम का नाम न लिखा जाय तब तक स्पष्ट सकेत का अभाव रह जाता है। इसी से मगलाचरण के अतिम दोहे मे वे कहते हैं—

रागी मन मिलि स्याम सों भयो न गहिरो लाल।
यह अचरज उज्जल भयो तज्यो मैल तिहि काल॥

भगवान् श्याम से मिलने पर, उनसे प्रेम करने पर, अतःकरण की श्यामता भला कैसे टिक सकती है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जसवतसिंह का अध्यात्म निर्गुणविषयक नहीं है, वह सगुण से भी सबद्ध है। भारत में यदि विदेशी तत्वचिंतन की धारा से प्रभावित कबीर आदि सगुण का खंडन और निर्गुण का मडन न करते तो निर्गुण-सगुण के खंडन-मडन का बखेड़ा उस रूप में खड़ा ही न होता जिस रूप में वह उठ खडा हुआ।

भाषाभूषण की दो टीकाओं का पता खोज से चलता है। एक नारायण-दास की टीका और दूसरी हरिदास की टीका। नारायणदास का समय

सं० १८२९ है। ये चित्रकूट के थे। इन्होने पिगल के भी ग्रथ लिखे हैं।
हरिदास ने १८३४ में भाषाभूषण पर टीका की—

सबतु ठारह सौ बितैं तापर चौतिस जात।
टीका कीनौ पूर दिन गुर दसमी अवदात॥

इन्होने बहुत स्पष्ट लिखा है—

भाषाभूषन ग्रथ को किय जसवत नरेस।
टीका हरि कबि करत हैं उदाहरन दै बेस॥
जहाँ सु चद्रालोक तैं भाषाभुषन बिरुद्ध।
लच्छ सुलच्छन फेरि तहँ करत सु हरि कबि सुद्ध॥

इन्होने केवल अलकारों पर ही टीका की है और जहाँ जहाँ चद्रालोक (कुवलयानद) से भाषाभूषण में पार्थक्य दिखाई पड़ा वहाँ वहाँ दोहा बदल दिया है, आधार के अनुकूल हा नया निर्माण कर दिया है। टीका व्रजी के गद्य में है। इन्होने अन्य कवियो के, बिहारी आदि के, दोहे उदाहरण में दिए हैं। टीका के अत मे इन्होने कहा भी है—

उदाहरन दीने बहुत बुद्धि बढावन काज।
भुलै न बालकहू सु पढि लखिहै सुकबि-समाज॥

अपना परिचय भी यों दिया है—

सालग्रामी सरजु की मिली गग में धार।
अतराल में देस है सो सारन सरकार॥
परगन्ना गोहा तहाँ लसै चैनपुर ग्राम।
तहाँ त्रिपाठी रामधन बास कियो अभिराम॥
नीकें सुत हरि कबि कियो मारवाड में बास।
भाषभूषन ग्रथ की टीका करी प्रकास॥

इन दोनों के अतिरिक्त दलपतिराय वशीधर, प्रतापसिंह, गुलाब कवि और राजा रणधीर सिंह की टीकाओ का पता चलता है। दलपतिराय और वंशीधर दो व्यक्ति हैं। इनका समय स० १८९५ है। अपनी टीका में ये लिखते हैं।

भाषाभूषन अलकृति कहुँयक लक्षनहीन।
श्रम करि ताहि सुधारि सो दलपतिराइ[१] प्रबीन॥

---

१. इनका नाम दलपति राय भी मिलता है।

कहूँ कहूँ पहिले धरे उदाहरन सरसाइ।
कहूँ नए करिकै धरे लछन लच्छित पाइ॥
अर्थ कुवलयानद को बाँध्यौ दलपतिराइ।
बशीधर कवि ने धरे कहूँ कबित्त बनाइ॥

परिचय यों दिया है—

मेदपाट श्रीमालकुल बिप्र महाजन काइ।
बासी अमदाबाद के बसी दलपतिराइ॥

अपने श्रम और लक्ष्य के विषय में भी कहा है—

जैसें रीझि जवाहिरी लेत जवाहिर पेखि।
त्यौं कबिजन सब रीझिहैं अति अद्भुत श्रम देखि॥
दरबिलोभ जस को न किय नहिं बिवरिउ उरमार।
अपने चित्तबिनोद को कान्हौ यहै प्रकार॥

प्रतापसाहि का समय १८९४ के आसपास है। इन्होंने रीतिशास्त्र के कई ग्रथ लिखे हैं। शिवसिंहसरोज मे लिखा है कि 'भाषाभूषण और बलभद्र के नखशिख का तिलक विक्रमसाहि की आज्ञा के अनुसार इन्होंने बनाया है। मिश्रबधु लिखते हैं कि 'हमने इनके बनाए हुए तिलक नहीं देखे हैं। 'खोज' में इनकी तीन टीकाओ का पता चलता है। बलभद्रकृत नखशिख बलभद्र के नखशिख की, रतनचद्रिका बिहारीसतसैया की और रसराज तिलक मतिराम के रसराज की टीका है (खोज ०६-९१)। इसी में अलकार-चिंतामणि अलकार का ग्रथ भी दिया गया है। इसका जितना अश खोज (०६-९१) मे उद्धृत है उससे यह पता नहीं चलता कि यह भाषाभूषण का तिलक है। उसमें यह लिखा है—

कहै एक सै आठ सब अलकार निरधार।
अति नवीन प्राचीन मत समझि ग्रथ कौ सार॥
तिनके लच्छन लच्छि कहुँ बिगरे जाने जाइ।
ते कबिंद सब सोधि कै नीके करि दरसाइ॥
समत अष्टादस परे नवै ऊपर चारि।
माघ मास पख कृस्न तह ससिसुत बार उदार॥

इससे तो यही जान पड़ता है कि इन्होंने यह स्वतत्र ग्रथ लिखा है।

यदि माना जाय कि 'शिवसिंहसरोज' में ठीक नहीं लिखा है तो खोज में इनकी लिखी बलभद्र के नखशिख की टीका से स्पष्ट होता है कि सरोज में ठीक ही लिखा होगा। इन्होने बिहारी सतसैया और रसराज की टीका भी लिखी। इससे भी भाषाभूषण की टीका की सभावना है। भाषाभूषण में भी १०८ अलकार माने गए हैं और इसमें भी उतने ही। इस साम्य के आधार पर जान पड़ता है कि हो न हो वह भाषाभूषण की टीका के रूप में वैसे ही प्रचलित रहा हो जैसे हरि कवि और दलपतिराय वशीधर के तिलक हैं, जिनमें यथास्थान मूल में सशोधन कर दिया गया है। दलपतिराय ने अपनी पुस्तक का स्वतत्र नाम भी रखा है अलकाररत्नाकर, ठीक ऐसे ही अलकारचिंतामणि को भी समझना चाहिए। गुलाब कवि ने भूषणचद्रिका नाम से इस पर तिलक लिखा है। वह स्वतत्र नाम भी यही कहता है कि प्रतापसाहि की अलकार-चिंतामणि स्वतत्र नाम के होते हुए भी भाषाभूषण की टीका हो सकती है। जब तक मूल ग्रथ प्राप्त न हो पक्की बात नहीं कही जा सकती। गुलाब कवि ने ललितललाम पर ललितकौमुदी नाम से टीका लिखी और भाषाभूषण पर भूषणचंद्रिका नाम से। इनका रचनाकाल स० १९१० के आसपास है।

शिवसिंहसरोज से पता चलता है कि राजा रणधीरसिंह सिरमौर सिंगरामऊ ने भी भूषणकौमुदी नाम से सवत् १६१७ में इसकी टीका की—

> भाषाभूषण ग्रथ को किय जसवत नरेस।
> टीका भूषनकौमुदी रचि रनधीर सुबेस॥
> सबत मुनि ससि निधि धरनि, माघ त्रिदस सित वार।
> सुभ मुहूर्त कबि बार लहि भयो ग्रथ अवतार॥

आधुनिक युग में बहुत दिनों पूर्व भाषाभूषण कई परीक्षाओं में पाठ्यग्रथ के रूप में रखा गया। उस समय इसकी कई टीकाएँ प्रकाशित हुई। प्राचीन टीकाओं मे व्रजी का गद्य समझना मूल से भी कठिन था। नवीन टीकाओं में केवल पद्यार्थ दिया गया। किसी किसी ने यथास्थान कुछ टिप्पणी भी लगा दी और छोटी सी भूमिका जोड़ दी। मूल ग्रथ के पाठनिर्णय और उसके गूढ अर्थ को खोलने का प्रयास एक प्रकार से नहीं के समान रहा है।

भाषाभूषण के आधार का अनुसधान करने से कई नवीन तथ्यों का

पता चला। रस-भाव नायिकाभेद वाले आरभिक अश में केवल रसमजरी और रसतरगिणी का ही आधार नही लिया गया है, दशरूपक और कौस्तुभ का भी आधार है। पद्मिनी आदि भेद कामसूत्र के हैं। कही कही इन ग्रथो की टीका का भी उपयोग किया गया है। अलकार-प्रकरण मे चद्रालोक का आधार है। चद्रालोक एक तो वह है जिसमे मूल अश मात्र है। दूसरे कुवलयानद मे चद्रालोक देकर तब उस पर उस नाम की टीका है। कुवलयानद मे चद्रालोक का पाठ परिवर्तित कर दिया गया है, कुछ अश बढाए गए हैं। यही कुवलयानदीय चद्रालोक भाषाभूषण का मुख्य आधार है। चद्रालोक में जहाँ किसी अलकार के भेद हैं वहाँ प्रत्येक भेद का लक्षण और उसके साथ उदाहरण दिया गया है। पर भाषाभूषण मे सब भेदो के लक्षण एक साथ देकर फिर क्रम से उनके उदाहरण दिए गए हैं। कही-कहीं कुवलया-नदीय चद्रालोक से भेद भी है। सबसे मुख्य भेद अप्रस्तुतप्रशसा में है। उसके दो भेद किए गए हैं—'इक बर्नन प्रस्तुत बिना दूजें प्रस्तुत-अस।' प्रस्तुताशवाली अप्रस्तुतप्रशसा का उल्लेख श्री वाग्भट ने अपने काव्या-नुशासन में किया है—उपमेयस्य किंचिदुक्तावप्रस्तुतप्रशसा। इससे यह स्पष्ट पता चलता है कि भाषाभूषण के अलकारप्रकरण के निर्माण में प्रधान आधार कुललयानदीय चद्रालोक होते हुए भी अन्य ग्रथों का आलोडन किया गया है। भाषाभूषण का निर्माण करते हुए सस्कृत के अपेक्षित अलकारशास्त्र का अच्छा पारायण और अध्ययन किया गया है, इसमें सदेह नहीं।

दोवा

'दोवा' शब्द 'दोहा' का ही विकसित रूप प्रतीत होता है। इसमें ५५ छंद हैं। जिनमें दो सोरठे (१६ और ४६) हैं। हस्तलेख में बीच बीच में कुछ शीर्षक हैं—अथ नायकाबरनन, अथ विरह, अथ संयोगिनि बरनन। आरभ मे कोई शीर्षक नहीं है। छदों को देखने से प्रकीर्णक सग्रह ही प्रतीत होता है। इसमें प्रायः नवीन कल्पनाएँ दिखाई देती हैं—

> मुक्तमाल हिय स्याम कैं देखी भावत नैन।
> छबि ऐसी लागत मनौ कालिंद्री में फेन॥

कल्पना सहज और सभावित रूप की की गई है और नूतन है। इसके अनतर दूसरे में मुग्धा की त्रिबली एवम् रोमावली का वर्णन है। इसमें त्रिबली

में 'पैरी' (सीढी) और रोमावली में डोरी की सभावना की गई है। वर्षा का वर्णन नवीन रीति से तीसरे दोहे में है। ग्रीष्म में जल सूखता है, पृथ्वी जलती है एवम् रातें कृश होती हैं। वर्षा में बिजली की जोत में बादल मानो उसी ग्रीष्म को दड देने को खोजते फिरते हैं। चौथे में प्रभात वर्णन है। सूर्य के दर्शन से कमल खिलते खुलते हैं और उनमें के बद पडे भौंरे निकलकर एकबारगी उड़ते हैं। मानो हृदय से वियोग के बुझे हुए काले काले अगारे निकल रहे हों। पाँचवें में वर्षागम का वर्णन है। मेघ को पृथ्वी का पति कल्पित किया गया है। वह श्यामघन की वियोगिनी है उसके विरह में उसकी देहच्छटा उजली पीली होते होते फिर अधिक विरह से प्रिय के रग की सी हो गई (श्याम नीली), पर अब प्रिय आ मिला तब नीलिमा घट कर हरिमा आ रही है। छठे में वयस्सधि का वर्णन है। इसमें 'मध्या' के बदले 'मुग्धा' ही होना ठीक था। वयस्सधि मुग्धा की ही वर्णित होती है। प्रतीत होता है कि 'मुग्धया' शब्द रहा होगा जो लिखक के प्रमाद से 'मग्ध्या' 'फिर' 'मध्या' हो गया होगा। शैशव और यौवन को चद्र सूर्य मानकर पूर्णिमा के प्रभात में दोनो के एकत्र होने की सभावना की गई है। सभावना इसलिये कि पूर्णिमा को तो दोनो परमार्थतया विपरीत दिक् में रहते हैं। एकत्र तो अमावस्या को रहते हैं। सातवाँ भी मुग्धा का ही वर्णन है। यौवन के आगमन पर गोपन और प्रदर्शन दोनों वृत्तियाँ एक साथ रहती हैं। हृदय में चोप अर्थात् प्रबल मनोवेग है और नवीन स्नेह का उदय हो रहा है। इसी से कभी वह देह को छिपाती है, कभी उसे देखती है और कभी दूसरो को दिखाती भी है। ८ वाँ अज्ञातयौवना का उदाहरण है। ९-१० में सुरतात-वर्णन है। ११-१२ प्रवत्स्यत्पतिका के उदाहरण हैं और १३ प्रवत्स्यत्पतिका का। १४-१५ में अभिसारिका का वर्णन है। १४ में पारंपरिक उक्ति है अर्थात् मैं अकेली कहीं नहीं हूँ पञ्चबाण या कामदेव मेरे साथ है। पर १५ में नूतन कल्पना है। काली रात में नायिका की दीप्ति का प्राकट्य मानो कचन के निकष पर कसे जाने का प्रयास है। १६से १९ तक मान का उल्लेख है। अतिम में गुरुमान है, स्पष्ट ही प्रणिपात का उल्लेख है। उक्ति भी पारपरिक ही है। २० से २१ तक खडिता की उक्तियाँ हैं। बरुण का प्रयाग मेघ के लिये है। २२ में असगति का चमत्कार है। २३ में नवता है। कटाक्ष बाण में मोती (मुक्ता-आँसू) न पिरोकर लाल (माणिक-रोष) पिरोने का कथन है। २४ से ३० तक अनुरागिणी का

वर्णन है। २४ में गोपन के लिये नायिका फूल के धनुष बनाकर कामदेव का संकेत करती है। २७ में प्रेमसिद्धात का कथन है। २६ में रहस्यात्मक संकेत भी लक्षित होता है। ३१ से नायिकावर्णन का शीर्षक ही आ जाता है। ३१ में नायिका को लता कल्पित किया गया है। भौंर (भ्रमर) स्तन के श्याम चूचुक के लिये है। ३२ में मुख को पूर्णिमा का चद्र और नायिका को राका (पूर्णिमा) माना गया है। ३३ में कटिवर्णन है। हरिण नेत्रो के लिये और सिंह कमर के लिये है। ३४ में नेत्रो की छटा उल्लिखित है। बिजुरी (विद्युत्) अगदीप्ति के निमित्त है। वारिज (कमल) मुख के लिये और मीन नेत्रो के हेतु उपमान हैं। ३५ में मृगमद की बिंदी से कलकयुत चद्रमा से भी अधिक छटा होती है। मानो चद्रमा उसी से अपनी शोभा की याचना करता है। ३६ में नवीन कल्पना है। स्तनो का वर्णन है। चूचुक को पूर्ववत् भ्रमर माना है। साथ ही यह भी कल्पना है कि कामदेव ने अपनी निधि पर श्याममुद्रा लगा रखी है। काम का रग श्याम होता ही है, फिर उसकी मुद्रा (छाप) भी उसी के वर्ण की होगी। ३७ में मुख शशि की ही उपमा सार्थक है क्यो कि मुसकराहट अमृत है, चद्रमा सुधाधर जो होता है। ३८ की कल्पना नवीन है। नेत्र निरजन (मायारहित ब्रह्म) अर्थात् अजनरहित और कमर निर्गुण (ब्रह्म) अर्थात् सूक्ष्म है। स्तन निर्लेप (निस्सग) एवम् अलौकिक छटा युक्त हैं। ३९ म केशो के बीच मुख घनघटा के बीच चद्र की छटा प्रदर्शित करता है। ४० में हाथ के ऊपर मुख रखकर लेटी नायिका की छवि का कथन है। यहाँ ब्रह्मा के बदले चद्रमा कमल पर आसीन है। चद्र कोई नूतन ब्रह्मा है क्या। ४१ मे स्तनो के काठिन्य को आश्चर्यमय कहा गया है। कोमल-अगता के बीच यह अकोमल वस्तु आश्चर्ययुत है ही। ४२ मे अजन मे विषकल्पन है। नेत्रकटाक्ष से विषैले बाण इसी अजन के कारण निकलते हैं। विष बुझे बाण ऐसे तीखे हैं कि आरपार हो जाते हैं। ४३ मे भी अजनाक्त नेत्रों की ही सुषमा का कथन है। अंजन ने ही कमल को खजन कर रखा है। 'लाल' शब्द से लाल पक्षी की व्यजना भी हो रही है। ४४ में कस्तूरी की बिंदी से मुख सर्वात्मना चद्र हो जाता है फिर राहु का उसके लिये भय होना ही चाहिए। ४५ में भ्राति की वर्णना है। चकोर मुख को चंद्र समझकर भ्रम में पड़ा है। ४६ में अनोखी बात है कि चद्रमा रहते चकवे वियुक्त रहते हैं, देखिए (स्तन) चक्रवाक का जोड़ा साथ ही हैं।

४७ वें से 'विरह' का शीर्षक ही आ जाता है। ४७ मे नायिका के रूपमद के कारण प्रेमपीड़ा होने की अचरजमयी स्थिति है। आसव पीने पर मदमत्तता लाता है पर यह तो स्मरण मात्र से मादक है। ४८ में वर्षागम से विरह वेदना आती है। ४९ मे भी वर्षा की ही वार्ता है पर यह अश्रुवर्षा है। विरह फूलता-बढता है और शरीर सूखता है। 'मोर' में 'मेरा' और 'मयूर' प्रासगिक सकेत के कारण दो अर्थ करने पड़ते हैं। ५० में शरीर के सूखने पर ही उक्ति है। ५१ में सर्वस्व अर्पित करने पर भी विरहवेदना अनर्पित ही है। ५२ मे माला सयोग मे आघात करती भो सुखद थी अब वही दर्शन मात्र से हृदय मे 'नटसाल' (नष्टशल्य) अग मे धँसकर टूट गए काँटे सी व्यथा करती है। ५३ में आगमिष्य-त्पतिका का उल्लेख है। ५४-५५ मे सयोगिनी-वर्णन है। ५४ तुलादड की कल्पना है। तिसरी (तिलकश्री) वह भी तीन लकीरवाली 'त्रिश्री' या जिसे बोलचाल मे १११ कहते हैं, इसमे बीच की रेखा छोटी होती है यही तुलादड के मध्य लगी 'कटी' या काँटो है। पर पलड़ा झुके तब तो। यहाँ तो नेत्रो मे समस्नेह के कारण काँटे की बीच की सूई स्थिर है। ५५ मे पर (डैना) न होने से मन के उड़कर प्रिय से मिलने में बाधा है। यह तो अनुरागिणी का उदाहरण सा प्रतीत होता है।

इस प्रकार 'दोवा' में कुछ पारपरिक पर अधिकतर नूतन कल्पनाएँ हैं। सानुबध कथन नही है। रचनाएँ प्रकीर्णक ही प्रतीत होती हैं। केवल यही सभावना होती है कि नायिकाभेद की रचना करने के अकुर उगे थे पर अपेक्षित-अनुकूल स्थिति सरक्षत-सचार करके उन्हें पल्लवित, पुष्पित और फलित नहीं कर सका। सग्रह स्वयम् रचनाकार ने ही किया हो और कुछ क्रम बाँधकर आगे पीछे दोहे रखे हों यह भी हो सकता है और किसी अन्य ने यह सभार उसी समय या बाद मे कर दिया हो यह भी हो सकता है। 'प्रबोध नाटक' अनुवाद ग्रथ है और शेष अध्यात्मविषयक रचनाएँ हैं। उनपर विस्तृत विचार करने की अपेक्षा नहीं है और अवकाश भी नहीं है।

जसवंतसिंह

भाषाभूषण

भाषाभूषण

१

(दोहा)

बिघनहरन तुम हौ सदा गनपति होहु[१] सहाइ।
बिनती कर जोरेँ करौँ दीजै ग्रंथ बनाइ॥ १॥

जिहिँ कीनो परपच सब अपनी इच्छा पाइ।
ताकौँ हौँ बदन करौँ हाथ जोरि सिर नाइ॥ २॥

करुना करि पोसत सदा सकल सृष्टि के प्रान।
ऐसे ईस्वर को हिये रहौ रैनदिन ध्यान॥ ३॥

---

[१] दोहा सख्या १ से ४१ तक नहीं हैं (हरि, सोहन)। 'गोकुल' में १ से ७० [सापह्नव सुधा] तक खडित है। गनकै (खोज), होई (सभा); होऊ (जोध, जग, समे, भरत), होहु। नाइ (खोज), सहाइ। जोरी (तारा, ग्रिय), जोरेँ। कहौँ (साहु), करौँ। बताइ (जोध+), बनाइ।

[२] 'दल' में दोहा स० २ से ५ तक नहीं हैं। जिहे (सभा), जिन (वेक), जिन्ह (शिव, ग्रिय), जिहिँ। कीने (सभा), कीन्हौँ (शिव, भवा, ग्रिय), कीनो। हू (समे), हुँ (पूना), हौँ। करु (जोध), करौँ। परि पाय (समे), सिर नाइ।

[३] सबे (पूना), सदा। ग्यान के (सभा), बिस्व के (जोध+, भरत), सृष्टि के। सुमत (सभा), सदा (जग, मया, भवा), हिये। करै (सभा), रहै (याज्ञिक, खोज, वेक), रहौ। हिये मैं (जग), रैनदिन।

मेरे मन मैं तुम बसौ ऐसी क्यौं कहि जाइ।
तातैं यह मन आप सौं लीजै क्यौं न लगाइ॥ ४॥
रागी मन मिलि स्याम सौं भयो न गहिरो लाल।
यह अचरज उज्जल भयो तज्यो मैल तिहि काल॥ ५॥

२

एक नारि सौं हित करै सो अनुकूल बखानि।
बहु नारी सौं प्रीति सम ताकौं दच्छिन जानि॥ ६॥
मीठी बातैं सठ करै करिकै महा बिगार।
आवति लाज न धृष्ट कौं कियैं कोटि धिक्कार॥ ७॥
स्वकियापति सौं पति कहैं परनारी उपपत्ति।
बैसिक नायक की सदा गनिका सौं हितरत्ति॥ ८॥

---

[४] मौं (खोज), मैं। रहौ (याज्ञिक, जोध, राधा, साहु, समे, शिव, खोज, पूना, सभा), बसौ। अैसौ (याज्ञिक, मन्ना), ऐसी। कही न (मया, भवा), क्यौं कहि। याते (मन्ना, तारा, वेंक, ग्रिय), तातै। इह (राधा, भवा), यह। तें (समे, शिव), सौं। सेवक (सभा), क्यौं न। लाई (सभा), मीलाई (खोज), लगाइ।

[५] मिल मन (पूना), मन मिलि। स्यौं (पूना), मैं (मन्ना, तारा, ग्रिय), सौं। ताल (याज्ञिक), लाल। भयैं (जोध), भयो। तजे (सभा), तज्यो। मौह (जोध—), मेल (तारा), मैल। यह 'मया, भवा' मैं नहीं है।

[६] निज (याज्ञिक), इक (सभा), एक। नारी (याज्ञिक, सभा, मन्ना); नारि। बहुत (मया, समे, भवा), बहु। नारिन (राधा, दल, ग्रिय), नारि (समे, मया, खोज, भवा, तारा), नारी।

[७] सबैं (खोज), मठ। कहे (याज्ञिक, जोध, राधा, समे, शिव, मया, दल, पूना, भवा), करै। बडौ (साहु), बहुत (समे), महा। बिगाई (सभा), बिगार। आवै (मन्ना, वेंक, ग्रिय), आवति। कीजै (राधा), दिये (साहु), करे (सभा), कियैं। कोरि (शिव), बहुत (राधा, समे), कोटि। धकाई (सभा), धिकार (याज्ञिक, खोज), धरकार (राधा, साहु), धिक्कार।

[८] सूकया (खोज), दुकीया (जग, साहु), स्वकिया। रति (सभा), कौं (याज्ञिक, वेक, ग्रिय), सौं। पतिनारी (जोध+), परनारी (जोध—,

पदमिनि चित्रिनि सखिनी अरु हस्तिनी बखानि।
बिबिधि नाइकाभेद में चारि जाति तिय जानि ॥ ६ ॥

स्वकिया ब्याही नाइका परकीया परबाम।
सो सामान्या नाइका जाकैं धन सौं काम ॥ १० ॥

बिन जाने अज्ञात है जानैं जोबन ज्ञात।
मुग्धा के द्वय भेद ये कबि सब बरनत जात ॥११॥

मध्या सो जामैं दोऊ लज्जा मदन समान।
अति प्रबीन प्रौढ़ा वहै जाके पिय में प्रान ॥१२॥

जग, राधा, शिव, मया, खोज, पूना, भरत, भवा, ग्रिय), परकीया। कौ (खोज), सो (सभा), की। गनिका ही (जग, शिव, सभा, वेंक, ग्रिय), गनिका। रतिबृत्ति (याज्ञिक), ही रत्ति (जोध—), गति (सभा), रत्ति (जग, शिव, वेंक, ग्रिय), हितरत्ति। 'शिव' में यह दोहा स० १० पर है।

[६] अब (समे), और (सभा), अरु। मान (सभा), बखानि। नाइक (जोध—), नाइका। चारि तिया (याज्ञिक), बारि जाति (जोध—), च्चार जाती (सभा), चारि भाँति (साहु, दल—), जात चार (मया, भवा), च्यारि जाति (समे, पूना, भरत), चारि जाति। कौं (याज्ञिक), येह (समे), जिय (दल), ये (पूना), इइ (सभा), तिय।

[१०] सामान्या तासौं कहै (जग), सो सामान्या नाइका। ताकैं (याज्ञिक), जाकैं (जोध, राधा, साहु, समे, शिव, मया, खोज, पूना, तारा), जाकौ। धाम (पूना), काम। 'शिव' में यह स० ८ पर है।

[११] जोबन जाने (सभा), जानैं जोबन। को द्वै (शिव), द्वै द्वै (पूना), के द्वय। भाति (शिव), भेद। कवि (याज्ञिक, ग्रिय), हैं (सभा, मन्ना, तारा), ये। कबि बरनत जात (सभा), कबि बरनत सब जात (पूना), कबि बरनैं सब गात (जग), इहि बिधि बरनत जात (याज्ञिक, ग्रिय), कबिबर बरनत जात (मया, भवा), सब कबि बरनत जात (दल), कबि जन बरनत जात (जोध+), कबि सब बरनत जात।

[१२] जामे यै (दल), मे दोऊ (साहु), सो जामैं। रहै (साहु), द्वै (खोज), दुउ (याज्ञिक, भरत), दुऔ (जग, दल, वेंक), दुहु (पूना, मन्ना, तारा), दोऊ। लाज (दल), लजा। मान (समे),

क्रिया बचन में चातुरी यहै बिदग्धा रीति।
बहुत दुराएहू सखी लखी लच्छिता प्रीति ॥१३॥

गुपता रति गोपित करै तृपति न कुलटा आहि।
निह्चै जानति पियमिलन मुदिता कहिये ताहि ॥१४॥

बिनसै ठौर सहेट की आगैं होइ न होइ।
जाइ सकै न सहेट मैं अनुसयना है सोइ ॥१५॥

मनोज (दल), मदन। रहै (याज्ञिक), कहत (साहु), उहै (दल), कही (खोज), वैहै (सभा), वहै। जको (यान्निक, जोव, शिव, मया, दल, खोज, भवा, वेक, ग्रिय), जाके। पीय सौं (खोज), पिय मो (सभा), पति मैं (जग, साहु, मन्ना), पिय मैं। ध्यान (ग्रिय), प्रान।

[१३] करै (याज्ञिक), क्रिया। बचन मौ (खोज), बचन सौं (याज्ञिक, ग्रिय), बचन में। दोइ (जग), वहै (मन्ना), यह (समे, मया), यहै। बिदध्या (साहु), बिदग्धा। दुराहु (जग), दुराजैतहु (राधा), दुराषैहु (खोज), दुरावेहू (भरत), दुराऐही (सभा), दुराएहू। लषै (समे), सषी। यहै लषीता (खोज), लच्छिता की यह (सभा), लखै लच्छिता। (वेक, ग्रिय), लखी लच्छिता। रीति (साहु), पीतु (खोज), प्रीति।

[१४] गोपता (सभा), गुपता। रति गोपिन (याज्ञिक), रति गोपति (जोध), रति गोपत (जग), रति गुप्तैं (भरत), न गुप्ता (सभा), सो गोपन (तारा), रतिगोपन (मन्ना, वेक), रति गोपित। होइ (याज्ञिक), आहि। निस्चै (जग, दल, भरत, सभा, मन्ना, तारा, ग्रिय), निह्चै। जानैं (राधा, शिव, दल), जानति। पति मिले मुदता कहीयत (सभा), पिय मिलन मुदिता कहिया (पूना), पिय मिलन मुदिता कहिये। सोइ (याज्ञिक), ताहि।

[१५] सहेट कौ (ग्रिय), सहेट की। सके नहि (पूना), सकी न (जोध, भरत), न सकै (समे, ग्रिय), सषी न (याज्ञिक, खोज, सभा), समय न (राधा, शिव, दल), सकै न। सहेठ के (दल), लाज ने (पूना), सहेट यैं (तारा), सहेट मैं। अनुसयान (पूना, खोज, भवा, सभा), अनूसयाना (जोध+, समे, तारा, ग्रिय), अनुसयना। त्रै (दल), है।

जाइ (जग), साइ ।

[१७] पिय आवै (मन्ना, तारा), पति आनै । रहि (मया, भवा), बसि । प्रान (पूना) प्रात । मलन (शिव), मिलन । सजि (जग, दल), करि । सुभ देह (खोज), सब देहे (भरत), सब देहि (सभा), सु देह (तारा), सब देह ।

[१८] पिय सकेत (तारा), पिय सहेट । आवै (समे, मन्ना, वेंक), पावै (याज्ञिक, खोज, तारा, ग्रिय), आयो (जग, राधा, साहु, मया, भवा, सभा), पायो । मन सौ (खोज), मन मैं । करत (सभा), करै । तै सो (साहु), काँ (खोज), तें (सभा), सौं । जानि (साहु), ब्रिषान (सभा), बखानि ।

[१९] आए (साहु), पायो (राधा), पाएँ (ग्रिय), पाएं । मैं प्रिय (याज्ञिक), तिय (खोज), पिय । बिप्रलव (जोध), ब्रिनप्रलब्ध (तारा), बिप्रलध्व (याज्ञिक, सभा), बिप्रलब्धा (खोज, ग्रिय), बिप्रलब्ध । सत्रास (सभा), तन त्रास (जोध+), तनताप । बासक-सज्ज (शिव), बासकसय्या (वेंक), बासकसजा (सभा), बसक-सज्जा (याज्ञिक, मया), बासकसज्जा । नत (जोध+), तन । सभै (खोज), सजै । आवन (राधा), पिय-आवन । जिय सताप (राधा), आलाप (समें), की आय (मया), की थाप (दल), जीय जाप (खोज), जिय आस (सभा), की थाप (मन्ना), निज जाप (तारा), की आस (जोध+,भवा), जिय थाप ।

जाके पति आधीन कहि स्वाधिनपतिका ताहि।
भोर सुनैं पिय को गवन प्रबस्यत्पतिका आहि ॥२०॥

रूप प्रेम अभिमान सौं दुबिधि गर्बिता जानि।
अन्यसँभोग सु दुख्खिता अनत मिलन पिय मानि ॥२१॥

गोप कोप धीरा करै प्रगट अधीरा कोप।
लच्छन धीरअधीर को कोप प्रगट अरु गोप ॥२२॥

---

[२०] नाको (सभा), जाको (शिव, भवा), जाके। है (वेंक), कहि। ताही (सभा), सोय (वेंक), ताहि। भोर समे (सभा), ओर सुने (तारा), भोर सुनैं। पति कौ (साहु, सभा), पिय को। गवन (जोध, जग, समे, मया, पूना, भवा), गमन। जाहि (भरत), होय (वेंक), आहि।

इसके अनतर 'भरत' मैं यह दोहा अधिक है—

धिक आगम सुनि सफर तें प्रसन्न आगतपत्ति।
भुजफरकादिक सगुन तें आगमपति सुमुदत्ति ॥

[२१] 'मन्ना' और 'तारा' मैं यह दोहा नहीं है। प्रेम रूप (सभा), रूप प्रेम। अतिमान (खोज), अभिमान। तैं (जग, साहु, दल, पूना, वेंक); सौं। दुबिध (मया, सभा, भवा), दुबिधि (याज्ञिक, जोध, समे, पूना, वेंक, ग्रिय), द्विबिधि। गबिता (खोज), गरब्राता (सभा), गर्बिता। रीति (जग), जानि। अति (भरत), अन्य। सुरति (वेंक), भोग (ग्रिय), सभोग जु (समे), सभोग सु (जोध–,जग, दल), सभोगनि (जोध+;मया, भरत, भवा), सभोग। दुष्पिता (जग), दुस्विता (पूना), दुःखिता (जोध, समे, मया, भरत, वेंक, ग्रिय), दुख्खिता। सुयौ अनत (याज्ञिक), वहै आन (सभा), कहीं अनत (वेंक), गन्यौ अनत (ग्रिय), अन्य (जोध–), अनत। पिअ मानि (ग्रिय), पिय मानि।

[२२] गोपि कोपि (याज्ञिक), गोपु कोपु (जग), गोपि कोप (जोध–, राधा), गोप को (शिव), गुप्त कोप (दल), गोप गोप (खोज,), गोप कोप। प्रकट (साहु), प्रगट। कोपु (जग), कोपि (याज्ञिक, जोध), कोप। अलछि (याज्ञिक), धीराधीरा (मन्ना, तारा), लच्छन। अधीरा धीर (याज्ञिक), जानियैं (मन्ना, तारा), धीराधीर (राधा, साहु, खोज, पूना, वेंक, ग्रिय), धीर अधीर। × (मन्ना,

सहजैं हाँसी खेल तैं बिनयबचन सुनि कान।
पाय परैं पिय के मिटै लघु मध्यम गुरु मान ।।२३।।

३

स्तभ कप स्वरभग कहि बिबरन आँसू स्वेद।
बहुरि पुलक अरु लीनता आठौ सात्विक भेद ।।२४।।
होहिँ सँजोग सिँगार मैं दपति के तन आइ।
चेष्टा जे बहु भाँति की ते कहिये दस हाइ ।।२५।।

तारा), के (समे, शिव, पूना), को। प्रगट गोपि (याज्ञिक), कोपु प्रगट (जग), कोप प्रघट (मया), कोप प्रकट (सभा, तारा), कोप प्रगट। अरु गोपि (याज्ञिक), औ गोपु (जग), अरु कोप (सभा), अरु गोप।

[२३] जैहि (भरत), स्तभ सहज (तारा), सहजैं। हसि (तारा), हाँसी। केल मै (सभा), षेल तीय (खोज), षेल मैं (शिव, मया, भवा, मन्ना, वेंक), खेल तैं। सुन (मया, पूना), मुस (तारा, ग्रिय), सुनि। क्यान (ग्रिय), कान। पिय सौं (खोज), पिय के। मिलै (खोज, पूना), मिटै। ए (खोज), लघु। मधिम (जग), मध्यम।

[२४] 'सभा' मैं यह नहीं है। सभ कपट (जग), स्तभ कप। षेद (याज्ञिक), स्वेद। किपुल (भरत), प्रलय (समे, मन्ना), पुलक। स्वर (याज्ञिक), औरु (साहु), अ (मया), रोमाच (मन्ना), अरु। पुलकि कहि (समे), प्रलयगनि (ग्रिय), कहि (मन्ना), लीनता। आठैं (राधा), आठौ। सातिक भेद (याज्ञिक), सातक भेद (पूना), सातुक भेद (जग, साहु), स्वातिक भेद (राधा, खोज), सात्विक भेद।

[२५] होति (वेंक), होइ (याज्ञिक, जग, साहु, समे, मया, खोज, सभा), होहि। सिंगार सँजोग मैं (राधा), सँजोग सिँगार तैं (तारा), सँजोग सिँगार मैं। के मन (जग), तन कैं (भरत), के तन। आव (समे, मया, पूना, भवा, सभा, वेंक), आइ। ते (शिव), जो (भरत, सभा, मन्ना, तारा, वेंक, ग्रिय), जे। दस (भरत), बहु। सो कहिये (मन्ना, तारा), ते कहिये। हाव (जोध, राधा, समे, खोज, पूना, भरत, भवा, सभा, वेंक), हाइ।

पिय प्यारी रतिसुख करैं लीला हाव सु जानि।
बोलि सकैं नहि लाज तैं बिह्रित हाव बखानि ॥२६॥
चितवनि बोलनि चलनि मैं रस की रीति बिलास।
सोहत अँगअँग भूषननि ललित सु हाव प्रकास ॥२७॥
बिच्छिति काहू बेर मैं भूषन अलप सुहाइ।
रस सौं भूषन भूलिकै पहिरैं बिभ्रम हाइ ॥२८॥

---

[२६] अति सुष (साहु), रतिसुष। हाव सो (दल, ग्रिय), हाव सु। लाज सौं (खोज, ग्रिय), लाज तैं। बिरहनि हाव (याज्ञिक), ब्रहितहि हाउ (जग), बिहरति हाव (समे), बिरह्त हाव (पूना), बिहीत हास (शिव), बिहित हाव सो (दल), बिहित हाव सु (सभा), बिक्रत सो हाव (ग्रिय), बिह्वति हाव सु (राधा), ब्रिहूत हाव सु (साहु), बिहित सु हाव (मन्ना, वेंक), बिह्रित हाव। मानि (दल), बखानि।

[२७] बोलन सीतवन (खोज), चितवति बोलति (वेंक), चितवनि बोलनि। हसन मैं (पूना), चलति मैं (वेंक), बाल मैं (मया, भरत, भवा), चलनि मैं (याज्ञिक, जोध, साहु, दल, मन्ना, ग्रिय), चाल मैं। बषानि (याज्ञिक), बिलास। होत अग अग भूष तैं (मया), सोहत अग अग भूषनन्ह (दल), सोभित अगअग भूषननि (भरत), सोहत अगअग भूषनै (भवा), अँगअँग भूषननि (याशिक, वेंक), सोहत भूषन अग मैं (समे, सभा), अग अँग भूषन लसत (मन्ना, तारा), सोहति अगअग भूषनि (साहु, शिव, खोज), सोहत अँगअँग भूषननि। सोहै (सभा), ललित। हि हाउ (जग), ललित (सभा), सो हाव (शिव, ग्रिय), हाव (पूना, तारा), सु हाव। प्रमानि (याज्ञिक), प्रकास। 'वेंक' और 'तारा' मैं यह दोहा स० २८ पर है।

[२८] बिधित हाव (याज्ञिक), बिछुत (जोध), बिच्छिति (भरत, भवा, मन्ना, वेंक, ग्रिय), बिछित। तिय (तारा), कहु (याज्ञिक, साहु), तिय की (मन्ना), काहू। बार मै (सभा), बेरि मैं (ग्रिय), बैर मे (जोध, खोज), रीस तैं (मन्ना, तारा), बेर मैं। अलष (राधा), अचल (समे), अल्प (जोध, सभा, मन्ना, तारा, वेंक,), अलप्। सोहाव

क्रोध हरष अभिलाष भय किलकिंचित मैं होइ।
प्रगट करैं दुख सुख समै हाव कुट्टमित सोइ ॥२६॥
मोटायत चाहैं दरस बातन भावत कान।
आएँ आदर ना करै धरि बिब्बोक गुमान ॥३०॥

(वेक), सुहाव (समे, पूना, सभा), सुहाइ। रस कों (साहु), रस सों। भूल कै (मया, पूना, सभा), भूलिकै। पहरै (मया, खोज, पूना, सभा, वेक), पहिरैं। बिभूम (खोज), बिभ्रम। हाव (याज्ञिक, जोध, राधा, समे, मया, खोज, पूना, सभा, वेक), हाइ। 'मन्ना' और 'तारा' मैं यह दोहा स० २७ पर है। 'भरत' मैं २८ से ३६ तक खडित है।

[२६] यहे (मया), यह (भवा), भय। मै हूयी (सभा), मैं होइ। प्रगट होत (समे), रति सुख (मन्ना, तारा), प्रगट करैं। दुष बपु (सभा), सुष दुष (याज्ञिक, जोध), मैं दुष (मन्ना, तारा), दुख सुख। तहाँ (याज्ञिक), मैं (मया), सबै (सभा), दरसही (मन्ना, तारा), समै। कुट्टमित (मन्ना, तारा), हाव। कुट्टमिति (शिव), कुदमित (मया), कूटमित (खोज), कट्टमित (सभा), कुट्टमित (राधा, साहु), कहि (मन्ना, तारा), कुट्टमित।

[३०] प्रगट करै रिस पीय सों (मन्ना, तारा, प्रिय), मोटायत चाहैं दरस। भावती (याज्ञिक), न भवै (जग, समे, दल, खोज, पूना), न भावत। आदरु (जग, प्रिय), आदर। धर (मया), धरै (समे, सभा, तारा), धरि। बिधोध (याज्ञिक), बिछोह (राधा), बिब्योक (मया), ब्रिधोक (पूना), बिछोक (जग, समे, खोज, सभा, तारा), बिब्बोक।

इसके अनतर 'मन्ना, तारा, प्रिय' मैं यह दोहा है—

पिय की बातनि कै चले तिय अँगराइ जँभाइ।
मोट्टायित सो जानिई कहे महा कबिराइ ॥

'मन्ना' में 'महा' के स्थान पर 'सबै' लिखा है।

'जोध' और 'जग' मैं यह दोहा है—

जोध—हेला प्रेम जनाय कें प्रिय कौं लेहु बुलाइ।
क्रियाचातुरी बुध कहें मुद सुरूप गरबाय ॥
जग—अभिलाष सु चिंता गुनकथन सिम्रित उद्वेग प्रलाप।
उन्माद ब्याधि जडता भयौ होतु मरनु पुनि आपु ॥

नैन मिलैं मनहूँ मिल्यो मिलिबे को अभिलाप।
चिता जात न बिन मिलैं जतन कियेहूँ लाख ॥३१॥

सुमिरन रस सभोग को करि करि लेत उसास।
करत रहत पिय गुनकथन मन उद्वेग उदास ॥३२॥

बिन समुझैं कछु बकि उठै कहिये ताहि प्रलाप।
देह घटत मन मैं बढ़त बिरह ब्याधि सताप ॥३३॥

तिय मूरति मूरति भई है जडता सब गात।
सो कहिये उनमाद बस सुधि बिन निसदिन जात ॥३४॥

---

[३१] मन मिल गयो (वेंक), हू ना मिल्यौ (समे), मनहू मिल्यौ। मिलने (समे), मिलिबे। की (शिव), कूँ (सभा), को। जानत (मया), जानि न (राधा, पूना), जात न। मन मीलै (खोज), बिन मिलैं। यत्न (ग्रिय), जतन। किये है (याज्ञिक), करैं हूँ (जग) कियेहूँ। 'दल' मैं ३१ से ४१ तक नहीं है।

[३२] रति (जग, साहु), रस। सौं (खोज), को।•की डाले करि करि लेत समे), करत महा (सभा), करि करि लेत। हरति पिय (मया, भवा), रहै तिय (पूना), रहत पिय। कलन (मया), कथन। उदेग ऊलास (सभा), उद्वेग उदास।

[३३] बिन बूझे (शिव), बिन सुझै (खोज), बिन समुझैं। कहि उठै (याज्ञिक), बकि उठै। कहि ताय (मया), ताकौं नाम (पूना), कहिये ताहि। देह घटे (मन्ना, तारा, वेंक), देह घटत। तन (खोज, ग्रिय), मन। बधृत (खोज), बढै (जग, तारा, मन्ना, वेंक), बढत। बिहै ब्यध्यि (साहु), बिरह ब्याधि।

[३४] निय (जोध), पिय (सभा), तिय। मूरत सूरत (सभा), सूरत मूरत (मन्ना, तारा, वेंक, ग्रिय), मूरति मूरति। जहि जडता (खोज), जडता भइ (मन्ना, तारा, वेंक,), है जड़ता। उदमान (समे), उन्नाद (सभा), उनमाद। बसि सुधि (सभा), जहँ सुधि बुधि (ग्रिय), बस सुधि बिन। की जात (सभा), जात।

गनि सिँगार अरु हास पुनि करुना रुद्रहि जानि।
बीर भय 'रु बीभत्स कहि अद्भुत सात बखानि ॥३५॥
रति हाँसी अरु सोक पुनि क्रोध उछाह 'रु भीति।
निंदा बिस्मय आठ ये स्थाई भाव प्रतीति ॥३६॥
जो रस की दीपति करै उद्दीपन है सोइ।
सो अनुभाव जु ऊपजैँ रस को अनुभव होइ ॥३७॥
आलंबन अवलंबि रस जामैँ रहै बनाइ।
नौहूँ रस मैँ सचरैँ ते व्यभिचारी भाइ ॥३८॥

---

[३५] रस शृंगार (ग्रिय), प्रथम सिंगार (खोज, मन्ना, तारा, वेंक), गनि सिँगार। औ हास्य (समे), सु हास्य (वेंक), सो हास्य (ग्रिय), रु हास्य (राधा, खोज), अरु हास (याज्ञिक, जोध, पूना), सु हास (सभा, मन्ना, तारा), औ हास। रस (समे, खोज, सभा, वेंक), पुनि। रुद्र (याज्ञिक, जोध, जग, खोज, तारा), रौद्र। हिमान (याज्ञिक), बषानि (समे), सुजान (मन्ना, तारा), हि जानि। भय (याज्ञिक), बीर। अरु बीर (याज्ञिक), ×(समे), सयरु (पूना), सुभय (सभा), भय रु। बीभच्छ कहि (जोध), बीभत्सु भय (समे), बीभत्स कहि। सत (जग),×(समे), शांति (जोव, खोज), सात। प्रमान (खोज), बखानि।

[३६] हास्य (मन्ना, तारा), हँसी। उछाह सु भीति (साहु), उछाअ रु भीत (मया), उछाह अ भीत (खोज), उछाह सभीति (वेंक), उछाह रु भीति। भय निंदा बिस्मै (मया, भवा), निंदा बिस्मय। यह (सभा, मन्ना, तारा, वेंक, ग्रिय), ये। थाई भाव (मया, भवा, वेंक), स्थाई भाव।

[३७] रस कौ (मन्ना, वेंक, ग्रिय), रस की। दपति (समे), दीपति। उद्दीप (खोज), उद्दीपन। सो (जग), कहि (मन्ना, तारा, ग्रिय), है। होइ (जग), सोइ। सरुप (समे), जो (याज्ञिक, शिव, खोज, पूना), जु। तैँ (समे), ऊपजै। 'सभा' मैँ प्रथम दल द्वितीय और द्वितीय दल प्रथम है।

[३८] आलंब (याज्ञिक, सभा, ग्रिय), अवलंब। बिनु (सभा), सब (तारा), रस। बनाव (भरत, सभा, ग्रिय), बनाइ। सोई (समे), नौऊ (याज्ञिक, राधा, पूना), नौहूँ। मौ (खोज), मैँ। जे सबरैँ

निर्बेद ग्लानि सँका गरब चिंता मोह बिबाद।
दैन्य असूया सुमृति मद आलस श्रम उनमाद ॥३९॥
ब्रीड़ा जडता हरप धृति मति आबेग बखानि।
आकृतिगोपन चपलता अपस्मार भय जानि ॥४०॥
उत्कठा निद्रा स्वपन बोध उग्रता भाइ।
ब्याधि बिषाद बितर्क मृति ये तैंतीस गिनाइ ॥४१॥

(पूना), सचरैं। सो (पूना, सभा, मन्ना, तारा), ते। सचारी भाव (समे, सभा), बिभचारी भाव (राधा, भरत, ग्रिय), ब्यभिचारी भाइ।

इसके अनतर 'शिव' में यह दोहा अधिक है—

आठ कहै एकै रसनि एकै नव सु बषानि।
स्थाइ भाव जो सात को निर्बेदहि सो जानि ॥

[३६] त्रिबेद ग्लानि (पूना), निर्बेदे (वेंक), निर्बदइ (ग्रिय), निर्बेद गल्यान (जोध, जग), निर्बेद ग्लानि। बिपाद (याज्ञिक, पूना, भरत, मन्ना, तारा, वेंक, ग्रिय), बिबाद। द्वैनय (जग), दीन (सभा), दैन्य। असुय (मया), असुवा (जग, खोज), असूया। श्रिमिति मद (जग), मद भ्रमरु (मया), प्रित मदु (पूना), ममृति मदद (भरत), मद भ्रमरु (भवा), सुमृति मद (याज्ञिक, राधा, खोज), मृत्यु मद (मन्ना, तारा, वेंक, ग्रिय), स्मृति मद। स्रमा उन्यमादा (साहु), श्रम उनमाद।

[४०] क्रीडा (खोज), ब्रीडा। ममि (जग), मद (सभा), मति। आवेद (जोध), आवेष (साहु, समे, पूना), आबेग। अहति (राधा), आलति (भरत), आकृति। जिय (जग), भय। ग्लानि (वेंक, ग्रिय), जानि। 'मन्ना, तारा, ग्रिय' में प्रथम दल द्वितीय और द्वितीय दल प्रथम है।

[४१] क्रोध (याज्ञिक), ब्याधि (मन्ना, तारा), बोध। कुम्रिदता भाव (सभा), उग्रता भाइ। अमर्ष बिमर्ष (मन्ना, तारा), ब्याधि अमर्ष (वेंक, ग्रिय), ब्याधि बिषाद। मात ए (जग), मृत्य ए (राधा), मित ए (समे), स्तुति ये (शिव), तासति (सभा), स्मृतिये (जोध, मन्ना, वेंक, तारा, ग्रिय) मृति ये। गनाव (सभा), गिनाइ।

इसके अनतर 'हरि, मन्ना, तारा, ग्रिय' में यह दोहा है—

उपमेय रु उपमान जहँ बाचक धर्म सु चारि।
पूरन उपमा हीन तहँ लुप्तोपमा बिचारि ॥

'हरि' में 'उपमेय रु उपमान' के स्थान पर 'उपमान रु उपमेय' है।

४

इहि बिधि सब समता मिलै उपमा सोई जानि।
ससि सो उज्जल तियबदन पल्लव से मृदु पानि ।।४२।।

'तारा' में 'जहँ' के स्थान पर 'जहाँ' और 'ग्रिय' में 'सु चारि' के स्थान पर 'सो चारि' है।

इसके अनंतर केवल 'मया' में ये दोहे अधिक हैं—

एकै जाके देखिये दूजे दरसन चित्र।
तीजे सुपने देखिये चौथौ श्रवनन मित्र ।। क ।।
जौ क्यौंहू न कहू मिलै कै सब दोऊ ईठ।
जब अपने वे आप ही बुधिबल करत बसीठ ।। ख ।।
बिप्रलभ शृंगार कौ चार प्रकार प्रकास।
प्रथम पूर्वअनुराग पुनि करुना मान प्रवास ।। ग ।।
साम दाम भनि भेद पुनि प्रनत उपेछा मान।
अरु प्रसगबिद्धस सुनि दंड होत रसहानि ।। घ ।।
मदहास कलहास पुनि कहि केसव अतिहास।
कोबिद कबि बरनत सबै अरु चौथौ परिहास ।। ङ ।।

इसके अनंतर 'शिव, मया, खोज, मभा, भवा और वेक' में ये दोहे अधिक हैं—

अलकार सामान्य अरु कहे बिसिष्ट प्रकार।
सबद अरथ ते जानिये पुनि उनके व्यवहार ।। च ।।
ग्रथ बढै सामान्य ते राजभूमिपरसग।
ताते कछु सछेप ते कहि बिसिष्ट के अग ।। छ ।।

इसके अनंतर केवल 'खोज' में ये दोहे अधिक हैं—

सी से सो लौं बराबर सम सरि जिम तिम काम।
तुल्य अर्थ सूचिक सबै कहिये बाचिक नाम ।। ज ।।
लसै जु तरि उपमान कै प्रगट करै उपमेय।
सो साधारन धर्म है भापित सुमति अजेय ।। झ ।।
चद कवल उपमान है मुख लोचन उपमेय।
इन भावनि के अर्थ मैं जानत बुद्धि अजेय ।। ञ ।।

[४२] 'हरि' में प्रथम दल के स्थान पर यह है—अबुज से लोइन अमल मधुर सुधा सी बानि। ई बिधि (समे), या बिधि (मया), जेहि बिधि

बाचक धर्म 'रु बर्ननिय है चौथो उपमान।
इक बिन द्वै बिन तीनि बिन लुप्तोपमा प्रमान ॥४३॥
बिजुरी सी पकजमुखी कनकलता तिय लेखि।
बनिता रस सिगार की कारनमूरति पेखि ॥४४॥
उपमे ही उपमान जब कहत अनन्वय ताहि।
तेरे मुख की जोर कौं तेरो ही मुख आहि ॥४५॥
उपमा लागे परसपर सो उपमाउपमेय।
खजन हैं तुव नैन से तुव दृग खजन-सेय ॥४६॥

(दल), जिहि बिधि (सभा), यह बिधि (भवा, तारा), यहि बिधि (खोज, मन्ना, वेंक, प्रिय), इहि बिधि। मिलै सोई उपमा (सोहन), लहै सोई उपमा (दल), मिलै उपमा सोई। सुदर (पूना), उज्जल। पल्लव सो (सभा), पल्लव से।

इसके अनतर 'पूना' में यह दोहा अधिक है—

ससि उपमा उपमेय मुख उज्जल धर्महि जानि।
इहि बिधि बाचक चारि मिलि पूर्नोपमा वपानि॥

[४३] धर्म सू (सभा), धर्म रु। बर्ननिय (राधा), बर्न होय (खोज), बर्न तिय (सभा), बर्ननिय। चौथैं (जोध, राधा), चौथौ। एक (शिव), यक (दल), इक। प्रवान (सोहन), वषान (मया, भवा), प्रमान। 'हरि' में नहीं है।

[४४] सीय (याज्ञिक), यत (जोध), मित (राधा), द्रम (सोहन), यित (सभा), तिय। देषि (शिव), लेखि। बनना (सभा), बनिता। 'हरि' और 'दल' में नहीं है।

[४५] उपमेऔ (सोहन), उपमेयी (याज्ञिक, हरि, शिव, भवा, सभा, तारा, वेंक), उपमे ही। तब (समे), जक (मया), जहँ (हरि, सोहन, मन्ना, वेंक), जब। अनन्यै (जग), अन्वय (साहु), अन्वनय (सोहन), अनन्वय। ताय (समे), ताहि। मुप सौं (हरि), मुष के (याज्ञिक, भरत, वेंक), मुख की। ई मुप (हरि, साहु, सोहन, शिव, मया, दल, भवा, सभा, वेंक) ही मुख। आय (समे), आहि।

[४६] ×(सोहन), सो। उपमानोपमेइ (जग), उपमानोउमेय (सोहन), उपमाउपमेय (शिव, मया, दल, खोज, भरत, भवा, सभा, तारा, वेंक), उपमानुपमेय। दृगन से (मया), नैन से।

सो प्रतीप उपमेय कों कीजै जब उपमान।
लोयन से अंबुज बने मुख सो चंद बखान ॥४७॥

उपमे को उपमान तें आदर जबै न होइ।
गरब करत मुख को कहा चंदहिं नीकैं जोइ ॥४८॥

अनआदर उपमेय तें जब पावै उपमान।
तीछन नैनकटाच्छ तें मंद काम के बान ॥४९॥

उपमे कों उपमान जब समतालायक नाहिं।
अति उज्जल दृग मीन से कहे कौन पै जाहिं ॥५०॥

ब्यर्थ होइ उपमान जब बर्ननीय लखि सार।
दृग आगें मृग कछु न ये पंच प्रतीप प्रकार ॥५१॥

---

[४७] प्रदीप (शिव), प्रतीप। जब (हरि, दल), कीजै। तहँ (शिव), कीजै (हरि, दल), तब (साहु, समे, सभा), जब। सोईन (सभा), लोचन (मया, पूना, मन्ना, तारा, वेंक), लोयन। मुख से (शिव, वेंक), मुख सो। समान (पूना), बखान।

[४८] उपमेय (सभा, मन्ना), उपमे। जब न (भरत), जबै न। करनि मुष (पूना), करै मुख (ग्रिय), करत मुख। चदनु (जग), चंदहि। तैसो (हरि), नीको (याज्ञिक, साहु, खोज), नीकैं।

[४९] अन आससै (भवा+), अति आदर (मया—, भवा—), अनआदर। सौं (हरि), तें। नव पावै (जग), पावे जब (मया), जप पावै (याज्ञिक, सोहन, वेंक), जब पावै। से (याज्ञिक), तें। 'पूना' में यह दोहा नहीं है।

[५०] उपमय (भरत), उपमेय (हरि, मन्ना), उपमे। की उपमान (दल, सभा), कौं उपमान। सब (खोज), यव (सभा), जब। लाई (याज्ञिक, सोहन), लायक। नाय (मया), नाहि। उज्जल दृग (जोध), उत्तम दृग। मीन तें (मन्ना, तारा), मीन से। कहि कौंन (जोध), कहे कौन। न पैं (जोध), पर (सोहन), पै (मन्ना, तारा), बिधि। जाय (मया), जाहिं।

[५१] ब्यर्थ होहि (जग, भरत), ब्यर्थ होइ। अपमान (याज्ञिक), उपमान। जह (साहु), जब। बरननाय (याज्ञिक), बर्ननीय। मृग आगैं द्रग

है रूपक द्वै भाँति को मिलि तद्रूप अभेद।
अधिक न्यून सम दुहुँन के तीनि तीनि ये भेद ॥५२॥
मुखससि वा ससि तेँ अधिक उदित जोति दिनराति।
सागर तेँ उपजी न यह कमला अपर सुहाति ॥५३॥
नैन कमल ये ऐन हैँ और कमल किहिँ काम।
गवन करत नीको लगति कनकलता यह बाम ॥५४॥
अति सोभित बिद्रुम अधर नहिँ समुद्र उतपन्न।
तुव मुख पकज बिमल अति सरस सुबास प्रसन्न ॥५५॥

(राधा), दृग आडो मृग (वेंक), दृग आगे मृग। ही पच (सभा), ×पच (भरत), ये पच। प्रतीत (साहु), प्रदीप (शिव), भेद (खोज), प्रतीप।

[५२] रुपक है (खोज), है रुपक। भाँति के (समें, मया), भाँति को। तरूप (राधा), तद्रूप। न्यून से (भरत), न्यून सम। दुहिन के (सभा), दुहुँन के। तीन रहे (मया), तीन तीन यहै (भवा), तीन तीन बिधि (भरत), तीनि तीनि ये।

[५३] उपजीय (सभा), उपजी न वह (शिव, दल), उपजी न ए (समे पूना), उपजी न यह। अधिक (राधा), परम (खोज), अपर। सोहाति (शिव), सुहाति।

[५४] नेन कवल (खोज), नैन कमल। दोउ औन (समें), पैं औन (राधा, पूना), यह औन (मया, खोज, तारा, वेंक, प्रिय), ये ऐन। केहि (सोहन, समें, शिव, दल, खोज, मन्ना), किहिँ। गरब (पूना), गवन (जोध, जग, सोहन, समें, खोज, भरत, मन्ना, तारा, प्रिय), गमन। न कर (पूना), करत। लसत (याज्ञिक, सभा), लगे (हरि, समें, दल), लगति। वर (सोहन), सी (राधा, खोज), यह।

[५५] 'मया+' में यह दोहा अधिक है—

राधा है तू उरबसी धरैं मानुषी देह।
मुख तव पकज बिमल यह धरत सुभास अछेह ॥

'दल' में इसके स्थान पर यह पाठ है—

तूँ है राधे उरबसी धरे मानुषी देह।
तुअ मुष पकज बिमल यह धरत सुबास अछेह ॥

करै क्रिया उपमान ह्वै बर्ननीय परिनाम।
लोचनकज बिसाल तैं देखत देखो बाम ॥५६॥

सो उल्लेख जु एक कौं बहु समझैं बहु रीति।
अर्थिनि सुरतरु तिय मदन अरि कौं काल प्रतीति ॥५७॥

बहु बिधि बरनैं एक कौं बहु गुन सो उल्लेख।
तूँ रन अरजुन तेज रबि सुरगुरु बचन बिसेष ॥५८॥

सुमिरन भ्रम सदेह ये लच्छन नाम प्रकास।
सुधि आवति वा बदन की देखैं सुधानिवास ॥५९॥

बदन सुधानिधि जानि ये तुव सँग फिरैं चकोर।
बदन किधौं यह सीतकर किधौं कमल भए भोर ॥६०॥

अति सो (साहु), अति सोहित (प्रिय), अति सोभित । द्रुम (साहु), बिद्रुम । सुख (भरत), मुख । अति बिमल (याज्ञिक), बिमल अति । स सुबास (भरत), सर सुबास (सभा), सरस सुबास ।

[५६] क्रिया करै (जग, साहु, मया, भवा), करै क्रिया । द्वै (राधा), कै (खोज, पूना), ह्वै । बिलास सौं (सभा), बिलास तैं (सोहन, मया); बिसाल तैं । देषै दिषति (जग), देषौ देषत (याज्ञिक, साहु, शिव), देखत देखौ । भाँम (जग), बाम ।

[५७] उल्लेषा (समे), सो उल्लेख । जब (समे), जुव (खोज), जो (शिव, दल), जु । निय मदन (जोध), तिय सदन (राधा), तिय मदन ।

[५८] समझैं (मया, भवा), बरनैं । उल्लेष (राधा), उल्लेख । तरनी (जोध); तीरन (सोहन), मूरति (समे), कीर्ति (तारा, प्रिय), तूँ रन । अरुजन (समे), अरजुन । जेत (खोज), तेज । सुरगुन (साहु, राधा), सुरगुर । बिसेस (राधा), बिसेष ।

[५९] स्मृति (पूना), स्मरन (खोज, तारा), सुमिरन । भय (जोध), भ्रति (पूना), भ्रम । सदेह कौं (पूना), सदेह यह (तारा, प्रिय), सदेह ये । आवै (जग), आवन (राधा), आवति । देखौं (भरत), देखि (तारा), देखैं । नेवास (शिव), निवास ।

[६०] जानि यह (जग, मन्ना, तारा, वेक, प्रिय), जानिकै (हरि, मया, दल, खोज, पूना, भवा), जानिये । फिरत (याज्ञिक, साहु, सोहन, समे, दल,

धर्म दुरैं आरोप तैं सुद्धअपन्हुति जानि।
उर पर नाहिं उरोज ये कनकलताफल मानि ॥६१॥
बस्तु दुरावै जुक्ति सौं हेतअपन्हुति होइ।
तीव्र चंद नहिं रैन रबि बडवानल ही जोइ ॥६२॥
पर्जस्त जु गुन एक के और बिषै आरोप।
होइ सुधाधर नाहिं यह बदन सुधाधर ओप ॥६३॥

खोज, मन्ना, वेंक, ग्रिय), फिरैं। कीधौं (साहु), कीयो यह (राधा), किधौं ए (समे), किधौं यह। सीनकर (पूना), सीतकर। किधु (खोज), किधौं। कज (पूना), कमल। भये मोर (राधा), भौ भोर (सोहन, वेंक), भय भोर (याज्ञिक, हरि, शिव, दल, खोज, सभा, ग्रिय), भए भोर।

इसके अनतर 'साहु' मैं दोहा स० १५२ से १६१ हैं।

[६१] 'समे' मैं प्रथम दल के स्थान पर यह है—

बसत दुराये जुगति सौं हेत अपन्हुति जानि।

और 'याज्ञिक' मैं द्वितीय दल के स्थान पर यह है—

तीव्र चद नहि रैनि रबि बडवानल ही मानि।

सुधि अपन्हुति (जोध), सुधा अपन्हुति (भरत), सुद्ध अपन्हुति (जग, राधा, साहु, मया, पूना, भवा, सभा, ग्रिय), सुद्धापन्हुति। उपर (साहु), उर पैं (हरि), उर परि (खोज), उर पर। यह (तारा, वेंक, ग्रिय), ये।

[६२] दुराइये (राधा), दुरावै (जोध, हरि, शिव, मया, दल, भवा, सभा, तारा, वेंक), दुराये। हेत्वापन्हुति (सभा), हेतअपन्हुति। सोय (वेंक), होइ। तीव्रत (शिव), तेजन (सभा), तीछ्न (हरि, समे, दल, खोज), तीव्रन (जग, राधा, साहु, सोहन, मया), तीव्र। बद नहि (पूना), चद नहि (याज्ञिक, खोज, मन्ना, तारा, वेंक), चद न। है (दल, खोज), ही। जेइ (समे), जोइ।

[६३] जुगुन एक (साहु), पर्यस्तहि गुन (तारा), पर्यस्तजि गुन (शिव); पर्यस्ता गुन (याज्ञिक, सोहन, वेंक), पर्जस्त जु गुन। परयस्त कौं (साहु), और कौं (जग, मन्ना), और के (हरि, राधा, दल, सभा), एक को (समे, मया, खोज, भरत, भवा, वेक), एक के। और (खोज, पूना,-

पन्हुति बचन सोँ भ्रम जब पर को जाइ।
कप है जर नहीँ ना सखि मदन सताइ ॥६४॥
न्हुति जुक्ति करि पर सोँ बात दुराइ।
अधर छत पिय नहीँ सखी सीतरितु बाइ ॥६५॥
ान्हुति एक कोँ मिस करि बरनन आन।
तीयकटाक्ष मिस बरषत मन्मथ बान ॥६६॥

सभा, तारा), और। होर (सभा), होहि (साहु, सोहन, शिव, होइ। नाहिँ ए (समे), नाहि यहै (जोध, तारा), नाहिँ वोप (राधा, सोहन, समे) ओप।

पन्हुति (याज्ञिक, जग, शिव, दल, खोज, सभा), भ्रातअपन्हुति राधा, साहु, सोहन, मया, पूना, भवा), भ्रातिअपन्हुति। सूँ (याज्ञिक), बचन त्यों (खोज), बचन ते (राधा, दल, सभा), बचन सोँ। भूम (खोज), भ्रम। जो पर कोँ (साहु), जब (मया, भवा), जब पर को। ताप करत (हरि, राधा, मया, सभा, मन्ना, वेंक, ग्रिय), ताप कप। यह ज्वर (खोज), है ज्वर मे, शिव), है जर (साहु, वेंक), है ज्वर (दल, पूना, भरत, ग्रिय), है जुर। कहा (हरि, दल, सभा, मन्ना), नहीँ। मो (शिव), नहि सषि (सोहन), या सखि (वेंक), ना सखि। न सताप (खोज), मदन सताइ।

अपन्हति (शिव, ग्रिय), छेकापन्हुति। जुगति (समे, सभा), सोँ (मया, भवा, पूना), करि। परते सोँ (पूना), पर तैँ पर सोँ। छूत पीय (खोज), छद पिय (दल), छत ना हन), छत यी (मया), छित पिय (समे), छत पिव (भरत), नाह (वेंक), छत पिय। सषि नही (हरि, राधा, साहु, सभा), सखी। सीतकृत्त (हरि), सीतरुति (खोज), सीतरति ाज्ञिक, समे), सीतरित (जोध, साहु, मया, भवा), सीतरितु।

वनिन्हति (भरत), कैतुवनिन्हुति (राधा), कैतवापन्हुति (याज्ञिक, , कैतवपन्हुति। मिस कर (मया, मन्ना), मिसु कर (जोध, तारा), करि (याज्ञिक, जग, हरि, साहु, सोहन, शिव, भरत, ग्रिय), मिस। बर्त्तन (भरत), बरनैं (याज्ञिक), बर्नन (जोध, राधा, सोहन, खोज, पूना), बरनत। त्रीयाकटाक्ष (खोज, पूना), नैनकटाक्ष

उत्प्रेक्षा सभावना वस्तु हेतु फल लेखि।
नैन मनो अरबिद हैं सरस बिसाल बिसेखि ॥६७॥
मनो चली आँगन कठिन तातें राते पाइ।
तुव पद-समता कौं कमल जल सेवत इक भाइ ॥६८॥
अतिसयोक्ति रूपक जहाँ केवल ही उपमान।
कनकलता पर चद्रमा धरे धनुष द्वै बान ॥६९॥
अतिनिन्हव गुन और को औरहि पर ठहराइ।
सुधा भरयो यह बदन तुव चद कहैं बौराइ ॥७०॥

(सोहन, वेक), तीयकटाक्ष। मैस बरपत (याज्ञिक), छबि बरषत (राधा), छुल वरष (सभा), मिस बरनत (शिव), मिसु बरखत (ग्रिय), मिस बरपत।

[६७] 'दल' में दूसरे दल के स्थान पर और 'भरत+' में यह है—

पहिली उक्त अनुक्त है पछिली सिद्ध असिद्धि।

मद्धि (दल), लेखि। नयन (भरत), नैन।

[६८] 'भरत+' में यह दोहा अधिक है—

कोकन के बिरहागि की धूम घटातम मानु।
अजन बरखत गगन यह मानौ अथयें भान ॥

मनौ कठिन (दल), मनो चली। अगन (जग, समे), आँगन। कषन (जोध), चली (ढल), कठिन। तति राते (साहु) राते ताते (राधा, सभा), ताते राते। तुम पद (भरत), तुव पद। सलिता (सोहन), समता। कवल (जोध, मया), कमल। जलहि धसे (जग), जल सेवत। एक (शिव, मन्ना), इक। पाइ (हरि, मया, दल, भवा, सभा, मन्ना), भाइ।

[६९] अति सयुक्त (जोध), अति उक्ति (तारा), रूपकाति (मया, भवा), अतिसयोक्ति। रूप (भरत), सयोक्ति (मया, भवा), रूपक। तहाँ (समे), जिहि (मया, भवा), जहाँ। होय बर्न्य को ज्ञान (हरि), केवल ही उपमान। धनुष धरैं (साहु), धरैं धनु (भरत), धरे धनुष। दो (पूना), द्वै।

[७०] 'हरि' में प्रथम दल के स्थान पर यह है—

होय छपायौ कछु वहै सापन्हव ठहराय।

अति सदज्जु (जग), अति अपन्हव (साहु), अति निगुन (खोज),

अतिसयोक्ति भेदक सबै इहि बिधि बरनत जात।
औरै हँसिबो देखिबो औरै याकी बात ॥७१॥
सबधातिसयोक्ति तब देत अजोगहि जोग।
या पुर के मंदिर कहैं ससि लौं ऊँचे लोग ॥७२॥
अतिसयोक्ति दूजी वहै जोग अजोग बखान।
तो कर आगें कलपतरु क्यों पावै सनमान ॥७३॥

अनन्हव (पूना), अतिपन्हुव (जोध, सभे), अतिनिन्हव (याज्ञिक, राधा, सोहन, भरत, सभा, वेक), सापन्हव। सु (जग), गुन। एक को (तारा, ग्रिय), और के (याज्ञिक, साहु, सोहन), और को। और (मया), उरैं (जोध), औरहि (मन्ना, तारा, ग्रिय), औरै। पेर (सोहन), पैं (याज्ञिक, सभे), पर। सुधा भये (खोज), सुधा भयो (राधा, शिव, सभा), सुधा भयौ। तुव बदन (गोकुल, पूना), बदन तुव। चदन (पूना), चद। कहत (वेक), कहै। 'दल' में यह दोहा नहीं है।

[७१] भेदकातिसयोक्ति (याज्ञिक), अतिसयोक्ति भेदक। सब (याज्ञिक), जहाँ (दल), वहि (ग्रिय), जबे (शिव, मया, भवा), वहै (हरि, मन्ना, तारा, वेक), सबै। औरै (हरि), जो अति (मन्ना, तारा, वेक, ग्रिय), इहि बिधि। बरतत (सभे), भेद (मन्ना, तारा, वेक, ग्रिय), बरनत। जिजात (खोज), देखात (मन्ना), दिखात (तारा, वेक, ग्रिय), जात। औरौ (याज्ञिक, सोहन), औरै। हसि बोलिबौं (भरत), हँसबो पेलिबो (दल), हसबो बोलबो (मया, भवा), हँसिबो देखिबो। और (सभे), औरै। जाकी (याज्ञिक), वाकी (भरत), याकी।

[७२] सब (याज्ञिक), ज (जग), तन (राधा), जहँ (हरि, सभा, मन्ना, ग्रिय), जब (सोहन, गोकुल, मया, दल, भवा, वेक), तब। वा पुर (गोकुल), या पुर। कहा (तारा), कहै। ससि (भरत), ससि तैं (जग, साहु, सभे, मया, खोज, भवा, वेक), ससि लौं। ऊचो (दल), ऊँचे।

[७३] दूनी तहाँ (याज्ञिक), दूजे वहै (मया), दूजी वहै। × (जग), अजोग। बिधान (पूना), बखान। तो (याज्ञिक), तूव कर

अतिसयोक्ति अक्रम जवै कारन कारज सग।
तो सर लागत साथ ही धनुपहि अरु अरिअग ॥७४॥
चपलातिसय जु हेत के होत नाम ही काज।
कंकन ही भई मूँदरी पीयगमन सुनि आज ॥७५॥

(गोकुल), तो कर। फलपत (मन्ना), फलपुतर (गोकुल), फलपतरु (जोध, जग), फलपतरु।

इसके अनतर 'मया' में यह दोहा अधिक है—

बाढे जोबन जोर ते कहा कहो यह बात।
अब आगे करिहै कहा भुज बिच कुच न समात ॥

[७४] अक्रमातिसजोक्ति (याज्ञिक), अनिसयोक्ति अक्रम (पूना), अति-सयोक्ति अक्रम। का (याज्ञिक), जहाँ (हरि), है वहै (साहु), तबै (शिव), जबै। कारज कारन (याज्ञिक, दल), कारन कारज। तो लागत सर (पूना), सो सर लागत (साहु, गोकुल), तो सर लागत। सग ही (साहु), साथ ही। धनुषै (हरि), धष (साहु), लगत (तारा), धनुषहि। और अरि (साहु), धनुष अरि (तारा), अरु अरि। गग (भरत), अग।

[७५] चपलातिसयोक्त जु हेतु (जोध), चपलातिसयोक्ति जु है (सभा); चपलातिसय हेतु (तारा), चपला अतिसय उक्ति (वेंक), चपलात्युक्ति जु हेतु। कौ (भरत), सौं (जग, मया, भवा, तारा, वेंक, ग्रिय), के। ज्ञान होत ही (हरि), होत सीघ्र ही (वेंक), होत सीघ्र जो (तारा, ग्रिय), होत नाम ही। भई सु (हरि), सगन (भरत), काँगन (पूना), काँकन (जोध), कगन (खोज, मन्ना), ककन। कक्‍ना (हरि), ही मुँदरी (पूना), ही भय (दल), ई भई (सभा, भवा), ही भई। भई (पूना), मादिका (साहु), मुँदरी (जोध, राधा, खोज, भरत, तारा), मुद्रिका (याज्ञिक, जग, हरि, शिव, मया, भवा), मूँदरी। पिय गवनू (समे), पिय आगम (दल), पीयआवन (तारा), पियागवन (पूना), पियागमन (भरत, वेंक), पीय-गमन (हरि, राधा, साहु, शिव, मया, खोज, सभा), पीयगवन।

अत्यतातिसयोक्ति सो पूर्बापर क्रम नाहि।
बान न पहुँचै अग लौँ अरि पहिलैँ गिरि जाहि ॥७६॥

तुल्यजोगिता तीनि ये लछन क्रम तेँ जानि।
एक सब्द मैँ हित अहित बहु मैँ एकै बानि ॥७७॥

बहु सोँ समता गुनन करि इहि बिधि भिन्न प्रकार।
गुननिधि नीकैँ देत तूँ तिय कौँ अरि कौँ हार ॥७८॥

---

[७६] जहाँ (याज्ञिक), जो (दल), जब (मया, भवा), सोँ। पूर्ब्बानु (खोज), पूर्बापर (जोध, हरि, राधा, शिव, मया, भवा, तारा, ग्रिय), पूरब पर। ताहि (शिव), नाहि। बान नु (गोकुल), बान न। पहौँचै (याज्ञिक), पौँहोचैँ (गोकुल), पौँहचे (जग), पहुचैँ। करन लौँ (समे), कान लौँ (याज्ञिक, खोज), आँग लौँ (हरि, राधा, साहु, भरत, सभा), अग लौँ।

[७७] 'हरि' मैँ द्वितीय दल के स्थान पर यह है—

होय अबर्न्य रु बरुन्य कौ एकै धरम समान।

तीनि यह (सभा), तीन बिधि (हरि, मया, दल, पूना, भवा,), तीन ये। कहत (हरि), क्रँ (पूना), क्रम तेँ। प्रमान (हरि), होई (गोकुल), जान (याज्ञिक, मया, खोज), जानि। येक साथ (सोहन) एक सब (खोज), एक समा (भरत), एक सब्द। हित (भरत), मैँ हित। सोई (गोकुल), बान (याज्ञिक, मया, खोज), बानि।

[७८] 'हरि' और 'दल' मैँ प्रथम दल के स्थान पर यह है—

सत्रु मित्र यै बृति सम होय सु और प्रकार।

'दल' मैँ 'बृति सम' के स्थान पर 'एक सम' है। बहु सुँ (जोध), बहुत सु (तारा, ग्रिय), बहु मैँ (राधा, भरत, मन्ना); बहु सो। ए बिधि (समे), इह बिध (खोज), इहि बिधि। होत (तारा, ग्रिय), भिन्न। देत तुमही (शिव), देख तुँ (तारा), देत तुव (याज्ञिक, जग, साहु, समे, भरत), देत तूँ। तियउर अरि कै (जग), अरि को ती को (मया), अरि के उर काँ (समे, तारा); अरि को हिय को (सोहन, सभा), तिय कौँ अरि कौँ।

नवलबधू की बदनदुति अरु सकुचित अरबिंद ।
तूँ ही श्रीनिधि धर्मनिधि तुँही इद्र अरु चंद ॥७९॥
सो दीपक निज गुनन सौँ बर्न्य इतर इक भाइ ।
गज मद सौँ नृप तेज सौँ सोभा लहत बनाइ ॥८०॥
दीपक आवृति तीनि बिधि आवृति पद की होइ ।
पुनि है आवृति अर्थ की दूजैँ कहिये सोइ ॥८१॥
पद अरु अर्थ दुहूँन की आवृति तीजैँ लेखि ।
घन बरखै है री सखी निसि बरखै है देखि ॥८२॥

---

[७९] 'हरि' और 'दल' में नहीं है। की नवल (पूना), को बदन (वेंक); की बदन। अउ (भरत), दिख (तारा), अरु। संकुचन (मया, पूना, भवा), सकुचत। अरिनिंदु (राधा, खोज), अरिबिंद। तु ही श्रीनिधी (शिव), तूँ ही सीलनिवि (भवा+), तु ही श्रीनिधि (साहु, समे, मया, सभा, तारा, ग्रिय), तूँ ही श्रीनिधि। तू हीं (खोज, पूना, भरत), तु ही। इद अरु इदु (राधा), इदु अरु चद (सोहन), इद अर चद (समे), ईंद्र तु ही चदु (खोज), इद्र तु हि इद (मन्ना), इद्र अरबिंद (गोकुल, सभा), इद्र अरु चद ।

[८०] 'हरि' और 'दल' में इसके स्थान पर यह दोहा है—

दीपक बर्न्य अबर्न्य कौ एकै धरम समान ।
गिरि गृह गठ गुनवत कौ होत उच्चता मान ॥

'दल' में 'गठ' के स्थान पर 'गढ' है। 'जग' में यह नहीं है।
दीपक सो (सोहन), सो दीपक। गुनी सौं (समे), गुनिन सौं। इतैं इक (याज्ञिक), इतर तर (समे), इतर एक (ग्रिय), इतर इक। धरत (मया), लहत। अथाय (मया), अपार (भवा—), बनाइ।

[८१] 'जग' में यह दोहा सं० ८४ पर है। दीपकादि बृति (याज्ञिक), आवृतिदीपक (हरि, मया, भवा), दीपक आवृति। पहलै पद की (समे), पद की आवृति (दल), आवृति पद की। पुनि (याज्ञिक), पुनिहि (खोज), फुनि है (जोध, समे, भरत), पुनि है (मन्ना, तारा, ग्रिय); पुनि है। आवृति है (याज्ञिक), आवृति। दूजी (सोहन, दल, वेंक, ग्रिय), दूजैं। काहै (याज्ञिक), करियै (साहु), कहीजे (खोज), कहिये।

[८२] 'याज्ञिक' में दूसरा दल नहीं है। दोउन की (समे), दुहून की। लीजे (खोज), तीजी (जग, सोहन, मया, दल, भवा, वेंक, ग्रिय),

फूले बृच्छ कदंब के केतक बिकसे आहि।
मत्त भए हैं मोर अरु चातक मत्त सराहि ॥८३॥
प्रतिबस्तूपम सो समझि दोऊ वाक्य समान।
आभा सूर प्रताप बर सोभा सुरहि कृसान ॥८४॥
अलंकार दृष्टांत सो लच्छन नाम प्रमान।
कांतिमान ससि ही बन्यो तूँ ही कीरतिमान ॥८५॥

तीजै। लेष (याज्ञिक, जोध), लेखि (पूना, भरत, ग्रिय), लेख (मया, मन्ना, तारा, वेंक), लेषि। घन बरसौ (दल), घन बरखै (पूना, भरत, तारा), घन बरसै (हरि, सोहन, मया, भवा, वेंक, ग्रिय), घन बरषै। तिसि (भरत), निसि। चरषै हैं (गोकुल), बरसौ है (दल), बरखै है (पूना, भरत, तारा, वेंक), बरसै•है (हरि, सोहन, मया, भवा, वेंक, ग्रिय), बरषै है। देष (जोध), देखि (पूना, भरत, ग्रिय), देख (मया, मन्ना, तारा, वेंक), देषि।

[८३] कदब (भरत), कदब अरु (जग), कदंब के। बिकसी (दल, पूना, ग्रिय), बिगसे (साहु, सोहन, सभे, भरत, भवा, सभा), बिकसे। भए हौं (गोकुल), भए (दल), भहे (भरत), भए हैं। मोर ये (पूना), अरु (सोहन), भौर अरु (गोकुल, मया, दल, भवा), मोर अरु। मौत (जोध), कमल (राधा), मत्त।

[८४] 'हरि' और 'दल' में इसके स्थान पर यह दोहा है—

प्रतिबस्तूपम वाक्य द्वै उपमेय रु उपमान।
तिनके धर्म जु कहि जुदे जुदे जुदे पदमान ॥

'दल' में 'कहि जुदे जुदे जुदे' के स्थान पर 'एक ही जुदे जुदे' है। 'जग' में यह दोहा सं० ८१ पर है। प्रतिबस्तुपमा समुझि (याज्ञिक); प्रतिबस्तूपमा समझियै (तारा, ग्रिय), प्रतिबस्तुउपमा समुझ (मया, भवा), प्रतिबस्तुपमा सो समुझि (राधा, साहु, सभे, खोज), प्रतिबस्तूपम सो समझि। बस्तु (गोकुल), बात (सभे), वाक्य। आभा (वेंक, ग्रिय), सोभा। हिवान (पूना), प्रताप तें (वेंक, ग्रिय), प्रताप बर। सुरहै (जोध, तारा), सूरहि।

[८५] 'हरि' और 'दल' में प्रथम दल के स्थान पर यह है—

जहाँ बिंबप्रतिबिंब सो दूहूँ वाक्य दृष्टांत।

'दल' में 'जहाँ' के स्थान पर 'जोइ' और 'दूहूँ' के स्थान पर 'दुवो' है।

कहिये त्रिबिधि निदर्सना वाक्य अर्थ सम दोइ ।
एक किये पुनि और गुन और बस्तु में होइ ।।८६।।
कहिये कारज देखि कछु भलो बुरो फल भाव ।
दाता-सोम सु अक बिन पूरन चद बनाव ।।८७।।
देखौ सहजै धरत ये खजनलीला नैन ।
तेजस्वी सौं निबल बल महादेव अरु मैन ।।८८।।

ससि है (गोकुल, पूना), ससि ही । तो (दल, ग्रिय), तूं । कीरतिवत (हरि, दल), कीरतिवान (याज्ञिक, साहन, समे, भरत, वेक), कीरतिमान ।

[८६] 'हरि' में इसके स्थान पर यह दोहा है—

जहँ उपमेय सु वाक्य में उपमा वाक्य सु जोग ।
जो सो करि सु निदरसना कहत सबै कवि लोग ।।

'दल' में इसके स्थान पर यह दोहा है—

दुहुन वाक्य की एकता होत निदर्सन बध ।
मीठें बचन उदार के सु कनक मॉझ सुगध ।।

'गोकुल' में दोहा स० ८६ 'एक कियैं पुनि बस्तु मे' के आगे से दोहा स० ६२ 'इग　　बलि' तक खडित है ।

इम (साहु), श्रम (गोकुल), सम । होइ (याज्ञिक, खोज, पूना), दोइ । इक कीजै (राधा), इक कहियें (मया, भवा), एक त्रिषै (मन्ना, तारा, वेक), एक किये । पुनि बस्तु में (गोकुल), फुनि और गुन (जोध, खोज, भवा), पुनि और गुन । सोइ (याज्ञिक), होइ ।

[८७] 'हरि' और 'दल' में यह दोहा नहीं है । कारन (याज्ञिक), कारज । बुरो भलौ (याज्ञिक), भलो बुरो । सौम्य सु अर्क बिनु (याज्ञिक), सूम कलक बिनु (शिव+), सोम सु अक बिन (जोध, समे, शिव— वेंक), सोम सो अक बिन (सोहन, पूना, तारा, ग्रिय), सौम्य सु अक बिनु ।

[८८] 'हरि' और 'दल' में नहीं है । सहजहि (मन्ना, तारा, ग्रिय), सहजै । धरत है (सोहन, पूना), धरत यह (तारा, वेंक, ग्रिय), धरत ये । बैर सो (मया, भवा), निबल बल । अरि (खोज), सौं (सभा), अरु ।

ब्यतिरेक जु उपमान तेँ उपमे अधिकै देखि।
मुख है अंबुज सो सखी मीठी बात बिसेखि ॥८६॥

सो सहोक्ति सब साथ ही बरनै रस सरसाइ।
कीरति अरिकुल संग ही जलनिधि पहुँची जाइ ॥६०॥

है बिनोक्ति द्वै भाँति की प्रस्तुत कछु बिन छीन।
अरु सोभा अधिकी लहै प्रस्तुत कछु बिन हीन ॥६१॥

दृग खंजन से कंज से अंजन बिन सोभैँ न।
बलि सब गुन सरसात तूँ रंच रुखाई है न ॥६२॥

---

[८६] 'दल' मेँ इसके स्थान पर यह दोहा है—

उपमान रु उपमेय के है ब्रिसेष ब्रितरेक।
अंबुज तेँ मुष अधिक है मधुरी बचन अनेक ॥

ब्यतिरेका (वेक), ब्यतिरेक। जु अपमान (साहु), जो उपमान (सभा), सु उपमान (तारा), उपमान (याज्ञिक, जोध, पूना, वेक), जु उपमान। मैँ (हरि), तेँ। उपमेँ अधिकी (तारा), उपमे अधिकै (सभा), उपमेय अधिकौ (याज्ञिक, साहु, भरत), उपमेयाधिक (मन्ना, वेक, ग्रिय), उपमे अविकौ। लेष (खोज), देख (वेक), देष (जोध, समे), देखि (मया, भरत, भवा, मन्ना, तारा, ग्रिय), देखि। मुष वहैँ (जोव), मुख है। सौ बन्यौ (याज्ञिक), सो सखी। ब्रिसेख (वेक), ब्रिसेष (जोध, समे, मया), ब्रिसेखि (पूना, भरत, भवा, मन्ना, तारा,), बिसेषि।

[६०] है सहोक्ति (याज्ञिक), सो सहोक्ति। जब (याज्ञिक), जो (दल), × (राधा), दुहु (हरि, मन्ना), इक (सोहन, भरत, वेक), सब। सग ही (हरि), साथ ही। दुहुन बनाइ (दल), रस सरसाइ। अलिकुल (जग), अरिकुल। सक गहिं (राधा), साथ ही (याज्ञिक, सोहन), संग ही।

[६१] भाव की (सभा), भाँति की। षीन (खोज), छीन। जो सोभा (हरि), अरु सोभा (सोहन), अरु सोभा। कहै (खोज), लहै। छीन (समे), हीन।

[६२] पिय मनरंजन दृग अली (हरि), दृग खंजन मैं कंज से (भरत), दृग खंजन से कंज से। ब्रिनु अंजन (जग), अंजन ब्रिन। सो नैन (जोध, भरत), सोभैँ न। चलि (राधा), वल (सोहन, पूना),

समासोक्त्यप्रस्तुत फुरै प्रस्तुत बर्नन माँझ।
कुमुदिनहूँ प्रफुलित भई देखि कलानिधि साँझ ॥९३॥
है परिकर आसय लिये जहाँ बिसेपन होइ।
ससिबदनी यह नाइका ताप हरति है जोइ ॥९४॥
साभिप्राय बिसेष जब परिकरअंकुर नाम।
सूधेहूँ पिय के कहेँ नेक न मानति बाम ॥९५॥

बाला (साहु, मन्ना, तारा, ग्रिय), बलि। सरसात हैं (वेक), सरसात तुव (पूना), सरस तनु (तारा, ग्रिय), सरसाति तू (याज्ञिक, जग, शिव, दल, भरत), सरसात तूँ। कपाई (गोकुल), गुराई (मया), रुखाई। दैन (दल), नेन (मया, भवा, सभा), है न।

[९३] अप्रस्तुति करेँ (जोध), अप्रस्तुतै (हरि), प्रस्तुति फिरेँ (गोकुल), अप्रस्तुत फुरै (सभा), अप्रस्तुत जु (ग्रिय), प्रस्तुत फुरे। फुरै सु प्रस्तुत (हरि), फुरै जु प्रस्तुत (ग्रिय), अप्रस्तुति बर्नन (सोहन, पूना), प्रस्तुत बर्नन। कुमुदिन है (हरि), कुमदनि (सभे), कुमुदिनहूँ। फूलनलनि (साहु), प्रफुलि (सोहन), प्रफुलति (गोकुल, खोज), प्रफुलित। सुधानिधि (वेक), कलानिधि।

[९४] 'वेक' में यह दोहा स० ९५ पर है। अतिसय (याज्ञिक), आसय (खोज), आसय। लीय (साहु), लियौं (राधा), लिये। जिह (खोज), जहाँ। बिसेपनहि (पूना), विसेपन। होही (जोध, शिव, खोज, भरत), होहि। हिमकर (हरि), बिधु (दल), चंद्र (खोज—), ससि। बदनी (हरि), बदनी वह (सोहन), बदनी हैं (सभे), बदनी इह (राधा, पूना), बनी यह (खोज—), बदनी यह (खोज+), बदनी यह। हिरत है (पूना), हरति हे। तोई (सभा), सोइ (दल, पूना), जोहि (जोध, शिव, खोज, भरत), जोइ।

[९५] 'वेक' में यह दोहा स० ९४ पर है। जहँ (हरि), ते (दल), जब। परिकरअसुक (जग), परिकुराकुर (मया, भवा), परिकरअंकुर। सूधेहू पति के (जग), सूधै हाँ प्रिय कै (सभे), सूधे पिय के हू (पूना), सूधौहू पिय के (भरत), सूधै ही पिय के (मया, खोज, भवा), सूधेहूँ पिय के। नैकनि (गोकुल), नेक न। मानस (याज्ञिक), मानतु (खोज), मानत।

स्लेष अलकृत अर्थ बहु एक सब्द मैं होत।
होइ न पूरन नेह बिन ऐसो बदन उदोत ॥६६॥
अलकार द्वै भाँति के अप्रस्तुतपरसस।
इक बर्नन प्रस्तुत बिना दूजँ प्रस्तुतअस ॥६७॥
धनि यह चरचा ज्ञान की सकल समै सुख देत।
बिष राखत हैँ कठ सिव आप धर्यो इहिँ हेत ॥६८॥
प्रस्तुतअकुर है किये प्रस्तुत मैं प्रस्ताइ।
कहा भयो अलि केवरँ छाड़ि सुकोमल जाइ ॥६९॥

---

[६६] अस्लेष (दल), स्लेष। जहाँ (हरि), एक। सब्द तेँ (ग्रिय), सब्द मैँ। लोइन पूरन (गोकुल), होहि न पूरन (भरत), दीपक होइ न (सभा), होत न पूरन (मन्ना), होइ न पूरन। हेत बिन (जोध), नेह बिन। मुषदुति दीप (हरि), दीपक बन (शिव), दीपक बदन (मन्ना), असौ चद (भरत), ऐसो बदन।

[६७] 'मया' मैँ यह दोहा स० ६६ पर है। 'दल' मैँ यह दोहा नहीँ है। भाँति की (पूना), भाँति को (सोहन, मया, भवा, सभा, मन्ना, वेंक, ग्रिय), भाँति के। प्रस्तुतऔ (समे), अप्रस्तुत। अप्रसस (याज्ञिक), प्रसस। इक बरन (जोध), इक बरनत (साहु, खोज), इक बर्नन। बिनु प्रस्तुतै (जग), प्रस्तुत करै (सोहन), प्रस्तुत बिना। दूजौ (गोकुल, मया, भरत, वेंक), दूजँ।

[६८] 'मन्ना' मैँ प्रथम दल द्वितीय और द्वितीय दल प्रथम है। 'दल' मैँ यह दोहा नहीँ है। धनग्रह (समे), धनि चरचा (वेंक), धन यह (सोहन, मया, खोज, पूना, भवा), धनि यह। यह (वेंक), चरचा। सवल (सोहन), सकल। समे दुष (मया), समय सुष (हरि, सोहन, भरत, ग्रिय), समै सुख। चेत (पूना), देत। हर (समे), सिव। जल (हरि+), आप। धर्यौ है (समे), धरै यहि (सोहन), धर्यौ यह (याज्ञिक, जोध, साहु, मया, पूना, भवा), धर्यौ इहिँ। देत (वेंक), हेत।

[६९] 'मया' मैँ यह दोहा 'अप्रस्तुतप्रशसालकार' के पूर्व स० ६७ पर है। प्रस्तुताकुर (याज्ञिक), अप्रस्तुतअकुर (मया, भवा), प्रस्तुतअकुर।

पर्यायोक्ति प्रकार द्वै कछु रचना सौं बात।
मिस करि कारज साधिये जो है चित्त सुहात ॥१००॥
चतुर वहै जिहिं तुव गरैं बिनगुन डारी माल।
तुम दोऊ बैठौ इहाँ जाति अन्हावन ताल ॥१०१॥
ब्याजस्तुति निंदा मिसहि जहाँ बडाई होहि।
सरग चढाए पतित लै गग कहा कहौं तोहि ॥१०२॥

है (मया), है कियौ (याज्ञिक, गोकुल), है किये। प्रस्थाइ (साहु), प्रस्ताइ। गया गयो (पूना), कहाँ भयौं (जोध, भरत), कहा गयो। अलि केवरा (तारा), अलि केवरैं। छोर (मया, भवा), छाडि। सकोबर (जग), सरोबरि (साहु), जु कोमल (मया), सु कमलहि (दल), सकोमल (याज्ञिक, सोहन, समे, शिव, खोज, भरत, सभा), सुकोमल। ताइ (शिव), ताय (वेंक), जाइ।

[१००] कछु रसना (साहु), कछू रच (समे), कछु रचना। मिसु कै (याज्ञिक, गोकुल), मिस करि। कीजीयै (पूना) साधियौ (भरत), साधिये। जो कछु (हरि), जो ही (मया, भवा), ज्यौं वह (मन्ना, तारा), जो है। चित है (जोध), चितै (सोहन, पूना), चित ही (समे, खोज), चितहि (जग, हरि, राधा, साहु, गोकुल, शिव, भरत, सभा), चित्त। सोहात (वेंक, ग्रिय), सुहात।

[१०१] चतुरि वहै (हरि), चतुर चहै (पूना), चतुर कहैं (भरत), चतुर वहै। जिहि तो (याज्ञिक), जिनि तो (गोकुल), जेहि तु (दल), जो तुव (वेंक), जिन तुव (हरि, राधा, मया, सभा), जिहिँ तुव। निर्गुन डारी (जग), डारी बिनुगुन (दल), बिनगुन डारी। तुव (साहु), तुमै (भरत), तुम। बैठे (समे, शिव, दल, पूना, मन्ना), बैठौ। उहाँ (राधा), उहा (सोहन), अबहु (मया, भवा), इहाँ (याज्ञिक, हरि, वेंक, ग्रिय), रहौ (समे, शिव, दल, पूना, मन्ना), वहौ। अन्हावत (याज्ञिक, साहु, सोहन), अन्हावन। लाल (जोध), ताल।

[१०२] 'हरि' में प्रथम दल के स्थान पर यह है—

निदास्तुति सौ हौ जहाँ स्तुति निंदा कौं ज्ञान।

मिसहैं (जोध), सहि (जग), रहै (साहु), बिषे (दल), सहित (मया, भवा), मिसै (मन्ना, तारा), मिसहि। जहाँ (मन्ना),

ब्याजनिंद निंदा बिषै निंदा औरै होइ।
सदा छीन कीनो न तूँ चद मद है सोइ ॥१०३॥
तीनि भाँति आक्षेप हैं एक निषेधाभास।
पहिलैं कहिये आप कछु बहुरि फेरियै तास ॥१०४॥

जबहि (सोहन, भरत), जबै। जोहि (ग्रिय), होइ (याज्ञिक, जोध, जग, सोहन, गोकुल, पूना, मन्ना, तारा), होहि। सर्ग (सोहन, समे, मया), सरग। चढावत (दल), चढति हैं (तारा), चढाए। पतित तै (हरि), पतित लै। गग का (वेंक, ग्रिय), गग कहा। कहुँ (याज्ञिक, जोध, हरि, साहु, मया, समे, खोज), कहौ। तोइ (याज्ञिक, जोध, जग, सोहन, गोकुल, पूना, मन्ना, तारा), ताहि।

इसके अनतर 'याज्ञिक, सोहन, वेंक' मैं यह दोहा अधिक है—

ब्याजनिंद स्तुति बिषै निंदा औरैं होइ।
साधु साधु साषी मिलै लहै दत नष दोइ ॥ क ॥

तथा 'मया, भवा' मैं यह दोहा है—

स्तुति मैं स्तुति जब और की होय ललित जिहि ठौर।
ब्याजस्तुति तिहि जानिये कहत कबीसिरमौर ॥ ख ॥

[१०३] 'दल' मैं इसके स्थान पर यह दोहा है—

ब्याजनिद निंदास्तुति के मिसे निंदा बरनै साज।
लह्यौ नषक्षत दुष इतै बीर हमारे काज ॥

ब्याजनिंदा (याज्ञिक, समे, भवा), ब्याजनिंद। सहित (जग), हिसौं (हरि), नमै (साहु), × (समे), मिसैं (तारा), मिसहि (ग्रिय), बिषै। जबै (जग), निंदानि (हरि), निंद्रा (गोकुल), × (समे), निंदा। औरों (गोकुल), बड़ाई (जग), करै (हरि), औरहि (खोज), औरै। सदा षीन (गोकुल), सदा मद (मया, भवा), सदा छीन। कीन्है न (सोहन), कीनी न (सभा), कीने न (वेंक), कीन्हो न (शिव, ग्रिय), कीनो न। सू (भरत), जिहिँ (मन्ना), जिन (सोहन), तुहि (हरि, समे), क्यौं (तारा, ग्रिय), तूँ। मदु चद है (जग), चद चद है (भरत), चद मद है।

[१०४] 'पूना' में 'पहिले कहिये आप कछु' तक जगह छूटी हुई है। निकेधाभास (गोकुल), निषेधअभासु (ग्रिय), निषेधाभास। पहलैं

दुरै निषेध जु बिधि बचन लच्छन तीनो लेखि।
हौं नहिं दूती अगिनि तें तिय तनताप बिसेखि ॥१०५॥
सीतकिरन दै दरस तूँ अथवा तियमुख आहि।
जाहु दई मो जनम दै चले देस तुम जाहि ॥१०६॥
भासै जबै बिरोध सो वहै बिरोधाभास।
उत रत हौ उतरत नहीं मन तें प्राननिवास ॥१०७॥

(गोकुल), पहिलहि (ग्रिय), पहिलैं। पहिलैं कहिये (पूना); बहुरि प्रेरिये (साहु), बहुरि फेरिये।

[१०५] दूर निपेद (राधा), दुरैं न पेद (गोकुल), दुरे निपद (मया), दुरै निषेव। जो बिधि (समे), जु ब्रिधि। तीन्यौ (याज्ञिक, जोध, जग, राधा, सोहन), तीनो। पेखि (ग्रिय), लेखि। हूँ नहि (जोध), होहि न (खोज), होत होत रहि (तारा), हे नहिं (वेंक), हौं नहि। हूती (गोकुल), दूजी (खोज), दीपति (वेंक), दूती। अगनि तें (समे), अपन तें (मया), अगन तें (भवा), अगिनि तें। मन (तारा), तन।

[१०६] मीतकरन दै (याज्ञिक), सीतकरव दै (जग), सीतकर दैं (गोकुल), सीतकिरन दै। तुव (पूना), तु (तारा), ते (खोज, ग्रिय), तूँ। आही (तारा), आहि। जाहुँ दई मो जनन (जोध), जाहु दरी मो जनमु (सोहन), देहि जन्म मोकौं (मन्ना), तहाँ जन्म मोको (तारा), जाओ दई मो जन्म (ग्रिय), जाइ दई मो जमन (जग, वेंक), जाहु दई मो जनम। दई (मन्ना, तारा); दै। ताहि (याज्ञिक), जाहि।

[१०७] 'हरि' और 'दल' में द्वितीय दल के स्थान पर यह है—

सुधि आयें सुधि जाति है वा मुषचद्र प्रकास।

'दल' में यह दोहा २१३ पर है। भासौ (याज्ञिक), भासै। सबै (समे), जहाँ (हरि, दल), जबै। अहै (जोध), वहै (जग, हरि, गोकुल, मन्ना, वेंक), यहै। ऊतर (जोध), उतरति (सोहन, समे), उत रत। हाँ ऊतर (जोध), है उतरत (राधा, भरत), हौ उतरत। से (राधा), मैं (समें, पूना), तें।

होहि छ भाँति बिभावना कारन बिन ही काज।
बिन जावक दीने चरन अरुन लखे हैं आज ॥१०८॥
हेत अपूरन तें जबै कारज पूरन होइ।
कुसुम बान कर गहि मदन सब जग जीत्यो जोइ ॥१०९॥
प्रतिबधक के होतहू कारज पूरन मानि।
निसदिन श्रुतिसगति तऊ नैन राग की खानि ॥११०॥
जबै अकारन बस्तु तेँ कारज परगट होत।
कोकिल की बानी अबै बोलत सुन्यो कपोत ॥१११॥
काहू कारन तें जबै कारज होहि बिरुद्ध।
करत मोहिँ सताप यह सखी सीतकर सुद्ध ॥११२॥

---

[१०८] है (वेंक), होइ (रावा, सोहन), होहि (जोध, पूना, भरत, तारा), होत। षट (वेंक), छ। बिन ही कारन (हरि), कारज बिन ही (मया), कारन बिन ही। दीन्हे (सोहन, शिव, दल), दीने। अरु लेपै (पूना), अरुन लखे।

[१०९] देत (पूना), हेत। अपूरन (जग, सोहन, गोकुल, खोज), अपूरन। जहा (हरि), जबै। कारन (याज्ञिक, जोव, समे), कारज। गहि कर (साहु, मया, भवा), कर गहि।

[११०] 'भरत' मेँ दोहा स० ११० से ११२ तक पन्ना फटा होने के कारण पूरे दोहे पढे नहीँ जाते हैँ। × (भरत), प्रतिबाधकहू (ग्रिय), प्रतिवाधक के (तारा, वेंक), प्रतिबधक के। होतहुँ (जोध), होत तू (गोकुल), होत हे (ग्रिय), होत ही (याज्ञिक मया, दल, भवा, सभा), होतहू। कारन (जोव, समे), कारज। जानि (जग, साहु, गोकुल, मया, भवा), मानि। निसदिन स्रुति सगति तउ (खोज), × सगति तऊ (भरत), निसदिन श्रुतिसगति तऊ।

[१११] अकारजु (साहु), ×कारन (भरत), अकारन। बस्तु के (दल), बस्तु तेँ। परमट (याज्ञिक), प्रगट (गोकुल),× (भरत), प्रगट जु (मया, भवा), प्रगटहि (मन्ना, तारा, ग्रिय), परगट। अजौं (शिव), अबै। सुनेऊ (शिव), ×(भरत), सुनें (याज्ञिक, सोहन), सुनी (जग, पूना), सुन्यो।

[११२] वहि (सोहन), अवै (समे), ×(भरत), जब (मन्ना), जबै। होत (रावा, सभा, ग्रिय), होहि (जोध, जग, खोज, भरत, मन्ना,

पुनि कछु कारज तें जबै उपजै कारन रूप।
नैन मीन तें देखियहि सलिता बहति अनूप ॥११३॥
बिसेपोक्ति जौ हेतु सौं कारज उपजै नाहिं।
नेह घटत है नहिं जऊ कामदीप घट माहिं ॥११४॥
कहैं असभव होत जब बिन सभावन काज।
गिरिबर धरिहै गोपसुत को जानै यह आज ॥११५॥

तारा), होइ । करै (शिव), ×(भरत), करत। ×(भरत), मोह (राधा, सभा), मोहि । वहि (जोध), ए (समे), ×(भरत); ही (ग्रिय), अति (शिव, दल), यह ससी (गोकुल), ×(भरत), सखी । सीतरितु (समे), सीतकर ।

[११३] 'दल' मैं यह दोहा स० १०७ पर है। बिनु (दल), पुनि । ही (पूना), जब (याज्ञिक, गोकुल), कछु । जहाँ (याज्ञिक), वहि (सोहन), कहू (गोकुल), जबै । उपनैं (पूना), उपजै । कारज (वेंक), कारन । देषियै (दल), देषियत (याज्ञिक, हरि, सोहन, गोकुल, समे, शिव), देखि यह । सलिता (जोध, जग, हरि, सोहन, समे, शिव, खोज, भरत), सरिता । बहुत (जोध), कहत (साहु), वहै (राधा, मया), बहति ।

[११४] जह (हरि), जे (साहु), जा (पूना, तारा), जब (मन्ना, वेंक, ग्रिय), जौ । उपजत (हरि), उपजै । तेह (पूना), नेह । जरिहै तऊ (याज्ञिक), नाही तऊ (गोकुल), हूँ पै तऊ (दल), है नाहिं यह (सभा), है नहिँ जऊ (वेंक), है नहिं तऊ (ग्रिय), नहिँ जब लगी (मन्ना, तारा), नहि है जऊ (जोध, राधा, भरत), नहि है तऊ । तन (जग), मन (दल), घट (जोध, सोहन, मन्ना, तारा, ग्रिय), चित ।

[११५] वहै (वेंक), कहत (राधा, समे, ग्रिय), कहै । होत यह (याज्ञिक), होत जहँ (हरि), होर जब (गोकुल), होइ जो (दल), हो जब (सभा), होत जब । चित (सभा), बिन । सँभावना (खोज, मन्ना), सभावन । जानइ (ग्रिय), जानत (राधा, सोहन, गोकुल, सभा, वेंक), जानै । बूज (दल), यह ।

तीनि असगति काज अरु कारन न्यारे ठाम।
और ठौर ही कीजिये और ठौर को काम ॥११६॥

और काज आरंभिये औरै करिये दौर।
कोयल मद्माती भई झूमत अबाबौर ॥११७॥

तेरे अरि की अगना तिलक लगायो पानि।
मोह मिटायो नाहिँ प्रभु मोह लगायो आनि ॥११८॥

बिषम अलकृत तीनि बिधि अनमिलते को सग।
कारन को रँग और कछु कारज औरै रग ॥११९॥

---

[११६] न्यारो (समे, मया, भवा), न्यारे। औरै (गोकुल, मया, भवा), और। जु (गोकुल), ×(मया), को (दल), ही। के (याज्ञिक, राधा, गोकुल, सभा), को।

[११७] ठौर (समे), काज। कीरिये औरैं (दल), औरौं करियौं (भरत), औरै कीजै (जग, हरि, पूना), औरै करिये। ठौर (याज्ञिक), दौर। कोकिल (याज्ञिक, साहु, मन्ना, तारा, ग्रिय), कोयल। मधुमाती (समे, पूना), मदमाते (शिव, सभा), मदमाती। भजै (राधा), भयो (सभा), भये (जोध, समे, शिव, खोज), भई। घूमत (सभा), झु मत (जोध, मन्ना, तारा), झूलत (सोहन, शिव, ग्रिय), झूमत। अबै (याज्ञिक), आबा (समे), अब के (पूना) आबे (तारा), आबहि (ग्रिय), अबा। षोर (जोध+), ठौर (भरत), बौर (याज्ञिक, जग, गोकुल, शिव, दल, भवा, वेंक), मौर।

[११८] रिपु की (समे), अरि को (साहु), अरि की। पान (हरि, समे, खोज, पूना), पानि। मोहि (सोहन, समे, मया, भवा, भरत), मोह। प्रभु मोहु (जग), प्रभु मोहि (जोध, सोहन, मया, पूना), प्रभु मोह। ऑन (हरि, समे, खोज, पूना), आनि।

[११९] अलंकृत (भरत), अलकृत। अनलायक (हरि), अनमिलबे (मया), अनमिलतहि (तारा, ग्रिय), अनमिलते। रग और है (याज्ञिक, मया), कछु और रग (समे, शिव), रँग और कछु। रगहि और (याज्ञिक), औरै रग।

औरं भलो उद्दिम किये होत बुरो फल आइ।
अति कोमल तन तीय को कहाँ बिरह की लाइ ॥१२०॥
खगलता अति स्याम तेँ उपजी कीरति सेत।
सखि लायो घनसार पै अधिक ताप तन देत ॥१२१॥
अलकार सम तीनि बिधि जथाजोग को सग।
कारज मैं सब पाइये कारन ही को अग ॥१२२॥

[१२०] 'भरत' में दोहा स० १२० से १३६ 'यथासख्य सग' तक खडित है। और भले (समे), उर भलो (खोज), और भलो। कीयो (साहु, शिव, दल), किये। होय (साहु–), होइ (दल), होत। भाइ (मया, भवा), आइ। अति कोमल तिय कौ तनही कहा (याज्ञिक), अति कोमल तन तियन की कहा (सोहन), कोमल तन तिय को कहाँ (मया), अति कौमल्ल तन पीय कौ कहा (खोज), तिन कोमल तन पीय कौं कहाँ (पूना), अति कोमल तन तीय कौ कहा (भवा–), कहँ कोमल तन तीय को कहा (भवा+), अति कोमल तन तीय को कहा (हरि, राधा, साहु, गोकुल, दल, सभा, वेंक), अति कोमल तन तीय को कहाँ।

[१२१] खडगलता (मया, पूना, भवा), षडलता (जोध, शिव, दल, खोज), षडगलता (याज्ञिक, जग, हरि, साहु, सोहन, समे), खगलता। स्वेत (समे, पूना), सेत। षसि (साहु, शिव, मया, भवा, मन्ना), सखि। ल्यायो सषि (भवा), लाई (मन्ना), लाये (जग, साहु, दल), लायो। घनसार यह (याज्ञिक), घनसार कें (जग); घनसार ये (पूना), घनसार मैं (हरि, सोहन), घनमार तें (राधा, मया, खोज, भवा–,वेंक), घनसार पै। ताम (साहु, मया), ताप।

[१२२] अनमिलते (सोहन), जथाजोग्य (साहु, दल), यथाजोग (समे, शिव), यथायोग्य (जोध, भवा, तारा, प्रिय), यथायोग (गोकुल, मया, मन्ना, वेंक), जथाजोग। कारन (याज्ञिक), कार (सभा), कारज। मैं जहँ (हरि), मैं सम (समे), ही मैं (जग, शिव), मैं सब। पाइजै (राधा), पाइये। कारन (जग), कारज ही (साहु, पूना), कारन ही। के रग (गोकुल), के अग (याज्ञिक, जोध, हरि, पूना, सभा, तारा, वेंक, प्रिय), को अग।

श्रम बिन कारजसिद्धि जब उद्दिम करतैं होइ।
हार बास तियउर कर्‌यो अपने लायक जोइ ॥१२३॥

नीच संग अचरज नहीं लछमी जलजा आहि।
जस ही को उद्दिम कियो नीकैं पायो ताहि ॥१२४॥

इच्छाफल बिपरीत की कीजै जतन बिचित्र।
नवत उच्चता लहन कौं जो है पुरुष पवित्र ॥१२५॥

अधिकाई आधेय की जब अधार सौं होइ।
जो अधार आधेय तैं अधिक अधिक ये दोइ ॥१२६॥

---

[१२३] सिद्ध जह (हरि), सिद्धि जहाँ (समे), सिद्धि जो (दल), सिद्धि जब (जोव, जग, सोहन, शिव, खोज, पूना), सिद्ध जब। करतहि (तारा, ग्रिय), करतैं। जोय (मया), होइ। उर पै (दल), तियहिय (पूना), उर पर (राधा, सभा), तियउर। कहो (मया), कियो (याज्ञिक, हरि, समे), बस्यो (जोध, तारा, वेंक), कह्यो (राधा, दल, पूना, सभा), कर्‌यो। अपनो (सभा), अपने। सोइ (पूना), जोइ।

[१२४] लक्ष्मी (गोकुल, तारा, ग्रिय), लछिमी (हरि, दल, भवा), लक्ष्मी (राधा, मया, खोज, सभा, वेंक), लछमी। याइ (साहु), आहि। जाही (सोहन), जस ही। नीकौ (सोहन, दल, सभा, तारा), नीकैं। ता (साहु), लाहि (समे), ताहि।

[१२५] बिपरीत को (मया, भवा), बिपरीत की। कीजत (जग), कीजै। बचन (गोकुल), जतन। नचत (समे), नवन (खोज), तवत (पूना), नमत (हरि, सभा), नवत। उच्चितता (तारा), उच्चता। लहत ह (याज्ञिक), तहँ (साहु), कौ लहत (सोहन), लहन कौं। ते हैं (पूना), जो है (दल, तारा, ग्रिय), जे हैं। सत (याज्ञिक), पुरुष। बिचित्र (जग, राधा, गोकुल), पवित्र।

[१२६] आधार (हरि, दल), आधेय। कै (सोहन+), तैं (हरि, दल), की। अवेय की (हरि), आधेयहि (दल), अवार सौं (जोध, राधा, खोज, पूना, सभा, तारा, ग्रिय), अधार तैं। ज्यौं अधार (समे), जब अधार (याज्ञिक, सोहन, पूना, वेंक), जो अधार।

सात दीप नव खड मैं कीरति नाहिँ समात।
सब्दसिंधु केतो जहाँ तुव गुन बरने जात ॥१२७॥
अलप अलप आधेय तैँ सूछम होइ अधार।
अँगुरी की मुँदरी हुती भुज मैं करति बिहार ॥१२८॥
अन्योन्यालकार है अन्योन्यहि उपकार।
ससि सौँ निसि नीकी लगै निसि ही सौँ ससि सार ॥१२९॥
तीनि प्रकार बिसेष हैँ अनाधार आधेय।
थोरो कछु आरभ जब अधिक सिद्धि कौँ देय ॥१३०॥

आधेय सौ (हरि, राधा, गोकुल, दल, सभा), आधेय तैँ। अधिक है (हरि), अधिक यह (सभा), न लहिये (मन्ना), अधिक ये। सोय (हरि, मन्ना), होइ (साहु, मया), दोइ।

[१२७] सात खड नव दीप (पूना), सात दीप नवखड। तव जस (सोहन, वेंक), कीरति। नहिँ समात (दल), नहीँ समात (सोहन, वेंक); नाहिँ समाति (याज्ञिक, जग, गोकुल, मया, पूना), नाहिँ समात। सप्त (सोहन), कछू (समे), ब्रह्म (पूना), सात (वेंक), सब्द। सब्द (पूना), द्वीप (वेंक), सिंधु। नव खड जहँ (वेंक), केतो जहाँ। तो गुन (गोकुल), तव गुन (समे), तुव गुन। बरनत (समे), बरनैँ।

[१२८] कै मुँदरी (दल), की मुँदरी। हती (पूना), हुतिय (तारा), भई (मन्ना), हुती। पहुचनि (ग्रिय), सुभुज मैँ (मया, भवा), भुज मैँ। करति (जग, वेंक), करत।

[१२९] 'हरि' मैँ प्रथम दल के स्थान पर यह है—

जहाँ परस्पर उपकरैँ अन्योन्यालकार।

ए (समे), है। अनन्यो (जोध) अन्योअति (शिव), आपुस मे (दल), अन्योन्या (साहु, सभा), अन्योन्य (याज्ञिक, राधा, गोकुल), अन्योअन्य (सोहन, समे, पूना), अन्यौअनि (जग, मया, खोज, भवा), अन्योन्यहि। उपगार (समे), उपकार। ससि तैँ (याज्ञिक, ग्रिय), ससि सौँ। तैँ ससि (याज्ञिक, ग्रिय), सौँ ससि (हरि, शिव, दल, मन्ना, वेंक), मैँ ससि।

[१३०] 'हरि' और 'दल' मैँ द्वितीय दल के स्थान पर यह है—

बडी बस्तु की सिद्धि कौँ कछु आरभ जु देय।

बस्तु एक कौं कीजिये बर्नन ठौर अनेक।
नभ ऊपर कचनलता कुसुम स्वच्छ है एक ॥१३१॥

कल्पबृच्छ देख्यो सही तोकौं देखत नैन।
अतर बाहिर दिसि बिदिसि वहै तीय सुखदैन ॥१३२॥

ब्याघात जु कछु और तैं कीजै कारज और।
बहुरि बिरुद्धी तैं जबै काज ल्याइयै ठौर ॥१३३॥

'गोकुल' मैं 'सिद्धि कौं देइ' से दोहा स० १३६ 'दृग श्रुति' तक खडित है।

'दल' मैं 'बस्तु' के स्थान पर 'बात' और 'जु' के स्थान पर 'जो' है। भाति सु (शिव), प्रकार। थोरो जब (समे), थोरो कछु। आरभिजे (याज्ञिक), आरभ कछू (समे), उद्दिम कियैं (पूना), आरभिये (सोहन, वेक), आरभ जब। बहुत (याज्ञिक), अधिक। सिंधु कुँ (जोध), सिद्धि कौं।

[१३१] अनेक कौ (जोध), एक कौं। कीजियौ (जग), कीजिये। प्रगटी देषौ एक (दल), कुसम सुछि फल एक (खोज), कुसुम गुछ है एक (सोहन, मया, भवा), कुसुम स्वछ है एक।

[१३२] कल्पबृष्य (जोध—), कल्पबृच्छ। सषी (साहु, शिव), सही। तिय को (समे), तोकौं। देषौ (सोहन), देष्यौ (जग, पूना), देखत। उही (हरि), वही (जग, समे), वहै। त्रिया (याज्ञिक), तीन (मया), तिये (समे), तिया (सोहन, दल, वेक), तीय। मुखदैन (मया), सुखदैन।

[१३३] 'मया' और 'भवा' में द्वितीय दल के स्थान पर यह है—

सुदर कारज की कृपा करत बिरुद्धहि दौर।

ब्याघात न कछु (जग), ब्याघात कछु (पूना), रहै ब्याघात जु (सभा); सो ब्याघात जु (याज्ञिक, वेंक), सो ब्याघात जो (दल, ग्रिय), ब्याघात जु कछु। बुधिही (पूना), बिरुद्धी (जोध, जग, साहु, समे, शिव, खोज), बिरोधी। हेत को (दल), तैं जबै। कारज लइयय (सोहन), ल्याई यह वह (दल), ल्याईए कारज (राधा, सभा), काज ल्याइयै।

सुख पावत जासौं जगत तासौं मारत मार।
निहचै जानत बाल तो करत कहा परिहार ॥१३४॥
कहिये गुफ परंपरा कारन की जब होत।
नीतिहि धन तिहि त्याग पुनि तातैं जसउद्दोत ॥१३५॥
ग्रहितमुक्तपद रीति जब एकावलि तब मानि।
दृग श्रुतिपर श्रुति बाहुपर बाहु जघ लौं जानि ॥१३६॥

---

[१३४] 'हरि' में द्वितीय दल के स्थान पर यह है—
दया करत जो बाल यह सँग लै चलौ मुवार।
तासो (राधा), जाते (मया), जासौं। निहचौ (मया, भवा), निस्चै (दल, ग्रिय), निहचै। बाल जो (याज्ञिक), बाल तब (दल), बात तो (खोज), बाल तौ। करत सोहि (जोध), काहि करत (शिव), करत कौन (खोज), न करहु वह (तारा), करत कहा (समे, ग्रिय), करत काहि। परहार (याज्ञिक, समे, शिव), परिहार।
[१३५] 'हरि' में यह दोहा नहीं है। कहियौ (याज्ञिक), कारन (दल), कहिये। काज परपरा (दल), गुफ परपरा। कारज (जग), कारन। कौ जब (साहु), माला (दल, ग्रिय), की जब। नीती तैं (तारा), नीतिहि धन। धनु तहि त्याग (जोध), तिहि त्यौ त्याग (सोहन), धन त्याग (राधा, दल, सभा, तारा, ग्रिय), तिहि त्याग। तैं (याज्ञिक), पुनि।
[१३६] 'साहु' में प्रथम दल द्वितीय और द्वितीय दल प्रथम है। गहतु (खोज), यसित (वेंक), गहत (याज्ञिक, साहु, मन्ना), ग्रहित। मुक्त की (हरि), मुक्ति के (दल), मुक्तिपद (समे, भवा), मुक्त-पद। जहाँ (हरि), की (सोहन), तैं (दल), जहँ (वेंक), जब। मुक्तावलि (याज्ञिक), एकावली (पूना), एकावलि। मो जानि (याज्ञिक), तो मानि (दल), सुमान (पूना), प्रमानी (सभा), तहँ मान (वेंक), तह मानि (हरि, ग्रिय), तब मान (मया, खोज, भवा, मन्ना, तारा), तब मानि। लौं श्रुति (हरि, सोहन, शिव, दल, वेंक), श्रुतिपर। बाहु रे (याज्ञिक), बाहु लौ (हरि, शिव, दल, वेंक), बाहु पर। अस सौं (गोकुल), जानु लौं (ग्रिय), जग लौं (याज्ञिक, मया), जघ लौं। मानि (याज्ञिक), जानी (सभा), जान (मया, खोज, पूना, मन्ना, तारा, वेंक, ग्रिय), जानि।

दीपक एकावलि मिलैं मालादीपक नाम।
कामधाम तियहिय भयो तियहिय को तूं धाम ॥१३७॥
एक एक तें सरस जब अलङ्कार यह सार।
मधु सों मधुरी है सुधा कबिता मधुर अपार ॥१३८॥
जथासख्य बर्नन बिषै बस्तु अनुक्रम सग।
करि अरि मित्त बिपत्ति को गजन रजन भग ॥१३९॥
द्वै पर्जाय अनेक को क्रम सौं आश्रय एक।
फिरि क्रम तें जब एक वह आश्रय धरै अनेक ॥१४०॥

---

[१३७] 'सोहन' मैं यह दोहा नहीं है। 'गोकुल' मैं प्रथम दल सोरठे के रूप मैं है। समेलै (जोध—), लिए मिलै (समे—), मिलै। मानि (जग, साहु), नाम। पियहिय (जग), तियहिये (समे), तिय-हिय। कियौ (हरि), बरायौं (खोज), भयौ। हिय किय तुहि (हरि), ही को तुव (दल), हिय को तूं।

[१३८] अधिक जब (दल), अविक जहँ (हरि, ग्रिय), सरस जब। तब (समे, मन्ना), हे (हरि, राधा, साहु, दल, सभा), यह। मधु तै (सोहन), मधुरौ (मया), मधु से (खोज), मधु सौं। ही (जोध), है। सरस (मया, भवा), मधुर।

[१३९] यथासथ (साहु), यथासष्या (सभा), जथासष (याज्ञिक, जग, सोहन, गोकुल, पूना), जथासख्य। बरनन (याज्ञिक, जोध, राधा, दल), बर्नन। अरि अरि (जोध), करि अति (दल), करि अरि। मीत (शिव), मित्त (याज्ञिक, जोध, हरि, दल, मन्ना, तारा, वेक, ग्रिय), मित्र। बिधत्र कौ (सोहन), बिपत्ति की (तारा), बिपत्ति को। गुजन (जोध), गजन। भजन (भरत), रजन। रग (याज्ञिक), अग (रावा), भग।

[१४०] दोय (जोध), दो (जग, मन्ना, तारा), द्वै। क्रम तैं (जग, मया, भवा), क्रम सौं। भाव अनेक (जग), आश्रय एक। प्राक्रम (मया, भवा), फिरि क्रम। जहँ (ग्रिय), जब। ही (हरि, दल, पूना), वह (याज्ञिक, सोहन, मन्ना, वेक), कों परे (सभा), धरै।

हुती तरलता चरन मैं भई मदता [आइ।
अबुज तजि तियबदनदुति चदहि रही 'बनाइ ॥१४१॥
परिबृत्ती लीजे अधिक थोरोई कछु देइ।
अरिइदिरा कटाच्छ यह एक बान बर लेइ ॥१४२॥
परिसख्या इक थल बरजि दूजैं थल ठहराइ।
नेहहानि हिय मैं नहीँ भई दीप मैं जाइ ॥१४३॥

---

[१४१] हती (साहु), होति (तारा), हुती। नद (याज्ञिक), चरन। भरी (पूना), भई। मदगति (हरि), सकता (समे), मदता। तज तय (साहु), तज तिय (पूना), तजि तिय। चदै रही (जग), रही चद मैं (पूना), चदहि रही। समाइ (दल), जाइ (पूना), बनाइ।

[१४२] 'सोहन' मैं यह दोहा स० १४४ पर है। 'दल' मैं प्रथम दल के स्थान पर यह है—

परिब्रत पलटो कीजिये कछु लैकै कछु देइ।

'हरि' मैं द्वितीय दल के स्थान पर यह है—

लेत भक्ति औ मुक्ति कौ धूप तुलसि कौषेय।

परिबृत लीजै अधिक तहाँ (याज्ञिक), परिब्रत जह लीजै अधिक (जग), परिब्रति जहा लीजै अधिक (साहु), परिब्रत लीजैं अधिक तौं (गोकुल), परबृत्तहि लीजे अधिक (समे), परिबृत्ति लीजे अधिक कौ (मया), प्रब्रत लीजै अधिक कौं (पूना), परिब्रत लीजै अधिक जहँ (मन्ना), परिब्रति लीजै अधिक जहँ (हरि, सोहन, वेक), परिबृति लीजै अधिक जब (शिव, खोज, सभा), परिबृत्ती लीजै अधिक। थोरेई (वेक), थौरौं ही (गोकुल, समे), थोरोई। इद्रादि (याज्ञिक), इद्रा (जोध), इदिरा। वह (गोकुल), को (दल), बर (वेक), तिय (याज्ञिक, सोहन), सौं (समे, मन्ना, तारा), यह। एक बान पै (याज्ञिक), एका बान बर (जग), ऐक बान वै (सोहन), एक बाल पर (मया), एक बान दे (मन्ना), इक सर डारि (तारा), एक बान है (वेंक), एक सर डारीं (प्रिय), एक बान पर (गोकुल, दल, भवा), एक बान बर।

[१४३] खोज मैं यह दोहा नहीं है। तजत (तारा), बरजि। दूजौं (जोध, राधा, पूना, सभा), दूजैं। रही (हरि), भई। दीपक (जोध), दीप। आय (हरि), जाइ।

है बिकल्प यह कै वहै इहि बिधि को बृत्तत।
करिहै दुख को अत अब जम कै प्यारो कत ॥१४४॥
दोइ समुच्चय भाव बहु कहुँ उपजै इक सग।
एक काज चाहै करयो ह्वै अनेक इक अग ॥१४५॥
तुव अरि भाजत गिरत फिरि भाजत हैं सतराइ।
जोबन बिद्या मदन धन मद उपजावत आइ ॥१४६॥

---

[१४४] 'हरि' में इसके बदले यह दोहा है—

समबल को जु बिरोध जहँ तहाँ बिकल्प सु थाप।
भूपति काल्हि नवायहै अरि कौ सिर कै चाप ॥

'सोहन' में यह दोहा स० १४२ पर है। वह कै (समे), यह कै। ई (समे), यहि (दल), या (याज्ञिक, साहु), यह (सोहन, गोकुल, पूना), इहि। बृत्तात (याज्ञिक, राधा, सोहन, गोकुल, समे, भरत, भवा), बृत्तत। जब (पूना), अब। तम (समे), जन (मया), जस (भवा), जम। कौ (याज्ञिक), कै। कात (याज्ञिक, सोहन, गोकुल, समे, भवा), कत।

[१४५] होय (मया), दोइ। भाइ (सोहन, शिव), भाव। वहै (हरि), बहु। इक सपजँ (जोध), चाहत कह्यो (सभा), चाहै कह्यौ (मया, भवा), इक उपजत (हरि), उपजै इक (मन्ना), एक उपजै (शिव, मया, भवा, ग्रिय), इक उपजै। अग (याज्ञिक), सग। बहुत काज (हरि), एक अनेक (मया, भवा), एक काज। चाहै चरयो (जोध), चाहै करयो। कै (समे), है (दल), कहु (मया, भवा), ह्वै। रग (गोकुल), सग (याज्ञिक, मया), अग।

[१४६] तुम (साहु), तुव। गिर परे (खोज), गिरत है (ग्रिय), गिरत फिरि। लाजत है (वेंक), फिरि भाजत (गोकुल, ग्रिय), भाजत हैं। सतिभाइ (याज्ञिक), है न राइ (साहु), सितुनाइ (सोहन), सिरनाथ (वेंक), सतराइ। जुब्बन (जोध), जुछ्वन (जग), कुलबय (सोहन), जोबन। मदन मद धन मद उपजत (हरि); धन मदन मद उपजावतु (जग), मदन मद उपजावत (भरत), रूप धन मद उपजावत (सोहन, सभा, वेंक), मदन धन मद उपजावत।

कारकदीपक एक मैं क्रम तें भाव अनेक।
जाति चिते आवति हँसति पूछति बात बिवेक ॥१४७॥
सो समाधि कारज सुगम और हेतु मिलि होत।
उत्कंठा तिय को भई अथयो दिनउद्दोत ॥१४८॥
दुख दै अरि के पक्ष कौं प्रत्यनीक इहि भाइ।
दृगनि दबाए कंज ते चढ़े कान पै जाइ ॥१४९॥
काव्यार्थापति कौं सबै इहि बिधि बरनत जात।
मुख जीत्यो वा चंद सौं कहा कमल की बात ॥१५०॥

---

[१४७] कौ (याज्ञिक), सौं (पूना), मैं। क्रम सौं (दल), क्रम तैं। क्रिया (हरि), भाइ (सोहन), भाव। जानि (राधा), नाति (भरत), जात (याज्ञिक, सोहन, भया, भवा), जाति। जितै (साहु), चितै। बूझत (याज्ञिक, सभा), पूछति। बातह्नु नेक (मन्ना, तारा), बात अनेक (जोध, गोकुल), बात बिवेक।

[१४८] सु समाविक (राधा), सो समाधि। मारन (याज्ञिक), कारन (मया, भवा), कारज। मय (भरत), सो (मया, भवा), मिलि। भयो (मया), भई। दिन ही (समे), दित (शिव), दिन। उदोत (याज्ञिक, राधा, समे, शिव), उन्योत, उद्दोत।

[१४९] 'हरि' और 'दल' के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रतियों में इस दोहे का पाठ यों है—

पूना—प्रत्यनीक बलवान अरि दुष पावै परिवार।
जनमेजै तिछकषुनस अहिकुल दीनैं जार ॥

मया, भवा—प्रत्यनीक बलवत के पक्ष विपे जय होइ।
कंज चढे स्तुति जयकरन नैन पक्ष के जोइ ॥

सोहन, शिव, सभा, बैंक—प्रत्यनीक सो प्रबल रिपु ता हित सो कर जोर।
नैनसमीपी श्रोन पर कंज चप्यौ करि दोर ॥

श्रोन (दल), कान।

[१५०] 'हरि' में प्रथम दल के स्थान पर यह है—
काव्यार्थपति यह कियो तिनकौं यह कह जात।

'दल' में प्रथम दल के स्थान पर यह है—
काव्यअर्थपति मुष्य भै को इमि बरनो जात।

'तारा' में प्रथम दल के स्थान पर यह है—
कबि कैमूतिक न्याय कौं काव्यार्थापति गात।

काव्यलिंग जब जुक्ति सों अर्थसमर्थन होइ।
तोकों मैं जीत्यो मदन मो हिय मैं सिव सोइ ॥१५१॥

सामान्य तैं बिसेष दृढ तब अर्थांतरन्यास।
रघुबर के बर गिरि तरे बडे करैं न कहा स ॥१५२॥

काव्यअर्थपति (सोहन, वेंक), काव्यार्थपति (याज्ञिक, साहु, मया, भवा), काव्यार्थापति। की सबै (सोहन), सो कहैं (समे), कौं × (सभा), कौं सबै। एहि (शिव), इ (साहु, समे), या (मया, भवा), इहि। बर (पूना), वा। सूँ (समे), को (याज्ञिक, सोहन, शिव, दल, मन्ना, वेंक) सौं।

[१५१] जो (शिव), जब। मु (शिव), जुगति (याज्ञिक, समे), जुक्ति। समर्थ जु (खोज), समर्थन। तोकौं जीत्यौ मदन मैं (याज्ञिक), तौकौ मैं जीतो मदन (साहु), तोको जीत्यो मै मदन (शिव), तोको ज्यहि जीत्यौ मदन (दल), तोकौं मौं जीत्यो मदन (खोज), तातैं मैं जीत्यौ मदन (पूना), ताकौं अजीत्यौं मदन (भरत), तोकों जीत्यौ मदन जो (ग्रिय), तोकौं मैं जीत्यो मदन। मो सिव (सभा), मैं सिव। होइ (पूना), सोइ।

[१५२] 'साहु' में दोहा सं० १५२ से दोहा सं० १६१ तक नहीं हैं। सामान्य तैं जु बिसेष (जग), जो बिसेष सामान्य (हरि), सामान्य ते बिषेष (मया), सामान्य ते बिषै (खोज), सामान तैं बिसेष (पूना), बिसेष ते सामान्य (दल, ग्रिय), सामान्य तैं बिसेष। जब (सोहन), ये (समे), ई (जग, मया, भवा), दृढ। तबै (जग), तौ (हरि), तब। अर्थांतरन्यास (याज्ञिक, हरि, गोकुल, समे, मया, दल, पूना, भरत वेंक), अर्थांतरन्यासु। गिरिबर (जोध), कर गिगि (जग), बल गिरि (मन्ना), बर गिरि। तिरैं (जोध—), केरैं (जोध), तैं (समे), तर्‍यो (वेंक), तरे। स काहा (जोध), न कहा। स (याज्ञिक, जोध, हरि, गोकुल, समे, दल, पूना, भरत, वेंक), सु।

बिकस्वर होत बिसेष जब फिरि सामान्य बिसेप ।
हरि गिरि धार्यो सतपुरुष भार सहत ज्यौं सेष ॥१५३॥

प्रौढोकति बर्नन बिषै अधिकाई अधिकार ।
केस अमावसरैन घन सघन तिमिर के तार ॥१५४॥

जौ यौं होइ तौ होइ यौं सभावना बिचार ।
बकता होतो सेष तौ लहतो तो गुन पार ॥१५५॥

---

[१५३] होय (मया, भवा), होत । इ (पूना), जब । धार्यौ (गोकुल), धारो (शिव), धार्यो । भारु सहज (गोकुल), भार सहौ (शिव), भार गहे (खोज), भार सहत (मन्ना), भार बहत (तारा), भार सह्यो (जग, दल, पूना, वेंक), भार सहै । यौं (जग), त्यौ (सोहन), जु (खोज), जो (याज्ञिक, दल), ज्यौं ।

[१५४] 'तारा' में प्रथम दल के बदले यह है—

प्रौढोक्ति उत्कर्ष बिन हेतू बर्नन काम ।

प्रौढोकति (जग, हरि, भरत), प्रौढउक्ति (दल, मन्ना, वेंक, ग्रिय), प्रौढोक्ति । उत्कर्ष कौं (हरि, दल, ग्रिय), बर्नन बिषै । अधिक अधिक (गोकुल),× (मया), हेतु (दल), गुन बिसेष (सभा), करै (हरि, ग्रिय), अधिकाई । धरे जु अहेत (दल), अहेतुहि हेतु (हरि, ग्रिय), अधिकाई (शिव, सभा), अधिकार । देत (याज्ञिक), जमुना (हरि, दल, ग्रिय), केस । तीर (हरि, दल, ग्रिय), अमावस । सघन घन (पूना), तमाल सौं (ग्रिय), तमाल से (हरि, दल), रेनदिन (मया, भवा), रैन घन । तेरे बार (हरि, दल, ग्रिय), सघन तिमिर । सब साम (तारा), असेत (हरि, दल, ग्रिय), के तार ।

[१५५] ज्यौं ज्यौं (राधा), है यौ (हरि, दल), जौ यौं । जौ यौ (हरि), ज्यौं यौं (दल), है तो (तारा), होइ तो (मन्ना, ग्रिय), होतो । ज्यौं कहै (राधा), यौ कहौं (गोकुल), होइ यौं (मन्ना), होय तौ (हरि, दल), यो कहत (सोहन, वेंक), यौ कहै । हैं जो (तारा), होतो । सेस लौं (जग), सेष सौ (सोहन), सेष ज्यौ (सभे), सेष जौ (हरि, राधा, दल, सभा, ग्रिय), सेष तौ । लहतो

मिथ्याध्यवसिति कहत हैं अलकार इहि रीति।
कर मैं पारद जौ रहै करै नवोढ़ाप्रीति ॥१५६॥

ललित कह्यो कछु चाहिये ताही को प्रतिबिंब।
सेत बाँधि करिहै कहा अब तूँ उतरै अब ॥१५७॥

तीनि प्रहर्षन जतन बिन बाछित फल जौ होइ।
बाछितहू तैं अधिक फल श्रम बिन लहिये सोइ ॥१५८॥

गुन (राधा), तुव गुन लहतो (सोहन), तव गुन लहतो (दल), लहत गुनन को (तारा), तौ लहतौ गुन (हरि, समे, ग्रिय), तो गुन लहतौ (याज्ञिक, शिव, पूना, वेक), लहतो तो गुन। सापार (राधा), पार।

[१५६] 'हरि' में प्रथम दल के बदले यह है—

मिथ्याध्यवसित झूठ हित कहैं झूठ यह रीति।

'दल' में इसके बदले यह दोहा है—

मिथ्याध्यवसित झूँठ हित कहै जु झूँठी रीति।
करै जु माला नभकुसुम करै जु नर तियप्रीति ॥

'सभा' में प्रथम दल के बदले यह है—

झूठे के हित झूठ कहे मिथ्याध्यवतित रीति।

कछु (मन्ना, तारा, ग्रिय), हैं। अलकार या (भवा), मिथ्याकल्पन (मन्ना, तारा, ग्रिय), अलकार इहि (जग, राधा, भरत, वेक), अलकार यह। पारौ ज्यौ (जग), पारद जौ।

[१५७] जब (गोकुल), कछु। प्रतिबिंब (याज्ञिक, हरि, गोकुल, समे, मया, पूना, भवा), प्रतिबिंबु। सेतु (राधा, गोकुल, खोज, सभा, मन्ना, तारा, ग्रिय), सेत। करिये (मया), करिहौ (जग, दल), करिहै। अब×(हरि), आवतु (जग, भरत), अब तो (मया, पूना, भवा, मन्ना, तारा, वेक, ग्रिय), अब तूँ। उत्तरैं (सभा), उतर्यौ (जग, सोहन, समे, मन्ना, तारा, वेक, ग्रिय), उतरैं। अब (याज्ञिक, हरि, गोकुल, समे, मया, पूना, भवा), अब।

[१५८] काज (गोकुल), यत्न (ग्रिय), जतन। बछिता (समे—), बछित (जग, हरि, राधा, समे, खोज, भरत, तारा), बाछित। तो (सभा),

सोधत जाके जतन कौं बस्तु चढै कर सोइ।
जाकौं चित चाहत हुते आई दूती होइ ॥१५६॥

दीपक को उद्यम कियो तो लौं उदयो भान।
निधिअंजन की औषधी सोधत लह्यो निधान ॥१६०॥

सो बिषाद चितचाह तैं उलटो कछु ह्वै जाइ।
नीबी परसत श्रुति परी चरनायुधधुनि आइ ॥१६१॥

जब (याज्ञिक, ग्रिय), जो। देइ (जग), होइ। बाछित फल (वेक), बछितहू (याज्ञिक, जोध, जग, हरि, राधा, सोहन, समे, खोज, भरत), बाछितहू। लहिहै (याज्ञिक), लहिअत (हरि); लहिये।

[१५६] साधत (मन्ना, ग्रिय), सोधत। जाकौ (गोकुल),× (समे), सोधत (समे+); जाके। जतन दै (गोकुल), यत्न कौं (ग्रिय), जतन कौं। लहै (जग), बढै (राधा) चढी (पूना), करै (भरत), चढै। तेइ (मन्ना, तारा, ग्रिय), सोइ। जाकी (मन्ना, तारा), जाकौं। चाहत हुते (जोध), मैं चाह भइ (मन्ना, तारा), चाहत हुतो। आई हे द्रुति (तारा), दूती आई (गोकुल, दल), आई दूती। वेइ (मन्ना, तारा, ग्रिय), सोइ (जग, शिव, मया, दल, खोज, भवा, वेक), होइ।

[१६०] उद्यम (जोध, हरि, शिव, मया, खोज, भरत, मन्ना, तारा, वेक, ग्रिय), उद्दिम। तब लगि उगयौ (याज्ञिक), तो लग ऊग्यो (हरि), तो लु उदयो (खोज), तहाँ उदय भो (तारा), तौ लौं उदयो। भानु (याज्ञिक, जग, गोकुल, शिव, दल, भरत, सभा, ग्रिय), भान। बिधि (गोकुल, खोज), निधि। उषधी (जोध), वोषधी (सोहन); औसधी (गोकुल), औषदी (पूना), औषधी। ढूँढत (वेंक), सोधत। लहौ (सोहन), लह्यो। निदान (दल, वेक, ग्रिय), निधानु (याज्ञिक, जग, गोकुल, शिव, भरत, सभा), निधान।

[१६१] कछु ह्यौ (याज्ञिक), कछु जौ (हरि), कछु है (राधा), कै कछू (समे), जो कछु (दल), कछु ह्वो (भरत), कछु हो (पूना), ह्वै कछु (जग, शिव, मया, भवा), कछु ह्वै। आय (समे), होइ (हरि, दल), जाइ। स्तुति (जोध), सुनि (शिव), श्रुति। धनु

गुन औगुन जब एक तेँ और धरै उल्लास।
न्हाइ संत पावन करै गंग धरै इहि आस ॥१६२॥

होत अवज्ञा और के लगैँ न गुन अरु दोष।
परस सुधाकरकिरन तेँ खुलैँ न पंकजकोष ॥१६३॥

(याज्ञिक), धुननि (पूना), ह्वै (भरत), सुधुनि (तारा), धुनि। पाय (जोध), जाइ (भरत), सोइ (हरि, दल), आइ।

इसके अनंतर 'मया, भवा' में यह दोहा अधिक है—

गुन ते गुन गुन ते जहाँ दोष धरे पर कोय।
धरे दोष ते दोष अरु दोषहि ते गुन होय ॥

[१६२] 'मया' और 'भवा' में प्रथम दल के बदले यह है—

है उल्लास क्रम ते कह्यौ उदाहरन परकास।

तब (समे), जब। एक सैँ (साहु), एक कौ (ग्रिय), और तैँ (हरि, गोकुल), एक के (मन्ना, तारा), एक तैँ। धरै और (हरि), और धरौ (भरत), और धरै। सभा (समे), सत। इक (समे), इहि (सोहन, शिव, मन्ना, तारा, ग्रिय), यह।

इसके अनंतर 'मया, भवा' में ये दोहे अधिक हैँ—

पादपद्म मैँ योग्य सो कुच कठोरता कीन।
भाजत तुव अरिबधु कहैँ है धाता बुधिहीन ॥
भाग्यहीन धन जानिये नहिं सज्जन के पास।
जीव बच्यौ कुर भूप ते यह सेवाफल दास ॥

[१६३] होति (जग, साहु, खोज), होत। एक के (याज्ञिक), ऊपर के (जोध), और तैँ (जग), और की (मया), और को (तारा); और के। ना लगत (याज्ञिक), लगैँ न (हरि, सोहन, गोकुल, मया, भरत, भवा, सभा, मन्ना, वेंक), न लगै। है (तारा), अरु। परर (राधा), पसर (साहु), परत (मन्ना), परसु (वेंक), हान (मया, भवा), परसि (गोकुल, दल, खोज, ग्रिय), परस। ससुकर (साहु), सुधाधर (याज्ञिक, गोकुल, शिव, दल, भरत), सुधाकर।

होत अनुज्ञा दोष कौं जब लीजै गुन मानि।
होउ बिपति जामैं सदा हिये चढ़त हरि आनि ॥१६४॥
गुन मैं दोष 'रु दोष मैं गुनकल्पन सो लेस।
सुक यहि मधुरी बानि तैं बधन लह्यो बिसेस ॥१६५॥

किरन कौं (ग्रिय), की कहा (मया, भवा), किरन तैं। षुल्यै (याज्ञिक), षुल (खोज), खुलैं।
इसके अनतर 'मया, भवा' में यह दोहा अधिक है—
सागर मैं घट बोरिये नीर न अधिक समोय।
बारिध को दूषन कहा घट प्रमान जल होय ॥

[१६४] 'सोहन' और 'वेंक' मैं यह दोहा स० १६५ पर है। यहै (दल), होत। अवज्ञा (सोहन, समे), अनुज्ञा। दोष तैं (जग), जो चहै (हरि), देखि कैं (पूना), दोष कौं। जो लीनैं (याज्ञिक), यौं लीजै (जग), दोषहि कौ (हरि), ज्यौं लीजै (पूना), जब लीजै (गोकुल, मन्ना), जो लीजै। मान (जोध, मया, पूना, मन्ना, तारा), मानि। होहि (याज्ञिक, साहु), होत (जोध, तारा), होउ (हरि, समे), होय (दल, खोज, वेंक, ग्रिय), होहु। जामैं महा (याज्ञिक), मैं सदा ए (समे), यामैं सदा (जोध, तारा), जामैं सदा। चहत (सोहन), बसत (दल), चढति (खोज, पूना), चढै (जग, शिव, मन्ना), चढत। यान (मया), आन (जोध, पूना, तारा, मन्ना), आनि।

[१६५] 'सोहन' और 'वेंक' मैं यह दोहा स० १६४ पर है। गुन कौ (हरि, गोकुल), गुन मैं। दोषउ (सोहन), दोष जू (भरत), दोष अरु (शिव, दल, खोज), दोष रु। दोष कौं (हरि), दोष तैं (भवा), दोष मैं। प्रलन सु (याज्ञिक), मानै तहँ (हरि), कल्प्रान सु (सोहन), कल्पना जू (भरत), कल्पन सो (वेंक, ग्रिय), कल्पन सु (जोध, साहु), कल्पना सो (शिव, दल, मन्ना, तारा), कल्पना सु। ई मधुरी (समे), यहि मधुरी (पूना, भरत, ग्रिय), यह मधुरी। बात सौ (गोकुल), बात मैं (समे), बान तैं (साहु, मया), बानि सौं (जग, दल, ग्रिय), बानि तैं। रह्यौ (जोध), लष्यौ (सोहन), सहत (पूना), लह्यो।

मुद्रा प्रस्तुत पद बिषै औरै अर्थप्रकास।
अली जाइ किन पीव तहँ जहाँ रसीली बास ॥१६६॥

रत्नावलि प्रस्तुत अरथ क्रम तैं औरहु नाम।
रसिक चतुरमुख भूमिपति सकल ज्ञान को धाम ॥१६७॥

तद्गुन तजि गुन आपनो सगति को गुन लेइ।
बेसरमोती अधर मिलि पदमराग छबि देइ ॥१६८॥

---

[१६६] 'हरि' में इसके बदले यह दोहा है—

मुद्रा प्रस्तुत पद बिषैं औरै निकरै नाम।
तोहि मनावत कै कहै मानिनि दोहा स्याम ॥

'दल' और 'ग्रिय' मैं द्वितीय दल के बदले यह है—

मन मराल नीके धरै तौ पद मानस आस।

['ग्रिय' मैं 'धरै तौ' के स्थान पर 'धरत तुअ' और 'मानस' के स्थान पर 'पकज' है।]

जाहि (शिव), जाय। धीय पर (याज्ञिक), पिउ तहँ (जोध), पीय मैं (जग), पीय तही (साहु), पीव सहि (सोहन), पिय जह (गोकुल), पीर तिहि (सभे), पीव तहि (भरत), पीउ तहँ (भवा), पिउ तहाँ (सभा), पिय तहाँ (मन्ना); पीयु तहि (तारा), पीव तहँ (राधा, वेंक), पीव तहाँ (मया, खोज), पिव तहीं। नहाँ (गोकुल), उहाँ (भरत), जह (वेंक), जहाँ। बाम (पूना), बात (भरत), बास।

[१६७] अरु (दल), अरथ। औरह (याज्ञिक, सभा), औरौ (गोकुल, दल), औरै (साहु, सोहन, शिव, वेंक), औरहु। चतुर तुम (जग), चतुर तू (साहु), चतुरमुख। चूमिपति (याज्ञिक), भूपपति (खोज), लच्छिमपति (ग्रिय), लच्छिपति (हरि, दल), भूमिपति। के (पूना), को।

[१६८] आपनैं (याज्ञिक, राधा, भरत), आपनो। औरन (हरि), सगहि (गोकुल), सगति। के गुन (हरि), गुन जो (जग, साहु, मया, भवा), को गुन। लेहि (याज्ञिक), लेइ। देहि (याज्ञिक), देइ।

पूर्बरूप लै मगगुन तजि फिरि अपनो लेत।
दूजे जब गुन ना मिटै किये मिटन को हेत ॥१६६॥
सेप स्याम हो सिव गरैं जस तैं उज्जल होत।
दीप मिटाएहूँ कियो रसनामनि उद्दोत ॥१७०॥
सु अतद्गुन सगति भएँ जब गुन लागत नाहिं।
पिय अनुरागी ना भए बसि रागी मन माहिं ॥१७१॥

---

[१६६] लो सग (खोज), सग (पूना), ह सग (ग्रिय), लै सग। जब (सोहन), तद (मया), तजि। फिरि अपने (याज्ञिक), फिरि निज गुन (हरि), गुन अपनौ (गोकुल), अपनो फिरि (शिव), फिरि अपनो। जो गुन (हरि), तव गुन (साहु), गुन जो (दल), तद गुन (जग, समे), गुन जब (याज्ञिक, राधा, सोहन, मया, भवा, सभा, वेंक), जब गुन। किय (खोज, तारा), कियो (साहु, दल, पूना), किये। मेटन को (तारा), मिटे कै (मया, भवा), मिटन के (जोध, हरि, राधा, साहु, समे, खोज, सभा, वेंक, ग्रिय), मिटन को।

[१७०] सेत (मया, भवा), सेष। स्याम भौ (हरि), स्याम है (याज्ञिक, साहु, समे, दल, भरत), ह्वै (सोहन, गोकुल, मया, भवा, तारा, वेंक, ग्रिय), स्याम हो। सौ (याज्ञिक), तैं। बढायेहू (सोहन), बुझाएहू (वेंक) मिटाएहूँ। किये (गोकुल, दल, पूना), कियो। रसनामन (गोकुल), रसमै नाम (समे), करि मेषला (पूना), रसनामनिन (वेंक), रसनामनि। उद्दोत (जग, साहु, गोकुल, दल), उदोत (याज्ञिक, सोहन, समे, भरत, वेंक), उद्योत।

[१७१] 'हरि' मैं प्रथम दल के बदले यह है—

सु अतद्गुन ना गहे सगी को जिहिं ठाँहि।

'समे' मैं प्रथम दल का उत्तरार्ध द्वितीय दल का उत्तरार्ध है और द्वितीय दल का उत्तरार्ध प्रथम दल का उत्तरार्ध है।

सोइ (दल, ग्रिय),× (शिव, खोज, पूना, मन्ना, तारा), सो (याज्ञिक, जग, सोहन, समे, मया, भवा), सु। तदगुन (जग,

अनुगुन सगति तैँ जबै पूरबगुन सरसाइ।
मुक्तमाल हिय हास तैँ अधिक सेत ह्वै जाइ ॥१७२॥

मीलित सो सादृस्य तैँ भेद जबै न लखाइ।
अरुन बरन तियचरन पर जावक लख्यो न जाइ ॥१७३॥

सामान्य जु सादृस्य तैँ जानि परै न बिसेष।
नाहिँ फरक श्रुतिकमल अरु तियलोचन अनिमेष ॥१७४॥

दल), अतद्गुन । सगति के लिऐ (सोहन), सगति भजै (राधा), सगति किये (वेंक), सग तैं (ग्रिय), सु सगति भये (मन्ना, तारा), सगति भएँ। जब लागतु गुनु (जग), जब लागति गुन (साहु), गुण जब लागत (ग्रिय), जब लागत गुन (मया, भवा), जब गुन लागे (सोहन, वेंक), जब गुन लागति (जोध, खोज, पूना, सभा), जब गुन लागत। ताहि (भवा), नाहिँ। प्रिय (वेंक), पिय। भयौ (याज्ञिक, समे, पूना, सभा, तारा, वेंक, ग्रिय), भए। बसहिँ राग (पूना), सखि रागी (मया, भवा), बसि रागी।

[१७२] पूर्व सग तैं (समे), सगति तैं जबै। अपनो (सभा), पूरन (खोज, भवा), पूरब। तिय (साहु), हिय। हास मैं (राधा), हास्य तैं (जोध, खोज, भरत, मन्ना, तारा, ग्रिय), हास तैं। हेत (समे), स्वेत (याज्ञिक, जग, सोहन, मया, खोज, भरत, ग्रिय), सेत। हुए (जोध, भरत), ह्वै।

[१७३] 'सभा' मैं यह दोहा नहीं है। 'भरत' मैं प्रथम दल द्वितीय और द्वितीय दल प्रथम है। जब (साहु), सोइ (मन्ना, तारा), जो (राधा, मया, दल, भवा), सो। भेद न जबैं (पूना), भेद सबै न (भरत), भेद जबै न। चरन (मया), बरुन (साहु, खोज), बरन। परु (खोज), मैं (याज्ञिक, ग्रिय), पै (हरि, वेंक), पर। कह्यो (तारा), लख्यौ (गोकुल, समे, खोज, भरत), लख्यो।

[१७४] सामान्य जो (दल, ग्रिय), सामान्य (पूना), सो सामान्य (याज्ञिक, सोहन, शिव), सामान्या (गोकुल, समे, सभा, वेंक),

उन्मीलित सादृस्य तेँ भेद फुरै तब मानि।
कीरति आगेँ तुहिनगिरि छुएँ परत पहिचानि ॥१७५॥
यहै बिसेष बिसेष पुनि फुरै जु समता माँझ।
तियमुख अरु पंकज लखैँ ससिदर्सन तेँ साँझ ॥१७६॥

सामान्य जु। हिसेष (मया), बिसेष। फरक (ग्रिय), नहि (याज्ञिक, जोध, जग), नही (सोहन, भरत, वेंक), नाहिँ। पूर्व श्रुति (याज्ञिक), सुफरक श्रुति (जग), फुरत श्रुति (हरि), फरत श्रुति (राधा), फरक अस्तुति (साहु), करति श्रुत (सोहन), अतर प्रफुलित (गोकुल), अस्फुरत (दल), परक स्तुति (भरत); नहीँ श्रुति (ग्रिय), फरक कछु (मन्ना, तारा), फरक श्रुति। असि (याज्ञिक), औ (दल), × (गोकुल, खोज), अरु। पियलोचन (दल), तियलोयन (जोध, सोहन, समे, खोज, भरत, सभा), तियलोचन।

इसके अनतर 'मया' मेँ यह दोहा अधिक है—

बरन बास सुकमारता सब बिध रही समाय।
पखरी लगे गुलाब की गात न जानी जाय ॥

[१७५] उनमिलन (साहु), अनमीलिती (खोज), उनमीलत (जग, सोहन, समे, वेंक), उन्मीलित। तुव (पूना), जब (वेंक), तन (याज्ञिक, राधा, सभा), तब। आनि (जग), मान (खोज), जान (वेंक), जानि (साहु, मया, भवा), मानि। छियैँ (याज्ञिक), छुर्यौँ (जग), छिपै (सोहन), छीव (साहु), छुयौ (खोज), परसि (मया, भवा), छुऐ (भरत, ग्रिय), छुवै (राधा, गोकुल, सभा), छुएँ। पिछाते (मया), पिछाने (भवा), परत। हैँ आनि (समे), हो जान (खोज), पहँचान (वेंक), मानि (मया, भवा), पहिचानि (याज्ञिक, सोहन, दल, ग्रिय), है जानि।

[१७६] यहै बिसेषर (खोज), यह बिसेषक (ग्रिय), यह बिसेष (समे, मया, पूना, भवा, सभा), यहै बिसेष। ×(खोज), बिसेष। × (साहु), सुनि (गोकुल), जब (शिव), पुनि। जो (शिव, ग्रिय), जु। समाता (साहु), समता। मान (मया, भवा), माँझ। जान (मया, भवा), साँझ।

गूढ़ोत्तर कछु भाव तेँ उत्तर दीन्हे होत।
उत बेतसतरु मैँ पथिक उतरन लायक स्रोत ॥१७७॥
चित्र प्रस्न उत्तर दुहूँ एक बचन मैँ सोइ।
मुग्धा तिय की केलिरुचि गेह कोन मैँ होइ ॥१७८॥
सुच्छम परआसय लखैँ सैनन मैँ कछु भाइ।
मैँ देख्यो उहिँ सीसमनि केसनि लियो छिपाइ ॥१७९॥
पिहित छिपी पर बात कौँ जानि दिखावै भाइ।
प्रातहि आए सेज पिय हँसि दाबत तिय पाइ ॥१८०॥

---

[१७७] 'मया' मैँ दूसरा दल नहीँ है। गुढोत्तर (जोध, जग, राधा, साहु, गोकुल, खोज, भरत), गूढोत्तर। दीन्हौ (सोहन, प्रिय), दीनो (साहु, गोकुल, भरत, वेंक), दीने। उन बेतनि (शिव), उन केतक (सोहन−), उत केतक (सोहन+), उठि बेतस (भरत), उत बेतस (याज्ञिक, सभा, मन्ना, तारा, वेंक), उन बेतस। उत्तर (साहु, खोज, भरत), उतरन। सोत (शिव−), गोसा (शिव+), स्रोत।

[१७८] 'दल' मैँ प्रथम दल के बदले यह है—

दूजो प्रस्नोत्तर जबै एक बचन मैँ सोइ।

'याज्ञिक' मैँ यह दोहा स० १७९ पर है। दुहून (जग), बहुत (मया, भवा), दुवो (सोहन, गोकुल, वेंक), दुहूँ। प्रस्न मैँ (याज्ञिक), बचन सौँ (जग), बचन मैँ। हो (साहु), सोत (सभा), होइ (याज्ञिक, सोहन), सोइ। मुग्ध त्रिया (सोहन), मुग्धा तिय। रति (याज्ञिक), रुचि। कोन भोन (याज्ञिक, सोहन, वेंक), गेह कोन। जोइ (याज्ञिक), होत (सभा), होइ।

[१७९] 'याज्ञिक' मैँ यह दोहा स० १७८ पर है। 'गोकुल' और 'मया' मैँ यह नहीँ है। आसा (साहु), आसय। लिये (वेंक), लखैँ। करै त्रिया (हरि), करै कृपा (दल), सैनन मैँ। उनि (हरि), यहि (दल), वह (याज्ञिक, सोहन, समे), उहिँ। लइ (वेंक), लयो (याज्ञिक, जोध, राधा, समे, दल, खोज, भरत), लियो। छपाइ (हरि, सोहन, समे, शिव, दल, सभा, वेंक, प्रिय), छिपाइ।

[१८०] 'मया' मैँ यह दोहा नहीँ है। छमीँ (याज्ञिक), छिपा (पूना), छिपी (जोध, जग, गोकुल, खोज, भरत, भवा, तारा), छपी।

ब्याजउक्ति कछु और ब्रिधि कहै दुरै आकार।
सखि सुक कीन्ह्यो करम ये मानिक जानि अनार ॥१८१॥
गूढउक्ति मिस और कै कीजै परउपदेस।
काल्हि सखी हौं जाउँगी पूजन देव महेस ॥१८२॥
स्लेष छप्यो परगट किये बिब्रतोक्ति है ऐन।
पूजन देव महेस कौं कहति दिखाए सैन ॥१८३॥

पर्त्रस्तु (याज्ञिक), × बात (जोध), परबस्त (सोहन), बर बात (गोकुल, खोज), पर बात। हौं (पूना), कौं। आनि (मन्ना), जाति (सोहन, दल), जानि। बतावै (हरि), जनावै (दल), दिखावै। भाव (गोकुल, तारा), भाइ। सेझ पिउ (जोध), सेज पिय। दाबन (समे), दाबै (सभा), दाबत। पिय (याज्ञिक, सोहन), तिय। पाव (गोकुल, तारा), पाइ।

[१८१] ब्याजोक्ति जु (मया, भवा), ब्याजोकति (जग, हरि, दल), ब्याजउक्ति (राधा, गोकुल, समे, भरत, सभा, वेंक, ग्रिय), ब्याजोक्ती। दुर्यौ (मया, भवा), दुरै। कीनि (भरत), कीलो (मया), कीन्ह्यो (भवा, ग्रिय), कीन्हे (सोहन, शिव, दल), कीने। काम (याज्ञिक), करम (जोध, हरि, खोज), कर्म। पै (साहु), जे (सभा), यह (मया, भवा, ग्रिय), ये। लषि दार्यौ मनिहार (हरि), मनि को जानि अनार (सभा), दतनि जानि अनार (मन्ना, तारा, ग्रिय), मानिक जानि अनार।

[१८२] सु (जोध), सो (तारा), मिस। और कों (समे), × के (मया), आन के (मन्ना), और कै। जब (वेंक), पर। सषी मै (हरि), सषीहूँ (जोध, समे, भरत), सखी हौं। गवरि गनेस (खोज), देव महेस।

[१८३] 'हरि' में दूसरे दल के बदले यह है—

बृष भाजौ परषेत सौं कहत बतायैं सेन।

'तारा' में दूसरे दल के बदले यह है—

सिव पूजत कहि सैन मैं अबैं बसो हियधाम।

'शिव' में यह दोहा स० १८४ पर है। छिप्यौ (जोध, सोहन, समे, मया, खोज, पूना, भरत, भवा), छप्यो। कीनौं प्रगट (याज्ञिक),

यहै जुक्ति कीन्हें क्रिया मर्म छिपायो जाइ।
पीव चलत आँसू चले पोंछत नैन जँभाइ ॥१८४॥
लोकउक्ति कछु बचन जो लीन्हे लोकप्रबाद।
नैन मूँदि षटमास लौं सहियै बिरहबिषाद ॥१८५॥

कीन्यो प्रकट (ग्रिय), परगट कर्यौ (पूना), परगट कियो (साहु, गोकुल, दल), परगट किये। नाम (तारा), ऐन। कत (सभा), करति (वेंक), कहत। बतावति (जग), दिषाजे (राधा), दिषावै (साहु), बताऐ (सोहन), सिषावत (मया); सिषावैं (पूना), दिषायौं (भरत), दिषावत (भवा), दिखाए।

[१८४] 'हरि' में इसके स्थान पर यह दोहा है—

जुक्ति क्रिया करि ठगै अनि मर्म छपै तहँ जानि।
लिषत चित्र पिय कौं लषै फूल धनुष दिय पानि ॥

'शिव' में यह दोहा स० १८३ पर है। पहरे (याज्ञिक), वहौ (सोहन), अहै (शिव), कहे (पूना), वहै (मन्ना), यहै। कीन्हें (याज्ञिक, जोध, सोहन, शिव, दल, मन्ना, तारा, ग्रिय), कीनै। धर्म (जग, साहु, मया, भवा), कर्म (राधा, सोहन, दल, खोज, पूना, सभा, वेंक), मर्म। छपायै (सोहन, भरत), छपायौ (शिव, दल, सभा, वेंक, ग्रिय), छिपायो। पीय चलन (मया), पीव चलत (जोध, राधा, सोहन, समे, दल, खोज), पीय चलत। अँसुआ (ग्रिय), आँसू। चलो (भरत), चले। पूछत (मन्ना, तारा,), पोंछत। लजाइ (दल), जम्हाइ (याज्ञिक, सोहन, समे), जँभाइ।

[१८५] 'समे' में यह दोहा नहीं है। लोकोकति (जग, हरि, पूना, भरत), लोकउक्ति (राधा, दल, सभा, वेंक, ग्रिय), लोकोक्ति। जो (साहु), कछु। बैन (शिव), बचन। कछु (साहु), मौ (खोज), ज्यौं (पूना), से (भवा), सो (मया, ग्रिय), मैं (सोहन, वेंक), ते (याज्ञिक, शिव, दल), जो। लीन्हे (ग्रिय), लीजै (सोहन, शिव, मया, दल, वेंक), लीनैं। बिबाद (पूना), प्रबाद। आषि (पूना), नैन। दस्क मास (याज्ञिक), षटमास। वौ (भवा), हौं (जग, सोहन), यौं। (याज्ञिक, साहु, गोकुल, भरत, मन्ना), ये। लोक (जग, साहु), बिरह। बिबाद (हरि), बिषाद।

लोकउक्ति कछु अर्थ सों सो छेकोक्ति प्रमानि ।
जो गायन कों फेरिहै ताहि धनजय जानि ॥१८६॥

बक्रउक्ति स्वर स्लेप सों अर्थ फेर जो होइ ।
रसिक अपूरब हौ पिया बुरो कहत नहिं कोइ ॥१८७॥

सुभावोक्ति वह जानिये बर्नन जातिसुभाइ ।
हसि हसि उझकति फिरि हसति मुँह मोरति इतराइ ॥१८८॥

---

[१८६] 'हरि' में द्वितीय दल के बदले यह है—

सषि भुजग के चरन कौ लषै भुजग सु मानि ।

छोकउक्ति (राधा), छेकोकति (पूना), लोकोक्तिहि (साहु, मन्ना, तारा), लोकउक्ति (दल, सभा, वेंक, ग्रिय), लोकोकति (जोध, जग, हरि, समे, मया, भरत), लोकोक्ति । अर्थ तैं (याज्ञिक, दल), अर्थ सों । छोकोक्ति बल (गोकुल), छेकोउक्ति सो (दल), छेकोकति (हरि, सोहन), छेकोक्ति जिय (मन्ना, तारा), सो छेकोक्ति । है मानि (याज्ञिक), है जानि (हरि), ही मानि (सोहन), जानि (दल), प्रमान (वेंक), प्रमानि (जोध, खोज, ग्रिय), मान (मया, मन्ना, तारा), मानि । घेरिहै (जग), फेरिहै । सोही (गोकुल), ताहि । धनतर (खोज), धनजय । मानि (साहु, दल), जान (मन्ना, तारा, वेंक), जानि ।

[१८७] बक्रोकति (जग, साहु, पूना, भरत), बक्रउक्ति (हरि, राधा, दल, सभा, वेंक, ग्रिय), बक्रोक्ति । सूर (जग), अ (सोहन), × (दल, वेंक), कछु (मन्ना, तारा), स्वर । स्लेष मैं (गोकुल), फेर सो (मया), विश्लेष सौं (वेंक), स्लेष सौं । फिरे तब (हरि, दल), फेर जब (सोहन, वेंक), फेर जौ । एक (याज्ञिक), रसिक । होय पिय (राधा), हौं प्रिया (दल), हौ पिया । बुरो कहै नहिं (दल), बूरौ कहत न (मया, भवा, तारा), बुरो कहत नहिं ।

[१८८] तहँ जानिए (हरि), यह जानिए लै (राधा), बरनन बिषै (दल), वह जानिए (मन्ना), यह जानिहैं (ग्रिय), वह जान ले (जोध, तारा), यह जानि ले (साहु, समे, शिव, खोज, पूना, भरत, सभा), यह जानिये । बर्नत (पूना), बरनै (हरि, दल), बर्नन । नात

भाविक भूत भविष्य जो परतिछ होइ बनाइ।
बृदाबन मैं आज वह लीला देखी जाइ॥१८६॥
उपलच्छन दै सोधिये अधिकाई सु उदात।
तुम जाके बस होत हौ सुनव तनिक सी बात॥१६०॥

(पूना), जानि (समे, मया, भवा), जाति। हसि देषति (शिव) हसि हसि। देषति फिरि हँसति (हरि), देषति झुकति (सोहन), बोलति फिरि झुकति (गोकुल), देषत फिरि कहत (समे), फिरि झुकति फिरि (शिव), उझकति फिर हँसति (मन्ना), झुकति फिरि हसति (तारा), फिर देखति झुकति (वेंक), देषृत फिरि मुकर (जग, साहु, मया, भवा), देषति फिरि झुकति। मुख (वेंक, ग्रिय), मुँह। मूदति (दल), मोरति। सतराय (हरि), इतराइ।

[१८६] 'गोकुल' में यह दोहा स० १६० पर है। कौं (हरि), जो प्रगटै (वेंक), परतिछ। कहत (हरि), हू जु (सोहन), होत (खोज), होहि (भरत), कहै (दल, ग्रिय), होइ। गनाइ (याज्ञिक), बषानि (सोहन), बताइ (तारा, ग्रिय), बनाइ। यह (शिव), वह। देखो (मन्ना), देखहु (तारा), देखी। आइ (गोकुल), जाइ।

[१६०] 'हरि' और 'दल' में इसके बदले यह दोहा है—

है उदात सपतिचरित स्लाघ्यचरित अति अग।
सगर सिव अर्जुन कियो याके सिषर अभग॥

['दल' में 'स्लाघ्यचरित अति' के स्थान पर 'सुभ उपलच्छन', 'सगर' के स्थान पर 'सँग रन' और 'अभग' के स्थान पर 'निसग' है।]

'गोकुल' में यह दोहा स० १६१ पर है। करि (ग्रिय), दै। साधियौ (साहु), साधियै (ग्रिय), सोधि मैं (मया, भवा), सोधिये। अधिकाई (जोध, मया, भवा, मन्ना, तारा, ग्रिय), अधिकारी। सब (ग्रिय), तुम। है (जग, वेंक, ग्रिय), हौ। सुनव (सोहन, तारा), सुनी (मया, भवा), सुनैं। तनकी (जोध), नतन सी (समे), न कैसी (तारा), तनक सी।

अलंकार अत्युक्ति यह बरनत अतिसय रूप।
जाचक तेरे दान तेँ भए कल्पतरु भूप ॥१६१॥
सो निरुक्ति जब जोग तेँ अर्थकलपना आन।
ऊधो कुबजाबस भए निर्गुन वहै निदान ॥१६२॥
सो प्रतिषेध प्रसिद्ध जौ अर्थ निषेध्यो जाइ।
मोहनकर मुरली नहीँ कछु इक बड़ी बलाइ ॥१६३॥

---

[१६१] 'हरि' मैँ प्रथम दल के बदले यह है—

अदभुत झूठी बात जहँ बरनैँ अतिसय रूप।

'दल' मैँ प्रथम दल के बदले यह है—

दान सूर अत्युक्ति है बरनन अतिसै रूप।

'याज्ञिक, मया, भवा' मैँ यह दोहा स० १६२ पर है। यह उक्ति अति (याज्ञिक), अत्योक्ति यह (जग), अत्युक्त यहै (साहु), अतियुक्ति सो (शिव), अन्युक्ति है (पूना), अत्युक्ति वह (मन्ना, तारा, वेंक), अत्युक्ति यह। बरनन (याज्ञिक, जग, राधा, सोहन, गोकुल, समे, मया, खोज, भवा), बरनत। सकल तरु (राधा), सकल जग (सभा), कल्पतरु।

[१६२] 'याज्ञिक, मया, भवा' मैँ यह दोहा स० १६१ पर है। 'जग' मैँ प्रथम दल नहीँ है। जुक्ति सौँ (हरि), जोग सौँ (गोकुल, दल), जोग तेँ। उद्धव (राधा, दल, सभा, ग्रिय), ऊधो। परयौँ (भरत), भयो (जोध, हरि, गोकुल, समे, पूना, सभा), भए। भये (जग, साहु), यहै (हरि, शिव, मया, मन्ना), वहै।

[१६३] 'हरि' और 'दल' मैँ द्वितीय दल के बदले यह है—

तछिन बान बिनोद हे नहीँ जुवा यह बाय।

['दल' मैँ 'नहीँ जुवा यह बाय' के स्थान पर 'तही सुचौ परिन्वाइ' है।] जो प्रतिषेध (साहु), सो प्रतिषेव। निषिद्ध (हरि), निषेध (दल), बिसेष (वेंक), प्रसिद्ध। ह (साहु), ज्यौँ (दल), जब (वेंक), जो निषेधे (मया, भवा), निषेध्यो। नही कछुक (जोध, साहु, तारा), नहीँ है (याज्ञिक, सोहन, वेंक, ग्रिय), नही कछु। कछु वह बड़ी (सोहन), अक बड़ी (पूना), बड़ी जू (तारा), बड़ी (जोध, साहु), इक बुरी (गोकुल, खोज), एक बड़ी (शिव, मन्ना), कछु बड़ी (याज्ञिक, वेंक, ग्रिय), इक बड़ी।

अलकार बिधि सिद्ध जो अर्थ साधिये फेर।
कोकिल है कोकिल जबै रितु मैं करिहै टेर ॥१६४॥
हेत अलकृत दोइ जब कारन कारज संग।
कारन कारज ये जबै बस्तु एक ही अग ॥१६५॥
उदित भयो ससि मानिनी मानमिटावन मानि।
मेरी बृद्धि समृद्धि यह तेरी कृपा बखानि ॥१६६॥

५

आबृति बरन अनेक की दोइ दोइ जब होइ।
है छेकानुप्रास सुर समता बिनहू सोइ ॥१६७॥

---

[१६४] 'सभा' मैं द्वितीय दल नहीं है। सिधि ज्यौं (याज्ञिक), सिद्धि जब (वेंक, ग्रिय), तबे (तारा), जबै। रहै काककुल घेरि (पूना), रितु मैं करिहै टेर।

[१६५] होहि (जग, भरत), होय (याज्ञिक, साहु, सोहन, मया, भवा, मन्ना, तारा, वेंक), दोइ। हैं (हरि), बिधि (दल, पूना), जब। कारज कारन (मया, दल), कारन कारज। कारज कारन (राधा, समे, दल, खोज, सभा), कारन कारज। दोइ जब (गोकुल), पै जबै (साहु), एक जब (याज्ञिक, ग्रिय), ए सबै (मया, भवा); ये जबै। लहत (हरि), बसत (भरत), बस्तु। एकता (हरि), एक ही। सग (मया), रग (गोकुल, दल), अग।

[१६६] प्रान (भरत), मान। मिटावन जानि (हरि), मिटायो मानि (दल), मिटावत मान (सभा), मिटावत जानि (ग्रिय), मिटावन मानि। मेरी बृद्धि (मन्ना), मेरी सिद्धि (ग्रिय), मेरी रिद्धि (सोहन, दल, भवा, वेंक), मेरे सिद्धि (याज्ञिक, जग, साहु, भरत), मेरे रिद्धि। ए (हरि), यहै (खोज), यह।

[१६७] 'हरि' मैं इसके बदले यह दोहा है—

जहा सुवर्न अनेक की इक बिर समता होय।
है छेकानुप्रास सो कहत सुकबि सब कोय॥

'दल' मैं दोहा स० १६७ से २११ तक नहीं है। ही (मया, भवा); की। दई दई (सोहन), दोइ दोइ। सी (याज्ञिक), इह सुर

अंजन लाग्यो है अधर प्यारे नैनन पीक।
मुक्तमाल उपटी प्रगट कठिन हिये पर ठीक ॥१६८॥

सो लाटानुप्रास जब पद की आवृत्ति होइ।
सब्द अर्थ के भेद सौं भेद बिनाहू सोइ ॥१६६॥

पीय निकट जाके नहीं घाम चाँदनी ताहि।
पीय निकट जाके सखी घाम चाँदनी ताहि ॥२००॥

(राधा), से (सोहन), सुबर (समे—), सर (साहु, सभा) सो (जग, पूना, मन्ना), स्वर (खोज, भरत, वेंक, ग्रिय), सुर। बितु (राधा), हू बिन (समे), बिनही (मया, भवा), बिनहू। कोइ (जग), होइ (गोकुल), सोइ।

[१६८] 'हरि' में यह दोहा नहीं है। 'जोध' में द्वितीय दल नहीं है, उसके स्थान पर दोहा स० १६६ का द्वितीय दल लिखा है। होय (जोध), पीक। लपटी (पूना), उलटी (साहु, समे, मन्ना, तारा, प्रिय), उपटी।

[१६६] 'हरि' में इसके बदले यह दोहा है—

अर्थसहित जहँ पद फिरै भावभेद जहँ होय।
सो लाटानुप्रास है भाषत कबि सब कोय ॥

पद कौं (याज्ञिक), पद की। भेद (मया, पूना, भरत), के भेद। बिनाही (मया, भवा), बिनाहू। कोइ (जग), जोइ (राधा, सभा), सोइ।

[२००] 'हरि' और 'समे' में यह दोहा नहीं है। पिया (सोहन), पीय। सही धाम (गोकुल), सषी धाम (भवा), नही धाम (जोध, राधा), नहीं घाम। आहि (गोकुल, वेंक, ग्रिय), ताहि। जाके सदा (भरत), जाके नहीं (सोहन, खोज, सभा, वेंक, ग्रिय), जाके सखी। धाम (जोध, राधा), घाम। चाँद सी (पूना), चाँदनी। याहि (तारा), वाहि (जग, पूना, मन्ना), आहि (जोध, साहु, शिव, भरत, वेंक, ग्रिय), ताहि।

जमक सब्द को फिरि श्रवन अर्थ जुदैँ सो जानि।
सीतल चदन चद नहिँ अधिक अगिन तैँ मानि ॥२०१॥
प्रति अच्छर आवृत्ति बहु वृत्ति तीनि बिधि मानि।
मधुर बरन जामैँ सबै उपनागरिका जानि ॥२०२॥
दूजैँ परुषा कहत सब जामैँ बहुत समास।
बिन समास बिन मधुरता कहैँ कोमला तास ॥२०३॥
अति कारी भारी घटा प्यारी बारी बैस।
पिय परदेस अँदेस यह आवत नाहिँ सँदेस ॥२०४॥

[२०१] 'हरि' मैं इसके बदले यह दोहा है—

जमक सब्द ओही रहै अर्थ जुदो ह्वै जाय।
जलद जलद आयो सषी हस हस न लषाय ॥

अर्थ कौ (गोकुल), सब्द सो (पूना), सब्द सुनि (जग, साहु), सब्द को। सुदो सो (साहु), जुदे से (भरत), जुदू जो (मया, भवा), जुदौ सौ (याज्ञिक, जग, राधा, सोहन, गोकुल, पूना, सभा), जुदैँ सो। आगि ते (याज्ञिक, सोहन), अगिन तैँ (जग, राधा, साहु, गोकुल, शिव, खोज, पूना, सभा), अग्नि तैँ।

[२०२] 'हरि' और 'दल' मैं दोहा स० २०२ से २११ तक नहीं हैं। ते (सोहन, वेंक), कहूँ (मन्ना, तारा), बहू (जोध, समे, खोज), बहु। जान (मया), जानि (भवा), होय (वेंक), मान (मन्ना, तारा), मानि। बचन तामैँ (याज्ञिक), बचन जमे (सभा), बचन जामे (गोकुल, शिव, मया, भवा), बरन जामैँ। सदा (सोहन, भरत), सबै। उपनागरका (सोहन), उपनगरका (मया), उपनागरिकी (पूना, भरत), उपनागरिका। मान (मया), मानि (भवा), सोय (वेंक), जान (मन्ना, तारा), जानि।

[२०३] दूजी (जग, सोहन), दूजैँ। हैँ (जग, सोहन, शिव, मया, भवा, वेंक), सब। हू (मन्ना), बहु (जोध, तारा), जिहि (मया, भवा), बिन। कह (मया), कहि (भवा), कहत (सोहन, वेंक), कहै। लास (जोध), बास (पूना), भास (भरत), तास।

[२०४] 'जग' मैं यह दोहा स० २०५ पर है। भारी कारी (जोध, मन्ना, तारा), कारी भारी। बिदेस (गोकुल), परदेस। पावति (जग, सोहन, वेंक), आवत। थीहि (मया), नाहिँ।

दोवा

दोहा

(दोहा)

मुक्तमाल हिय स्याम कैं देखी भावत नेन।
छबि ऐसी लागत मनौ कालिंद्री मैं फेन ॥ १ ॥
मुग्धा तन त्रिबली बनी रोमावलि कैं सग।
डोरी गहि बैरी मनौ अब ही चढयो अनग ॥ २ ॥
जल सूकै पुहमी जरै निसि यामैं कृस होत।
ग्रीषम कूँ ढूँढत फिरै घन लै बिजुरीजोत ॥ ३ ॥
रबि दरसै पकज खुलै उडै भौंर इकबार।
हिय तैं मनौ बियोग के निकसैं बुझे अँगार ॥ ४ ॥
पुहमि बियोगिनि मेह की धौरी पीरी जोत।
जरि जरि कारी पीय बिन मिलैं हरीरी होत ॥ ५ ॥
तरुनायो अरु बालपन है मध्या कैं गात।
रबि ससि दोनू देखिये मानौ पून्यो प्रात ॥ ६ ॥
चित मैं तौ कछु चोप है नूतन लाग्यो नेह।
कहूँ दुरै देखै कहूँ कहूँ दिखावै देह ॥ ७ ॥

---

[२] [बैरी], पैरी (जोध)।
[३] [यामैं], ज्यामे (जोध)।
[४] [रबि], रव (जोध)। [इकबार], कबार (जोध)।
[७] [नूतन], निपटन (जोध)।

जोबनमद तन मैं चढ़्यो तूँ इहि जानत नाहिँ ।
यह अचिरज तोकौं सबै देखतहीँ छकि जाहिँ ॥ ८ ॥
सुरतअंत तियबदन पर श्रमजल के कन सेत ।
तिलकलीक फैली तऊ सोभा दूनी देत ॥ ६ ॥
कुंभ उच्च कुच सिव बने मुक्तमाल सिर गग ।
नखछत ससि सोहै खरो भस्म खौरि भरि अग ॥१०॥
चलन समै तिय को कियो समाधान पिय जाइ ।
नैक हँसी बोली नहीँ मरिबो दयो जनाइ ॥११॥
तुम बिछुरेँ जीऊँ नहीँ करिये महा गनेस ।
मोहिँ दई दीजै जनम ह्वाँहि पीय के देस ॥१२॥
मैँ समुझी रातैँ भए तातैँ ये द्रिग रात ।
मोहन कैँ मुह तैँ कहूँ सुनी गवन की बात ॥१३॥
निसि कारी भारी घटा निपट अकेली बाम ।
मो सँग प्यारे नेह अरु पच बान लिये काम ॥१४॥
निसि कारी प्यारी चली करत प्रगट दुति गात ।
कचन री लागत मनौ कसौ कसौटी जात ॥१५॥
नेह त्रिछ्छ बोयो द्रिगनि बैन सुधारस पाइ ।
ग्रीषम से तन स्वास तेँ काहैँ देत जराइ ॥१६॥
अरुन बदन अति रोस सौँ सतर भौँह नहिँ धीर ।
लाल कवल ता पर मनौ भौँर रहे करि भीर ॥१७॥
सुधा भर्‌यो ससि सब कहैँ नई रीति यह आहि ।
चद लगै जु चकोर ह्वै बिस मारत क्यौँ ताहि ॥१८॥

---

[१०] [कुंभ], सभु (जोध) ।
[१२] [जीऊँ], जिवूँ (जोध) । [महा], म्हा (जोध) ।
[१३] [रात], जात (जोध) ।
[१५] [करत], करन (जोध) ।
[१६] [काहैँ], कहौँ (जोध) ।
[१८] [आहि], आय (जोध) । [क्यौँ ताहि], ये काहि (जोध) ।

(सोरठा)

पाय परैं जब पीय अवधि यह बली मान की।
तऊ न पघिरयो हीय कुच तें लीनी कठिनता ॥१६॥

(दोहा)

बात बनाएँ ना बनै पोछैं पिय अँगराग।
कहे देत हैं प्रगट ये भरे नैन अनुराग ॥२०॥

अधर अरुन देखत सदा घिरयो बरुन क्यों आज।
भली भई हरि तुम बने सबै स्यामता साज ॥२१॥

बलि साँची तुमही कहौ क्यौं करि राखौं धीर।
दतछ्छत तुव अधर पर पिय मेरैं तन पीर ॥२२॥

लाल भाल जावक लखैं तिरछैं चितयो बाल।
तीर माहिं मोती नहीं मानहु पोए लाल ॥२३॥

तुव मूरत नित ही लखै सखी रहत सब साथ।
करत दुरावन कों तिया धनुष फूल कै हाथ ॥२४॥

जब तैं नैनन पिय परे तब तैं कछु गति और।
मन खोयो तन सुध नहीं करी लगन इहिं त्यौर ॥२५॥

बिन परसे बोले बिना छिन छिन दरस सुजान।
बिरह यहै कहिये सखी बिछुरन मरन समान ॥२६॥

गति दै मति दै हेत दै रस दै सचु दै दान।
धन दै मन दै सीस दै नेह न दीजै जान ॥२७॥

---

[२०] [बात], बाल (जोध)।
[२१] [घिरयो], थिरयौ (जोध)।
[२२] [बलि], बल (जोध)। [दतछ्छत], दतछित (जोध)।
[२३] [तीर], बीर (जोध)।
[२४] [साथ], साध (जोध)।
[२५] [इहिं त्यौर], इह चोर (जोध)।
[२६] [यहै], इनै (जोध)।
[२७] [सचु], सुच (जोध)। [नेह], नट्ठ (जोध)।

तनक चुभै तन मैं कछू सो दुख देत अपार।
पियमूरत हिय मैं गडी (सु) कैसैं होत करार ॥२८॥
मो हिय दरपन तैं अधिक एक भाँति की जोत।
परत बिब तौ और को प्रतिबिंब तेरो होत ॥२९॥
नैन परे पियरूप मैं रूप पर्‌यो हिय माहिं।
बात परी सब कान मैं मोहिं परै कल नाहिं ॥३०॥

अथ नायका बरनन

बदन पहुप नित डहडह्यो कुच कलि पल्लव पानि।
तो उर उरझे रीझि ये भौंर लता ही जानि ॥३१॥
रबि सनमुखहू दुति बढ़ै तियमुख की नहि मद।
रहत सदा राका कहौं सम यह पूरन चद ॥३२॥
कब की चितवत चोप सौं बलि देखत कटि नाहिं।
सिंघ भजै डर हरिन कैं यह अचिरज जिय माहिं ॥३३॥
यह अचिरज देख्यो द्रिगनि कहि आवत कछु नाहिं।
बिजुरी मैं बारिज प्रगट जुगल मीन तिहि माहिं ॥३४॥
अति गोरैं तियबदन पर म्रिगमद बिंदी देत।
पूरन ससि वापैं मनौ सोभा माँगे लेत ॥३५॥
तरुनि सरोवर कुच कवल अलि ऊपर ये स्याम।
कैधौं सरबस आपनो धर्‌यो छाप करि काम ॥३६॥
मुख की उपमा और तैं ससि उपमा सरसात।
अमृत ही प्यावत मनौ जबै कहत हँसि बात ॥३७॥
नैन निरजन निगुन कटि यह निरलेप उरोज।
जानत हौं तोकौं कियो यह उपदेस मनोज ॥३८॥

---

[३१] [डहडह्यो], डहडयो (जोध)। [कलि], फल (जोध)।
[उर], पर (जोध)।
[३२] [सनमुखहू], सुनमुषहु (जोध)। [की नहि], कीन (जोध)।
[रहत], रहन (जोध)। [कहौं], कहूँ (जोध)।
[३४] [तिहि], तिय (जोध)।
[३५] [वापैं], आपैं (जोध)।

बार सुकावत गेह पर सिर पर डारैं बाँह।
मानहु ससि निकस्यो अबै छाँडि घटा की छाँह ॥३६॥
अबुज एक सुन्यो स्रवन बिधि यौं आसन कीन।
यह अचिरज देख्यो कवल चद उसीसौ दीन ॥४०॥
द्रिग कपोल पुनि अधर तुव परम नरम ये गात।
हिय कोमल तैं कठिन कुच यह अचिरज की बात ॥४१॥
तिय तुव नैनकटाछ्छ ये निकस जात तन पार।
बिस यह काहे देत है अजन बारबार ॥४२॥
करामात तोमैं प्रगट क्यों बस होहिं न लाल।
दै अजन खजन किये अबुज ही तैं बाल ॥४३॥
म्रिगमद बिंदू कहतहूँ बलि ललाट जिन देइ।
ससि कैं धोके राहु यहि मति कबहूँ गहि लेइ ॥४४॥
एक ओर तियबदनदुति पूरन ससि इक ओर।
भूलि भ्रमै इहि दुहुँन कैं दौरत फिरै चकोर ॥४५॥
चद बन्यो तो तन प्रगट बात अनोखी होइ।
रहत जुरे बिछुरत नहीं ये कुच चकवा दोइ ॥४६॥

अथ विरह

आसव की यह रीति है पीयत देत छकाइ।
यह अचिरज तियरूपमद सुध आए चढि जाइ ॥४७॥
पिक कुहुकै चातक रटै प्रगटै दामिनि जोत।
पिय बिन यह कारी घटा प्यारी कैसैं होत ॥४८॥

(सोरठा)

गरज करैं घनघोर बरसैं लोचन तीय के।
यहै अचभो मोर तन सूकै फूले बिरह ॥४६॥

---

[४१] [पुनि], फुनि (जोध)।
[४५] [भूलि], भुल्यो (जोध)। [चकोर], चिकोर (जोध)।
[४७] [पीयत], पियनु (जोध)।
[४८] [चातक], चाटक (जोध)। [दामिनि], दामन (जोध)।
[४६] [मोर], मोहि (जोध)। [बिरह], ब्रिह (जोध)।

(दोहा)

होत रहै दिन दिन हरयो बिरवा बिरही नेह ।
यह अचिरज जल नैन के सीचे सूकति देह ॥५०॥
प्रति कूँ मैं दीनो सबै तन मन नैन सरीर ।
अनदेबे मैं हिय रही बिछुरन ही की पीर ॥५१॥
पिय जब हँसि मारत हुतो तब सुख देती माल ।
देखि सखी वाकी दसा अब हिय सो नटसाल ॥५२॥
द्रिग तरसैं दरसैं बिना बिन परसैं कल नाहिं ।
सो प्यारो आवत सुन्यो थोरे द्योसन माहिं ॥५३॥

अथ सयोगिनि बरनन

तिसरी कटी भ्रुव डँडी द्रिग दोउ पला बनाइ ।
तोलत प्रीति दुहून की घटि बढि करी न जाइ ॥५४॥
मन चाहत है उड़ि मिलूँ तुम सज्जन पै धाइ ।
कहा कहौं जो पर नहीं पर बिन उड्यो न जाइ ॥५५॥

---

[५०] [बिरवा बिरही], बिरवानि रही (जोध) ।
[५२] [सो], होत (जोध) ।
[५५] [कहौं], कहूँ (जोध) ।

प्रबोध नाटक

प्रबोध नाटक

(कवित्त)

जैसैं मृगत्रिष्णा बिषैं[1] जल की प्रतीत होत
रूपे की प्रतीत जैसैं[2] सीप[2] बिषैं होत है।
तैसैं[3] जाकैं जानैं[4] बिन[4] जगत सति जानियत
जाकैं जानैं जानियत बिस्व सबै तोत है।
ऐसौ जो अखंड ग्यान पूरन प्रकासवान
निति[5] समसत्ति[6] सुध्ध आनँद उदोत है।
ताही परमातमा की करत उपासना हौं[7]
निसंदेह जानौ याकी चेतना ही जोत है॥ १॥

ऐसैं[1] मंगलपाठ करि सूत्रधार अपनो नटी बुलाई। 'यहँ हौं आग्या दीजै'। सूत्रधार बोल्यौ

(दोहा)

'महा बिबेकी ग्याननिधि धीरज मूरतिवान।
परम प्रतापी दानमति[2] नीति रीति कौं जान॥ २॥
तिन महाराज ने आग्या करी है कि ये हमारे सभा के लोक हैं।

---

[१] १–मैं (खोज); त्रिपैं (जोध); बिषैं (उदय)। २–जैसै सीप (जोध÷); जैसी सीप (जोध+); जैसैं सीप (उदय, खोज)। ३–जैसै (उदय); तैसै (जोध); तैसैं (खोज)। ४–जानैं बिन (जोध); जानैं बिन (उदय); बिना जाने (खोज)। ५–नित (जोध); नित्यहू (खोज); निचि (उदय)। ६–समसमि (जोध); समस्त (खोज); समचि (उदय)। ७–ही (जोध); है (खोज); हौं (उदय)।

[२] १–ऐसैं (उदय); ऐसैं (जोध); ऐसो (खोज)। २–अति (जोध, खोज); मति (उदय)।

तिनकैं लयैं प्रबोध नाटक[1] दिखावौ[2] ज्यौं इनकौं बिबेक होइ और मोह को नास होइ'।
तब नटी सोच करन लागी[3] कि[3] महाराज की सभा मैं औसै[4] औसै[4] सुभट बैठे हैं तिनकैं मन मैं सांति कैसैं आवै।
तितनैं[5] जमनका मैं काम[6] बोल्यौ[6] 'अरे पापी[7] अधम[7] नट हमारे प्रभु कौ नास बिवेक तैं क्यौं[8] कहत[8] है'।
तब सूत्रधार कछु भय लियैं नटी सौं बोल्यौ कि 'यह काम है और रतिहू संग[9] है याकौं मेरे बचन तैं क्रोध भयो है तातैं हमारो रहिबौ बनत नाहीं' यहै[10] कहिकै चल्यौ। तितनैं काम रति संग लियैं सक्रोध जमनका[11] कैं बाहर आइ बोल्यौ

(दोहा)

'ग्यानी पंडित ए[12] सबै जौं लौं[13] नेष्टाबान।
तौं लौं[14] ए नाहीं[14] परे मेरे उन पर बान॥ ३॥

और यह हौं[1] जानत हौं कि जो लौं[2] ए[2] मेरे बान हैं तौं लौं बिवेक कौं[3] कहा सामर्थ है और प्रबोध कैसैं होइगौ'।

---

[३] १–नाट (उदय); नाटक (खोज, जोध)। २–दिखावहु (खोज); दिखावो (जोध); दिखावौ (उदय)। ३–लागी (खोज); लागी कि (उदय, जोध)। ४–असे (जोध); असे २ (खोज); औसैं औसैं (उदय)। ५–तितनैं (जोध); तितनैं (उदय); तितै (खोज)। ६–काम बोल्यौ (जोध); बोल्यो (उदय, खोज)। ७–अधर्म (खोज); पापी अधम (उदय, जोध)। ८–को कहत (खोज); क्यौ करत (जोध); क्यौं कहत (उदय)। ९–संग (उदय, जोध); स×(खोज)। १०–यह (खोज, जोध); यहै (उदय)। ११–जमनका (उदय, खोज); ज××का (खोज)। १२–ए (उदय, जोध); यह (खोज)। १३–जो लो (जोध); जौं लौं (उदय); तौ लौं (खोज)। १४–जौ लौं यह नांहिन (खोज); तो लौ ए नाही (जोध); तौ लौं ए नांहीं (उदय)।

[४] १–ही (जोध); हौं (खोज); हौं (उदय)। २–जो लौं (खोज); जो लौं ए (जोध); जो लौं ए (उदय)। ३–कहौं (उदय);

रति बोली 'अहो तो राजा महामोह कौ यह[4] बिवेक बडो ही सत्रु है'। काम बोल्यौ 'तोकौं कहा बिवेक तैं भै[5] ऊपज्यौ[6] तूँ मेरौ धनुष और[7] बान फूलन के जानति है[8] पैं देवता और मनुष्य मेरे इन[9] बाननि की आग्या लोपिवे[9] कौं नाँहीं और तैं सुनी ही होइगी कि मेरे बाननि[10] ब्रह्मा इद्र चद्रमा[10] औरौ[11] तिनकौ[12] बिवेक कौं कैसो[13] नास कर्यौ तौ इन लोकन के बिवेक को नास करनो कहा है'।

रति बोली 'अहो यौं ही हैं पैं तऊ बौहौत[14] सहाय[14] जा सत्रु कौं होहिं[15] और जमनेमादिक से महाबलवान[16] मत्री होहिं[17] तातैं भय[18] उपजै ही'।

काम बोल्यौ 'हे प्रिया जे ए बिवेक के जमनेमादिक आठ मत्री कहे ते तूँ निस्चै जानि हमारे देखत हीं भाजैंगे और सुनि[19] मद मान मछ्छर दभ लोभ ए हमारे प्रभु के सेवक हैं तिनसौं जब जमनेमादिक से भाजैंगे तब हमारे प्रभु को मत्री अधर्म है ताकौं जाइ मिलैंगे'।

को (जोध), को (खोज)। ४–यह (उदय, जोध+), वह (जोध–), ⊙ (खोज)। ५–भय (खोज), मैं (जोध), भै (उदय)। ६–ऊपनौ (खोज), ऊपज्यो (जोध), उपज्यौ (उदय)। ७–अरु (खोज), और ए (जोध), और (उदय)। ८–हैं (उदय), है (खोज), ⊙ (जोध)। ९–इन बाननि की आग्या लोपस (जोध), इन बाननि की आग्या लोपिवे (उदय), बान लोपने (खोज)। १०–बान इद्र चद्रमा ब्रह्मा (खोज), बाननि ब्रह्मा इद्र चद्रमा (उदय, जोध)। ११–और ही (खोज), औरौं (जोध), औरौं (उदय)। १२–अनेक के (खोज), तिनके (उदय, जोध)। १३–कैसो (जोध), कैसौ (उदय), ⊙ (खोज)। १४–बोहोत सहाय (जोध), बौहौत सहाय (उदय), बेवसहायक (खोज–), बोत सहायक (खोज)। १५–होइ (खोज), होहि (जोध), होहिं (उदय)। १६–महाबलवान (उदय, जोध), महाबली (खोज)। १७–होइ (खोज), होहि (जोध), होहिं (उदय)। १८–भय (उदय, खोज), मैं (जोध)। १९–सुनि (उदय), सुनी (जोध), ⊙ (खोज)। २०–बोली अहो

रति बोली[२०] 'अहो[२०] मैं सुन्यौ है जु[२१] तुम्हारौ और बिबेक कौ उतपत्तिस्थान[२२] एकै है'।[२२] काम[२३] बोल्यौ 'एक[२४] उतपत्तिस्थान[२५] कहा कहावै हमारौ अरु बिबेक को एकै जु[२६] पिता[२६] हैं। सुनि परपरा तौ कहा कहाँ।[२७] पैं दाँख मन कैं दोइ स्त्री[२८] हैं। एक तौ[२९] प्रवृत्ति एक निवृत्ति। प्रवृत्ति तैं उपजे तिनकैं मोह प्रधान है। अरु[३०] निवृत्ति तैं[३१] उपजे तिनकैं विवेक[३२] प्रधान है। ऐसैं ए द्वै कुल उपजाइ सकल बिस्व उपजायौ'।

रति बोली 'अहो जौ[३३] यौ[३] है तो तुममें उनमें ऐसौ बिरोध[३४] काहे तैं। काम बोल्यौ 'यह[३५] सब जगत हमारे पिता कौ उपजायौ है। ताकौं हम नाकैं चलावन लागे। तब पिता हमकों प्यार करिकै कह्यो तूं[३६] मोकों अति प्रिय है। ऐसें[३७] ही जगत व्यौपार चलावौ। तब उनको चलन अलप रह्यौ। तातैं वे पापी पिता कों अरु हमकों निरमूल करिबे[३८] कौं भए'।

तितनैं जमनका में बिवेक[३९] बोल्यौ 'अरे दुष्ट हमही कौं[४०] पापकारो

(उदय, जोव), बो × (खोज)। २१-जु (उदय, जोव), ⊙ (खोज)। २२-उतपतिस्थानक एकैं हैं (उदय, जोध), उ×क एक ही हे (खोज)। २३-काम (उदय, जोव), तब काम (खोज)। २४-ए (जोध), एक (उदय, खोज)। २५-स्थानक (खोज, जोध), स्थान (उदय)। २६-एकैं जु पिता (उदय, जोव), पिता एक ही (खोज)। २७-परंपरा तो कहा कहा (जोव), परपरा तो कहा कहो (उदय), पर, ग्रह्या (खोज)। २८-स्त्री (जोध), त्री (उदय, खोज)। २९-तौ (उदय), ⊙ (खोज, जोव)। ३०-अरु (उदय, जोव), ⊙ (खोज)। ३१-तैं (उदय, खोज),⊙ (जोव)। ३२-मोह (खोज–), बिमेकह (खोज±), बिवेक (उदय, जोव)। ३३-जो यो (जोध), जौ यौ (उदय),×अ (खोज)। ३४-बिरुध (जोध), बिरुद्ध (उदय), बिरोध (खोज)। ३५-ए (खोज), यह (उदय, जोध)। ३६-तुम (खोज, जोध), तूँ (उदय)। ३७-ऐसी (खोज), ऐसैं (उदय), ऐसैं (जोध)। ३८-करन कुँ (खोज), करिबे कों (जोध), करिबे कौं (उदय)। ३९-बिवेक (जोध),⊙(उदय, खोज)। ४०-कौं

कहत है। सुनि रे गुरु है ओर मत्त[41] है। कारजाकारज कों नहीँ जानत। कुमारग कों प्रवृत्त भयौ है। तौ ता गुरुहू[42] को त्याग कह्यो है। इन हमारैँ पिता नै अहंकार सों मिलि जगतपति हमारै पितामह[43] ताही कों बाँध्यौ'।
काम बोल्यौ रति सौं कह्यौ 'अहो प्रिये ए[44] हमारेँ कुल बिषैँ श्रेष्ठ बिबेक मति सहित आए हैँ। तातेँ हमारौ रहिबो बनत नाँही'।
यह कहि[45] चले। तब राजा बिबेक मतिसहित आए। राजा बिचारि कै रानि सौं बोले 'तैँ[46] या अनीति[46] के बचन सुने हमसौँ पापी कहत'।[47]
तब मति बोली 'अहो कहा अपनौ दोष लोग जानत हैँ'।
राजा[48] बोल्यौ 'देखि[49] यह हमारौ पितामह चिदानद निरजन जगतप्रभु ताकौँ[50] अहकारादिक नै अनेक पासनि बाँधिक दीनता कौँ प्रापति[51] कियौ। तातैँ ए पुन्यकारी और ताके छुड़ायबे कौँ उद्दिम करत हैँ। ते पापकारी अहो कहा काहये दुष्टन की बात'।
मति बोली 'जौ वह[52] आनदसुभाव है। नित्यप्रकासक[53] है। तौ इन अनीतियनि बाँधि[54] कैसैँ मोहसागर मैँ डारयौ'।
बिबेक बोल्यौ 'अहो जद्यपि पुरुष[55] बुधिवान धीरजवान है तऊ स्त्री[56]

(खोज), ‌ु (जोध), सौं (उदय)। ४१–दुर्मति (खोज), मत्त (उदय), मत (जोध)। ४२–गुरु (खोज), गुरुहू (उदय, जोध)। ४३–पितामह (खोज, जोध), पिता हम (उदय)। ४४–ए (उदय), ऐ (जोध), ⊙ (खोज)। ४५–कहि (उदय, जोध), कहिकैं (खोज)। ४६–आय नीति (जोध), या अनीति (उदय), या अनीती (खोज)। ४७–कहत (उदय, जोध), कहतु है (खोज)। ४८–तब राजा (खोज), राजा (उदय, जोध)। ४९–देष (जोध) देषि (उदय), ⊙ (खोज)। ५०–ताकों (जोध), ताकौं (उदय), तिनकौं (खोज)। ५१–पत (जोध), पति (उदय), प्राप्ति (खोज)। ५२–वह (उदय, जोध), है (खोज)। ५३–प्रकाश (उदय), प्रकास (खोज), प्रकासक (जोध)। ५४–बाँधि (उदय), बाधि कैं (खोज, जोध)। ५५–पुरष (उदय), पुरुष (जोध), ⊙ (उदय)। ५६–अस्त्री (खोज), स्त्री (उदय,

हर्यौ है मन जाकौ तिन सहजे[५७] धीरज छाड्यो तैसै ही यह माया कै सग तै आपनपौ[५८] भूल्यौ। तब माया याको[५९] अपनपो भूल्यौ जानि अपबस भयो जानि करतापनो मन कों पुत्र जानिकै दयौ'।

मति बिचारिकै बोली 'जेसी मा है तैसोई[६०] पुत्र है'।

राजा[६१] बोल्यौ 'अहौ मन ने राज पाइके करतापनै को भार अहकार पर धर्यौ। मैं जनम्यौ यह मेरो पिता है। यह मेरो कुल है। पुत्र मित्र सत्रु बधु हितू मेरे हैं। असैं यह अबिद्यानिद्रा बसि होय अनेक सुपन देखत है'।

मति बोली 'अहौ तौ[६२] असी दीर्घ निद्रा तैं याकौ[६३] जागिबौ केसैं होइगौ'। राजा लज्या करि रहे।

मति बोली 'तुम क्यों लजाइ रहे बोलत नाही'।

राजा बोले 'प्रिये स्त्रीन कौ हृदै ईरषासहित है। तातैं हौं सापराध आपकौं[६४] मानत हौं'[६५]। मति बोली 'पति की आग्या मैं नही ते स्त्री और है'।

राजा बोल्यौ 'उपनिषद मानिनी है। बोहौत दिना भये मैं वाकों छाडी है। तातैं सक्रोध है। तातैं साति अरु तूं[६६] जौ अनकूल होहु[६६] तौ उपनिषद देवी सौं[६७] मोकौं[६८] मिलावौ तौ प्रबोध को उदे होइ'।

मति बोली 'अहो असैं जौ[६९] पितामह छूटैं तौ मोकौं[७०] और[७०] कहा

जोध)। ५७—सहजैं (जोध), सहजैं (उदय), सहजै ही (खोज) ५८—आपनपौ (उदय, खोज), आपने (जोध)। ५९—कौ (खोज), याको (जोध), याकौ (उदय)। ६०—तैसोई (उदय) तेसोहि (जोध), तैसोही (खोज)। ६१—तब बिमेक राजा (खोज), राजा (उदय, जोध)। ६२—तो (जोध), तौकौं (उदय), याकौं (खोज)। ६३—याको (जोध), याकौं (उदय), ⊙ (खोज) ६४—करि (खोज), को (जोध), कौं (उदय)। ६५—है (खोज), हो (जोध), हौं (उदय)। ६६—अनुकूल तुँ होइ (खोज), जो अनकूल होहुँ (जोध), तूँ जौ अनकूल होहु (उदय)। ६७—को (जोध), कौं (खोज), सौं (उदय)। ६८—मोकौं (उदय), मोहुँ (खोज), मोसो (जोध)। ६९—जो (जोध), जौ (उदय), ⊙ (खोज)। ७०—मोकुँ और (जोध), मौकौं और

चहियै'। राजा बोल्यौ 'जो तूँ औसी[७०] हमारी[७१] आग्या मैं है तौ हमारे कारज[७२] सहजैं[७०] सिध्व भये। मुनि एक का बाँधि[७३] अनेक कियौ है और मृत्यु[७४] काँ प्रापति कियौ है। ते बव छुडाइ और ब्रह्म एकता काँ प्रापति[७५] करो। तब मैं हूँ प्रान त्याग प्रायस्चित करि ब्रह्म एकता काँ पाऊँ'।

औसैं कहिकैं चले। तितनैं दंभ आयौ। आयके बोल्यौ 'राजा महा मोह नै मोकौं आग्या दीनी[७६] है। पुत्र दंभ[७७] विबेक नै प्रबोध काँ उद्दिम कियौ है। उद्दिम कहा कियौ[७८] उन[७९] अपने सेवक ठौर ठौर पठए हैं[८०] प्रबोध करिबे काँ। तातैं तुमहूँ सावधान होहु वे[८१] कुलछय करिबे काँ उदित[८२] भये हैं। ताकौ जतन करौ पृथ्वी[८३] मैं परम मुक्तिछेत्र बारानसी है तातैं तूँ उहाँ जायकै[८४] जे मुक्ति[८५] के अरथ जतन करत हैं तिनकौं[८६] बिघन[८६] करि सो मैं अब[८७] बारानसी सब[८८] बसि[८८] करि अपनै स्वामी की आग्या सब[८९] सार्थक

(उदय), मोइ कौ (खोज)। ७१-औसी हमारी (उदय, जोध), हमारी औसी (खोज)। ७२-कार्ययहि (खोज), कारज सहजैं (उदय, जोध)। ७३-बाँधि (उदय, जोध), बाँधिकै (खोज)। ७४-म्रित (उदय, जोध), मृत्यु (खोज)। ७५-प्रापति (उदय), प्रस्चत करो (जोध), प्राप्ति करौ (खोज)। ७६-दई (खोज), दीनी (उदय, जोध)। ७७-पुत्र दंभ (उदय, जोध), ⊙ (खोज)। ७८-कि (खोज, उदय), कियौ (जोध)। ७९-क (जोध), उन (उदय, खोज)। ८०-हैं (उदय, खोज), ⊙ (जोध)। ८१-ते (खोज), वे (उदय, जोध)। ८२-उदित (उदय), उन्नति (खोज), उद्दिम (जोध)। ८३-पछि (जोध), पृथ्वी (खोज), पृथ्वी (उदय)। ८४-जाय कैं (जोध), जायकै (उदय), जाँइ इके (खोज)। ८५-मुक्त (खोज), मुक्ति (उदय, जोध)। ८६-तिनकैं बिघन (जोध), तिनकौं बिघन (उदय), तिनकै बेघु (खोज)। ८७-अब (उदय, जोध), ⊙(खोज)। ८८-सब बस (जोध), सब बसि (उदय), सर्व बस्य (खोज)। ८९-तैं

करी। औरौ[९०] सुनि जे मैं आप बसि[९१] किये[९२] ते कहा करत हैँ। बेस्या कैं घर मैं[९३] जाइ मदपान करि[९४] आनंद पावत हैँ[९५] औसे करमन[९६] बिषै लीन होइ रात[९७] काटत हैँ तेही फिरि दिन कौं दीखित होइ[९७] बैठत हैँ[९८]। कहत हैँ हम सरबग्य हैँ, बौहौत काल के अग्नि-होत्री हैँ, ब्रह्मग्यानी हैँ, तापस हैँ औसैं कहिकैं जगत कौं ठगत हैँ[९९]। उत देखै[१००] एक कोऊ पथिक[१००] गंगा उतरिकै इतही कौं आवत है सु[१०१] कैसौ लागत[२] है जानौ[३] अपनैं अभिमान तैं[४] जरैगौ कहा[५] त्रैलोक्य ग्रस लैगो[५] मेरे मन मैं औसैं आवत है दछन राढ़ देस तैं आयौ होइगौ[६] जौ हाँ तैं आयौ है हमारे पितामह अहंकार की कुसलात हौं या-सौं[७] पूछौंगौ'।

(खोज); सब (उदय, जोध)। ९०-और (जोध); और (उदय); ⊙ (खोज)। ९१-बस (जोध); बसि (उदय); वस्य (खोज)। ९२-किये (जोध); कीये (उदय); कीये हैँ (खोज)। ९३-मैं (जोध); मैं (उदय); ⊙ (खोज) ९४-करि (खोज, जोध); करी और (उदय)। ९५-पावत हैँ (उदय); पावत हो (जाध); पावति हैँ (खोज)। ९६-करम (जोध); करमन (उदय); कर्म (खोज)। ९७-रात काटत हैँ तेई फिर दिन कौं दीषित होय (जोध); रात काटत हैँ तेही फिरि दिन कौं दीषित होइ (उदय); ⊙ (खोज)। ९८-बेठंत हैँ (जोध); बैठत हैँ (उदय); बैठति हैँ (खोज)। ९९-हैँ (जोध); हैँ (उदय); है तेई फिर दिन दीष्यत होइ बैठति हैँ (खोज)। १००-देषै कोऊ पंथीकि (खोज); देष्यौ एक कोउ पछिक (जोध÷); देखै एक कोऊ पंथिक (उदय); देष्यौ एक कोउ पथिक (जोध+)।

१०१-सु (उदय); सो (खोज, जोध)। २-लाग (जोध); (लागत (उदय); लागति (खोज)। ३-जांने त्रैलोक्य (खोज); जांनो (जोध); जानौ (उदय)। ४-तैं (उदय); सुँ (खोज); सो (जोध)। ५-कहाँ त्रैंलोक ग्रस लेगो (जोध); कहा ग्रसैगौ (खोज); कहा त्रैलोक्य ग्रस लैगौ (उदय)। ६-है (खोज); होईगो जो हाँ ते आयो हैँ (जोध); होइगौ जौ हा तैं आयौ हैँ (उदय)। ७-सुँ (खोज); सौं (जोध); सौं (उदय)।

तेतनैं अहकार ऐसैं कहत आयौ 'अहो कहा देखत हौं सब जगत मूरख[8] है। कोऊ गुरु को मत[9] जानत है। मीमासा कोऊ जानत है तो वाचसपति के मत[10] की कहा चली। ए नरपसु कसे सुखी रहत हैं और ए वेदपाठ करत हैं तिन्हैं[11] अरथग्यान तौ है ही नहीं पाठ मात्र ही करत हैं ए तौ कहा हैं। और[12] ए सन्यासी हैं ते तौ भिख्याही[13] कौं लखें सन्यास लयौ है। ए बेदांत कहा जानैं'।

फरि हांसिके कह्यौ 'प्रतिछछ प्रमान करि सिध्य है जगत तासौं कहत है[14] मिथ्या है'। ऐसैं जौ बेदांतहू सास्त्र कहावत है तो बऊध मैं कहा अपराध है। ऐसैं हैं तासौं[15] बोलेहू अपराध[16] लागै'।

ऐसैं कहिके आगे चल्यो[17]। 'अहो यह[18] गगा कैं तट कौन कौन[19] आस्रम हैं जहां अनेक धोती उपरैना[20] तनावनि पर सूखत हैं और ठौर ठौर जग्य के पात्र मृगचर्म हैं तौं कोऊ दिन[21] ह्यां जाइ रहिये।'[21]

अब ह्यां[22] गयौ जाइ देख्यो भितका की तिलक ललाट बिषैं,[23] भुजा बिषै उदर बिषै उर[24] बिषैं[25] कठ बिषै ओष्ठ बिषै पीठ बिषै चिबुक

८–मूरष (खोज, जोध), तैं मूरष (उदय)। ९–मत्र (खोज), मत (उदय, जोध)। १०–मत की (उदय, खोज+, जोध), मत के मति की (खोज–)। ११–तिनके (खोज), तिन्हे (जोध), तिन्हैं (उदय)। १२–और (उदय, जोध), और ए (खोज)। १३–भिष्या (खोज), भिष्याहि (जोध), भिष्याही (उदय)। १४–यो मिथ्या है (खोज), हैं मिथ्या हैं (जोध+), है मिथ्या हैं (उदय), हैं (जोध–)। १५–जिनसौं (खोज), तासुं (जोध), तासौं (उदय)। १६–अपराध (उदय), पाप (खोज, जोध)। १७–चले (खोज), चल्यौ (उदय, जोध)। १८–ए (खोज), यह (उदय, जोध)। १९–को (जोध), कौंन कौ (खोज), कौन कौन (उदय)। २०–उपरैंना तनावनिय पर सूषत (जोध), उपरैना तनावनि पर सूपत (उदय)। २१–दिन ह्यां जाई रही इ (जोध), पुन्यात्मा है ताकौ आश्रम है तातैं कोऊ दिन इहाँ रहीयै (खोज), पुन्यातमा हैं तातें को आस्रम हैं तातैं कोऊ दिन ह्यां जाइ रही हैं (उदय)। २२–उहां (खोज), ह्यां (उदय, जोध)। २३–दयौ (खोज), बिषैं (उदय, जोध)। २४–उर बिषैं, (उदय, जोध), ⊙ (खोज)।

बिषैँ जंघ बिषै, कपोल बिषै, घूँटनि[२५] बिषैँ और[२६] जूड़ा बिषैँ कान बिषैँ[२७] कटि बिषैँ हाथ बिषैँ धरे हैँ। मूरतिवंत[२८] दंभ हैँ मानौँ[२९] ऐसौ बिचारिकै निकट गयौ जायकै कह्यौ 'कल्याण होहु'।

तब दंभ नै सिष्य की तरफ[३०] देख्यौ।

तब सिष्य बोल्यौ 'ब्राह्मन दूर ही रहौ। ऐसे आस्रम मैँ आइयै तब पाव धोयकै आइयै'।

तब अहंकार सक्रोध होइकै बोल्यौ 'हम कैसै मलिन देस मैँ[३१] आए हैँ तौ यौ[३२] कि अतिथि[३३] कै पाव धोइयै[३४] आसन दीजियै[३५]। ए उलटे मेरे पाव मोही पै धुलावन लागै'।

तब दंभ नै हाथ सौँ समाधान कियौ। करिकै सिष्य की ओर देख्यौ। तब सिष्य बोल्यौ कि 'प्रभु यौँ आग्या करत हैँ तुम[३६] दूर देस तैँ आये हौ[३७] बिदेसी हौ तातैँ हम तुम्हारौ कुल धर्म[३८] सील नाँही जानत'।

तब[३९] अहंकार बोल्यो 'कहा हमारौ कुल सील तुम अब[४०] जानौगे। गौड देस सब[४१] तैँ स्रेष्ठ[४२] ताहू मैँ राढापुरी फिरि भूरि स्रेष्ठिक तिनहू मैँ हमारे पिता स्रेष्ठ ताके[४३] पुत्र कुलीन स्रेष्ठ[४३] ऐसैँ कौन नही जानत

२५–घुटनि (खोज); घूघट (जोध); घूँटन (उदय)। २६–और (उदय, जोध); ⊙ (खोज)। २७–कांन बिषैँ (जोध); कान बिषैँ (उदय)। २८–डंभ मूर्त्तिवंत (खोज+); मूर्त्तिवंत (खोज÷); मूरतवंत (जोध) मूरतिवंत (उदय)। २९–मांनुं (जोध); मानौँ (उदय); ⊙ (खोज)। ३०–ओर (खोज); तरफ (उदय, जोध)। ३१–देस मैँ (जोध); देस मै (उदय); है सभै (खोज)। ३२–ऐसैँ (खोज); यो (जोध); यौ (उदय)। ३३–अतिथ (उदय, जोध); अतीत (खोज)। ३४–धोइयै (उदय, जोध); धायकै (खोज)। ३५–दीजै (खोज); दीजियैँ (जोध); दीजियै (उदय)। ३६–कि तुम (खोज); तुम (उदय, जोध)। ३७–आए हो (जोध); आये हौ (उदय); आ रहौ (खोज)। ३८–धर्म (उदय); ⊙ (खोज, जोध)। ३९–तब (उदय); ⊙ (खोज, जोध)। ४०–अब तुम (खोज); तुम अब (उदय, जोध)। ४१–सब (उदय, जोध); सब ही (खोज)। ४२–उत्तम (खोज); स्रेष्ठ (उदय, जोध)। ४३–ताके पुत्र कुलिन श्रेष्ठ (जोध); ताके पुत्र कुलीन स्रेष्ठ (उदय);

तिनहि मैं बुधि करि सील करि बिबेक[४४] करि धीरज करि आचार करि हौं[४४] सब तें[४५] स्रेष्ट हों'।[४६]
तब दंभ सिष्य की ओर[४७] देख्यौ।
तब सिष्य जलपात्र लै आयौ। पाव धोए[४८]।
तब अहंकार आगें आइ बैठ्यो[४९]।
तब दंभ सक्रोध होइ कह्यो[५०] दूर ही बैठो। बाइ करि प्रसेदकन आवत हैं[५१]।
तब अहंकार बोल्यो 'अहो यह ब्राह्मन अपूरब देख्यो'।
दंभ कौ सिष्य बोल्यौ' यां ही हैं। याकी देहली ही[५१] कों बडे बड़े राजा धोक देत हैं। निकट को आय[५२] सकै'।[५२]
तब अहंकार बोल्यो 'अरे पापी हमसे कुलीन तेऊ ह्यां[५३] बैठिवे जोग नांही। अरे[५४] हमारे एक[५५] सारे को[५६] भानेज हौ। ताकी स्त्री कौं काहू मिथ्या बुराई दई। तातें मैं अपनी हू[५७] स्त्री कां[५८] छांडी'।
तब दंभ बोल्यौ 'जद्यपि तुम तौ असे ही हौ पैं हमारौ ब्रतात नांही सुन्यौ। सुनि मैं एक बेरि ब्रह्मा पें गयौ हौ तब जेते[५९] मुनि ब्रह्मा की सभा बिषैं बैठे हुते ते[६०] सब मुनि मेरे आदर हेत उठि ठाढे भए। तब

⊙ (खोज)। ४४–आचार करि बिमेक करि धीर्य करि (खोज), ब्रिवेक करि धीरज करि आचार करि हौं (उदय, जोध)। ४५–ते (जोध), तै (उदय), तैहुं (खोज)। ४६–हुं (खोज), हो (जोध), हौं (उदय)। ४७–और (उदय, जोध), तरफ (खोज)। ४८–धुवाया (खोज), धोय (जोध) धोए (उदय)। ४९–आगैं आइ बैठ्यौ (उदय), आय बैठे (जोध), आय बैठौ (खोज)। ५०–क्रोध करि डंभ बोल्यौ (खोज), दंभ सक्रोध होइ कह्यौ (उदय), दंभ सक्रोध होइ कह्यो (जोध)। ५१–है (उदय–), ही (उदय+, जोध), ⊙ (खोज)। ५२–आइ सकै (जोध), आयकै (उदय–), आय सकै (उदय+), नाय सकै (खोज)। ५३–इहाँ (खोज), ऊह्याँ (उदय, जोध)। ५४–अरे (उदय, जोध), ⊙ (खोज)। ५५–एक (उदय), येक (जोध), ⊙ (खोज)। ५६–को (जोध), को ए (खोज), कौ (उदय)। ५७–हू (खोज, उदय), ⊙ (जोध)। ५८–ही कौ (उदय), ⊙ (खोज, जोध)। ५९–जिते (जोध), जेते (उदय), ⊙ (खोज)। ६०–ते

ब्रह्मा नै अपनो जाघ गोवर सों[61] नीप[62] मोकौं मोंह देवाइकै जाँघ परि[63] बैठायौ'।

तब अहकार विचार्यौ[64] 'कहा दाभिक[65] ब्राह्मन नै[66] अत्युक्ति[67] करी है। फेरि बिचार्यौ कि[68] दंभ ही न[69] होइ[70] असे समुझि सकोच होइकै बोल्यौ 'अरे पापी इंद्र सुं[71] कहा ब्रह्मा सुँ[72] कहा मुनि सुं[73] कहा मेरी तपस्या को फल असो है सो[74] इंद्र होइ कि सो[75] ब्रह्मा होहिं[76] तउ[77] गिरै। एक इंद्र की[78] एक ब्रह्मा की तौ[79] कहा चली'।

तब दंभ बिचार्यौ ए हमारो पितामह अहकार[80] ही न[80] होइ असो*-बिचारिकैं[81] उठि ठाढो भयौ*। बोल्यौ[82] लोभ कौ पुत्र दंभ हौं[83]। नमसकार करत हौं'।[84]

तब[85] अहकार बोल्यो 'पुत्र चीरजीव होहु। मैं तोकौं द्वापर के अत

(उदय, जोव), तिन (खोज)। ६१–सु (जोध), सुँ (खोज), सौं (उदय)। ६२–निप (जोध), नीप (उदय), लीपाय (खोज)। ६३–ऊपरि मोकुँ (खोज), पर (जोध), परि (उदय)। ६४–बिचार्यो (जोध), बिचार्यो (उदय), बाल्यो (खोज)। ६५–डभ–(खोज), डाभि (जोध), दाभिक (उदय)। ६६–ने (जोध), नै (उदय), ⊙ (खोज)। ६७–अतक्त (खोज), अत्युक्त (जोध–), अज्युक्त (जोध+), अत्युक्त क्रम (उदय)। ६८–कँ (जोध), कि (उदय), ⊙ (खोज)। ६९–नाँह (खोज), ही न (उदय, जोध)। ७०–होइ (उदय, जोध), होह (खोज)। ७१–सुँ (उदय, जोध), ⊙ (खोज)। ७२–सु (उदय, जोध), ⊙ (खोज)। ७३–सुँ (जोध), सु (उदय), ⊙ (खोज)। ७४–कैसो ही (खोज), कसो ही (जोध), सो (उदय)। ७५–कि सौ (उदय), कसो (जोध), कैसो ही, (खोज)। ७६–होइ (जोध), होइ (खोज), होहिं (उदय)। ७७–तउ (उदय, जोध), तोऊ (खोज)। ७८–की (उदय), ○ (खोज, जोध)। ७९–तो (जोध), तौ (उदय), ⊙(खोज)। ८०–अहकार ही न (उदय, जोध), ⊙ (खोज)। ८१–कँ (जोध) कैं (उदय), ⊙ (खोज)। * पुनरावृत्ति (जोध)। ८२–बोल्यो हौं (जोध), बोल्यौ हौं (उदय), हुँ (खोज)। ८३–हुँ (खोज), हो (जोध), हौं (उदय)। ८४–करत हुँ (खोज); करत हौं (उदय), कहो (जोध)। ८५–तब (उदय, जोध), ⊙

विषैं[८६] देख्यौ हो। बोहोत दिना तैं तौकौं देख्यौ तातैं नीकैं न[८७] पहि-चान्यौ[८८]। तेरौ पुत्र मूठ नीकौ है'।

'हाँ जी ह्याँ[८९] ही है[९०] वा बिनु एकौ छिन मोपै न रह्यो जाई'।[९१]

'तुम्हारे माता पिता तृष्णा[९२] लोभ ह्याँ[९३] ही हैं। तेऊ महामोह[९४] की आग्या करकैं ह्याँ ही हैं'।[९५]

दंभ पूछ्यौ 'पितामह कोन प्रसग तैं ह्याँ पधारे'।

तब अहंकार बोल्यौ 'अहो पुत्र महामोह कौं बिबेक तैं भै उपज्यो है। तातैं मोहू कौं ह्या पठायौ है'।

तब दंभ बोल्यौ 'भली भई[९६] और राजा महामोह को इंद्रलोक तैं ह्या आवनो सुनियत है और ऐसी या सुनियत है कि राजा महामोह बारानसी कौं राजधानी करै तौ राजा महामोह सदा बारानसी में रहैं ताको कारन कहा'।

तब[९७] अहंकार बोल्यौ 'हे पुत्र बिबेक कैं लयैं। और सुनि प्रबोध की जनमभूमि है बारानसी ब्रह्मपुरी कुल[९८] छ कह्यो चाहत है। जु बिबेक सो निरंतर ह्यां हो रहत है'।

दंभ भै संकित बोल्यो 'जौ यां है तौ ताको उपाय तौ मन मैं नांही[९९] आवत'। अहंकार बोल्यो कि 'सांच पैं ए[२००] काम क्रोधादिक असैं बलिष्ठ हैं तिनकैं आगैं बिबेक को बल कहा'।

(खोज)। ८६—बिषै (जोध), निषै (उदय), सनै (खोज)। ८७—न (उदय, खोज), नहीं (जोध)। ८८—पहिचान्यौ (उदय) पिछ्यौ (खोज), पैंचान्यो (जोध)। ८९—रह्यौ (खोज), हाँ, (जोध), ह्याँ (उदय)। ९०—उहां बिनां (खोज), वा बिनु (उदय, जोध)। ९१—एकौ छिनन मोपै न रह्यौ जाइ (उदय), मोपै छिन रह्यो नही जाइ (खोज), मोकौं एको छिनु न रह्यो जाइ (जोध)। ९२—लोभ तिष्ना (खोज), तिहना लोभ (जोध), तृष्णा लोभ (उदय)। ९३—यहाँ (खोज), ह्याँ (उदय, जोध)। ९४—तेऊ महा (उदय, खोज), ⊙ (जोध)। ९५—मोह की आग्या करिकें ह्याँ ही हैं (उदय), ⊙ (जोध), × (खोज)। 'मोह की आग्या करिकैं तितनैं जमनका मैं क्रोध'—×(खोज)। खोज मैं पत्रा सख्या ३ नहीं है। ९६—हू (उदय), ⊙(जोध)। ९७—तब (उदय), ⊙ (जोध)। ९८—औंर कुँ (जोध), कुल(उदय)। ९९—नाँही (जोध), नाँही नाँही (उदय)। २००—ए (जोध), एक (उदय)।

तितनैं जमनका मैं बोल्यौ 'अहो पुरबासी लोको राजा महामोह आए। चंदन सौं भूमि छिरकौ बिछौना करौ। ऊपर जराव की चौकी धरौ। फुहारे चलावौ। तोरन बाँधो। पताका[201] बाँधौ'।

तब दंभ बोल्यौ 'हे पितामह राजा महामोह निकट आए। तातैं इनके लीबे कौं आगैं चलियै'।

अहंकार बोल्यौ 'पुत्र बौहौत नोकैं चलियै'। राजा महामोह आए सब सेना संग लयैं।

महामोह हसिकै बोल्यो[2] 'अहो निरंकुस ए जडबुध्धि आतमा कौं देह तैं जुदो मानत हैं। ताकौं फिरि कहत हैं[3] स्वरगादिक फल को भोगता है। अहो आकास ब्रिछ्छ के फल की इछ्या[4] करत हैं और देखो जो[5] बस्तु नाँही ताकौं कहत हैं है[6] और सति[7] बचन नास्तिक कहैं तिनकौं दोष लगावत हैं। अहो यह अचिरज देखौ कि देह मैं छेद करियें तौ आतमा कहाँ[8] पाइयै। इन आस्तिकनैं[9] जगत ठग्यौ। सु तौ ठग्यौ[10] पैं अपनपौहू ठग्यौ और सुनौ इन लोकन[11] के मुख नाक स्रवन नेत्र हाथ पाय सबके एक से ही हैं। तिनमैं कहत हैं ए ब्राह्मन ए छत्री ए बैस ए सौद्र। यह पराई स्त्री है। यह परायौ धन है। पैं हम तौ यह भेद कछू न जान्यौ। बिचारकै आदरसहित कह्यौ सास्त्र हैं तौ बोध्धन के सास्त्र हैं। जामैं प्रतिछ्छ प्रमान है और अर्थ काम जामैं पुरुषार्थ परलोक कहाँ है। आतमा कहाँ है। मरिबो हो मोष[12] और हमारौ अभिप्राय है सो चारबाक कहैगौ'।

तितनैं चारबाक आयौ। 'अहो राजा यौं जानौ। डंडनीति सोई राज-बिद्या आजीवकाहु यहै। देखौ ए आसतिक स्वर्गादिक फल मानत हैं।

२०१–पताका बाँधौ (उदय); ⊙ (जोध)। २–बोल्यौ (जोध); बोलैं (उदय)। ३–कहैं (जोध); कहत हैं (उदय)। ४–आशा (जोध); इछ्या (उदय)। ५–जो (उदय); ⊙ (जोध)। ६–हे (उदय); ⊙ (जोध)। ७–सति बचन नास्तिक (उदय); सेती बचनस्तिक (जोध)। ८–कहुँ (जोध); कहाँ (उदय)। ९–आस्तिकनि (जोध); आस्तिकनैं (उदय)। १०–सु तौ ठग्यौ (उदय); ⊙ (जोध)। ११–लोकन (उदय); लोगन (जोध)। १२–मोष (उदय); सोष (जोध)।

सौ देखौ करता क्रिया द्रव्य कौ तौ[13] नास भयौ। तब फल कहाँ तैं पावैंगे जैसैं अगनि के बारे ब्रिछ्ल के फल की आसा धरियै और सुनि मुवैन[14] कौं जौ सराध त्रिपति करैं तौ बुझे दीपकहू की तेल डारैं सिखा चढ़ै'। सिष्यौवाच 'हे आचारज खानौ पीवनौ ही जौ पुरुषारथ हैं तौ ए लोग संसारसुख छोडि क्यों तीरथबास करत हैं'।

चारबाक बोल्यौ 'ए धूरत जो आसतिक हैं तिननि आसा के लडुवा देखाइकै[15] ठगे हैं'। राजा महामोह बोल्यौ[16] 'कलि नै अष्टांग प्रनाम[17] कर्‌यौ है और बिनती करी है कि इतनौ काम तौ मैं कियौ है। बेद-मारग तैं छुड़ायौ। जे बडे बडे हैं ते अपनैं भँवर की चाल चलन लागे सो यह काम मौतैं अरु कलि तैं हूबै कौ नाँही। तुम्हारें प्रताप तैं होत हैं और कहूँ कहूँ जो[18] आसतिकता रही है तौ आजीबका मात्र और[19] कछु बिनती करत हौं सो सुनियैं आसतिकता नामा जौ जोगनी कौ चलन घटायौ है तौऊ[20] जहाँ वह है ता ओर[21] हम पै देख्यौ नाँही जात है। महाराज या बात कौं निस्चै जानैं'।

राजा महामोह मैं पाइ बिचार्‌यौ। वा जोगनी कौ बडौ प्रताप है। सुभाव ही तैं हमारौ बुरौ चाहत है और हमतैं वाकौ कछु बिगरबेहू कौ नहीं। यह बिचारि[22] चारबाक[22] तैं बोल्यौ 'हे[23] चारबाक इन बात कौ कहा इतनौ सोच जौ काम क्रोधादिक ये मेरे सेवक हैं तौ कहा यह प्रगट होइगी'।

तितनैं एक पुरुष हाथ मैं पत्र लयैं राजा महामोह सौं नमस्कार करि पत्र दयौ। राजा महामोह नै पत्र लैकै पूछौ 'तूँ कहाँ तैं आयौ'। 'पुरसोतम नामा नगरी तैं आयौ'।[24]

१३–ते (जोध); तौ (उदय)। १४–मु (उदय); ⊙ (जोध)। १५–कैं (उदय); ⊙ (जोध)। १६–बोल्यौ (उदय); बोल्यो अहो बोहत दिननि पाछै प्रमानक बचन सुनि चारबाक बोल्यो (जोध)। १७–प्रनाम (जोध); प्रमान (उदय)। १८–जो (जोध); तौ (उदय)। १९–और (उदय); औरौ (जोध)। २० तऊ (जोध); तौऊ (उदय)। २१–और (उदय); को (जोध)। २२–बिचार वाक (जोध); बिचारि चारबाक (उदय)। २३–हे (उदय); है (जोध)। २४–आयो हौ (जोध);

तब राजा महामोह ने पत्र बाँच्यौ । तामैं लिख्यौ है मद मान ने जु देबी मति और देबी सांति माता स्रध्यासहित बिबेक कौ दूतीपनौ देबी उपनिषद सौं करत हैं और यहौ लिख्यौ है[25] कि काम कौ साथी धरम सोऊ बैराग ने फेरयौ है । सु काम सौं कहूँ कहूँ न्यारौहू चलन लाग्यौ है[26] । राजा महामोह सक्रोध होइ कह्यौ[27] 'अहो सांतिहू तैं मैं[28] मानैं हैं। ते बडे पुरुष हैं' ।

राजा एक पुरुष कौं आग्या दीनी बेगि जाइ काम सौं कहि[29] धर्म दुष्ट है सो हम जान्यौ तातैं सावधान रहियौ । गाढे बाँधि राखियौ' ।

आग्या प्रमान करिकै पुरुष चल्यौ । राजा महामोह ने बिचार करयौ सांति के नास कौ[30] कौन बिचार करियै । यह बिचारिकै द्वारपाल कौं आग्या करी 'क्रोध और[31] लोभ[31] कौं बुलावौ' ।

तितनैं जमनका मैं क्रोध बोल्यो 'मैं सुन्यौ सांति स्रध्या आसतिकता महाराजा[32] महामोह कौं द्वेष करै[33] हैं'।

(दोहा)

मो[34] जीवत जौ मोह कौं द्वेष करैगौ कोइ[35] ।
अपजीवै[36] तैं[36] आपही रह्यौ निरासी होइ ॥ ४ ॥

हौं[1] कैसौ हौं[2] सब स्रिष्टि कौं[3] अंध करौं[4] बहिर करौं[5] धीर हैं ताकों अधीर करौं[6] सग्यान हैं ताकौं अग्यान करौं' ।[7]

आयौ (उदय)। २५–है (उदय); ⊙ (जोध)। २६–सु काम सौं कहूँ कहूँ न्यारौहू चलन लाग्यौ है (उदय); ⊙ (जोध)। २७–कह्यौ (उदय); बोल्यो (जोध)। २८–मैं (उदय); मैं मौं (जोध)। २९–कहि (उदय); कहौं (जोध)। ३०–कौं (उदय); ⊙ (जोध)। ३१–और लोभ (उदय); अरु लोभन (जोध)। ३२–महाराजा (उदय, जोध); राजा (खोज)। ३३–करत (जोध); करे (खोज); करै (उदय)। ३४–मो (उदय, खोज); मोह (जोध)। ३५–कोय(जोध); कोइ (उदय); सोइ (खोज)। ३६–जीव तैं (खोज); जीवे तैं (जोध), जीवैं कौ (उदय)।

[५] १–हुं (खोज); हौं (उदय,जोध)। २–हुं (खोज); हौं (उदय, जोध)। ३–कुं (खोज); को (जोध); कौं (उदय)। ४–करुँ (खोज); करों (जोध); करौ (उदय)। ५–६–करुँ (खोज); करो (जोध); करौ (उदय)। ७–सग्यानीन को अग्यानी करो (जोध); सग्यान हैं ताकौं अग्यान करौ (उदय); सुग्यानी कु अग्यानी करुँ (खोज)।

मो बिनु जग मैं एक नहि कहा सांति को जोर।
त्रिष्ना की लहरनि परैं तिन्हैं पार किहिं ओर॥ ५॥

क्रोध अरु[1] लोभ जमनका के बाहिर आइ राजा कौं नमस्कार कर्यौ
राजा[2] बोल्यौ 'सांति कौं स्रध्धासहित तुम जाइकै मारौ'।
क्रोध[3] और लोभ राजा की आग्या[4] प्रमान करिकै चले।
तितनैं जमनका मैं सांति बोली 'हे सखी करुना माता स्रध्धा कहाँ होइगी। जे पुरुष पवित्र हैं तिनमैं तौ नाँही जानीयै पाषडनि बसि[5] परी होइगी। वह[6] मो[7] बिनु एको छिन नाहीं जीवै को।[8] कदाचित मरीहू[9] होइ तौ मोहू कौं वा बिन जीबौ उचित नाँही। तू काठ कौ घर बनाव तौ हौं अगनिप्रबेस करौं अरु माता स्रध्धा कौं मिलौं।'
तब करुना आँसू भर नेत्रनि बोली 'तूँ असी बात कहा कहति है। वह[10] तौ सात्तुकी[11] स्रध्धा है। ताकौ नास कैसैं होइगौ। एक महूरत तौ धीरज करि'।
यह कहिकै सांति अरु करुना स्रध्धा के ढूंढबे कौं चलीं। आगैं जात दिगबर देख्यौ ताकै[12] तामसी स्रध्धा देखी तब जान्यौ कि यहौ सात्तुकी स्रध्धा नाँही। फेरि आगैं चले। आगैं जात बौध देख्यौ ताहू कैं तामसी देखी तब जान्यौ कि[13] यहौ[14] सात्तुकी[15] स्रध्धा नाँही। फेरि

[६] १-और (जोध), ×(उदय), अरु (खोज)। २-तब राजा (खोज, उदय, राजा (जोध)। ३-क्रोध (उदय, जोध), तब क्रोध (खोज)। ४-तें (जोध), पाय प्रमान करिकें (खोज), प्रमान करिकें (उदय)। ५-पाषडनिसि (उदय), पाषडिनै बसि (जोध), पाषंडी या बस (खोज)। ६-वह (उदय, खोज), वहा (जोध)। ७-मो (उदय, खोज), मोह (जोध)। ८-जीबे की नाही (जोध), जीबै की नाही (खोज), नाही जीवे की (उदय)। ९-कदाचि मरी (खोज), कदाचित मरी हू (उदय, जोध)। १०-तब (खोज), वह (उदय, जोध)। ११-साति (खोज), सात्तु (उदय, जोध)। १२-तामै (खोज), ताके (जोध), ताकै (उदय)। १३-(खोज), कि (उदय, जोध)। १४-यह (खोज), यहा (जोध), यहौ (उदय)। १५-स्वातकी (खोज), सात्तुकी (जोध), सात्तुकी (उदय)।

आगैं चली[16]। आगैं जात कापालिक देख्यौ ताहू कैं तामसी स्रध्धा देखी तब जान्यो कि यहौ सात्तुकी स्रध्धा नाहि[17]।
फिरि आगैं चली आगैं जात मईत्री मिली[18]। तिन कहौ मुदिता कैं मुख तैं सुनी[19] कि तामसी स्रधा कैं भयें तैं सात्तुकी स्रध्धा आसतिकता कैं निकट जाइ रही है[20] तब सांति अरु करुना[21] अरु मइत्री हरष पाइकै चली[22]।
आगैं देखै तो स्रध्धा भै कप सहित बोली 'तामसी स्रध्धा कौं देखि अब लौं मेरौ कप[23] नाहि गयो[24] पै भली भई जु याही[25] जनम मैं तुमकौं[26] देखी। अब मोका तौ आसतिकता ने आग्या करी है जु[27] राजा बिबेक सौं[28] जाइ कहौ कि महामोह कौं निरमूल करैं[29] सु हौं[30] तौ राजा बिबेक पैं[31] जात हौं[32]। तुम कहाँ जाहुगी।'
तब[33] मैत्री सांति अरु[34] करुना इननि[35] कह्यौ कि 'हम देवी आसतिकता पास जाइँगी'।

१६—चली (खोज, जोध), चले (उदय)। १७—तब जान्यौं कि यहौ सात्तुकी स्रध्धा नाही (उदय), तब जॉन्यों कि यहौ सात्विकी स्रधा नाही (जोध), × (खोज)। १८—कापालिक देष्यौ ताहूँ कै तामसी स्रधा देषी तब जान्यौ कि यहौ सात्तुकी स्रधा नाही फिरि आगें चली आगें जात (उदय, जोध , × (खोज)। १९—मैं सुनि (जोध), सुनी (उदय, जोध)। २०—यै (खोज), हैं (उदय, जोध)। २१—अरु करुना (खोज, उदय), × (जोध)। २२—चले (खोज), चली (उदय, जोध)। २३—कोप (खोज), कप (उदय, जोध)। २४—गयो है (खोज), गयो (जोध), गयौ (उदय)। २५—योही (खोज), जु याही (उदय, जोध)। २६—सैं तोकु (खोज), मै सैं तोको (जोध), मै मै तोको (जोध +), मैं तुम कौं (उदय)। २७—है (खोज), हैं जु (उदय, जोध)। २८—कुँ (खोज), सौं (उदय, जोध)। २९—कर्यौ (खोज), करो (जोध), करैं (उदय)। ३०—सो हु (खोज०), सु हौं (उदय, जोध)। ३१—कै पास (खोज), पैं (उदम, जोध)। ३२—हु (खोज), हौ (उदय, जोध)। ३३—तब मैत्री (उदय), तब (खोज, जोध)। ३४—अरु (उदय, जोध), × (खोज)। ३५—मात्र (खोज), इननि (उयद,

यह कहिकै आगैं चलो। तितनैं राजा बिबेक जमनका कैं बाहिर आए[36]। आवत ही बोल्यौ 'अरे पापी महामोह सब जगत ठग्यौ[37] हत्यौ। साति चिदानद असो जौ[38] अमृत कौ सागर ताकौं छाडिकै मृगतिसना कै जल कौं धावत[39] पीयौ चाहत[40], गह्यौ चाहत[41] तातैं[42] जानियत है[42] ससार कौ चलावनहारौ महामोह ताकौ मूल[43] अग्यान है तातैं अग्यान कौ पराजय तत्वग्यानही तैं होइगौ और आसतिकताहू[44] नैं[44] मोकौं कह्यौ है। महामोह कौं जीतबे कौ[45] उद्दिम करौ। तौ महामोह कैं काम बडो सहाइ[46] है ताकौं बस्तुबिचार करिकै[47] जीतियै'। तब राजा द्वारपाल कौं[48] आग्या[49] करी जु बस्तुबिचार कौं बुलावौ[49]।

द्वारपाल आग्या पाइकै चल्यौ। जाइकै बस्तुबिचार सौं[50] कह्यौ 'चलियै राजा बिबेक बुलावत हैं काम के जीतबे कौं[51]'।

तब बस्तुबिचार बोल्यौ 'निरबिचार सौंद्रज करिकै बाढ्यौ[52] है। काम[53]

जोव)। ३६–आए (उदय, जोव), × (खोज)। ३७–ठग्यो (उदय), हत्यौ (खोज, जोव)। ३८–असी जौ (खोज, उदय) × (जोव)। ३६–को (जोव), कौं (उदय), × (खोज)। ४०–औ गह्यो (जोध), और गह्यो (खोज), गह्यौ (उदय)। ४१–चाहत (उदय), चाहत है (खोज, जोध)। ४२–तातैं जानीयत हैं (खोज, उदय), × (जोध) ४३–अमूल (उदय –), मुष्य (खोज), मूल (उदय, जोध)। ४४–हूँ नै (उदय, जोध), × (खोज)। ४५–कौ (उदय), × (खोज, जोध)। ४६–कैं (खोज, उदय), × (जोध)। ४७–सहाइक (खोज), सहाइ (उदय, जोध)। ४८–कुं (खोज), कों (जोध), कौं (उदय)। ४६–आग्या करी जु बस्तुबिचारि कौ बुलावौ (उदय), आग्या करी जु बस्तुबिचार को बुलावो (जोध), बुलायो (खोज)। ५०–सु (खोज), सौ (उदय, जोध)। ५१–कु (खोज), को (जोध), कौ (उदय)। ५२–बाढ्यो (उदय, जोध), बध्यो, (खोज)। ५३–काम (उदय, जोध), × (खोज)।

तिन सब जगत ठग्यौ है ताकौ[५४] राजा बिबेक की आग्या पाइकै निरमूल करौंगौ।

यह कहिकै चल्यौ राजा कैं निकट आइ राजा सौं[५५] नमस्कार कर्यौ[५६]। बीनती करी 'यह सेवक तुम्हारौ आयौ है। आग्या करियै'।

राजा बिबेक बोल्यौ 'हम सौं अरु महामोह सौं सग्राम आइ बन्यौ है। महामोह कैं काम बडौ बीर है। ताकैं सनमुख कौं[५७] हम तुम कौं पठवैंगे[५८]। कौन सत्रु तैं वाकौं[५९] जीतौगे।

बस्तुबिचार बोल्यौ

(दोहा)

'धनुग फूल कौ पाँच सर साथी जाकैं बाम[६०]।
आयुध चाहैं ताहि[६१] कौं कहा काम कौ काम[६२] ॥ ६ ॥

मेरे बिचार बान असे हैं जु सेनासहित महामोह कौं निरमूल करौं। काम कै तौ कहा बल[१] है।'

यहै[२] कहि[२] बीनती करी जु[३] मोकौं आग्या दीजैं।

राजा बिबेक प्रसन्न होइ बोल्यौ 'पुत्र तुम्हारौ कारज सिद्ध होहु। सत्रु कौं मारिकै[४] जय करौ'।

बस्तुबिचार राजा की आग्या प्रमान करि चल्यौ।

राजा बिबेक[५] द्वारपाल कौं आज्ञा करी 'क्रोध कै[६] जीतिबे कौं धीरज बुलावो'।

५४–तिनकु (खोज), ताकौ (उदय, जोध)। ५५–राजा सौं (उदय), × (खोज, जोध)। ५६–कीयो (खोज), कर्यौ। ५७–कौ (उदय, जोध), × (खोज)। ५८–भेजैंगे (खोज), पठवैंगे। ५९–करि (खोज), तैं वाकौ (उदय), सो वाको (जोध)। ६०–बान (खोज), बाम। ६१–काम (खोज), ताहि। ६२–की कान (खोज), कौ काम।

[७] १–जोर (जोध), बल। २–यह कहि कैं (खोज), यह कहि (जोध), यहै कहि। ३–ज्यु (जोध), जु। ४–कौं मारि कैं (उदय), कों मारि (जोध), मार कैं (खोज)। ५–× (खोज), बिबेक। ६–कै (उदय), ×।

द्वारपाल जाइ[७] धीरज सौं कह्यौ 'राजा तुमकौं बुलाए हैं क्रोध कैं जीतिबे कौं'।

'जीतिबे कौं।' तब धीरज बोल्यौ'।

(दोहा)

'सिरपीरा जामैं नहीं नाँहिन[८] कछू कलेस।
चित्त को ताप न[९] जा[९] बिषैं ताकौं कहाँ अँदेस ॥ ७॥

क्रोध के[१] जीतबे जोग्य हौं[२] ही हाँ'।

यह कहिके चल्यौ राजा कैं[३] निकट आयौ[४]। नमस्कार[५] कर्‌यौ[६]। बीनती की।[७] 'यह सेवक तुम्हारौ आयौ है। आग्या करियै'।

राजा बिबेक[८] बोल्यौ 'हम सौं अरु महामोह सौं संग्राम आइ[९] बन्यौ है। महामोह कैं क्रोध बड़ौ दुष्ट है। ताकैं जीतिबे कौं हमारैं तुम[१०] हौ। तुम कौन भाँति[११] जीतौगे'।

धीरज बोल्यौ

(दोहा)

'उचित नाँहि[१२] बढि[१२] बोलनौ[१३] महाराज कैं पास।
चुप ही चुप हमतैं[१४] सहज[१५] क्रोध पाइहै[१६] नास ॥ ८ ॥

७-× (जोध), जाइ। ८-जानत (खोज), नाहिन। ९-जान (खोज +), न जा।

[८] १-⊙(जोध), के। २-मैं (खोज), हौं (उदय), हो। ३-(खोज), को (जोध), कैं। ४-आइ (खोज), आयौ। ५-राजा को नमस्कार (जोध), नमस्कार। ६-कीयो (खोज), कर्‌यौ। ७-की (उदय) करी। ८-⊙ (खोज), बिबेक। ९-आय (खोज), आइ। १०-तुमही (खोज), तुम। ११-प्रकार (खोज), भात (उदय +), भाति। १२-नहीं बढ (खोज), नाही बढि। १३-बोलबो (खोज), बोलनौं (उदय), बोलनो। १४-हसते (खोज), हमतें (जोध), हमतैं। १५-हसत (खोज), सहत (उदय); सहज। १६-पायगो (खोज), पाइहैं (जोध), पाइहै।

क्रोध तौ कहा है। महाराज की आग्या होइ तौ महामोह[1] कौं सेना-सहित[1] निर्मूल करौं[2]।

तब राजा बोल्यौ 'बिजै करौ'।

धीरज आग्या पाइकै[4] चल्यौ।

तब राजा द्वारपाल कौं[5] बुलायौ आग्या करी[5] लोभ के जीतबे कौं सतोष[6] बुलावौ।

* द्वारपाल[7] जाइ सतोष सौं कह्यौ 'राजा तुमकौं बुलाए हैं लोभ जीतबे कौं'।

---

[६] १–सब सेना सहित महामोह को (खोज), महामोह कौ सेना सहित। २–करीयै (खोज), करो (जोध), करौं। ३–फते (खोज), बिजै। ४–पाइ (खोज), पाइकैं। ५–कु बुलाय कह्यौ (खोज), कौ बुलायौ आग्या करी (उदय), को आग्या करी। ६–सतोष को (जोध), सतोष। ७–* सतोष आए सतोष आइ राजा कु नमस्कार कीयो अरु बीनती करी यह तुम्हारौ सेवग ठाढो है आग्या करीयै। राजा बोल्यो हमसो अरु महामोह सु सग्राम आय बन्यौ है मोह कैं लोभ बड़ो धिष्ट है ताकु जीतबे कु बरानसी जाहु तुमारौ प्रभाव प्रगट होहुँ तब सतोष आग्या पाय चल्यो। दोहा–बन बन मैं फल पाइयै पेड पेंड परि नीर। ताहि छाडि लोभी अधम करत धननि कु भीर ॥ १ ॥ जहा सतोष आयो तहा लोभ को नास ही होइ कहिकैं आगै चल्यो (खोज), द्वारपाल जाइ सतोष सु कह्यो राजा तुमको बुलाए हैं लोभ जितबे को तब सतोष बोल्यो दोहा–बन बन मे फल पाइऐं पैंड पैंड पर नीर। ताहि छाडि लोभी अधम करत धननि की भीर ॥ १ ॥ जहा सतोष आयो तहा लोभ को नास ही होई यह कहि कैं चल्यो। राजा के निकट आइ नमस्कार कीय्यो बीनती करी यह सेवक तुम्हारो आयो हैं आज्ञा करीइ। राजा बिबेक बोल्यो हम सों अरु महामोह सो सग्राम आय बन्यो हे महामोह कें लोभ बडो धीष्ट हैं ताके जीतबे को बारानसी जाहु तुम्हारो प्रभाव प्रगट ही है तब सतोष आग्या पाइ कै चल्यौ (जोध), मूल मे मुद्रित पाठ (उदय)।

तब संतोष बोल्यौ

(दोहा)

बन बन मैं फल पाइयै पैंड पैंड पर नीर।
ताहि छाडि लोभी अधम करत धननि कैं भीर ॥ ६ ॥

जहाँ संतोष आयौ तहाँ लोभ कौ नास ही होइ'।
यहै कहिकै चल्यौ। राजा कैं निकट आयौ। राजा कौं प्रनाम करि बीनती करी 'यहै सेवक तुम्हारौ आयौ है आग्या करियै'।
राजा बिबेक बोल्यौ 'हम सौं अरु महामोह सौं संग्राम आइ बन्यौ है। मोह कैं लोभ बडौ भ्रिष्ट है ताके जीतबे कौं बारानसी जाहु। तुम्हारौ प्रभाव प्रगट ही है'।
तब संतोष आग्या पाइ के चल्यो*।
तितनैं जमनका मैं बोल्यौ 'हाथी तयार करौ रथ जोतौ असवार होहु पयादा तयार होहु'। यह कहि कै गयौ।
तब जोतिषी आइ[2] राजा बिबेक[3] सौं बीनती करी सुलगन[4] है। बिजै को समै है। बिजै करियै। तब राजा रथ मँगाइ[5] अभिषेक लै[6] रथ पर चढे[7]। चढि कैं चलै[7]। आवत आवत निकट आए। त्रिभुवनपावनी बारानसी नगरी देखन लागे[8]।
राजा[9] देखिकै[9] आनद सूँ बोल्यो

(दोहा)

जाकैं देखत दुख मिटैं उपजैं आनँद नित्ति।
खैंचि लेत हैं चित्त[10] कौं सिवनगरी यह[11] सत्ति ॥१०॥

---

[१०] १-⊙ (खोज), कें (जोध), कैं। २-आन (खोज), आइ (उदय), आय। ३-⊙ (खोज), बिबेक। ४-महाराज स्वलग्न (खोज), सुलगन। ५-मगाया (खोज), मगाइ। ६-लेकैं (खोज), लै (उदय) ले। ७-चढि चले (खोज), चढे चढ के चले (जोध), चढे चढि कैं चलै। ८-लागे (खोज), लागी। ९-तब राजा (खोज), राजा देषकैं। १०-नित्य (खोज) चित। ११-यहै (उदय), यह।

यह कहि कैँ[१] आगैँ चले[२]। आवत आवत नगर मैँ आए[३]। यहै[४] गगाजू[५] के तट कौ अलकार मुक्तिदाता[६] बिस्वेस्वर कौ स्थान[७] है। तब राजा हरप पाइ[८] कै बोल्यौ 'हमारैँ रहिबे जोग्य स्थान यहै[९] है'। यह कहि कैँ राजा बारानसी बिराजमान[१०] भए। तब स्नध्धा राजा बिबेक कौ ओर[११] महामोह कै जुद्ध को ब्रित्तात देखिकैँ आसतिकता-पास आई[१२]।

तब आसतिकता स्नध्धा कौँ देखि आतुर सौँ बोली 'राजा बिबेक कैँ अरु महामोह कैँ जुध्ध को ब्रित्तात कहौ[१३]'।

तब स्नध्धा बोली 'देवि सुनौ हमारो अरु मोह को सेना जब[१४] सनमुख भई तब राजा बिबेक नै[१५] बस्तुबिचार[१६] न्याय बैसेसक[१७] और[१७] धीरज मीमासा पाताजल और[१८] सतोप बेदात साखि कौँ[१९] आग्या दीनी[१९] जु मोह कौँ सेना सहित मारौ। तब मोहहू[२०] काम क्रोध लोभ पापंड सास्त्र और[२१] नासतिक[२२] तरक है[२२] तिन सहित जुध्ध करिबे कौँ

[११-१७] १-⊙(खोज, जोध), कैँ। २-चल्यो (खोज), चले आगैँ (जोध), चले। ३-आयो (खोज), आए। ४-यहै (उदय) यह। ५-जी (खोज), जू (जोध), जु। ६-मुक्ति के (जोध), मुक्ति। ७-स्थान (उदय), थान। ८-पाइ (जोध), पाइकैँ। ९-यह (खोज) यहे। १०-बिपै भ्रिमेक को (खोज), बिषैं ब्रिराज मा भए तब स्रधा राजा बिवेक को ओर (जोध), बिराजमान भये तब श्रधा राजा बिबेक कौँ और। ११-बृत्तात (खोज), ब्रितात देखि कैँ। १२-जाइ (उदय), आई। १३-कहो (जोध), कह्यौ। १४-× (खोज), जब। १५-× (खोज, जोध), नैं। १६-बिचार कौ अरु (खोज), बिचार। १७-अरु बिसेसक अरु (खोज), बैसेसक और। १८-अरु (खोज), और। १९-इतना कु आग्या दई जु (खोज), कौँ आग्या दीनी। २०-मोह (खोज), मोहहू। २१-अरु (खोज), और। २२-नास्तिक्य सौं रति है (खोज), नासतीक तरक हे है (जोध),

पठाए। तब आसतिकता फेरि[२३] स्रध्धा कों[२४] पूछ्यौ जु ए[२५] अपनैं साख्र सुभावइही तैं बिरुध्धी[२६] हैं। ते ए कर्म[२७] ते कैसैं भए।
स्रध्धा बोली 'देवि एक[२८] बस के हैं और[२९] परस्पर बिरुध्ध हैं और और[३०] बंस सौं[३१] जुध्ध आइ बन्यौ है तो ए एक[३२] बस के परसपर बिरोध छाड़ि एक[३३] न होइँ तौ लौं उनसौं कैसैं जीतैं[३४] तैसें ही ए साख्र बेद[३५] तैं उपजै हैं। बेद के राखन कौं नासतिक मत के नास करबे कौं एक होहि[३६] तौ जुगत[३७] ही है'।
तब आसतिकता बोली 'हाँ अब वहै प्रसग कहौ'।
तब स्रध्धा बोली 'देवि[३८] तब परसपर जुध्ध होन लाग्यौ। महा दारुन जुध्ध भयौ। या जुध्ध बिषैं पाषड साख्र उननि आगैं[३९] कह्यौ हैं[४०]। सो[४१] तौ पीस्यौ ही गयौ। बस्तुबिचार नै काम कौं मार्‍यौ और धीरज नै[४२] क्रोध अरु[४३] कठोरता ये[४४] मारे और[४५] सतोष नै[४६] लोभ त्रिष्ना झूठ[४७] ए मारे'।

नासतीक हैं। २३–फेर (खोज), फेरे (जोध), फेरि। २४–सू (खोज), को (जोध), कौ। २५–ए (खोज), जु ए। २६–बिरोध (खोज), बिरुद्ध (जोध), बिरुधी। २७–एक मतैं (खोज), एक मत (जोध), ए काम। २८–एक ही (खोज), एक। २९–अरु (खोज), और। ३०–और (खोज), औरु और (जोध), और और। ३१–सु (खोज), सो (जोध), सैं। ३२–एक (खोज), तो एक (जोध), तो ए एक। ३३–कै ए (खोज), एक। ३४–उनसु कैसैं जीतेगे (खोज), उनसो कैं जीतैं (जोध), उनसौं कैसैं जीतैं। ३५–सर्ब बेद (खोज), वेद। ३६–नास होइ (खोज), एक होहि। ३७–जुक्त (खोज), जुगत। ३८–देष (खोज), देवि। ३९–उनन (खोज), उननि आगैं। ४०–कह्यो हो (जोध), कह्यौ है। ४१–सु (खोज, जोध), सो। ४२–अरु धीर्य (खोज), और धीरज नैं। ४३–अरु (खोज), अर। ४४–यह (खोज), ए (जोध), यें। ४५–अरु (खोज), और। ४६–सतोष (खोज), सतोष नै। ४७–अरु झूठ (खोज), झूठ।

तब आसतिकता आनद पाइ बोली 'भली भई अहो[48] महामोह को कहा ब्रितात भयो। तब स्रधा बोली 'मोह भजि कहूहँ जाइ दुख्यो है[49]। यह तो कछू खबर नाँही कहाँ जाइ दुरया[50] है'[51]। फेरि आसतिकता पूछयो[52] 'अहो[53] कहो मन को कहा ब्रितात[53] भयौ'।
तब स्रधा बोली 'देवि मन हूँ पुत्र पौत्र बियोग तैं प्रानत्याग करिवे कौं भयौ है'[54]।
तब आसतिकता बोली 'भली भई अहो जो यौं होइ तौ कहा चाहियै है तो पुरुप हू आनद कौं प्रापत[56] होइ'।
तब स्रधा[57] बोली 'असैं देवि जौं प्रबोध के उदै कौ उद्दिम कियो है तौ वह मन बेग ही सरीर बिन होइगो'।
आसतिकता बोली 'मन के समझाइवे कौं बैराग पठयो है'।
यह कहि चलो। तितनैं मन जमनका कैं बाहिर आयो। सकल्प हू सग है। मन आँसू भरि कै कह्यो[58] 'अहो काम क्रोध लोभ[59] राग द्वेप मद मान[60] मच्छर पुत्र हे। कहाँ गए हैं[61]। आवो मिलो मो सौं[62] मेरे अग दुख पावत हैं। हौं[63] अकेलो रयौ हौ। यह सोकाग्नि मेरे अग अग[64] कौं दाह करत[65] है और देवि प्रब्रित्ति हू[66] मोकौं दीन भयो जानि[67] कै मो ढिग नाँहि आवत'।

४८–अरु (खोज), अहो। ४६–भाज कै कहूँ दुर रह्यो (खोज), भाजि कहीं जाइ दुरयो हैं। ५०–× (उदय –)। ५१–दुर रह्यो (खोज), दुरयो हैं। ५२–पूछीयो (खोज), पूछयो अहो। ५३–बृत्तात कहा (खोज), कहा ब्रितात। ५४–भयो (खोज), भयो हैं (जोध), भयौ हैं ५५–होइ तो (उदय), हे तौ हमारे और (खोज), होइ तो हमारे और (जोध)। ५६–प्राप्ति (खोज), कौ प्रापति। ५७–तब श्रद्धा (खोज), स्रधा। ५८–रह्यो (खोज), कह्यौ। ५६–लोभ मोह (खोज), लोभ। ६०–मान (खोज), मद मान। ६१–गए (खोज), गयो (जोध), गयो हौ। ६२–सू (खोज), सा (जोध। सौ। ६३–हु (खोज), हो (जोध), हौं। ६४–अग (खोज, जोध) अग अग। ६५–करै (खोज), करत। ६६–प्रबर्त्ति (खोज), प्रब्रत्ति हूँ (जोध), प्रब्रिति हू। ६७–देषि

तब सकलप[68] आँसू भरि कै बोल्यौ 'देव कहाँ देवी प्रब्रित्ति रही है। जब ही पुत्रनि कौ नास सुन्यौ तब ही देवी प्रब्रिति[69] हिरदौ फाटि कैं[70] मरी।'
तब मन बोल्यौ 'अब हमहू कौं[71] प्रानत्याग कियें ही बनै'।
सकलप सौं[72] कह्यौ 'काठ कौ घर बनावौ ज्यौं मैंहू[73] अगनि प्रबेस करौं'[74]।
तितनैं बैराग[75] जमनका कैं बाहिर आयौ[76] आइ कैं मन सौं कह्यौ 'मो कौं देवी आसतिकता नैं पठयो है[77] कि मन परिवार सोक तैं[78] व्याकुल काहैं होत[79] सौ कहौ[80] कि तूँ व्याकुल काहे[81] होत है। तूँ तौ इनकी अनितता पहिलैं हू जानत हो[82] और सुनि या सोक को कारन ममता है। ताके छाडिबे कौ जतन करि'[83]।
तब मन बोल्यौ 'साँच कहो हो पैं ममता की गाँठि छूटनी कठिन है[84]। निरंतर अभ्यास करि कै सनेह सौं द्रिढ भई है। ता गाँठि के छूटिबे[85] कौ उपाइ मोकौं एकौ नाँही आवत'[86]।

कै मेरै (खोज), जानि मो (जोध), जानि कैं मो। ६८–सक (खोज), सकलप। ६९–देवी प्रबर्त्ति (खोज), प्रब्रत (जोध), देवी प्रब्रिति। ७०–रिदो फाटि (खोज), रिदो फाट के (जोध), हिरदौ फाटि के। ७१–कुं हू (खोज), कौ हू। ७२–सू (खोज), सो (जोध), सौ। ७३–ज्यु हु (खोज), ज्यौ मै हू। ७४–करु (खोज), करौ। ७५–तितने (खोज), तितनैं बैराग। ७६–बैराग्य आयो (खोज), आयौ। ७७–पठाई है (खोज+), पठाये है (खोज – २), ने पठयो हे (जोध), नैं पठयौ हौ। ७८–करिकैं (खोज), तैं। ७९–है तो (खोज), हैं ता (जोध) काहैं होता। ८०–हु (खोज) हो। ८१–काहे कु (खोज), काहे तैं (जोध), काहे। ८२–ही जानति है (खोज), हू जानत हौं। ८३–करु (खोज), कर (जोध), करि। ८४–कठिन है (खोज), न बनैं हैं (जोध), ठन है। ८५–छुडायबे (खोज), के छुड़ाइवे (जोध), कै छूटिबे (उदय +), छूटिबे (उदय –)। ८६–एक ही नाही (खोज), एको एको नाही आवत (जोध), एको

बैराग[८७] बोल्यो 'ससार की अनितता जानबो। ममता के छाँडिबे कौ प्रथम उपाइ तौ यहै है। याही कां हिदे मैं राखि कै सुखी होहु'।
तब मन बोल्यौ 'तुमारे प्रसाद तैं मेरो सोक गयो। पैं ए जु अतिघाव हैं तिनकौं कछु उपचार कहियै'।

बैराग बोल्यौं[८८] कि आगैं मुननि[८९] कह्यौ है जु[९०] सोक के घाव हैं तिनको भूलनो ही उपचार और सुनि[९१] निब्रित्ति हू तौ तेरी ही[९२] प्रिया है। ताका आदर करि[९३] तातैं चित्तबिकार जाइगौ'।
मन[९४] बोल्यौ 'तुम मोकौं बडो उपकार कह्यौ'।
बैराग के पायन[९५] पर्यौ।
बैराग[९६] बोल्यौ 'अब[९७] निब्रिति आवैगी सम दम सतोप आदि दै ए[९८] पुत्र आवैंगे। तेई तुमारी सेवा करैंगे। बिबेक कौं अनुग्रह करिकैं जोबराज करियौ[९९]। ए सब दैवी आसतिकता नै तेरे[१००] प्रसन करिबे कौं पठए हैं। प्रसन होइ कै इनको आदर करियौ। अब जु[१] तुम राज करियौ[२] सु इन सहित करियौ। तूँ[३] जो इन सहित राज करैगौ तौ खेत्रग्य हू[४] अपनी प्रकिति कौं प्रापति होइगौ'[५]।
यहै कहिकैं[६] बैराग चल्यौ। तितनैं साति और[७] निब्रित्ति जमनका कै बाहिर आई। बोलौ[८] मोकां देवी आसतिकता नै पठई है जु[९]

नाही आवत। ८७-तब वैराग्य (खोज), बैराग। ८८-× (खोज)। ८९-मुनिनि (खोज), मुनि ने (जोध), मुननि। ९०-कि (खोज) जु। ९१-सुनि और (खोज), और सुन (जोध), और सुनि। ९२-ही तेरी (खोज), हू तौ तेरी ही। ९३-करो (जोध), करि। ९४-तब मन (खोज), मन। ९५-पायन (जोध, पावा। ९६-तब बैराग्य (खोज), बैराग। ९७-किं अब (जोध) अब। ९८-के (खाज), दे ए। ९९-करियै (उदय), करीयो। १००-नैं (खोज), नैं तेरे। १-अब (खोज), अब जु। २-करियै (उदय), करो। ३-तुम (खोज), तू। ४-होइ (खोज), हू। ५-मिलोगे (खोज), प्रापति होइगौ। ६-यह कहि (खोज), यह कहि कैं (जोध), यहै कहिकैं। ७-अरु (खोज), और। ८-बोली (उदय), साति बोली। ९-जो (खोज), ज्यु (जोध), जु।

प्रब्रित्ति कौ पुत्रन[10] सहित नास भयौ है[11] सु निब्रित्ति पुत्रन[12] सहित लै जाइ[13] मन कौं मिलावौ[14]। अब तुम इन सौं प्रसन्न[15] रहियौ'।
तितनैं स्रध्धा जमनिका कैं[16] बाहिर आइ कै[17] बोली 'आज यह राज कुल देखि कै मेरे नेत्रन[18] कौं सुख भयौ'।
तब साति स्रध्धा कौं नमस्कार करिकैं पूछ्यौ जु मन सौं[19] स्वामी पुरुष[20] कौ सनेह कैसौ सोहै।
तब स्रध्धा बोली 'जैसैं बधि बिषै बधिक कौ सनेह होइ तैसो है'।
साति[21] बोली 'तौ कहा स्वामी ही[22] राज करैंगे'।
तब स्रध्धा बोली 'हाँ याँ हो है। जौ पुरुप आपकौं जानैगौ तौ पुरुष ही[23] राजा होइगौ'।
तब साति बोली 'तौ[24] पुरुष आपकौं क्यौं कै जानैगौ'।
तब[25] स्रध्धा बोली कि[25] देवी आसतिकता नैं मोकौं आग्या करी[26] है जु देवी उपनिषद कौं लै जाइ[27] पुरुष सौं मिलावौ। जब[28] देवी उपनिषद पुरुष सौं मिलैंगी तब पुरुष आपकौं जानैगौ।
तब साति बोली 'मोहूँ कौं देवी आसतिकता नैं आग्या करी है जु बिबेक कौं लै जाइ पुरुष सौं मिलावौ'।
एहै कहिकैं दोऊ चली। तितनैं पुरुष जमनिका कैं बाहर आइ हरष सहित बोल्यौ कि अब मोसौं बिबेक[29] और देवी उपनिषद बेग[30] मिलैं तौ भलो है।

१०–पुत्रनि (खोज), पुत्र मन (जोध), पुत्रन। ११–भयो हैं (उदय), भयो तातै मन कों बैराग्य भयो है। १२–पुत्रा (खोज), पुत्रनि (जोध), पुत्रन। १३–जाइकै (खोज), जाइ। १४–मिलो (खोज) मिलावौ। १५–प्रसन्न होइ (जोध), प्रसन। १६–बाहर (खोज), कैं बाहिर। १७–आइ (खोज), आइ कै। १८–नेत्रा (खोज), नेत्र (जोध), नेत्रन। १९–जैसे (खोज), सो (जोध), सौ। २०–को पुरस (खोज), पुरस (जोध), पुरुस। २१–तब साति (खोज), साति। २२–जाही (जोध), ही। २३–आप ही (खोज), ही। २४– × (खोज)। २५– × (खोज) कि। २६–दीनी (खोज), करी। २७–जाइकैं (खोज), जाइ। २८–तब (जोध), जब। २९–देवी उपनिषद अरु बिबेक (खोज), बिबेक और देवी उपनिषद बेग। ३०–पुरस कौ नमस्कार

तितनैं बिबेक और देवी उपनिपद जमनिका कैं बाहिर आइ नमस्कार कस्यौ पुरुष कौ[30]। तब पुरुप हरष पाइ[31] बोल्यौ 'भली भई तुम आए बौहोत दिना तें तुम्हारो दरसन भयौ'।

आदर करि बैठाए। तब देवी उपनिपद बोली 'जु हमारी इतनी बडाई है जु सु[32] तुमही करि है। तुम्हारे आदर बिना जे[33] जे मैं देखे[33] ते कहाँ लौं कहौं[34]। अब तुम्हैं[35] देखे[36] हमहू[37] आनद पायौ[38]। सब दुख गए'।

तब पुरुप बोल्यौ 'देवि तेरे[39] प्रसाद तैं जान्यौ चाहत हौं जु[40] ईस्वर कौन है'।

तब उपनिपद सकोप[41] बोली 'जु[41] आप कौं न जाने ताकौं ऊतर कौन दे'।

तब पुरुप हरष पाइ बोल्यौ 'कहाँ मैं ही ईस्वर हौं'।

उपनिपद बोली 'हाँ यौं हो है। औरो सुनौ ईस्वर तोतैं न्यारो नॉही। तुमहूँ[42] ईस्वर तैं न्यारे नॉही[42] पैं अग्यॉन करि क न्यारे भए हौ[43]'।

तब पुरुष बिबेक सौं कह्यौ 'अहो देवी उपनिषद नै जो अरथ कह्यौ सु मैं कछु[44] नीकैं नॉहि समुझ्यौ क्यौं कि हौं प्रतिबिंब हौं न्यारौ हौं जनम म्रित धर्मा हौं ताकौं देवी उपनिषद कहत हैं सच्चिदानद सरूप है।'

कीयो (खोज), नमस्कार कस्यो पुरस सौ (उदय), पुरस सौं नमस्कार कस्यो। ३१–पाइ (उदय), सहित। ३२–सु (खोज), सो (जोध), जु सो। ३३–मैं जे जे दुष देषे है (खोज), जे जे सुष मे देषे (जोध), जे जे मैं देखे। ३४–कहीयै (खोज), कहो (जोध) कहौ। ३५–तुमको (खोज), तुम्ह (जोध), तुम्हैं। ३६–देषि (खोज), देखे। ३७–हमको (खोज), हमहू। ३८–भयो (खोज), पायौ। ३९– × (खोज), तेरा (जोध), तेरे। ४०–कि (खोज), जो (जोध), जु। ४१–बोली कोप होय कै कि (खोज), सकोप बोली जु। ४२–× (खोज), तुम हू ईस्वर तैं न्यारे नाहि। ४३–है (खोज), हौ। ४४–सु मैं (खोज), सु कछु

तब बिबेक बोल्यौ 'तुमकौं पदारथग्यॉन नॉही तातैं वाक्य[45] अरथ कौं नॉही जानत हौ'। तब पुरुप बोल्यौ 'तौ ताकौं[46] उपाइ तुमही करौ'। बिबेक बोल्यो 'सुनियै देह इद्री अतहकरन ए सब छॉडि इन तैं न्यारो यह मैं है। असैं त्व पदारथ जानि के तत्वमसी[47] जानौ तब अग्यॉन कौ नास होइ। तब सच्चिदानद होइ'।

तब पुरुष समुझि कै आनद पायौ।

तितनैं जमनका कैं बाहिर प्रबोध आइ कैं[48] बोल्यो कि 'देवी आसतिकता की आग्या तैं मोह कौ असि मन कौं मारि तुम पास[49] आयौ हौं[50]। नमसकार करत हौं'।

तब पुरुष आनद पाइ बोल्यौ 'अब पुत्र मिलि। मोकौं अब अँध्यारो[51] गयो। प्रभात भयौ बिकलप निद्रा गई। सध्या बिबेक मति साति जमादिक सहित एक आतमा भास्यौ सो हौं। हौं[52] सरवथा क्रिति-क्रिति[53] भयौ देवी आसतिकता के प्रसाद[54] तैं सो अब हौं[55] सुइच्छाचारी भयौ। अब मोकौं कहा डारिबौ। कहा निपेद करिबौ। कहा लीबो। कहा पायौ हौं[56]। कहा गमायौ। कछु हाँ ही नॉही'।

तितनैं देवी आसतिकता आई। आइकै हरप सहित कह्यो 'बोहोत काल तैं हमारौ मनोरथ भयौ जु सत्रुरहित[57] तुमको देखे'।

तब पुरुप बोल्यौ 'देवी के प्रसाद तैं कहा कठिन होय'[58]।

कहि[59] कै पाइन परयौ। देवी आसतिकता पुरुष कौं उठाय कैं कह्यौ 'और तोकौं कहा उपकार करूँ'।

तब पुरुष बोल्यौ 'या तैं परैं कहा है'।

मै (जोध), सु मै कछु। ४५–वाके (जोध), वाक्य। ४६–तो ताकौ (खोज +), ताको (खोज –), ताको (जोध), तो ताको (उदय +), तो ताको (उदय –)। ४७–तामस (खोज), तत्वमसी। ४८–आइ प्रबोध (खोज), प्रबोध आइकै। ४९–मैं (खोज) पास। ५०–आयौ है (खोज), आयौ हौ। ५१–मेरो अँधीयारो (खोज), मोकौ अब अधीयारो (जोध), मौकौ अब अध्यारो। ५२–× (खोज) हौ। ५३–एकत्र (खोज), क्रितिक्रिति। ५४–प्रताप (खोज), प्रसाद। ५५–सो हुँ (खोज), सो अब हौ। ५६– × (खोज, जोध), हौ। ५७–हरत (खोज), रहित। ५८–होइ (खोज), है (जोध), होय। ५९–कहि (उदय),

(दोहा)

जापर है सब भार यह ताहि[६०] न भारबिचार ।
जापर नाँही भार सो मरत भार कैं भार ॥११॥

जा बिन जानैं कहत हाँ[६१] ह्वैहै लिख्यौ जु लेख[६२] ।
ता जानैं जानैं नहीँ हानि समान बिसेष ॥१२॥

जा बिन जानैं सार करि[६३] जानैं रागहु[६४] द्वेष ।
ता जानैं जानैं नही हानि समान बिसेष ॥१३॥

जा बिनु जानैं भासतौ बिधि बिधि भास अलेख ।
ता जानैं जानैं नहीँ हानि समान बिसेप[६५] ॥१४॥

जा बिनु जानैं बिस्व मैं लीनौ फिरि फिरि भेप ।
ता जानैं जानैं नहीँ हानि समान बिसेप ॥१५॥

जलनिधि[६६] बिना तरंग ज्यौं बिना पवन[६७] आकास ।
द्वंदरहित[६८] त्यौं हाँ भयौ आतमग्यान प्रकास ॥१६॥

यह कहि कै चले । तितनैं सूत्रधार आइ आसीर्बाद दै कै बोल्यौ[६९] ।

(कबित्त)

जौ लौं गंगा कौ प्रवाह बहै[७०] खितिमंडल मैं
सेस धरैं भार जौ[७१] लौं सकल[७२] ब्रह्मंड कौ ।
ससि को किरन जौ लौं पोषत है ओषधिनि
प्रबल प्रकास तपै बिंब मारतंड कौ ।

यह कहि । ६०–नाहि (खोज), ताहि । ६१–है (खोज), हो । ६२–लेष (खोज), रेख । ६३–कर (खोज), करि । ६४–राग रु (खोज), रागहु । ६५–दूसरी पंक्ति 'जोध' मैं है । ६६–जलनिध (जोध), जलनिधि । ६७–परन (खोज), पवन । ६८–द्वंद्व रहत (खोज); द्वंद्वरहित । ६९–आय आशिर्वाद दे याँ (खोज); बोल्यौ (जोध), आइ कै बोल्यो (उदय) । ७०–ब्रहै (खोज), बहत । ७१–जो लौं (खोज); ज्यौं लौं (जोध), जौ लौं (उदय) । ७२–सब ब्रह्मंड (खोज), सकल ब्रह्मंड ।

छाँडत न मरजाद आपनी उदधिजल
जौ लौं आयबल महारिषि मारकंड कौ।
तेज परिवार धन धाम सुख सपति सौं[७३]
तौ लौं राज करैं[७४] महाराज नव खंड कौ ॥१७॥

इति श्रीमहाराजाधिराज श्री श्री श्री श्री श्रीजसवतसिंहजी कृत
प्रबोध नाटक भाषा समाप्त।

७३–जो लौं। ७४–करो (खोज), करैं।

आनंदविलास

(बरवै)

एकदंत गजबदन सु गवरीनंद ।
बिघन हरत अति गनपति करत अनंद ॥ १ ॥

(दोहा)

अपनी इछ्या करि कियौ बिस्व रूप परकास ।
बदन परमानंद कौं जो जग कौ आधार ॥ २ ॥
ब्याससूत्र कौ भास्य पट संकर करयौ बनाइ ।
ता ओढ़ें अग्याँन कौ सीत सबै मिटि जाइ ॥ ३ ॥
संकर गंगातट बिषै बैठे सहज सुभाय ।
तहाँ उदासी पुरुष इक नमसकार कियौ आय ॥ ४ ॥
तद संकर पूछयौ कहौ जाति नाँव अरु गाँव ।
अरु मन को इछ्या कहौ क्यौं आए तजि गाँव ॥ ५ ॥

(बरवै)

जाति न जानत आप न तात न मात ।
जीव सबै मो कहन करत जब बात ॥ ६ ॥
मिथ्या जानि प्रपंच भयउ दुख दून ।
बिषयसुखन मैं दुख बहु सुख अति नून ॥ ७ ॥
घर कुटंब नहिं मेरे आवत काम ।
मोहू तैं उनकौ नहिं जात बिराम ॥ ८ ॥

---

[२] आनंद (उदय), आधार ।
[३] ऊढ़ैं (उदय), ओढ़ैं ।
[४] नमसकारि (जोध), नमसकार ।
[५] कहौ (उदय), कह्यो ।

बिषय सुख्ख ममता तैं नीकउ होहि।
यह सब झूठी लागत ममता मोहि॥ ६॥

(अरिल)

सुक चिरिया घर माँहि पुरुष के रहत जू।
सुवा मरैं दुख होइ चिरी नहिं दहत जू।
ममता हो दुखरूप मोहिं यह भासई।
परि हाँ काकैं सरनैं जाउँ कौंन मुहि राखई॥ १०॥

(बरवै)

इन बातन दुख उपजै अचरिज कौन।
मो तनहीं मैं अरि ए जानत हौं न॥११॥
काम क्रोध अरु लोभ मोह यह जानि।
मद मछ्छर ए सब हैं दुख की खानि॥ १२॥
काम करत यह सब ही अचरिज साज।
बिनहीं कारन देखहु उपजत काज॥ १३॥
रुधिर माँस की मूरत बीभछ होत।
ताही मैं सिंगार प्रगट उद्दोत॥ १४॥
रूप दिखाइ रु मन कौं करत अधीन।
सुधि आश्रैंहूँ सब अँग कीनैं दीन॥ १५॥
जब उपजै तब सूझत कछुवै नाहिं।
धरमाधरम बिबेक तबै मिटि जाहिं॥ १६॥
दुष्ट सदाई जानौ दुख कौ हेत।
ता आधीन भश्रैं तैं नहिं दुख देत॥ १७॥
काम दुष्ट के ज्यौं ज्यौं होत अधीन।
महा प्रबल इहिं त्यौं त्यौं बहु दुख दीन॥ १८॥

---

[६] होहि (उदय), होइ।
[१०] सुक चरिया (उदय); सुक चिरिया।
[१५] आयैंहूँ (उदय), आश्रैंहू।
[१७] सदा ही (उदय), सदाई। भयैं (उदय), भश्रैं।

क्रोधाबेस भएँ कछु परत न जान।
पूज्य अबध्यन सूँ कइ करै निदान॥ १९॥
इहिं कर कौतक लखहु न अचरिज बात।
धरम बिबेक न रहइ करइ अपघात॥ २०॥
लोभ सुमारग जान न काहू देत।
सदा कुमारग ही कौ है यह हेत॥ २१॥
लोभ मिटावै सब पुन अरु गुरुकानि।
पुनि हरुवाई अपनी निहचै हानि॥ २२॥
बिपति होति नहि कबहूँ अचरिज जोइ।
तिहूँ लोक की संपति जौ घर होइ॥ २३॥
ज्यौं ज्यौं छीन सरीर पुष्टि त्यौं आस।
या त्रिष्णा तैं उपजत मोकौं त्रास॥ २४॥
देह छुटैं हूँ छुटत न इछ्या रोग।
देव पितर तिनहूँ तैं छुट्यौ न भोग॥ २५॥
मोहाबेस भएँहूँ रहत न ग्यॉन।
मिथ्या जग कौं करत जु साँच समान॥ २६॥
धरम राह मैं चलन न मन कौं देत।
अधरम नीकौ लागत याकैं हेत॥ २७॥
राग मोह कौ रूप सु जानहु अैन।
बुध्धि बिबेक मिटावत करत अचैन॥ २८॥
मद तैं इंद्रियग्यॉन सबै मिटि जाइ।
धरमाधरम बिबेक कछू न लखाइ॥ २९॥
पीयैं करत बिकलता तुछि मदरीत।
बिना पियैं तन बिहवल यह बिपरीत॥ ३०॥

---

[१९] भयैं (उदय), भएँ।

[२५] छूट्यौ (उदय), छुटै। इछ्या (उदय), इछिया (बोध-), इछया। छूट्यो (उदय), छुट्यउ।

[२६] मोहाबेस भयैं (उदय), मोहात्रेस भएँ। साच समान (उदय), सा समान।

[२८] औपन (उदय-), अैपन (उदय+), अैन।

परगुन तैं दुख उपजै मछ्छर जानि।
धरम बिबेक न रहई सुख की हानि॥ ३१॥
ए षट दुख के कारन परगट देखि।
अब सब इंद्रिनि के गुन कहौं बिसेषि॥३२॥
देह चलन ब्यौहार सु इनके साथ।
मेरे नाँहिन ए बस हौं इन हाथ॥३३॥
नैन दिखावत सब ही मिथ्या रूप।
सीप माँझि रूपौ ए करत अनूप॥३४॥
स्रवनन तैं सुख अब लौं पायौ नाँहि।
अैसो कछु न सुनायौ जिहिँ दुख जाँहि॥३५॥
सपरस रसना आघ्रण दुख की खान।
करमेंद्रीहू इनकैं जानि समान॥३६॥
नैननि दीपक देखत पर्यौ पतंग।
आपुनि हानि न गनई जार्यौ अग॥३७॥
धुनि म्रिग कैं जब सुर की परी जु कान।
तन बन हरनो तजिकै दीन्हें प्राँन॥३८॥
आघ्रण इंद्री तैं अलि रह्यौ बँधाइ।
अंबुज कौं जिय दीन्हौं बास अघाइ॥३९॥
रसना कारन पुद्गल छाड्यौ मीन।
त्यौं ही गज सपरस तैं बधन लीन॥४०॥

(अरिल)

एकिक इंद्री तैं जु इन्हैं दुख होत है।
पाँचौं मिलि मो माँहि कर्यौ इन तोत है।
सुख सौं नैंकु दिखाइ मोहि मन लेत हैं।
(परि हाँ) ए हैं दुख की खानि सदा दुख देत हैं॥४१॥

---

[३१] रहीई (उदय–), रहई।
[३४] माँहि (उदय), माझि।

(बरवै)

अंतहकरन बिचार्यौ है इहिं रीति।
यह सब अपनैं बस करि करत अनीति ॥४२॥
बिषय रूप मन चंचल थिर नहिं होइ।
सँकलप बिकलप याकैं हैं गुन दोइ ॥४३॥
बुधि कौ कारज निहचै निहचै जानि।
मन कैं पाछैं रहति गनत नहिं हानि ॥४४॥
अहंकार यह कहत जु मोसौ कौन।
कोऊ ठौर न देखत जामैं हौं नं ॥४५॥
सुधि राखन गुन चित कौ और न बान।
मन कौ थाँघी याकौं जानि निदान ॥४६॥
अंतहकरन रु जग सब दुख कौ रूप।
बिन सुख देखत सबकौं रक रु भूप ॥४७॥
एतौ दुख मैं जान्यौ अपनै जानि।
तब मैं छाड्यौ घरु अरु कुल की कानि ॥४८॥
आवत आवत आयौ तुमरे पास।
जानत हौं अब ह्वैहै पूरन आस ॥४९॥
मेरी इछ्या हुती सु कहौ बनाइ।
तुम सरनैं हौं आयौ लेहु बचाइ ॥५०॥

(अरिल)

संकर दै साबासि कह्यौ तूँ धन्य है।
सतपुरुषन की रीति जगत तैं भिन्य है॥
तेरी इछ्या सुनत भयौ सुख चित्त कौं।
(परि हाँ) हितकारी यह दसा करैगी हित्त कौं ॥५१॥

---

[४२] अपनौं (उदय—), अपनैं।
[४४] निहचैं (उदय), निंहचै निहचै।
[४८] दुष (उदय), दुषमैं। छड्यौ धर अर (उदय), छाड्यौ घरु अरु
[५०] हु (उदय), हौं।

(दोहा)

तैं जु कही ससार मैं दुख ही भासत मोहि।
ऐसैं ही यह जानि तूं जैसैं भासत तोहि ॥५२॥
जिन्हैं अबिद्या आबरन तिन्हैं होत अग्याँन।
तातैं जग कौं साँचु करि लीनौ सुख सौं मान ॥५३॥
रोगी मीठौ खाइ ज्यौं दुखी होत परिणाम।
त्यौं ही जग सुखसौं लसत अत जानि दुखधाम ॥५४॥
एक अबिद्या आसिरै जानि सकल ससार।
नास अबिद्या ग्याँन तैं यहै मानि निरधार ॥५५॥
कह्यौ जीव परणामु करि दीजै मोहि बताइ।
ग्याँन पदारथ कौन है क्यौं करि जान्यौ जाइ ॥५६॥
तद सकर ऐसैं कह्यौ साधन प्रथम उपाइ।
पीछै ग्याँन प्रकास है सहजै तो मैं आइ ॥५७॥
ए षट साधन कहत हौं आदि दऐं जग्यास।
सम दम इद्री बसकरन मुमषि मोष की आस ॥५८॥
छोड़ी बसतन फिरि चहैं सोई उपरम जानि।
छवैं तितिष्या मानि लै सुख दुख सहैं समान ॥५९॥
ए सिध साधन हैं छहौं तो मैं करत प्रकास।
और पावनौ सातवैं सतगुर पूरन आस ॥६०॥
ईस अनुग्रह तैं इहाँ आयौ मेरे पास।
तोकौं स्रध्धा चाहियै बचन बिषै बिस्वास ॥६१॥
करन कहत हौं जोग हठ तेरे हित कौं जोइ।
साधन करि अष्टाग कौ ज्यौं चित उज्जल होइ ॥६२॥

---

[५३] जिनैं (उदय), जिन्हैं।
[५५] जानैं (उदय), जानि।
[५६] बतत्य (उदय), बत्याइ।
[५९] दूष लहैं (उदय), दुष सहै।
[६०] ता मैं (उदय), तो मैं।
[६२] साधन करि (उदय), साधन कर।

बदन करि कै जोव तब पूछ्यौ धरि मन प्रीति।
बिधि पूरब हठजोग को कहियै मोकौं रीति॥ ६३॥
जम अरु नैमहि जानि तूं आसन प्राणायाम।
प्रत्याहार रु धारणा ध्यान समाधि सु नाम॥ ६४॥
जम है पाँच प्रकार कौ इहि बिधि सौं तूं मानि।
बुरौ न चाहै और कौ ताहि अहिंसा जानि॥ ६५॥
सत्य साँच कौ बोलनौ अस्ते की यह रीति।
दीनै बिनु लीजै नहीं राखौ यहै प्र ीति॥ ६६॥
परनारी सौं राखियै ब्रह्मचर्य सुचि देह।
अपरिग्रह ममता तजैं जम पाँचौ गनि लेह॥ ६७॥
नैमु पाँच बिधि सुचि यहै इद्री सुध अरु चित्त।
त्रिष्णा त्याग सँतोष तप करै ब्रतादिक नित्त॥ ६८॥
स्वाध्याय पढतै रहै अध्यातम चित लाइ।
प्रणीध्यान नित बिष्णु कौ चितन करै बनाइ॥ ६९॥
सुसथिर आसन बैठि कै षटक्रम करै बनाइ।
ता पाछैं कहिहौं बहुरि प्राणायाम सुनाइ॥ ७०॥

(अरिल)

नेती धोती बसती न्यौली जानियै।
भसत्रा त्राटक ए षटकरम बखानियै।
इनतैं सुध्ध सरीर करैगो माहिरे
(परि हाँ) तबै कचाई नैक रहैगी नाँहि रे॥ ७१॥

---

[६५] पच (उदय), पाँच। इहिं (उदय) ताहि।
[६६] यहि (उदय—), यहै।
[६७] ब्रह्मचरिज (उदय), ब्रह्मचर्य। पचौं गनि (उदय), पाचौ गन।
[६८] पच (उदय), पाँच।
[६९] पढतै (उदय), पठतै।
[७१] तबैं कचाई (उदय), तबै कधाई।

जालंधर उड्डाण मूलबँध जॉनियै।
महावेध खेचरी रु मुद्रा मानियै।
बिपरीताख्या और साभवी मानि लै।
(परि हाँ) ए मुद्रा हैं आठ इन्हैं तूँ जानि लै॥ ७२॥

(दोहा)

ए सब करिकै कीजियै प्राणायाम प्रकार।
पूरक कुंभक रेच है ए तीनौ निरधार॥ ७३॥
और ठौर सौं फेरिकै मन कौं लावै ठौर।
प्रत्याहार सु जानियै जामैं नहि मन दौर॥ ७४॥
एक ठौर चित लाइयै यहै धारना होइ।
चित लाग्यौ लाग्यौ रहै ध्यान कहावै सोइ॥ ७५॥
पूरनहूँ भासत नहीं धेय रूप चित माँहि।
सोई जानि समाधि यह और बिषै हाँ नाँहि॥ ७६॥
इन बातन सौं चित्त कौं उज्जल करै बनाइ।
स्रवन मनन करिकै करै नितअध्यासन भाइ॥ ७७॥
ब्रह्मबिद्या कौ तत जबै समझै स्रवण सु होइ।
यह ठहरावै जुगति करि मनन कहावै सोइ॥ ७८॥
नितअध्यासन अरथ कौं दिढ कीनौ चित माँहि।
ताकौ सुमिरन नित करै भूलै छिनहू नाँहि॥ ७९॥
जीव कह्यौ साधन सबै मैं कीनै चित लाइ।
अनुग्रह करिकै ग्याँन अब दीजै मोहि बताइ॥ ८०॥

शंकराचार्य्योवाच

बिस्वरूप ए सकल तूँ मिथ्या ही करि देखि।
एक आतमा सत्य है निहचै करिकै लेखि॥ ८१॥

---

[७४] मन क्यों ल्यावैं ठौर (उदय), मुल्जक करै बैठोइ (जोध–), मजक बैठो।
[७५] यह (जोध–), यहै।
[७९] करि सकै (उदय–), करि (उदय +), करै।

जीवोवाच

तुम प्रपच मिथ्या कह्यौ फिरि पूछत इहिं हेत।
स्रवणादिकहू बिस्व मैं साँचौ फल क्यौं देत॥ ८२॥

शकरोवाच

जौ लौं गुरु हौं सिष्य तूं तौ लौं ही जग देखि।
स्रवण आदि दे ए सबै तौ लौं सति करि लेखि॥ ८३॥
स्रवणादिक तैं जानि तूं उपजत ग्यॉन अखड।
तद स्रवणादिक सिष्य गुरु मिथ्या सब ब्रह्मड॥ ८४॥
स्रवणादिक है बिस्व लौं बिस्व गए तैं जॉहि।
त्यौं ही लकरी के जरैं रहत आगिहू नॉहि॥ ८५॥

जीवोवाच

सकर क्रिपा कटाछि तैं मिटे चित्त के खेद।
झूठौ मैं समझ्यौ अबै बिस्वरूप को भेद॥ ८६॥
मिथ्या भ्रम ससार कौ ठौर बिना क्यौं होत।
झूठौ रूपौ जानियै देखि सीप की जोति॥ ८७॥
और आतमा एक तुम कह्यौ सत्ति करि धारि।
ताकी ठौर रु रूप कौ कहियै मोहिं बिचारि॥ ८८॥
आचारिज हसिकै कह्यौ भलै तोहि साबास।
अधिष्ठान या जगत कौ जानौ ब्रह्मप्रकास॥ ८९॥
एक ठौर नहि आतमा व्यापक है यह जानि।
इहिं सिगरे ससार कौं ब्रह्म रूप ही मानि॥ ९०॥
करि प्रणाम जिय यह कह्यौ जगतपूज्य तुम आहि।
ह्यॉऊँ ससय ना मिट्यौ कौन मिटावै ताहि॥ ९१॥
कह्यौ आतमा रूप तुम यामैं ससय मोहि।
सत्य ब्रह्म कौ झूठ जग कह्यौ रूप क्यौं होहि॥९२॥

---

[८६] भेद (उदय), भेव।
[९२] होहि (उदय +), होइ।

अधिष्ठान है ब्रह्म सति तातैँ जग सति जोइ।
ऐसैँ ही भ्रम साँप कौ रसरी बिना न होइ ॥९३॥
सादृिस बिन भ्रम है नहीँ जौ जिय मैँ यह होइ।
तौ यह कछुवै नैमु नहिँ सादृिस बिनहूँ जोइ ॥९४॥
ज्यौँ अकास मैँ नीलिमा सख पीतहू जोइ।
पित तैँ गुर करुवौ लगत बिन सादृिस भ्रम होइ ॥९५॥
पाँच प्रकार प्रपच मैँ निहचै तूँ ए जानि।
अस्ति भाति अरु प्रीयता नाम रूप लै मानि ॥९६॥
अस्ति भाति अरु प्रीय कौँ त्रिबिधि सत्ति तूँ मानि।
नाम रूप ए दोय तूँ मिथ्या मन मैँ जानि ॥९७॥
जीव कह्यौ या सीप मैँ झूठौ रूपा जोइ।
भ्रम रूपे कौ चित्त मैँ सीप न जानै दोइ ॥९८॥
बिस्व रूप या भरम कौ कारन कहियै मोहि।
सत्य आतमा एक तैँ दूजौ भ्रम क्यौँ होहि ॥९९॥

शकराचार्य्योवाच

भरम रूप या जगत कौ हेत अबिद्या जानि।
और अबिद्या की कहौँ दोइ रीति लै मानि ॥१००॥
राखै ढाँपि सु आवरन एक सकति यह लेखि।
और बिक्षेप जु और कौँ और दिखावै देखि ॥१०१॥
मिलैँ अबिद्या कैँ भए नाना रूप प्रकार।
त्यौँ ही इहिँ सुध ब्रह्म तैँ कीने जीव अपार ॥१०२॥
जगत भ्रम कौ हेत तूँ एक अबिद्या देखि।
ताकौँ हौँ तोसौँ कहौँ लछि्छन रूप बिसेषि ॥१०३॥

---

[९६] निसचै (उदय), निहचै।
[९८] दोइ (जोध +), होइ।
[९९] होइ (उदय, जोध –), होहि।
[१०३] भ्रम कौ (उदय), चम कौ।

है नाँही नाँही नहीँ कछुवै कही न जाइ।
अनिरबचन यातैँ कहैँ बहु रूपी कैँ भाइ ॥१०४॥
माया आस्रैं ब्रह्म कैँ तातैँ याहि प्रकास।
देखौ ताही ब्रह्म कौँ करत आवरण पास ॥१०५॥

(अरिल)

जब चंद कैँ राहु आसरै होत है।
तबै चद्रमा वाहि करत उद्दोत है॥
ताही ससि कौँ राहु छिपावत देखि रे।
(परि हाँ) ब्रह्म अबिद्या रीति यहै तूँ लेखि रे ॥१०६॥

(दोहा)

माया ब्रह्मप्रकास तैँ आपुनि ईस्वर होइ।
ईस्वर हुइ ब्रह्मड कौ रूप दिखावत सोइ। ॥१०७॥
मया प्रथम आकास ह्वै फेरि होत है बाइ।
पुनि ह्वै तेजस जल भई बहुरि धरा ह्वै जाइ ॥१०८॥
प्रथम पाँच सुछिछम भए तेई बहुरि मिलाइ।
स्थूल भूत फिरि पाँच करि जगत कर्यौ इहिँ भाइ ॥१०९॥
अधिष्ठान या बिस्व कौ सुध्ध आतमा जान।
तौ लौँ यह साँचौ लगत जौलौँ नहि ब्रह्मग्याँन ॥११०॥
जीव कह्यौ तुव बचन ए मेरे पूरन आस।
ग्याँन कह्यौ तासौँ अबै होइ अबिद्या नास ॥१११॥
तद सकर ऐसैँ कह्यौ सत्ति बचन ए जोइ।
ग्याँन यहै जो एकता जीव ब्रह्म की होइ ॥११२॥

---

[१०५] तातै (उदय), तापै। देषौ ताही ब्रह्म कौं (उदय), करत आवर कौ।

[१०६] उद्दोत (उदय), उद्योत।

[१०७] ईस्व होइ (उदय), ईस्व हुइ।

[१०९] पच (उदय), पाच।

[१११] कहौ (उदय), कह्यो। जु (उदय), जौ।

जीव कह्यौ या जीव कौं रूप बतावौ तौन।
कहियै मोहिं दयाल ह्वै ब्रह्म रूप है कौन ॥११३॥

शंकराचार्य्योवाच

मैं जु कहत हौ आपकौं ताही कौं जिय जानि।
मैं न होइ वह देह पुनि इंद्रीहूँ मति मानि ॥११४॥
मन मेरो मन मैं नहीं तातैं मन मैं नाँहि।
चितहू मेरो मैं नहीं मैं न्यारो इन माँहि ॥११५॥
बुधि मेरी मैं बुधि नहीं यहै साँच करि मानि।
यातैं इनमैं नाँहि मैं मैं न्यारौ करि जानि ॥११६॥
रहै देह जाकैं रहे जाहि गए तैं जाइ।
ऐसौ प्राण सु मैं नहीं मेरो ही यह बाइ ॥११७॥
जौ कदाचि तूँ जानिहै अहंकार मैं होइ।
भयौ अबिद्या तैं प्रगट अहंकार जड़ जोइ ॥११८॥

(सोरठा)

अंतहकरन मैं होइ चेतन कौ प्रतिबिंब जब।
मैं हूँ कहियै सोइ याही कौं जिय जानि तूँ ॥११९॥

(दोहा)

जौ कदाचि संदेह यह तेरे मन मैं लोइ।
चेतन के प्रतिबिंब सौं देह मिलन क्यौं होइ ॥१२०॥
याकैं तीन सरीर हैं कारण सूछिम जानि।
तीजैं देह सथूल है इहिं बिधि तैं तूँ मानि ॥१२१॥
प्रथम देह कारन कही ताहि अविद्या मानि।
दूजैं अंतहकरन कौं सूछिम देह पिछानि ॥१२२॥

---

[११४] मैं जु (उदय), सै जु। हैं आपकौं (उदय), हौ आपकौं।
[११७] जाकैं (उदय), याकैं। तैं न (उदय), तैं।
[११९] अंत (उदय), अंतः।
[१२०] लोग (उदय —), लोइ।

कारन सूछिम देह ए जीव लगे ही होत।
पचभूत कौ तनु यहै स्थूल करत उद्दोत ॥१२३॥

(अरिल)

कारन सूछिम मानि देह ए दोइ है।
याही तैं तूं देखि जीव यह होइ है।
इन दोऊ कैं नास जीवपद ना रहै।
(परि हाँ) पाछैं सुध्ध स्वरूप भयौ जो हो वहै ॥ १२४ ॥

(दोहा)

और सथूल सरीर यह होत करम अनुसार।
अब याकी उतपत्ति कौ तोसौं कहौं बिचार ॥१२५॥
एक नीर फिर पाँचवैं होत पुरुष उत्पत्ति।
प्रथम सकलप कीजियै जग्यादिक कौ सत्ति ॥१२६॥
दूजैं आहुति होम की मत्र सकति कै भाइ।
वाकौ धूंवा सूर के मडल पहुँचै जाइ ॥ १२७ ॥
रबिमडल तैं मेह ह्वै परै भूमि पर आनि।
होत नीर यह तीसरैं इहि बिधि करि तूं जानि ॥ १२८ ॥
वहै अन मैं आइकै पुरुष पेट मैं जाइ।
वाही जल कौं समुझि तूं चौथैं है इहिं भाइ ॥ १२९ ॥
सुक्र द्वार ह्वै गरभ मैं नीर पाँचवैं सत्ति।
ऐसैं करि यह होत है स्थूल देह उत्पत्ति ॥ १३० ॥
करम होइ जैसैं कछू तैसोई तन होइ।
तैसैं ही सुख दुक्ख कौ भोग करैगौ सोइ ॥ १३१ ॥
करम जु तीन प्रकार के ए तूं निह्चै जानि।
संचित अरु प्रारबध हैं क्रीयमाण लै मानि ॥ १३२ ॥

---

[१२३] लगै ही (उदब), लगेई।
[१३१] दूष दूष (उदय), सुष दुष।
[१३२] प्राबध (उदत), प्रारबध।

जनम जनम के करम हैं तिनको सचित जानि।
जिनतैं उपजी देह यह ताहि प्रारबध मानि ॥ १३३ ॥
अब उपजैंगे देह तें क्रीयमाण ए जोइ।
ईस्वर आराधन कियैं बछित सुभ फल होइ ॥ १३४ ॥

जीवोवाच

मो मन तैं सब ही मिटे ससय भरम अनेक।
आसका मो जीव मैं जीव कह्यौ है एक ॥ १३५ ॥
ईस्वर सुभ फल देत जौ आरावन कौं मानि।
तौ आवत ईस्वर विषै राग द्वेष की बानि ॥ १३६ ॥

शंकराचार्य्योवाच

निकट गयैं ठौंढि जात है दूरि रहैं ठौंढि जोइ।
यातैं जानौ आग मैं राग द्वेष नहि होइ ॥ १३७ ॥
राग द्वेष कबहूं नहीं निहचे ईस्वर माहि।
करमनि कौं तूं जानि जड़ फलदाता ए नाहि ॥ १३८ ॥
निहचै तूं ए करम सब जड़ ही करिकै जानि।
सदा सुभासुभ करम कौ दाता ईस्वर मानि ॥ १३९ ॥
जीव कह्यौ यह मैं अबै समुझ्यौ सबै बनाइ।
ता ईस्वर कौ रूप प्रभु दीजै मोहिं बताइ ॥ १४० ॥

शंकराचार्य्योवाच

प्रतिबिंब माया कैं बिषै सुध्ध ब्रह्म को आहि।
यह निहचै करि जानि तूं ईस्वर कहियै ताहि ॥ १४१ ॥
तटस्थ लच्यन कहत हौं ईस्वर कौ निरधार।
उपजावै पोषै सदा बहुरि करै सिंघार ॥ १४२ ॥

---

[१३३] सोचत (उदय —), सचित।
(१३५] सासै (उदय) ससय।
[१३६] देत जौं (उदय), हैत जौ।
[१३७] अैंठढि (उदय), ठैंढि। आगि (उदय +), आग।
[१४१] माया कैं (उदय), मया कैं।
[१४२] बौंहौरि (उदय); बौहर। सघार (उदय), सिंहार।

अब स्वरूपलछ्यन कहौ ईस्वर को तू जानि।
सुध्ध सच्चिदानद है असौ हो तूँ मानि॥ १४३॥

(सोरठा)

सत्ता जानहु सत्त चित प्रकास कौं कहत हैं।
आनॅद आनॅद नित्त असैं अरथ बिचार लै॥ १४४॥

जीवोवाच (दोहा)

तीन धरम तुम ब्रह्म के मोकौं दए गनाइ।
तौ वह निरगुन कौंन बिधि कहियै मोहिं बनाइ॥ १४५॥
जौ तुम कहिहौ तीन कौ अरथ जुदौ यति मानि।
इनकौ एक स्वरूप है असौ ही तूँ जानि॥ १४६॥
तौ सत चित आनद तुम तीन कहे किहिं भाइ।
इनकौ अरथ दयाल ह्वै कहौ मोहिं समुझाइ॥ १४७॥
आचारिज मुसक्याइ तब कह्यौ धनि तूँ आहि।
फिरि बनाइ तोसौं कहौं यह हू ससै जाहि॥ १४८॥
सत्ता याहि यातैं कह्यौ असत न कबहूँ होइ।
चित प्रकास तातैं कह्यो अप्रकास नहि सोइ॥ १४९॥
आनॅद पद यातैं कह्यौ कबहूँ नहि दुखरूप।
इहिं बिधि तैं तूँ जानि लै असो वाको रूप॥ १५०॥
यह स्वरूपलछ्यन कह्यौ ईस्वर कौ तूँ जानि।
ता ईस्वर अरु जीव सौं होइ अभेद सु ग्याँन॥ १५१॥

जीवोवाच

जीव कह्यौ इनकौ सकल लोग कहत हैं दोइ।
ईस्वर अरु या जीव सौं एकपनो क्यौं होइ॥१५२॥

---

[१४३] कहौं (उदय), कह्यौ। इस्वर (उदय), ईस्वर। जानि (उदय), मानि।
[१४५] बताय (उदय —), गनाइ।
[१४६] दौ मति (उदय), दो मत। असौ ही (उदय), असौही।
[१४८] कैं तब (उदय —), तब।

शंकराचार्य्योवाच (अरिल्ल)

बाल अवस्था माहि पुरुष इक देखियै।
बहुत दिना तैं वाहि फेरि त्रिध पेखियै।
क्यों करि जान्यौ गयौ कह्यौ वह है वहै।
(परि हाँ) दुहूँ अवसथा छाँडि जानियै नर वहै ॥१५३॥

(दोहा)

त्यौं जिय तैं अतहकरन न्यारौ करिकै मानि।
ईस्वर हू सौं भिन करि माया ऐसैं जानि ॥१५४॥
ईस्वर अरु या जीव की इक उपाधि करि दूरि।
पीछै सुध्धस्वरूप ह्वै रहिहै चेतन पूरि ॥१५५॥
ईस्वर अरु या जीव कौ एकपनो ही ग्यान।
ग्यान भए तैं करम कौ होत नास यह जान ॥१५६॥
सचित पिछले करम सब भसम भए तूं मानि।
अब उपजैंगे नाँहि फिर क्रीयमान हूं जानि ॥१५७॥
बँधी देह जातैं रहै कहैं प्रारबध ताहि।
रहै देह तौ लौं रहै दगध बस्त्र ज्यौं आहि ॥१५८॥
ऐसो ग्यॉनी होइ कै जीवै तौ लौं जानि।
सो कहियै जीवनमुकत निसचै करि तूं मानि ॥१५९॥
सो हौं जीवनमुकत की रीति कहौं यह तोहि।
ताहि कामना की कछू इछया हू नहि होइ ॥१६०॥
अपने सुध्ध स्वरूप मैं सदा मगन जो आहि।
इछया की इछया कछू क्यौं करि उपजै ताहि ॥१६१
और करम प्रारबध ए तन लौं रहिहै मानि।
करम फेरि इनतैं अबै उपजन के नहि जानि ॥१६२॥

---

[१५३] है यहै (उदय), है वहै। छाडि (उदय), छयाडि।
[१५५] स्वरूप है (उ[illegible]), स्वरूप ही।
[१५७] तैं मानि (उदय —), तु मान (जोध —), तू मानि।
[१६२] करम (उदय); कर्म। रहिहैं (उदय), रहि लै।

रहिहैँ याकी देह लौँ करम प्रारबध जोइ।
तौ लौँ याकी देह कौँ सुख दुख सबहीँ होइ ॥१६३॥
ग्यान भए हूँ देहगुन रहत देह कैँ माँहि।
जैसैँ लकरी आग है तजै गाँठि कौँ नाँहि ॥१६४॥
दुख तैँ दुख व्यापै नहीँ दुख तैँ सुख नहि माँहि।
जैसैँ सुख दुख और के लगैँ और कौँ नाँहि ॥१६५॥
जब जैहै प्रारबध ए तद सरीर हू जाइ।
तौ लौँ जीवनमुकत है बहुरयौ मुकत सुभाइ ॥१६६॥
देह समापत कैँ बिपैँ उपजै जाकौ ग्यान।
ताकौ सद्योमुकत सब निसचै कहत प्रमान ॥१६७॥
अनुग्रह करिकै रावरे अब मेरी यह रीति।
सुनियै प्रभु मेरो दसा मन धरि प्रीति प्रतीति ॥१६८॥

(सोरठा)

पहिलैँ सुख दुख सत्ति मौकौँ ए लागत हुते।
तातहु मैँ दुख अत्ति सुखहू तैँ लागत हुतौ ॥१६९॥

(दोहा)

क्रिपा तुम्हारी तैँ दसा मेरी ऐसैँ जोहि।
सुख दुख नैक न भासई मेरे से ए मोहि ॥१७०॥

(अरिल्ल)

चल्यौ जात हो एक बटाऊ बास मैँ।
तहाँ एक कैँ पुत्र भयौ है ता समै।
तहाँ एक कैँ सोग पुत्र मन लै गयौ।
(परि हाँ) बाहि बटाऊ नैक सुखै दुख ना भयौ ॥१७१॥

(दोहा)

ऐसैँ ही दुख तैँ सबै सब मैँ साछी होहि।
सुख दुख अरु यह देह पुनि लगै बटाऊ मोहि ॥१७२॥

---

[१६३] देह लौं (उदय), देह कौं।
[१६४] गठ (उदय), गाठि।
[१७२] देह पुनि (उदय), पुनि।

पहलैं हौं जानत हुतौ मन चचल अति आहि।
थिर करि कैसैं राखिहौं कौन जतन तैं याहि ॥ १७३॥
सो मन अब असौ भयौ फिरै न कितहूँ और।
जात न कबहूँ देखियै ताहि दूसरी ठौर ॥१७४॥
जाइ कहाँ यह मन अबै ठौर दूसरी नाँहि।
जहाँ जाइ तहँ आप ही रहै आप ही माँहि ॥१७५॥
पछी उड़ै जिहाज कौ नही जाइगो और।
उडि फिरि बहुरयौ आवही बैठन कौं वह ठौर ॥१७६॥
मन असैं थिर होइ कै लीन भयौ मो माँहि।
बुधि हू कौं देखौं जऊ ढूढै पावत नाँहि ॥१७७॥

(सोरठा)

अब जौ देखत चित्त याहू कौं पावत नही।
गयौ न जानौ कित्त धरो बात सब साथ लै ॥१७८॥

(दोहा)

अहकार हू सब गयौ देखत हौं मो माँहि।
कछू रह्यौ है ताहि हौं उहि बिधि देखत नाँहि ॥१७९॥
तप अरु बिद्या कौ गरब और हुतौ अभिमान।
ए सब इहिं बिधि तैं गए तन तैं गयौ गुमान ॥१८०॥
मैं जु कहावत हो सदा झूठैं ही मो पास।
ताकी तौ मोकौं अबै नैक न आवत बास ॥१८१॥
अहंकार मोकौं अबै भासत आहि अनूप।
अब जग सिगरौ मैं भयौ मैं ही आनँदरूप ॥१८२॥

---

[१७३] जानत हुतौं (उदय), जान हुतौ।
[१७४] कितहूं (उदय), कबहू।
[१७६] आवई (उदय), जांन आपही।
[१७८] जानौ (उदय), जांन्यौ
[१८०] गयौ (उदय), गये।
[१८१] मोकुं (उदय), मोकौं।

त्रिगुनबध तैँ दौरतौ घर पुर अरु बन माँहि।
बंधन छूटे थिर भयौ चल्यौ जाइ अब नाँहि ॥१८३॥
जित जित अब हौँ जात हौँ तितहीँ तित्त समाध।
मुकत हौन की नैकहूँ रहो न मोकौँ साध ॥१८४॥
खाली ठौर न नेक है कहा निकट कह दूरि।
प्रलैकाल के सिंध लौँ रह्यौ आतमा पूरि ॥१८५॥
यह अचिरज मौपैँ कछू कहे बनत है नाँहि।
ग्यान अगनि तैँ बिस्व सब भसम भयौ छिन माँहि ॥१८६॥
भसम भयैँ उपज्यो तहाँ परमानंद प्रकार।
सु यह बात चाहत कह्यौ आवस्यक इक बार ॥१८७॥
कहाँ कौन सौँ मोहिँ अब तुमहू भासत नाँहि।
देखत हौँ करि एक सब सुध्ध आतमा माँहि ॥१८८॥
नाना बिधि देखत हुतौ तुछ प्रकास कै माँहि।
अब हौँ महाप्रकास तैँ देखत कछुवै नाँहि ॥१८९॥
आनँद फल प्रापत भयौ तुव प्रसाद तैँ आइ।
तुम यह अैसैँ मानिज्यौ पूजा सहज सुभाइ ॥१९०॥
जो हौँ बोलत हौँ कछू सो लीजौ जप मानि।
और क्रिया जे हाथ की ते सब मुद्रा जानि ॥१९१॥
पाइन तैँ उपजैँ क्रिया परदछिछना सु आहि।
अरु जो भोजन करत हौँ होम जानिज्यौ ताहि ॥१९२॥
जब हौँ सोवत हौँ तबै लेहु दंडवत मानि।
ए सब तन की चेसटा मेरी करि मति जानि ॥१९३॥

---

[१८४] न कीनैं (उदय), न कनै।
[१८५] दूर (जोध —), दूरि रह्यौं (उदय), रह्यौ।
[१८६] यह अचरिज (उदय), अह अचिरज।
[१८७] उपज्यौं (उदय), उपजौ। प्रकार (उदय), प्रकास।
[१९०] जानज्यौं (उदय —), मानिज्यौ (उदय +), मानियौ।
[१९१] लीज्यो (उदय), लीजौ।
[१९२] जान ज्यौ (उदय), जानियौ।
[१९३] दडव्रत (उदय), दडवत। चेष्टा (उदय), चेसष्टा।

उपजत हैं ए देह तैं ए मोमैं कछु हैं न।
बोलन हू है देह तैं तातैं बोलत बैन ॥१९४॥
तद सकर ऐसें कह्यौ मन मैं अति सुख पाइ।
दसा आपनी तैं कही मोसौं सबै बनाइ ॥१९५॥
दसा जु जीवनमुकत की निसदेह भइ तोहि।
धनि जानि तोकौं सबैं आनंद उपज्यौ मोहि ॥१९६॥
और जु यह सबाद है मेरौ तेरौ जानि।
इहिं आनदबिलास कौ सुखसमुद्र करि मानि ॥१९७॥
जो आनदबिलास कौं पढै सुनै चित लाइ।
ताकौ उपजै ग्यान पुनि जीवनमुकत सुभाइ ॥१९८॥
भाषा कीनौ ग्रथ यह जसवंतसिंघ बनाइ।
अरु आनदबिलास तब दीनौ नाम जनाइ ॥१९९॥
रस याकौ याकैं पढै जौब पढै चित लाइ।
फल याकौ तब आप ही समुझै वहै बनाइ ॥२००॥
सबत सत्रह सै बरष ता ऊपर चौबीस।
सुकल पख्य कातिक बिषै दसमी सुत रजनीस ॥२०१॥

इति श्रीआनदविलास ग्रथ सपूर्ण। महाराज श्री श्री
श्री श्री श्री जसवतसिंहजी कृत।

---

[१९६] मुगत (उदय), मुकत। अबैं (उदय), सबें।
[१९९] नाम (उदय); नाव।
[२००] याकौ (उदय), याकै।

अनुभवप्रकाश

(कबित्त)

पूछौ हौं प्रनाम करि कहियै कृपा कै मोसौं
रहै न संदेह जामैं ऐसैं कै जनाइयै।
तुम्हारै सरन आयौ ताकी तौ तुम्हैं ही लाज
ईस्वर सुरूप मोहि नीकैं कै बताइयै।
गुरु कह्यौ ऐसैं जानि ईस्वर वहै जु सुध्ध
चेतन को प्रतिबिंब माया मैं लखाइयै।
फेर पूछ्यौ सिष्य तब माया धौं कहावै कौन
याहू कौ सुरूप फेरि आछै समुझाइयै॥ १॥

ब्रह्म प्रतिबिंब होन ईस्वर है देखौ याहि
व्यापि गई ठौर ठौर ऐसी जोरवर है।
प्रथम आकास है कै भई है पवनरूप
वहै तेज वहै पानी वहै भई धर है।
नाना बिधि देखि परै गही जातो क्यौं हूँ नाँहि
सब जग मोह्यौ याकौं कौनै दयो बर है।
झूठि मैं प्रतीति और और कौ दिखावै और
कौन है कहौ धौं माया जातैं भयो डर है॥ २॥

गुरु कह्यौ ऐसैं मानि चिदानद सुप्रकास
ऐसौ जो अखड ब्रह्म ताकी इछया जानिबी।

---

[१] तुमारै (उदय), तुम्हारै। धू (अ ?) (उदय), धौ। फेरि (उदय), फेरि।

२] याहि (उदय), आहि। भई (उदय), भए। भई धर हैं (उदय); भइ धरत है। विघ देषी (उदय) विदेषि। प्रतीति (उदय +), प्रतिति (जोध—), प्रतीत।

इछ्या ही तैं ईस भयौ ताही तैं अकासु पौन
तातैं जल तेज तातैं तातैं धरा मानिबी।
ताही तैं अनेक रूप देख्यौ परै बिस्व सब
निसदेह याकौं सदा इछ्या पहिचानिबी।
बार बार कहौं तौसौं माया जिन जानै यह
सबही कौ हेत एक इछ्या उर आनिबी॥ ३॥

ऐसैं जौ तूं जानै जो अविद्या बिस्वकारन है
यहै है अनादि याहि इछ्या काहे कहियै।
कौन है अविद्या वह काहू सौं भई है किधौं
आपही सौं उपजी है कौन भाँति लहियै।
और जे कहैं अविद्या हेत सबकौ ते कहैं
काहू तैं न भई आप उपजीयौ नहियै।
ते तौ कहैं बचन मैं कैसै हूं न आवति है
अनिरबचन ताहि कैसैं करि गहियै॥ ४॥

नाँहि याकैं रूप कछु नाँहि कछु आकृति है
असत हू नाँहि यह नाँहि यह सत है।
नाँ काहू सौं उपजो न आप सौं भई है यह
ऐसैं कहैं वाहि वह कैसै ठहरत है।
तासौं कहौ कैसैं करि कहियै जगतहेत
कछुवै न होइ ताकौं कैसैं कहौं हत है।
और बिधि कहै एकौ नाँहिनै बनत बात
तातैं मैं बिचारि कह्यौ इछ्या मेरैं मत है॥ ५॥

---

[३] इछा (उदय), इछ्या। मानिबी (उदय+), मानबी। रूपु (उदय), रूप। पहिचानबी (उदय—), पहिचानिबी। जिन (उदय), जनि।

[४] काहे (उदय), कहै। आवत (उदय—), आवति।

[५] × (उदय), नाहि। यह (उदय +); यह+ नाकाहु (उदय), न काहू।

फेरि हूँ जौ ऐसें कहौ इछया हू तौ मानत हौ
तौपै जगहेत किन अबिद्या ही जानियै।
अबिद्या कैं मानैं वह अनिरबचन होति
ब्रह्म औ अबिद्या दोऊ हेत काहे मानियै।
यातैं मैं कह्यौ है तोहि समुझि बिचारि देखि
यहै बात निहचे सौं चित्त माँहि आनियै।
इछया ही के कहैं होत एक बिषे कारनता
तातैं यह जगत कौ कारन बखानियै॥ ६॥

जौ पै यह बात कोऊ कहै जौ कदाचि ऐसैं
निरगुन ब्रह्म कह्यौ इछया कैसैं धरै है।
वह तौ है सुप्रकास चेतनस्वरूप वहै
चेतना ही इछया तासौं सब कछु कर है।
चेतना तौ मानिबोयै बिना मानैं चेतना कैं
जडता औ सून्यता प्रसंग आनि परै है।
निर्गुन सुरूप आप सबै गुन वाही माँहि
पूरनता आने बिन कह्यौ कैसैं सरै है॥ ७॥

करिकै प्रनाम कह्यौं सरन तुम्हारैं आयौ
कीजियै निबाह जैसौ रावरौ बखान है।
तुमारौ ही गुरुदेव ध्यान धरौं रैंन दिन
बचन तुमारौ मोकौं बेद सौ प्रमान है।
जानत हौं निसदेह जैसौ कछु जानत हौं
सबही कौं तुमैं पूछैं होत समाधान है।
तातैं पूछौं हाथ जोरि जीव धौं कहावै कौन
दया कै बतावौ मोहिं याही कौं अग्यान है॥ ८॥

---

[६] निहिचे (उदय+), निहचे। चित (उदय—), चित्त। कारमता (उदय—), कारनता।

(७] कहौ (उदय), कह्यौ। धरि (उदय—), धरै। सुरूप (उदय); स्वरूप। बिनु कहौ (उदय), बिन कह्यौ।

[८] जिसौं (उदय), जैसौ। तुमारौं (उदय), तुम्हारौ। रैंन (उदय+) रैंनि। तुमारौं (उदय); तुम्हारौ। प्रमान (उदय), प्ररमाम।

तब गुरु कह्यौ सिष्य धन्य है अवस्था तेरी
कहौं तोसौं परंपरा जैसें कैं जनायौ है।
चेतन कौ प्रतिबिंब भयौ है अबिद्या बिषैं
ताही कौं समुझि ऐसैं जीव ठहरायौ है।
पूछ्यौ फेरि सिष्य तब अबिद्या कै बिषैं सुध्ध
चेतन कौ प्रतिबिब कैसैं कैलपायौ है।
पूछत हौं तातें फेरि खेद जिन मानौ प्रभु
जीव मन नायौ जौन भाँति के बतायौ है॥ ९

और ए व्यौहार बिषैं बिंब प्रतिबिंब जे हैं
ते तो नीके जानें जात देखियै प्रतछ हैं।
ऐसैं तौ प्रतछ नाँहि चेतन अबिद्या दोऊ
बिब प्रतिबिब तौ ए कैसैं ठहरत हैं।
सो तौ यह जीवपनौ मन मैं न आवै क्यौं हूँ
बिना मन आऐं कैसैं जात ए संदेह हैं।
बिनती करत नाथ कृपाल ह्वै दयासिंधु
अपनौ समुझि मोसौं मया करिकै कहैं॥१०।

बहुर्यौ कहत गुरु सिष्य यह ऐसैं जानि
जीव है कहन मात्र और नाँही बात है।
ऐसैं ही तूँ जानि जीव देह कैं न माँहि कछू
देह कौ ब्यौहार हेत प्रान हाँ लखात है।
और सुनि देह जब होत उतपति तब
जान्यौ परै नीकैं नाँहि सबको संघात है।
देह कौ निबाह प्रान बाय ही सौं जानि लै तू
ऐसैं कहूँ फेरि तोसौं जैसे जान्यौ जात है॥११॥

अंत समैं नीकैं करि बिचारै तें जान्यौ जात
केवल प्रतछ प्रान बाय कौ आधार है।
देखियत साँस फुनि नारी हूँ जौ देखियत
देखियत साँस ही सौं आय कौ बिचार है।

---

[११] उतपत (उदय -), उतपति (उदय+), उतपत्ति ।

सीतलता उष्नता प्रकार और केतिक जे
देखियत तिनहूँ मैं प्रान कौ बिहार है।
देह मॉहि जीव कहौ कौन बिधि कह्यौ जाइ
जीव के बियोग कौ तौ एकौ न प्रकार है ॥१२॥

और सुनि सरीर कै बिषैं चेष्टा जेतो कछु
तितनी सबैं ए प्रान बाय ही सौं जानिबौ।
और जु है ग्यान यह जातैं सब जान्यौ जात
प्रान कौ धरम नाँहि निसंदेह मानिबौ।
ग्यान मान्यौ चाहियै हो यामैं तौ बिचार नॉही
जाही बिधि मान्यौ जाय सोई उर आनिबौ।
होइ समाधान अरु ऊतर न रहै जामें
ग्यान की अवस्था असी भाँति के बखानिबौ ॥१३॥

सास्त्र मैं तौ सब ठौर कह्यौ है अविद्या बिषें
चेतन कौ प्रतिबिंब सोई जीव जाननौ।
ताकौं फुनि आबरन मान्यौ है अबिद्या ही कौ
जीव बिषैं याही ते अग्यानपन माननौ।
प्रतिबिंब मानौ देखि आबरन कैसैं बनै
आबरन होतै प्रतिबिंब कैसैं आननौ।
आवरन प्रतिबिंब दोऊ कौ निबाह नॉहि
असी बिधि जीव कहौ कैसैं कै प्रमाननौ ॥१४॥

अब सुनि मेरें मन आवत है सोई कहौं
जामैं निसंदेह ब्रह्मतत्व कौ प्रकास है।
देह तौ बिचारे तैं आभास ही पै लागत है
तैसैं ही बिचारि यामैं ग्यान कौ आभास है।

---

[१२] देषहीयत (उदय –), देषियत। सै (जोध –), मैं। जाइ (उदय –) जाय।

[१३] शरीर (उदय); सरी। नितनी (जोध –), तितनी। यामै (उदय); मैं। ऊतर (उदय), उत्तर। के। जोध –), कै।

[१४] मानैं (उदय), मानौ ।

लगायो है खिरकी मैं पारै बिना काच जैसैं
तामैं जैसैं बाहर कौ भीतर बिलास है।
अैसैं प्रतिबिंब मान्यौ आवरन जान्यौ गयौ
तैसैं ही सरीर बिषैं ग्यान कौ निवास है ॥१५॥

तौब वह ग्यान कछु काच कौ धरम नाँही
अंतहकरन हू कौ न धरम वह है।
जौ ही लौं है घाम अरु काच वह वाही ठौर
तौ लौं वह ग्यान के आभास कौ भरम है।
तैसैं ही सरीर अरु अंतहकरन जौ लौं
तबहीं लौं ग्यान के आभास कौ भरम है।
ग्यान कौ अभास यह तामैं तौ संदेह नाँहि
याही सौं कहत जीव याही सौं करम है ॥१६॥

और यह अैसैं जानि ग्यान जो पदारथ है
काहु कौ धरम नाँहि सबही तैं न्यारौ है।
देखियत जे जे ते तौ जड अरु मायिक हैं
तिन कौ धरम ग्यान कैसैं होनहारौ है।
तोसौं हौं कहत फेर नाँही कछु यामैं फेर
सब ग्रथन मैं मत यहै निरधारौ है।
ग्यान जानि निसदेह आतमस्वरूप ही है
यह सदा सुखरूप बिस्व कौ उजारो है ॥१७॥

सत चिदानंद ताकी इछ्या ही कौं ईस जानि
माया तौ कही मैं तोहि इछ्या ही कौ रूप है।

---

[१५] कहौं (उदय), कह्यौं। बिहीचारि (जोध +), ही विचारि।

[१६] नाहि (जोध +); नाहीं। आभास (उदय), अभास। आभास कौ (उदय), आभास के।

[१७] माया (जोध +), मायि। तौसौंहु (उदय), तोसौ हो। फेर (उदय+) फेरि। सब ग्रथिन कैं (उदय), नाही कथन मै। सरूप (उदय); स्वरूप। यहै (उदय), यह।

ग्यान तौ बतायौ तोहि वही है आभास मात्र
ग्यान कौ आभास वहै जीव कौ सुरूप है।
इछ्या औ आभास दोऊ इनकौं तूं ऐसैं जानि
ताही कौ सुरूप जासौं कहै हैं अरूप है।
जैसैं कै बतायौ तौहि ऐसैं ही बिचार लेह
निसदेह होइ देखि दोऊ के न रूप है ॥१८॥

(सवैया)

बिस्व कौ कारन बिस्व कौ पोषक बिस्वसुरूप वहै जु कहावै।
बिस्व अधार अधार नहो तिहि रूप सबै रु अरूप सुभावै।
चाहै करै न धरै कछु इछ्या अकर्ता सदा कौ उदासी लखावै।
आप अनंत अखंड अपार सु ऐसौ सरीर मैं कैसैं कै आवै ॥१६॥

लछ्छ अलछ्छ अभोगता भोग कौ भोग करै कबहूँ न अघावै।
मिल्यौ सब मैं निरलेप सदा वह साछी असग यहै स्रुति गावै।
सबै गुन पूरन निर्गुन सोइ निरजन है रु बिराट दिखावै।
आप अनत अखड अपार सु ऐसौ सरीर मैं कैसैं कै आवै ॥२०॥

एक अनेक सदा है समान है थूल है सूछम ग्रंथ बतावै।
अविनासी है नित्य प्रगट्ट छिप्यौ निरबंध निसीम है कैसैं बँधावै।
आदि अनादि है कारन काज निसंधि की संधि कौं को है जु पावै।
आप अनत अखड अपार सु ऐसौ सरीर मैं केसैं कै आवै ॥२१॥

सबै गति ओर चलै न हलै बिभु व्यापक है सब जामैं समावै।
निरतर है अज अत नहीं नहीं कारन कौं कहि को उपजावै।
निसेष परम न वार न पार नहीं परिमान प्रमान जनावै।
आप अनत अखड अपार सु ऐसौ सरीर मै कैसैं कै आवै ॥२२॥

---

[१८] आभास मात्र (उदय), अभास मात्र । आभास वहै (उदय), अभास वहै । सुरूप (उदय), स्वरूप । जा सौं (उदय)+ हो सौ ।
[१६] बतावै (उदय +), कहावै ।
[२१] काजनि (उदय), काजहि ।
[२२] गति (उदय), गत । चलै (बोध—), हलै ।

गम्य अगम्य असंखि अचित उपाधि मिल्यौ निरुपाधि कहावै।
निरव्वधि है निरवान सदा यह असौ प्रतछ्छ गहै न गहावै।
कला बिनु है रु कला सब वाहि मैं है निरवैव अवव बनावै।
आप अनंत अखड अपार सु असौ सरीर मैं कैसैं कै आवै ॥२३॥

परै सब कैं न कछू पर वाकैं उरै हू नहीं कछु बातैं लखावै।
है सत औ चित आनँद नित्य बिसेस भयो निबिसेस कहावै।
रह्यौ भरपूर बिना अवकास सरीर कहौ तामैं कैसैं अमावे।
आप अनत अखड अपार सु असौ सरीर मैं कैसैं कै आवै ॥२४॥

(कबित्त)

देह नाँही इद्री मन नाँही नाँही बुधि नाँही
अहकार चित नाँही देखिबौ नहीं तहाँ।
कहिबौ कछू न जामैं सुनिबे की बात नाँही
धेय नाँही ध्यान नाँही ध्याता हू नहीं जहाँ।
गुरु और सिष्य नाँही नाम रूप बिस्व नाहीं
उतपति प्रलै नाँही बध मोछ्छ है कहाँ।
वचन कौ विषै नाँही सास्त्र अरु बेद नाँही
और कहा कहौ उहाँ ग्यान हू नहीं न हाँ ॥२५॥

(दोहा)

थोरै ही मैं बहुत है जसवंत कह्यौ बिचार।
या अनुभौपरकास को पढ़ि सुनि समुझौ सार ॥ २६ ॥

इति श्रीमहाराजाधिराज महाराजा श्री श्री श्री श्री श्री जसवतसिंह
विरचित अनुभवप्रकाश. सपूर्णः ॥

---

[२३] असष (उदय–), असषि।
[२४] बसेस (उदय), विबेस। कहौ (उदय), कह्यौ।
[२५] बध (उदय), वृद्ध।

अपरोक्षसिद्धांत

(दोहा)

जाकी इच्छया तैं भयौ बिस्व सबै निरमान।
कारन अरु कारज दोऊ जातें भए प्रमान॥ १॥

करता है सब बिस्व कौ ताकौ करता नाँहि।
बंदन ऐसें ब्रह्म कौं ब्यापकता जा माँहि॥ २॥

बंदन करि गुरुदेव कौं पूछत करमबिचार।
ता पाछैं फिरि मुगति कौं कहिये मोहि प्रकार॥ ३॥

कौन करम तें होति है मनुष देह उतपत्ति।
करता किहिं बिधि भोगता किहिं बिधि करमप्रवृत्ति॥ ४॥

किहिं बिधि निरम्यौ बिस्व सब कब कीनौ बिस्तार।
भई अविद्या कौन बिधि कैसैं जीव अपार॥ ५॥

यह अरु औरौ अरथ सब दीजे मोहिं बताय।
कहियैं निपट कृपाल ह्वै तौ यह संसै जाय॥ ६॥

तब गुरु कह्यौ दयाल ह्वै कहूँ सिष्य सब तोहि।
स्रवन मनन तैं अरथ सब जैसैं भास्यौ मोहि॥ ७॥

भले बुरे ए करम जब दोऊ होत समान।
कहत सास्त्र मैं होइ तब पुरुष देह निरमान॥ ८॥

मनुषदेह तैं करि सकै भलौ करम जौ कोइ।
ताकौं सिष यह जानि तूँ निहचै सुभ फल होइ॥ ९॥

बहुख्यौ याही देह तैं करम बुरैं करि लेत।
तेई या ससार मैं ताहि बुरौ फल देत॥ १०॥

मनुषदेह तैं करम ए लागत सब ही आहि।
भलौ बुरौ समझत सकल बुध्धि दई है ताहि॥ ११॥

---

[१] निरधार (उदय—), निरमान। जाति (उदय), जातै।
(९] सुभफल (उदय), सुफल।

करम कियैँ पसुदेह तैँ लागत एको नाँहि।
भलौ बुरौ सबही करै बिनु समुझैँ मन माँहि ॥ १२ ॥
और देखि यह बुधि दई मनुषदेह कैँ साथ।
भलौ बुरौ समुझत तऊ करनौ नाँहिन हाथ ॥ १३ ॥
तातैं जान्यौ जात यह बुधि ग्याता है जोइ।
करता तौ बुधि है नहीं ईस्वर करै सु होइ ॥ १४ ॥
मनुषदेह तैं करम ए लागत ऐसैँ आइ।
झूठे ही यह आप सौं करता कहत बनाइ ॥ १५ ॥
करता कोऊ और है तातैँ पर्‍यौ बियोग।
तौ ही फिरि फिरि होत है इन करमन कौ भोग ॥ १६ ॥
तातैं याकी बुध्धि कौ फल इतनौ ही मानि।
करता कोई और है इतनौ समुझै जानि ॥ १७ ॥
जबहीँ यह समुझै इतौ करता तोमैं नाँहि।
तबहीँ ताकौ करमफल भोग मिटै छिनु माँहि ॥ १८ ॥
करता तौ ईस्वर कभूँ इनकैँ मतैँ न होइ।
जीव करम जे कहत हैं प अनादि हैं दोइ ॥ १९ ॥
इनकौ जब यह पूछियै पहिलैँ जीव कि कर्म।
तब ए कहत जु हैं दोऊ बीज अँकुर कैँ धर्म ॥ २० ॥
जीव कर्म इहि बिधि कहैं बीज अँकुर कैँ न्याइ।
ऐसैं उत्तर कौन बिधि कैसैँ मान्यौ जाइ ॥ २१ ॥
तब फिर पूछैं यौँ कहैं इनकैँ नाँहिन आदि।
ब्रह्म अबिद्या जीव क्रम चार्‍यौ कहत अनादि ॥ २२ ॥
इहिं बिधि हौँ उत्तर दये कैसैँ होत प्रमान।
घटि बढ़ि नाँहि अनादि मैं चार्‍यौ होत समान ॥ २३ ॥
तब ईस्वर कौँ कौन बिधि करता मान्यौ जाइ।
जौ ईस्वर करता नहीं ईस्वरपनौ सु बाइ ॥ २४ ॥

---

[१६] तौं कोउ और (उदय), कोउ ओर। बिजोग (उदय), वियोग।
[१७] नाहि+जान+जानि++ (उदय), जानि।
[२०] पहिलौं (उदय+), पहिलै। जीव कि (उदय), जीव के।
[२३] प्रमान (जोध--), समान।

उतपति कहत अनादि हैं उपजत नाँहिन नित्त।
ऐसैं हू उतपत्ति कौं ईस्वर नाँहिन मित्त ॥ २५ ॥
एई फिरि यौं कहत हैं निहचै करि चित माँहि।
ईस्वर के अनुग्रह बिना सुभ क्रम उपजै नाँहि ॥ २६ ॥
ईस्वर जौ इनकैं मतैं करता नाँहिन आहि।
ताही ईस्वर कौ कहौ अनुग्रह मानें काहि ॥ २७ ॥
जौ ईस्वर या बिस्व कौ करता पै न कहाइ।
ताही कौ अनुग्रह कहौ क्यौं करि मान्यौ जाइ ॥ २८ ॥
यह कहियै समुझाइकै ग्यान होत है याहि।
उपजत अपने करम तैं कै ईस्वर तैं आहि ॥ २९ ॥
करै कहा ए करम जड इनतैं कछू न होइ।
फलदाता ईस्वर सदा निसचै करिकै जोइ ॥ ३० ॥
अनुग्रह मान्यौ चाहियै ईस्वर कौ चित माँहि।
ईस्वर के अनुग्रह बिना कछुव कारज नाँहि ॥ ३१ ॥
करमन मैं नहि ग्यान कछु यह तूँ निसचै मानि।
ग्यान अबिद्या मैं कहा ए दोऊ जड़ जानि ॥ ३२ ॥
ईस्वर ही तें पाइयै जान्यौ जात प्रमान।
ग्यानरूप ईस्वर सदा जामें पूरन ग्यान ॥ ३३ ॥
ईस्वर ही तें होत है जिय कौं ग्यानप्रकास।
ईस्वर बिन यह कौन तैं होइ अबिद्यानास ॥ ३४ ॥

---

[२५] मान्यौ (बोध +), नाहिन (उदय +), नाहिनि (उदय+), नाही।
[२६] एई (उदय), एही।
[२७] आदिहिं (उदय +), आहि। कहौ (उदय), कह्यौ।
[२८] कहौ (उदय), कह्यौ।
[२९] आहि (उदय), याहि। आइ (उदय +), आहि।
[३३] प्रमान (उदय), प्रनाम।

इहि बिधि अनुग्रह मानिबौ ईस्वर कौ निरधार।
तब ईस्वर जान्यौ सही निसचै है करतार ॥ ३५ ॥

जब करता ईस्वर भयौ नैम नहीं कछु ताहि।
क्यौं करि करता एक दिन निति ही करता आहि ॥ ३६ ॥

और सास्त्रग्य निश्चि है करता मानत नाँहि।
करत जू ऐसें कौन बिधि हम माने मन माँहि ॥ ३७ ॥

निति करता तो मानियै जो सब करै समान।
भले बुरे देखत द्रिगनि ए तौ प्रतछि प्रमान ॥ ३८ ॥

और यहौ देखत सबै ग्यानी कोइक होत।
अरु अग्यानी बहुत हैं माइक भरम उदोत ॥ ३९ ॥

अनुग्रह ईस्वर के बिना उपजै ग्याँन न आइ।
ग्यानी कोइक होत सौ ईस्वर अनुग्रह पाइ ॥ ४० ॥

ग्याँनी अनुग्रह तें भए ईस्वर कें निरधार।
बिना अनुग्रह तें रहै मानहु अग्य अपार ॥ ४१ ॥

एकन पर अनुग्रह भयौ बिना अनुग्रह एक।
तब आवत ईस्वर बिषै रागद्वेष अनेक ॥ ४२ ॥

बिषमपनौ ईस्वर बिषैं कबहूँ चहियतु नाँहि।
ईस्वरता कैसी कहौ राग द्वेष जा माँहि ॥ ४३ ॥

अब सुनियैं सिद्धांत यह निसचै करिकै धारि।
बिन समुझें तूँ करत ते सब्दजाल निरवारि ॥ ४४ ॥

नीकै करिकै समुझि तूँ चित कौ करि बिस्राम।
ईस्वर मैं कहुँ पाइयै राग द्वेष कौ नाम ॥ ४५ ॥

ईस्वर मैं भासत जिन्हैं रागि द्वेप ए दोइ।
दोष धरैं अपदोष तैं तुछ्छबुध्धि ते जोइ ॥ ४६ ॥

---

[३५] जानौं (उदय), जान्यौ। निश्चै (उदय), निहचैं। ऐ (उदय), है।
ताहि (उदय–), नाहि। कहत (उदय+) करत।

[३९] उदोत (उदय), उद्योत।

[४५] नाम (उदय), नाव।

जैसैं देखत है कोऊ सूरज द्वै निरधार।
दोइ बतावत एक के अपनें द्रिष्टिबिकार ॥४७॥
भलौ निरमि निरमत बुरौ कबहूँ काहू नाँहि।
बुरौ न फिरि निरमत भलौ ईस्वर या जग माँहि ॥४८॥
निरमत है समद्रिष्टि सब वाके रीति न और।
तो ता ईस्वर मैं कहौ राग द्वेष किहि ठौर ॥४९॥
ऐसैं देख अनेक मैं राग द्वेष की रीति।
ईस्वर मैं कबहू नहीं रागद्वेष अनीति ॥५०॥
ईस्वर निसचै एक है ब्रह्म जान तूँ ताहि।
जौ भासत आभास बहु तऊ न दूजौ आहि ॥५१॥
तौ यह अपनौ आप पर कैसैं रागद्वेष।
वह तौ है नित एक ही तहाँ न दूजौ लेख।५२॥
राग द्वेष कह पाइयै जहाँ न दूजो आहि।
एकै जानि बिबाद बिनु निसदेह करि ताहि ॥५३॥
चाहै जब तब ही करै जैसौ चाहै जाहि।
ताही तैं यह समुझि तूँ कहत सुतत्र जु वाहि ॥५४॥
स्वेच्छाचारी है सदा वाकौ जानि प्रमान।
केवल इछया मात्र तैं बिस्व करयो निरमान ॥५५॥
इछया तें जब जग करयौ करम कहा तब जानि।
इहिं बिधि निरम्यौ बिस्व सब ऐसैं करता मानि ॥५६॥
और अकर्ता कहत हैं कर्ता ही कौं लोग।
करत इतौ पै होत नहि कियैं करम कौ भोग ॥५७॥

---

[४७] द्वैं (उदय), द्वै।

[४९] समद्रिष्टि (उदय), समद्रष्टि। फुनि (उदय+), सब। रीत (उदय), रिति। कहि (उदय), कँहि।

[५२] आप कर (बोध+), आप पर। हि (उदय+), है।

[५४] सुतत्र (उदय), स्वतत्र। चाहि (उदय), वाहि।

[५५] इछा (उदय), इच्छा। निरवान (उदय+), निरमान।

[५६] तू (उदय+), तब।

[५७] (पि उदय), पै।

कर्त अकर्ता है सोई इछ्या तें जग जानि।
निसचै करिकै करम ए हुते न तब तूँ मानि ॥५८॥
बिय भए तें कर्म ए जीव करत है देखि।
तेई सचित प्रारबध क्रीयमानहू लेखि ॥५९॥
इनहीं कर्मनि तें बहुरि फिरि फिरि ले औतार।
कबहूँ पसु मानिस कभूँ भवँत देखि ससार ॥६०॥
तौलौं यह भवँतै रहै कर्मजाल के माँहि।
जौ लौं यापर होयगौ ईस्वर अनुग्रह नाँहि ॥६१॥
ईस्वर अनुग्रह तें बहुरि करम करत निहिकाम।
तब उपजत बैराग फुनि ता पाछें बिस्राम ॥६२॥
स्रवन मनन के होत ही साछी भासत जाहि।
निसचै करि तूँ जानि यह है बिस्राम सु ताहि ॥६३॥
साछी जाग्रत मैं सोई सपने ही मैं सोइ।
साछी सोइ सुषुप्ति मैं प्रतिछ भलें करि होइ ॥६४॥
जानि पर्यौ जु सुपुप्ति तें साछीपनौ निदान।
यहै अकर्ता है सदा कहत जु सबै प्रमान ॥६५॥
मिलें अबिद्या होत है कर्ता याकौ नाम
तातें याकौ भोग तें नाँहिन होत बिराम ॥६६॥
अंतहकरन सँजोग तें जीव कहत हैं याहि।
याकें तीन सरीर हैं पहिलौ कारन आहि ॥६७॥
चेतन कौ प्रतिबिंब जब होत अबिद्या मैं जु।
ताही सौं जानौ सही कारनदेह कहैं जु ॥६८॥

---

[५९] सचित (उदय), संचीत । क्रीयामानहु (उदय), क्रीयमानहू ।
[६२] नहिकाम (उदय), निहिकाम ।
[६३] साछी (उदय), स्वाछी ।
[६५] मैं तैं (उदय –), तैं ।
[६६] नाम (उदय), नाव । वै तैं (उदय –), तैं
[६७] याहि (उदय); आहि ।
[६८] जानू (उदय), जानौ ।

अंतहकरनचतुष्टई सोई सूछिमदेह।
इहिँ बिधि करि ए दोइ गनि तीजै थूल सु एह॥ ६९॥
अंतहकरन सु चार ए मन बुधि चित्त अहँकार।
होत अबिद्या के मिलैँ इहिँ बिधि नाम प्रकार॥ ७०॥
ताही तैँ सब कहत यह मन मारौ जु बनाइ।
यातैँ सुध्ध सुरूप लौँ कबहूँ बुध्धि न जाइ॥ ७१॥
चित कौँ तातैँ कहत सब उज्जल करियै धोइ।
अहंकारहू कौ कहत दूरि कियैँ सिधि होइ॥ ७२॥
इन चारन कौँ तौ सबै इहिँ बिधि देत लखाइ।
क्यौँ जु मिलो इनकै बिषैँ मलिन अविद्या आइ॥ ७३॥
और देखि यानैँ जबै होइ अबिद्या दूरि।
जीव नाम तबहीँ गयौ रह्यौ ब्रह्म भरिपूरि॥ ७४॥
सुनि तव मन है चेतना बुधिप्रकास है स्वछ्छ।
प्रियता चितसमरत्थता अहकार परतछ्छ॥ ७५॥
इहिँ बिधि करि ए जानि तूँ ऐसैं सुध्ध सुरूप।
रूप प्रतछ्छ वाकैं सबै अपनौ नाँहिन रूप॥ ७६॥
जीव अबिद्या कर्म फुनि पाप पुनि हैँ मानि।
सुख दुख इनके भोग सब यहौ ब्रह्म करि जानि॥ ७७॥
ब्रछ्छ लता पर्वत नदी धातु समुद्र बखानि।
दामिनि घन ओरा बरफ यहौ ब्रह्म कर जानि॥ ७८॥
पछी कीट पतंग पसु अरु जलचर पहचानि।
थलचर किंनर जख्यिहू यहौ ब्रह्म करि जानि॥ ७९॥

---

[६९] जी तीजै (उदय –), तीजे। सु एह (जोध +): सुरीर (उदय +) सु एह।

[७१] सुरूप (उदय), स्वरूप।

[७३] मिलि (जोध +), मिलीयैं (उदय), मिली।

[७४] नाम (उदय), नाव।

[७६] जानि तू (उदय), जानियै। अपनौ (उदय), अनौ।

[७८] सरीर (उदय), समुद्र। दामिन (उदय), दामनि।

[७९] थलचर (उदय), थरचल।

गध्रब राछस ग्रह नखत देव मनुष चित आनि।
थावर जंगम जे सबै यहौ ब्रह्म करि जानि ॥ ८० ॥
स्वर्ग मृत्यं पाताल फुनि द्वीप खंड परधानि।
दुर्ग देस जेते सबै यहौ ब्रह्म करि जानि ॥ ८१ ॥
घरी पहर अरु रैन दिन पच्छ मास लैंमानि।
संवछछर रितु औन जुग यहौ ब्रह्म करि जानि ॥ ८२ ॥
कलप काल आकास अरु पवन तेज परमानि।
जल पृथ्वी ए दिसि दसौ यहौ ब्रह्म करि जानि ॥ ८३ ॥
सपरस रूप रु गध रस सब्द अरथ बिनु पार।
बिना अरथहूँ सब्द जे ब्रह्म ब्रह्म निरधार ॥ ८४ ॥
परा पस्यती मध्यमा अरु बैखरी प्रकार।
इहिँ बिधि बानी चारि ए यहौ ब्रह्म निरधार ॥ ८५ ॥
बेद सास्त्र सुमिरिति सकल बहु बिधि वाक्यबिचार।
पूर्वपच्छि सिध्धांतहू यहौ ब्रह्म निरधार ॥ ८६ ॥
गुरु उपदेस रु सिष्य फुनि सत रज तम बिस्तार।
नीच ऊँच अरु सम बिसम यहौ ब्रह्म निरधार ॥ ८७ ॥
सब्द स्रवन उपमान अरु है अनुमान अपार।
देखे होत प्रतच्छ सो यहौ ब्रह्म निरधार ॥ ८८ ॥
अनुपलब्धि परमान इक अरथापति पै धार।
इहिँ बिधि कहे प्रमान षट यहौ ब्रह्म निरधार ॥ ८९ ॥
भाव अभाव रु तर्क जे भ्रम ससै जगजार।
निसचै बिक्ति रु जाति है यहौ ब्रह्म निरधार ॥ ९० ॥

---

[८०] निषत (उदय +), नखत ।

[८१] मृत्यु (उदय), मृत्यं । परिमान (उदय +), परिमानि (उदय +), परिधानि ।

[८२] मान (उदय +), मानि । सबछर (उदय), सबरछर । जान (उदय +), जानि ।

[८३] फुनि (उदय +), अरु । परमान (उदय +), परमानि ।

[८५] मधिमा (उदय), मध्यमा ।

[८७] बिषम (उदय +), बिसम ।

[८९] प्रमान (उदय), प्रनाम ।

बरन चार दरसन छहौं जे आश्रम हैं चार।
बिन आश्रम पाखंड सब यहौ ब्रह्म निरधार ॥ ९१ ॥
सुरझे उरझे जे सबैं बध मोछ ससार।
अरु सामानि बिसेप ए यहौ ब्रह्म निरधार ॥ ९२ ॥
माया ईस्वर जतन फुनि इछया अरु बिस्तार।
कारन कारज निति अनिति यहौ ब्रह्म निरधार ॥ ९३ ॥
बड़े बडे हैं पार लौं तिनतें बड़ौ अपार।
यह निसचे करि जानि तूँ वहै ब्रह्म निरधार ॥ ९४ ॥
जामैं है सबही कछू कहन सुनन जा माँहि।
तातें न्यारौ नेक नहिं नाहिनि न्यारी नाँहि ॥ ९५ ॥
जुदौ समुझि कै एक ब्रह्म ऐसैं कहत अनक।
ये वामैं जब होत सब तब वह पूरन एक ॥ ९६ ॥
सव वामैं वामैं सबै सबही कछु वा माँहि।
न्यारे होन अग्यान तें तेऊ न्यारे नाँहि ॥ ९७ ॥
यह निसचै करि जानि तूँ कहियै याहि बिबेक।
एक एक वह एक है एक एक है एक ॥ ९८ ॥
कीनौ जसवंत सिव यह आतमतत्व बिचार।
अरु अपरोछसिधांत यह धरयौ नाम निरवार ॥ ९९ ॥
या अपरोछसिधाँत कौ अरथ धरै मन माँहि।
छूटै सो ससार तैं फिरि फिरि आवै नाँहि ॥१००॥

इति श्रीमहाराजाधिराज महाराजा श्री श्री श्री श्री श्री जसबतसिंह विरचित अपरोक्षसिद्धात ग्रथ. सपूर्णः ॥

---

[९१] दसरन (जोध +), दरमन हिंचार (उदय +), है चार। आसम (उदय +), आश्रम। पाषड (उदय +), पांमोनि।
[९२] साँमाँन (उदय), साँपाँनि (उदय+), सामोनि।
[९३] औरु (उदय), अरु बिचारस्तार (उदय—), बिस्तार।
[९४] तुकरि (उदव—), करि।
[९८] यह (उदय—), वह।
[९९] कौं (उदय), यह।

सिद्धांतबोध

(दोहा)

नमसकार करि ब्रह्म कौँ बदौं गुरु के पाइ।
कीजै कृपा दयाल ह्वै जातैं ससै जाइ॥ १ ॥

सिष्योवाच—मैं यह प्रस्ताव बौहोत ठौर सुन्यौ है पै मेरौ संदेह नाँही मिट्यो तातैँ हौँ तुम सौँ पूछौ हौँ जु बुद्धि सौँ ब्रह्म जान्यौ जाइ है कि ब्रह्म सौँ बुधि जानी जाइ है और सास्त्रहू मैं सुन्यौ है जु ब्रह्म बुद्धिगम्य नाँही अरु यहै सुन्यौ है जु बुध्धि जड है सु यह अरथ क्रिपा करि मोकौं समुझाइ कहियै।[२]

गुरूवाच—यह जु तैं मोसौं पूछी यह बड़ी बात है अति सूछिम है तूं नीकै मन लगाय सुनियैं और जहाँ आसंका होइ तहाँ फेरि पूछियै। अब सुनि तूं जु बुध्धि कौँ जड़ कहै है तौपै ग्यॉन सौँ अरु बुध्धि सौँ भेदु कियौ जाइगौ।

सिष्योवाच—कछू मेरे मन मैं असैं आवै है जु ग्यॉन जु है सु तौ ब्रह्मसरूप है तामैं तौ अविद्या कौ अस नाँही और बुध्धि मैं तौ अविद्या कही हू है और मन हू में आवै है तातैं बुध्धि जड़ कही जाइ है।[४]

---

[१] कर (खोज), करि। जोरिकैं (खोज), ब्रह्म कों। ससय (खोज), ससैं।

[२] प्रसनता (खोज), प्रस्ताव। बहुत (खोज), बौहोत। हूँ (खोज), हौ। मै तौ (खोज), हु मैं। हौ (जोध), है। यहै (खोज), यह। मोकु (उदय), मोकौं (खोज), मोसौ। कहियैं (उदय) कहीयै (खोज), कहौ।

[३] सुछिम (उदय), सूछिम (खोज), सिछम। सुनीयो (खोज), सुनियैं। पूछीयो (खोज), पूछियैं। कहै (जोध), कहै हैं। सु (खोज), सौ।

[४] मेरा (खोज), मेरे। असी (खोज), असै। जुग्यान (खोज),

गुरूवाच—तूँ समुझ्यौ है तैसैं नाँही बुध्धि है सो बोध है तब देखि कै बोध मैं अरु ग्यॉन मैं कहा भेद है क्यौं कि ग्यान कारन है अरु बोध कारज है। क्यौं ज्यौं बँध्यौ जल अरु चलतौ जल। बँध्यौ है तऊ जल है और चल्यौ है तऊ जलपनौ न गयौ तैसैं ही ग्यॉन अरु बोध जानि और अबिद्या जु है सो इन तैं भिन्न है। अबिद्या बिषै मैं है। देखि ज्यौं कहैं हैं कि बादर चद्रमा कै आडैं आयौ सु कछु चद्रमा कै आडैं नाँही आयौ द्रिष्टि कै आडैं आवै है। तैसे ही जानि जु अबिद्या कछू बोध मैं नाँही मिली अबिद्या बिषै मैं है। औरौ देखि कै ग्यॉनी की बुध्धि की कौन अवस्था होइ है। ग्यानी जु है सो बिस्व मिथ्या समुझै है बोध मिथ्या क्यौं कै समुझै। और बिस्व मिथ्या समझ्यौ तब बिषै तौ जेते हैं तेते सब बिस्व मैं हैं और अबिद्या हू बिस्व मैं है तातैं बिस्व मिटे बिषै मिटे और बिषै मिटैं अबिद्या मिटी तब द्रस्य कछू न रह्यौ तब ग्यॉन कौ बोध कौन होइ। तौ तूँ यौं जानि कै द्रस्य न रहै बोध ग्यॉनस्वरूप ह्वै रह्यौ और तूँ जो यौं जानै कि सास्त्र कह्यौ है जु ब्रह्म बुध्धि मैं क्यौं कै आवै सु असैं नाँही कह्यो है कि बुध्धि मैं अबिद्या है तातें ब्रह्म न आवै। सु तौ तूँ समझि असैं कह्यौ है जु बुध्धि ज्यौं बिषै कौं गहै है त्यौं ब्रह्म कौं नाँही गहै है। क्यौं जु बिषै मैं अबिद्या है तब द्रस्य है और ब्रह्म मैं तौ अबिद्या नाँही तातैं द्रस्य नाँही ब्रह्म ग्यॉनसरूप है अरु बोधहू ग्यॉनसरूप है यह तूँ निसंदेह करि जानि। और बुध्धि मैं जु ब्रह्म नाँही आवै है ज्यौं नेत्र बिस्व कौं देखै हैं पै अपनपौ नाँही देखत। और तूँ ग्यॉन अरु बोध ए निसंदेह करि एक ही जानि पै ब्रह्म के अनुग्रह बिना बोध ना होइ। यह प्रस्ताव तौ मैं तोसौं नीकैं बनाइ कह्यौ औरौ कछु सदेह मन मैं आवै सो पूछियें।[५]

ग्यान जू। सु (खोज), सौ। अरु (खोज), और। मैं हू (खोज), हूँ मै। जाइ (उदय), जात।

[५] सु (जोध), सौ। देषकि (खोज), देषिकै। जु (खोज), ज्यौ। अरु चलतो (खोज), और जो चल्यौं। तेऊ (खोज), तऊ। जल है और जो चल्यौ ही (जोध), जल है और जो तैसे चल्यौ ही (जोध+), जलपनौ न गयौ तैसैं ही। सो

सिष्योवाच—सब्द अरु अर्थ इनके प्रस्ताव कौ निरनै मेरे मन मैं कछू नीकै नाँही भयौ क्याँ कै कोऊ कहै हैं कि सब्द अरु अरथ एक हैं और कोऊ कहै हैं कि सब्द अरु अर्थ न्यारे न्यारे हैं।[6]

गुरूवाच—सब्द अरु अर्थ जैसैं तैं कह्यौ तैसैं ही है एकहू हैं और न्यारे न्यारे हू हैं।[7]

(उदय), सु। आडो (खोज), आटै। नही (बोध), नाही। मिलै (खोज), मिली। और (खोज), औरौ। देषि कैं (उदय), देषि। बोहौ (बोध), बोध। है अरु (खोज), और। है तातैं (खोज), हैं और अविद्या हू बिस्व मै हैं तातै। बिषै बिषै (बोध), बिषै। मिटै (बोध), मिटै और विषै मिटै (उदय), मिटै अरु बिषैं मिटै। तु यु जान (खोज), तू यौ जानि। की द्रस्य (बोध), के दस्य (उदय), कि दृस्य। ग्याने (खोज), ग्यान। स्वरूपे (बोध), स्वरूप। सास्त्र (उदय), शास्त्र मै। क्युं (खोज), क्यौं। कह्यो (खोज), कह्यौ है। ब्रह्मा नावै (खोज), ब्रह्मा नावै (खोज); ब्रह्मा न आवैं। न (बोध); ग्यान। है (बोध), है अरु। बोध ही (खोज), बोध हू। नही (बोध), नाही। बिश्व कु (खोज), बिस्व कौं। बोध ए (उदय), बोध। करि एक ही जानि (उदय), करि यै एक ही जानि (बोध), करि कैं जानि एक ही है। ना होइ (उदय), न होय (बोध), न होउ। औरौ (उदय), और (बोध), और तेरे। मन मैं सदेह (खोज), सदेह मन मै। पूछीयो (खोज), पूछियै।

[६] मन (खोज), मन मैं। नीको (खोज), नीकैं। क्योंकि लोक (खोज), क्यौंकि कोउ (बोध), क्यौं कै कोउ। सब्द (खोज), कि सब्द। एक ही (खोज), एक। अरु (खोज), और। शब्द (खोज) कि सब्द।

[७] जैसें (बोध), जैसे। और (उदय), अरु।

सिष्योवाच—यह तौ मैं याही तैं पूछी है। एक हैं सु कौन प्रकार तैं हैं और न्यारे न्यारे हैं सु कौन प्रकार तैं हैं। यह प्रसंग मोकौं क्रिपा करि समुझाइ कहियै।[८]

गुरुवाच—सब्द अरु अर्थ ए देखि जुदे हैं सु या भाँति हैं। एक कोऊ बात कहै है ताके स्रोता अनेक हैं इन एक बात कही अरु स्रोता जेते हुते तिन अपने अपने चित्त मैं अरथ जुदी जुदी भाँति समुझ्यौ। तौ देखि जौ सब्द अरु अर्थ एक होते तौ ए जुदे जुदे काहे तैं समुझते। तौ तूँ ऐसैं समुझि कि या भाँति सब्द अरु अर्थ न्यारे न्यारे हू हैं और परमारथ बिषैं सब्द अरु अरथ एकहू हैं क्यौं कि बेदात कहै है कि सब्द अरु अर्थ एक ही हैं। और तूं ऐसैं मति जानै कै व्यौहार के सब्द अरु अर्थ न्यारे हैं अरु परमारथ के सब्द अरु अर्थ एक हैं। न यह ऐसैं है कि जैसैं घट पट सब्द हैं इनकौं अर्थ कहिये हैं जु घरा अरु कपरा। देखि या लेखै तौ सब्द अरु अर्थ जुदे ही हैं पै सब्द कौं अर्थ ब्रह्म ही है क्यौं घरा अरु कपरा ए तौ मायिक हैं मिथ्या हैं तौ अर्थ मिथ्या कैसें होइ अर्थ तौ साँचौ ही है अरु साँचौ तौ तब ही होइ जब सब्द ब्रह्म होइ। यह प्रसग तौमैं तोसौं समुझाइ कह्यौ औरहु कछु आसका होइ सो पूछियै।

---

[८] सो कोन (खोज), सु कौन। सैं अरु (खोज), तैं है और। सु (उदय), सो। सैं यह (खोज), तैं हैं यह। सु कृपा (खोज), मौकौं कृपा।

[९] कहत (खोज), कहै। बात की (खोज), बात कही। मैं (खोज), मैं अरथ। हुते (खोज) होते। तौ (खोज), तौं ए। समझ (खोज), समुझि कि या भाति। की सी न्यारे न्यारे हू हैं (उदय), ए न्यारै न्यारै हू हैं (जोध), की सी भाति न्यारे हुए। एकहू (उदय), एक ही। है और (जोध), है क्यौ कि बेदात कहै हैं कि ['कि' खोज में नहीं है] सब्द अरु अर्थ एक ही है और। जानै कै (उदय), जानि कि। शब्द अर्थ (खोज), सद अरु अर्थ। परमार्थ (खोज), अरु परमारथ। शब्द अर्थ (खोज), सब्द अरु अर्थ। एक ही है न्याय (खोज), एक है न यह। है (खोज), हैं कि।

सिष्योवाच—जीव कौँ सुनियै है कि आबरन है और यह बात सब कोऊ कहै हैं सब कोऊ मानै हैं तातैँ आबरन तौ जानियै है कि है क्योंकि आबरन जो न होइ तो अग्यॉन क्यों कै होइ पै यह आबरन कौन बिधि है या आबरन कौ संदेहु तुम ही तैँ मिटै तातैँ यह प्रस्ताव क्रिपा करि कै मोकौँ नीकैं समुझाइ कहियै। [10]

गुरुवाच—यह प्रस्ताव जौ तैं मोकौँ पूछ्यौ एक बार यहै प्रस्ताव मैं अपने गुरु सौँ कह्यौ हो तब गुरु मोसौँ कही कि सास्त्र मैं तौ आबरन मात्र कह्यौ है और प्रकार तौ कछू बिसेष नाँहि कह्यौ। तब मेरेऊ मन मैं संदेहु मिटयौ नहीं रह्यौ हो। और सास्त्र हू बौहौत देखे यह प्रस्ताव कहूँ नीकैं करि न देख्यौ और ईस्वर अनुग्रह तैँ मैं याकौ निरनै कियौ है ताहि बिधि हौं तोसौँ कहौं तू सावधान होइ सुनियै। देखि आबरन कौं एक ठौर चाहियै बिना ठौर आबरन क्यौँ करि कह्यौ जाइ तब बिचारे तैँ ए च्यार ठौर मन मैं आवै हैं तिन मैं एक तौ जिहाँ सुध्य ब्रह्म कौ प्रतिबिंब अबिद्या बिषै परै है एक ठौर तौ आबरन की यह है। और एक जीव के अरु मन के बीच है दुसरी ठौर आबरन की यह है। और एक मन के अरु इंद्री के बीच है तीसरी ठौर आबरन की यह है। और एक इंद्री के अरु बिषै के बीच है ऐसैँ ए च्यार ठौर हैं। तिन मैं देखि मैं तोसौँ प्रतछ्छ करि कह्यौ जहाँ सुध्य ब्रह्म कौ प्रतिबिंब अबिद्या बिषै परै तहाँ तौ आबरन न चाहियै क्योंकि तहाँ जौ आबरन

यौं नाही (खोज), यह नाही। क्यों (उदय), क्योंकि। कपड़ा (जोध), कपरा। हैं (उदय), होय। तोकौ (जोध), तोसौ समुझाइ। कह्यो है (खोज), कह्यौं। सो पूछीयो (खोज), सु पूछियै।

[१०] है कि (उदय), हैं। होइ (उदय-), है। अरु (खोज), और। अरु मानै (खोज), अरु सब कोउ मानै। जानीयै (खोज), जानियैं हैं। जानि (जोध), जौन। क्यौकि (उदय), क्यौं कै। आवरण का न (जोध), आबरन कौन। क्रिपा करि कै मोकु (उदय), क्रिपा करि कैं मोकौं (जोध), मोकु कृपा करि कै। समुझाय कै (खोज), समुझाइ। कहीयो (जोध), कहीयै।

होइ तौ अग्यॉन कैसैं मिटै । ग्यॉनी कोऊ होइ ही नॉही तौ यह निसंदेह जान्यौ कै उहॉ तौ आबरन नॉही । और जीव के अरु मन के बीच ह्यॉ हू जान्यौ जात है कि आबरन नॉही क्यौं कि जौ बात मन लगाय देखी अरु सुनी सो ततकाल समुझी ही औरौ देखि मन के कारज कछु जीव सौं जुदे जाने नॉहो जात हैं ताते ह्यॉ हू निसंदेह जान्यौ कि आबरन नॉही । और इद्री अरु बिषै के बीच ह्यॉ हू जान्यौ जात है कि आवरन नॉही क्यौं कि ह्यॉ जो आवरन होइ तौ बिषै प्रतिछ्छ कैसैं भासै ताते जान्यौ जात है जु ह्यॉ हू आबरन नॉही । और मन के अरु इद्री के बीच ह्यॉ जान्यौ जात है कि आबरन है क्यौं कि एक बात काहूँ कही अरु न समुझी और एक बस्तु द्रिष्टि के आगे हुती अरु न देखी के कछु और कौ और सुन्यौ अरु और कौ और देख्यौ तौ तब जानि कि मन के अरु इद्री के बीच आबरन है और आवरनु जु है सो अबिद्या कौ है और ए दोऊ आवरन अरु बिछ्छेप अविद्या की सक्ति हैं ताते निसंदेह जान्यौ जाइ है कि आबरन इहॉ है सो यह आबरन ईश्वर अनुग्रह तें मिटै । यह प्रसग तौ मैं तोसौं नीकैं समुझाइ कह्यौ और हू संदेहु होइ तौ पूछियै ।''

---

[११] प्रस्ताव (खोज), प्रस्न । मोकु (उदय), मोसौं । यह प्रस्ताव (खोज), यहै प्रस्न । सो करयौ हो (उदय), सौ कह्यौ हौ (जोध), सैं कह्यौ है । सु कही (खोज), सौं कही कि । शास्त्र नैं (खोज), सास्त्र मै । तौ (खोज), तौ कछू । नाही (खोज), नाही कह्यौ । है अरु (खोज), न हो रह्यौ हो और । शास्त्र (जोध), सास्त्र हू । देषे (उदय), देषि (जोध), द्वेषे । कइ (उदय—), यैन (उदय+), पैहू (जोध), यह । हु (खोज), कहू । देषे अरु (खोज), देष्यौं और । बिधि (खोज), बिधि हौं । सु कहुँ (खोज), सौं कहौं । कु (खोज), कौं । क्यु (खोज), क्यौं । मै (खोज), तैं । तहा मै (जोध), तिन मैं । है और एक (उदय), है अरु एक (जोध), है एक । बीच (खोज), बीच है । और मन कै (जोध), और एक मन के अरु । बिषै के अरु इद्री के (खोज), इंद्री के अरु बिषै के । ऐसें (खोज), ऐसैं

सिष्योवाच—ब्रह्म जु है सो अपार है ताकौ बेद हू कहै है कि अपार है सास्त्रहु कहै हैं कि अपार है और जान्यौ हू जाइ है कि अपार है तौ ब्रह्म की अपारता मैं तौ संदेहु नाँही पै मन मैं यह संदेह है कै ब्रह्म अपनौ पार जानि है कै नाँही सु यह मोकौं क्रिपा करि समुझाइ कहियै। [२]

ए। कै कह्यो है (खोज), कह्यौ। पहै (उदय), परै है। आबरन न चाहीयें क्यौ कै तहा जौ आवरन होई (उदय), आबरन होइ (जोध), आबरन न चाहीयै क्यो कि तहा जौ तीन आबरन होइ। होइ ही (उदय), होई (जोध), होय हु। कैं उहा (उदय), कि उहा (जोध), कि वहा। के मन (खोज), के अरु मन। बीच ह्या हू जान्यो (उदय), बीच हु जान्यौ (जोध), बीच इहा क्यु जान्यौ। मन में (जोध), मन। लगाइयै देषियै (जोध); लागाय देषी। कि अरु (खोज), अरु। सै (जोध), सो। मन मै कारज (जोध), मन के कारज। जीव सौ (उदय), जीव सु। इहाहु (खोज), ह्याहू। बिपै के बीच जान्यो (खोज); बिषै के बीच ह्याहू जान्यौ। आबरन नाही क्यौ कि ह्या जो आबरन होई (उदय), आबरन होय (जोध), आबरन नाही क्यों कि इहा आबरन होइ। भाषै (जोध), भासै। इहा (खोज), ह्या। इहा जान्यो (खोज), ह्या जान्यौ। है एक (खोज), है क्यौकि एक बात काहूँ कही अरु न समुझी और एक। द्रिष्ट मैं (जोध), दिष्ट के। आती (जोध), हुती। सुन्यौ (जोध), सुन्यौं अरु। जानियै (जोध), जानि। जो है (खोज), जू है। सों अबिद्या (उदय), अबिद्या। जातु है (खोज), जाई हैं। ए प्रसग (खोज), यह प्रसग। सु नीकै (खोज), सो नीकैं। पूछीयो (खोज), पूछीयै।

[१२] सु (जोध), सो। ताकु (खोज), ताकौ। हैं सास्त्रहु कहै है कि अपार हैं और जान्यौ हु जाइहैं कि अपार हैं तौ (उदय); है और जायौ हू जाइ है कि अपार है तौ (जोध), हो तौ। कै ब्रह्म (उदय), कि ब्रह्म। अपार है (जोध÷), अपानौ रहै

गुरूवाच—यह बात बहुत कठिन है क्यौंकि जौ कहिये है कि ब्रह्म अपनौ पार जानै है तौ तौ पार आवै है अरु जौ कहियै है कि ब्रह्म अपनौ पार नाँही जानत है तौ अग्यानता आवै है। तातैं इन दोऊ ऊतरन मैं तौ एकौ नाँही बनत है और बिन बने तौ ऊतर कैसैं दयौ जाइ। तातैं यौं जानि कि ब्रह्म जानत है कि मोकौं पार नाँही तब देखि पार हु न आयौ अरु अग्याँनहू न आयौ यह निसंदेह जानि कै ब्रह्म ग्यानसरूप है अरु अपार है। यह प्रसग तौ मैं तोसौं कह्यौ औरौ संदेहु होइ सो पूछियैं।[13]

सिष्योवाच—यह प्रपच देखियैं है सो तौ निसंदेह जानियै जु पंचभूतआतमक है पैं यह सदेह है जु ए पचभूत कौन भाँति मिलै हैं। मिलने की भाँति द्वै हैं एक तौ भाँति यह है जु एक बस्तु मुख्य होइ तामैं और बस्तैं मिलैं और दुसरी भाँति यह है कि जुदे जुदे मिलैं सु यह प्रस्ताव मोकौं क्रिपा करि समुझाइ कहियै।[14]

(जोध +), अपनौ पार। जानि (उदय), जानै। कै नाही (उदय), कि नाही। सा (खोज), सु। मोकु' (खोज), मोकों। नीकै समझाय (खोज), समुझाइ।

[१३] इहैं (खोज), यह। जानति (खोज), जाननै। जानत तो (खोज), जानत हैं तौ। दोउ ही (खोज—), दो ही (खोज +), दोऊ। उतरन (उदय), उतर (जोध), ऊतरनि। बन तो (खोज), बनै तौ। कि मो को पार नाही (उदय), कि मे को पार नाही (जोध), कि हुँ अपार हु। हू नायो (खोज), हू न आयौ। जानि कै (उदय), जानि कि। अपार (जोध), अरु अपार। तो सु (खोज), तौ सो। औरौ (उदय), और (जोध), औरहु। पूछीयो (खोज), पूछीयै।

[१४] सु (जोध); सो। जानीयै है (खोज), जानियै जु। बस्तु युक्त (खोज), बस्तु मुष्य होइ तामैं और बस्तै मिलैं और दुसरी भाति यह हैं। जुदे जुदे (उदय), जु पाचौ जुदे जुदे। सो (खोज), सु। मोकु (खोज), मोकौं। कहौ (जोध); कहियै।

गुरूवाच—तैं जु यह प्रसंग पूछ्यौ सु यह मैं सास्त्र बौहौत ठौर देख्यौ है पे तहाँ तौ असैंही कह्यौ है जु प्रपंच पंचभूतआतमक है और इनके मिलिबे की भाँति यह कही है जु पाँचौ जुदे जुदे मिलि के एक भए हैं पैं यह मेरे मन मैं असें आवै है जु पृथ्वी मुख्य है तासौं जल अरु तेज मिले हैं अरु पिंड जु होइ है सु इन तीन ही के सजोग तें होइ है और इन तीन तैं भिन्न जहाँ खालो रह्यौ तहाँ आकास है अरु पवनु है क्यों कि आकास तौ सून्यतहीं सौं कहियै हैं अरु इन तीनन तें तो पिंड होइ है तौ जहाँ पिंड तहाँ सून्य नहीँ अरु जहाँ सून्य तहाँ पिंड नाँही तातैं यह निसदेह जान्यौ जात है जु पिंड इन तीनन ही कौ है अरु पिंड मैं जहाँ अवकास रह्यौ तहाँ अकास आयौ अरु जहाँ अकास तहाँ पवन आयौ क्यौं कि बिना अवकास पवन कौ संचार कैसैं होइ।[१५]

सिष्योवाच—तुम्ह जु कही प्रथवी जलु तेज ए तीन ही मिले हैं और आकास अरु पवन ए जुदे ही हैं सु यह मेरे मन मैं आई पैं काठ मैं अरु पाथर मैं आकास मान्यौ है अरु पवन हू मान्यौ है सो काहे तैं क्यौं कि काठ मैं अरु पाथर मैं तौ अवकास नाँही तहाँ आकास अरु पवन कैसैं मानियै।[१६]

---

[१५] प्रस्ताव (खोज), प्रसग। मै सास्त्र (उदय), शास्त्र मै। मिलि (खोज), मिलैं हैं। तीनहु (खोज), तीन ही। तहो आकास (उदय), नही आकास (जोध), तहा अकास। तहे (उदय–), तहा (खोज), तही। तै (खोज), तै तौ। शून्य नही (उदय), सून्य नाही। अरु सून्य (खोज), अरु जहा सून्य। जान्यै (जोध), जान्यौ। है पिंड इन (खोज), हैं जु पिंड यह तीननि कौ (खोज), तीनन ही कौ। रह्यो तहीं (उदय) रह्यौ नही (जोध), रह्यो तहा। जही आस तही (जोध), जहा अकास तहा। बिना आकास (खोज), बिना अवकास। सचर (खोज), सचार।

[१६] तुम (जोध), तुम्ह। जल अरु तेज (जोध), जल तेज। ओरु (खोज); और। पवन जुदे (खोज), पवन ए जुदे। यह मेरे मन मै (उदय), यह मन मेरे मन मैं (जोध), यह

गुरुवाच—काठ जु है सु कछु पहिलैं तैं सूक्यौ ही नाँही उपज्यौ। पहिलैं हर्यौ रूप हो और जब हर्यौ तब जल डार डार पात पात पहुँचत हो तब तौ अवकास थौ ही क्योंकि अवकास बिना जल कैसैं पहुँचै अरु जहाँ अवकास है तहाँ आकास है अरु जहाँ आकास है तहाँ पवन है और अब जौ यह सूक्यौ तऊ अवैब तौ वे हरे के सूके काठ हू मैं हैं अब देखि या भाँति काठ मैं आकास हू आयौ अरु पवन हू आयौ तैसैं हो पाथर हू जानि क्यौं जु पाथर हू जब उपज्यौ है तब कछु ऐसौ कठिन नहीं उपज्यो क्यौंकि पृथ्वी अरु जल के संजोग सौं उपजै है तब देखि बिना अवकास पृथ्वी मैं जलसचार कैसैं होइ तौ अवकास तौ आयौ ही और जहाँ अवकास भयौ तहाँ आकास तहाँ पवन तातैं तूं यह जानि कि तत्व तीन ही मिलैं हैं क्यौंकि उपनिषदहू मैं कह्यौ है जु त्रित्रिनकरण और ए पाँच हू तत्वनहीं के पाँच गुन हैं सु मैं तोसौं कह्यौ आकास कौ गुन सब्द है बायु कौ गुन परस है तेज कौ गुन रूप है जल कौ गुन रस है पृथ्वी को गुन गंध है और ए पाँच ग्याँन इद्री हैं तेऊ पंचभूतआतमक हैं क्यौंकि स्रवन इद्री है सु आकास है सब्द ग्रहै है। त्वचा इंद्री है सु बायु है परस ग्रहै है। नेत्र इद्री है सु तेज है रूप ग्रहै है। रसना इद्री है सु जल है रस ग्रहै है। घ्राण इद्री है सु पृथ्वी है गध ग्रहै है। सुप्रसिद्ध है और जैसैं पाँचौ इद्री पचभूत-आतमक हैं तैसैं ही काम क्रोधादिक जानि। देखि कि मोह जु है सु आकास है क्यौंकि सून्य है और मद जु है सो बायु है क्यौंकि उनमाद है। क्रोध जु है सु तेज है क्यौंकि तीछन है। काम जु है सो जल है क्यौंकि रस है। लोभ

मन मैं। काष्ठ (खोज), काठ। पाथर (उदय), पारथ (जोध), पाहान। भयौ है (जोध), मान्यौ है। सो काहे (उदय), सु कहै (जोध), सु काहे। अरु काष्ठ मैं (खोज), काठ मैं। पथर (खोज), पाथर। आकास (जोध), अवकास।

जु है सो प्रथ्वी है क्यौं कि बासना है और मछ्छर जु है सु लोभै है।[१७]

---

[१७] जो है सो (खोज), जु हैं सु। ही सू को नाही (खोज), तै क्यौ ही नाही। पहिलें हरथौ रूप हौ और जब हरथौ तब (उदय), पहिलैं हरयौ होत तब (जोध), पहिलै हरयो रूप है और जब हो तो तब। टार जार (जोध), डार डार। पहुचतो हो (खोज), पहुचत हो। क्यु करि (खोज), कैसैं। अरु जहीं (उदय), अरु जहा। अकास है (जोध); आकास हैं। जही आकास है तही (उदय), जहा आकास है तहा (जोध), जहा अवकास है तहा। अरु (खोज), और। जोइ हस्त को तऊ (खोज), के जो यह सूक्यो तऊ। सूके काष्ठ (जोध), सूके काठ। तब (जोध), अब। पथर कु (खोज), पाथर हू। क्यु जु पाथर (खोज), क्यौं जु पाथर हू। ऊपनै तब (खोज), उपज्यो है। तब कछु औसो (उदय), औसै (जोध), औसी। नहीं उपज्यौ है (खोज), नही उपज्यौ। सजोग (खोज), संजोग सौं। है और पाथर जब पृथ्वी अरु जल के सयोग सौं उपजै है तब (जोध); है तब। बिन (खोज); बिना। तौ आकास (खोज), तौ अवकास। अरु जहा आकास (खोज); और जहा अवकास। तहीं आकास (उदय), तहा आकास। तहा पवन (जोध), तही पवन। उपनिषद (खोज), क्योंकि उपनिषद। त्रिवित (खोज), जु त्रिव्रित। तत्व के (खोज), तत्वन के। सु मैं (उदय), सो मैं। तो सु कह्यो (खोज), तौसौं कह्यौ। बायु को (खोज), बाय को। स्पर्श है (खोज), परस हैं। ए पाचौ गुण सहित (जोध), ए पाचौं। पाचंभूत आतमा (खोज), पन्चभूतआतम। क्यु कि (खोज), क्योंकि। सो आकास (खोज), सु आकास। सब्द गहैं त्वचा इद्री है सु बायु है परस ग्रहैं है नेत्र इद्री हैं सु तेज हैं रूप गहै हैं रसना इद्री हैं सु जल हैं रस ग्रहै हैं घाण इद्री है (उदय), सब्द ग्रहै है त्वचा है सु वायु है परस ग्रहै है नेत्र इद्री हैं

सिष्योवाच—ए पाँचौ इंद्री जु तुम पचभूतआतमक कही सु तौ मैं आगैं हूँ सुनी है पैं ए कामक्रोधादिक जु पचभूतआतमक कहे ते तौ मैं अंतहकरन के धरम सुने हैं तो ए भूतआतमक कैसैं होहिं सो यह अरथ मोकौं जुक्तिपूर्वक समुझाइ कहिय। [18]

गुरूवाच—तूँ यह देखि कि अतहकरन तैं जीव कहावै है पै है परमात्मा। तौ देखि कि परमात्मा कौं कामक्रोधादिक कैसैं होहि और देखि कि ग्यॉनी जो है तौ ताकौं नींद हू आवै और सीत उष्न हूँ जाने है और बिस्व कौं ब्रह्मरूप करि देखै है और स्वाद हू जानै है और गध हू जानै है तौ तूँ देखि कि ए कामक्रोधादिक जौ अतहकरन के धरम होते तौ ग्यॉनी के तौ अतहकरन नॉही और ए अवस्था तौ ग्यॉनी कौं सब होंहि हैं। और ग्यॉन भये हूँ देह रहै है क्यौं कि जीवनमुक्त कहियै है तौ यों जानि कि पचभूत-

---

सु तेज है रूप गहै है रसना इद्रि है सु जल है रस ग्रहै है घाण इद्रि है (जोध); शब्द ग्रहै है घाण इद्री है। पाच इद्री (खोज), पाचौ इद्री। तैसै हु (खोज), तैसै ही। क्रोधादिक (उदय), क्रोदिक हू (जोध), क्रोधादिक हू। देषि जु मोह है (खोज), देषि कि मोह जु है। सो वायु है क्योंकि (उदय), सु वायु है क्रोध जु है सु तेज है क्यौंकि (जोध), सु वायु है क्योंकि उनमाद है क्रोध सो तेज है क्योकि। जु है सो (उदय), सु है सु (जोध), जु है सु। सो प्रथ्वी है (उदय), सु पृथ्वी है। मछर है (खोज), मछर जु है। सु लोभै है (उदय), सु लोभ है।

[१८] भूतकआतमा (खोज), भूतआतमक। ते तौ (खोज), सु तौ। अतहकरन के धरम सुने है (खोज), आगैं हूँ सुनी है। ते ए (खोज), पै ए काम क्रोधादिक जु पचभूतआतमक कहै ते तौ मैं अतहकरन के धरम सुने है तौ ए। कैसैं होइ सो ए (खोज), कैसैं होहि सो यह। समझाय कही (खोज), समुझाय हियैं।

आतमकृ हैं ते देह गुन हैं यह प्रस्ताव तो मैं तोकौं नीकैं समुझाइ कह्यौ औरौ संदेह होइ सु पूछियै।[19]

सिष्योवाच--चेतन तौ सर्बब्यापक है अरु एक ही है पै यह देखन मैं अतहकरन प्रतिबिंबत चेतन अरु जड़ मैं भेद भासै है सो यह जुक्तिपूर्बक समुझाइ कहियै।[20]

गुरुवाच--चेतन तौ एकै है अरु जड़ जु है सु मिथ्या है तामैं तौ संदेहै नाँहि और यह भेद जु है सु ब्यौहार मैं है तहाँ ऊ देखि कि असैं हैं ज्यौं आकास मैं चंद्र है ताकौं बिंब सब पर एक सौ परै है कहा जल कहा पृथ्वी कहा पर्बत कहा ब्रिछ्छ कहा रेत पै देखि कि जल मैं प्रतिबिंब होइ है और ठौर प्रतिबिंब नाँही होइ है चाँदनी होइ है तौ देखि बिंब तौ सब ठौर पर एक सौ है पैं जल स्वछ्छ है तातैं चेतन कौ प्रतिबिंब होइ है तब चेतन भासै है और जहाँ स्वछ्छ नाँही तहाँऊँ चाँदनी की भाँति चेतन तौ है ही प्रतिबिंब नाँही होत तातैं जड़ कहै हैं पै तूँ यौं जानि चेतन एकै है तामैं कुछ भेद नाँही और जड जु है सु अग्याँन करिकै भासै है अरु जब ईस्वर के अनुग्रह सौं ग्याँन होइ है तब सब एकै चेतन

[१६] यैहै परमात्मा तौ (उदय), यैहै परमातमा (जोध), परमात्मा तो। कैसैं होइ (खोज), कैसे होहि। ग्यानी है ताकु (खोज), ग्यानी जौ हैं तौं ताकौं। उप्णा जानै (जोध), उष्णहू जानै। विश्व कु (खोज), विश्व कौं। अरु स्वादहु (खोज), और स्वाद हू। अरु गधु कु (खोज), और गधहु। हौं ते तौ (उदय), होइ तै तौ (जोध), होइ तो तौ। और ए अवस्था (जोध), अरु ए अवस्था। ग्यानी कु सब होय है (खोज) ग्यांनी कौं सब हौंहि है। अरु ग्यान भयहु (खोज), और ग्यान भये हूँ। कहीयै (खोज), कहीयै है। मैं तो कु (खोज), तौ मै तो कौं। औरौ संदेह (उदय), और सदेह। सो पूछीयो (खोज), सु पूछियै।

[२०] अए सही है (खोज), अरु एक ही है पैं। ते चेतना अरु जढ (खोज), त चैतन अरु जड। सो यह (उदय), सु यह। समुझाय कहो है (खोज), समुझाइ कहियैं।

भासै है जैसैं सब आभूषन सुबर्न मैं ही हैं यह प्रस्ताव तौ मैं तोसौं नीकैं समुझाइ कह्यौ औरौ संदेह होइ सु पूछियै ²।

---

[२१] एकौ (उदय –); एक (खोज); एकै। अरु जड है (खोज), अरु जड जु है। सदेहैं नाहि (उदय), सदेह है नाही (जोध), सदेह नाही। औसो है (खोज), औसै है। ज्यौ आकास (जोध), जैसैं आकास। बिंब स पर (खोज), बिंब सब पर। वृष्य रेती पै देषि (खोज), कहा ब्रिछ कहा रेत पै देषि। प्रतिबिंब नाहीं होइ है चादनी होइ है तौ (उदय), प्रतिबिंब होइ है और ठौर प्रतिबिंब नाही होइहै चादनी होइहै तौ। देषि कि (खोज), देषि। ठौर बराबर (जोध), ठौर परि। एक से है (खोज), एक सौ है। जल स्वछ हैं (उदय), जन मैं जल स्वछ है। तातै चेतन कौ (उदय), तातै यामै। होइ हैं तब (उदय), होइ है और ठौर स्वछ नाही तहा चादनीयै होइहै त्यौ ही देषि कि जैसी जल स्वछ है तैसै ही अतहकरण स्वछ है तातै चैतन कौ प्रतिबिंब होइ है तब (जोध), होइ है और ठौर स्वछ नाही तहा चाँदनीये होइहै तो ही देषि जल स्वछ है तैसै ही अतहकरन स्वछ है तातैं चेतना कौ प्रतिबिंब होइ है तब। और जहा स्वछ (उदय), और जहा स्वस्थ (जोध), और चादनी स्वछ। ताही होत (खोज), नाही होत। जड कहे है ए तु यु (खोज), जड कहैं हैं पै तू यौं। एक है (खोज), एकै है। जड जु है (खोज), जड जू हैं। करि भासै (खोज), करि कै भासै। ईश्वर कौं (खोज), ईश्वर के। सौं ग्यान होइ हैं (उदय), सै ग्यान हो ही है (जोध), सौं ग्यानी होय है। एक चेतन एक भासै (खोज), एकै चैतन भासै। सुबर्न (उदय), सुब्रन (जोध), सोबर्न। तो मैं नीकैं (खोज), तौ मैं तो नीकैं। और सदेह (खोज), औरौ सदेह। सु पूछिये (उदय), सौ पूछियै (जोध), सो पूछीयो।

सिष्योवाच—ईस्वर जु है सु कौन प्रकार है मैं सास्त्र मैं ईस्वर नाना प्रकार सुन्यौ है पैं मेरौ संदेह नाँही मिटयौ तातै हौं तुम सौं पूछौं हौं। क्रिपा करिकै मेरौ सदेह मिटाइयै।[२२]

गुरूवाच—सास्त्र मैं तौ कह्यौ है जु माया कैं बिखैं सुध्ध ब्रह्म कौ प्रतिबिंब सो ईस्वर[२३]।

सिष्योवाच—तुम कह्यौ कि माया कैं बिषैं सुध्ध ब्रह्म कौ प्रतिबिंब सो ईस्वर तब या लेखैं ईस्वर को उत्पति आवै है और ईस्वर कौं हू मानैं हैं सु जौ ईस्वर कों उतपत्ति है तो अनादिपनो काहे तैं और जौ ईस्वर अनादि है तौ उपजनौ कैसैं बनै और सास्त्र मैं तौ ईस्वर की ए दोऊ रीतैं कही हैं और इन दोऊ भाँतिन मैं तौ बिरुध्ध प्रतिछ्छ है सो यह तुम्हारी क्रिपा बिना कैसं समुझ्यौ जाइ तातैं हौं तुम सौं बिनती करौं हौं क्रिपा करिकै जैसैं ईस्वर की इन दोऊ भाँतिन कौ बिरुध्ध मिटै तैसैं समुझाइ कहियै।[२४]

गुरूवाच—तूं यह बड़ी बात पूछै यह बिरुध्ध अनादि चल्यौ आयौ है और जानि कि ईस्वर की कृपा तैं जो अनुभवी होइ सोई यह बिरुध्ध मिटावै अब तूं चित्त लगाइ कै सुनि देखि कि ईस्वर अनादि मान्यौ है निराकार मान्यौ है व्यापक मान्यौ है और करता मान्यौ

---

[२२] जो है (खोज), जु है। हु तुम सैं बूझत हु (खोज), हौं तुम सौं पूछौं है।

[२३] माया है (खोज), जु माया कै। बिंब कौ ईश्वर (खोज), ब्रह्म कौ प्रतिबिंब सो ईस्वर।

[२४] कै माया (जोध), कि माया। प्रति सो (खोज), प्रतिबिंब सो। अरु ईश्वर कु (खोज) और ईश्वर कौं। मानै है जो (खोज), हू मानैं हैं सु जौ। काहे तैं जा (खोज), काहा तै और जौ। अरु शास्त्र मै (खोज), और सास्त्र मैं। दो (खोज–), दोऊ। रीति कही (खोज), रीतैं कही। और इन (जोध), अरु इन। दोऊ भातिन (उदय), दोऊ भातिनी। तातै हु (खोज), तातैं हौ। सौं बिनती करौं हौं (उदय), सै बीनती करौ हौं (जोध), सुं बीनती करु हु। दो (खोज।); दोउ।

है तातैं सगुन मान्यौ है और देखि कि ब्रह्म तौ अनादिहू है निराकार हू है और व्यापकादि हू है और अकरता कहै हैं तातैं निरगुन है तौ अब देखि कि अनादिता मैं निराकारता मैं अरु व्यापकता मैं तौ जानि कि ब्रह्म कौ अरु ईस्वर कौ कछु भेद नाँही रह्यौ करता अकरता कौ भेद सु ब्रह्म तौ अकरता ही मान्यौ चाहियै तातैं जानि कि ब्रह्म तौ अकरता है सो करता कैसें है सु करता कैसैं मानियैं तातैं करत्रित्व के लयैं ईस्वर मान्यौ है पै देखि कि ईस्वर के भिन्न जानैं द्वैत कैसें ठहरावै यातें ब्रह्म की इछया कौं ईस्वर जानि और बिस्व है सु इछया ही सौं उपज्यो है तब देखि कि इछया का ईस्वर मानें अनादिता हू आई और उतपत्ति हू आई क्योंकि करत्रित्व गुन करियैं सोई चेतना सोई इछया तब देखि कि इछया भयें हू अरु बिना भयें हू चेतन मैं इछया तौ है हा तब देखि कि इछया की अनादिता मैं तौ संदेह नाँही और इछया के होत ही उतपत्ति भई और ईस्वर सौं माया प्रतिबिंबत चैतन्य मानै हैं और देखि कि इछया म कछू प्रियता है सोई प्रियता माया। तब जानि कि इछया सोई ईस्वर तब देखि कि अनादिता हू आई अरु उतपत्ति हू आई अरु बिरुध्वता हू गई और ब्रह्म अकरता हू है अरु करता हू है और एक ही है पै बिन अनुग्रह असैं जान्यौ न जाइ तातैं यह प्रस्ताव मैं तोसौं कह्यौ सो तूँ अनुग्रह ही जानि और यह तूँ निसंदेह करि जानि कि मुक्ति कौ उपाइ ग्यौन ही है बिना ग्यौन मुक्ति न होइ और यहौ निसंदेह करि जानि कि बिना अनुग्रह ग्यौन न होइ।[२५]

---

[२५] तैं यह (खोज), तू यह। पूछी है (खोज), पूछै है। अनुभव होइ सो (खोज), अनुभवी होइ सोई। बिरोध (खोज), बिरुद्ध। तब तु (खोज), अब तू। जगाय कैं (जोध), लगाय कै। सुनि कि (खोज), सुनि देषि कि। × (जोध), निराकार मान्यौ है। अरु कर्त्ता (खोज), और करता। मन्यौ है (उदय), मान्यौ है। अरु अकर्त्ता (खोज), और अकरता। निर्गुन कहे हैं (खोज), निरगुन है तौ। देषि (खोज), देषि कि। सो करता कैसै है सु करता कैसैं मानियैं (उदय) सु कर्त्ता कैसै मानीयै। भिन मान्यै (खोज), भिन्न

(सवैया)

दान सनान जिते जप जाप 'रु पूजन देव ब्रतादिक ही।
इष्ट उपासन आगम मारग आहुत होम निरंतर ही।
पुरान कथा रु त्रिकाल सँधैं सुध ग्यॉन नहीं इनके कब ही।
यहै मन आनि सँदेह बिना बिनु ब्रह्मअनुग्रह ग्यॉन नहीं ॥ १ ॥

मानैं। अद्‌वैत्व (खोज), अद्वैत। ठहरावै (जोध), ठहरै। इछा ही कु (खोज), इछा कौं। अरु विश्व (खोज), और विश्व। सो इछा (खोज), सु इछा। ईश्वर मान्यै (खोज), ईस्वर मानै। अनादिता आई अरु (खोज), अनादिताहू आई और। क्योंकि करत्रित्व गुन करिकैं सोई चेतना सोई ईछा तब देषि कि इछा भयैं हू अरु बिना भयै हू चैतन मैं इच्छा तौ है ही (उदय), क्योंकि इछ्या बिना भयैं हू चैतन मै इछा बीजरूप है ही क्यौंकि करत्रित्व गुन करि क सोई चेतना सोई ईछया तब देषि कि इछया भयै हू अरु बिना भयै हू चेतन मे इछ्या तौ है ही (जोध), क्यों कि कर्तृत्व गुन करि कै सोई चेतना सो प्रतछि देषि इछा भय हु अरु बिना भय हु चेतन मै इछा तौ है ही। अरु इछा (खोज), और इछा। अरु ईश्वर कु (खोज), और इश्वर कौं। प्रतिबिंब चेतन (खोज), प्रतिबिंबत चैतन्य। पैं (जोध−), तै (जोध+), मै। आर ब्रह्म अकरता (उदय) और ब्रह्म कर्त्ता (जोध), अरु ब्रह्म कर्त्ता। कर्त्ता हू है (उदय), अकर्त्ता हू है। अरु एक (खोज), और एक। जान्यौ जाइ नहीं (खोज), जान्यौ न जाई। तातै प्रस्ताव (खोज), तातै यह प्रस्ताव। सु कह्यो (खोज), सौ कह्यौ। और तु इह (खोज), और यह तू। और यहौ (उदय), और यह (जोध), अरु यह।

[सवैया १] सिनान (खोज), सनान। आहूति होति होमि (जोध), आहुत होम। संध्या शुध (खोज), सधैं सुध। इनके तब (खोज), इनतै कब। आनि निसदेह (जोध), आनि सदेह।

जग जाग कियैं 'रु दियैं ब्रह्म भोजन स्नान कियै पुनि तीरथ ही।
भूमिपती छत्रपत्ति भयै हूं पढ़ैं षट सास्त्रनि पंडित ही।
गरुवाई भई जौ पैं पचनि मैं तौऊ ग्यान नही इन तैं कब ही।
यहै मन आनि सँदेह बिना बिनु ब्रह्मअनुग्रह ग्यॉन नही॥ २॥
जम नेम करै जिहि रीति कहे द्रिढ आसन बैठि रहै नित ही।
पूरक कुंभक रेचक सौं फुनि प्रानअयाम करै किन ही।
प्रान अपान करै गतिरोध पै ग्यॉन नही इन तैं कब ही।
यहै मन आनि सँदेह बिना बिनु ब्रह्मअनुग्रह ग्याँन नही॥ ३॥
जल भीतरि पैठि रहै सब रैनि सहै सिर मेह बसै बन ही।
जराइ सरीर पँचागनि तैं फुनि राखि रहै कर ऊरध ही।
परेई रहै गहि मौन निरंतर ग्यॉन नहो इन तैं कब ही।
यहै मन आनि सँदेह बिना बिनु ब्रह्म अनुग्रह ग्याँन नही॥ ४॥
फिरै सब भूमि करै परदछिछुन बैठि रहै जो पै एरत ही।
धूमरपान करै उलटो उपवासनि छीन करै तन ही।
दिगअंबर होइ रहै बन मैं तउ ग्याँन नही इन तैं कब ही।
यहै मन आनि सँदेह बिना बिनु ब्रह्मअनुग्रह ग्याँन नही॥ ५॥
प्रत्याहार करै मन खैंचि कै धारन धारि रहै रे रहै मन ही।
धरि ध्यान रहै न गहै मन और सबै तजि दौरि अचंचल ही।
त्रिपुटी तजि साधि समाधि रहै तउ ग्याँन नही इनतैं कब ही।
यहै मन आनि सँदेह बिना बिनु ब्रह्मअनुग्रह ग्याँन नही॥ ६॥

---

[२] जगि ज्याग (खोज), जग जाग। कीए पुन्य (खोज), कीयैं फुनि। तऊ ज्ञान (जोध), तौऊ ग्यान।

[३] सु पुन (खोज), सौ फुनि। कि नही (उदय), कि तही (जोध), कि वही।

[४] पनागन (खोज), पचागनि। परे ही (खोज), परे ई। मौन (उदय), मान (जोध), मूनि।

[५] जप (खोज), जो पै।

[६] प्रतिहार (खोज), प्रत्याहार। खैचिकै (जाध), षैंचिकै। धारन धारि (उदय), धारन धार। तज धअर अंचल (खोज), तजि दौरि अचचल। साध समाध (खोज), साधि समाधि।

सुचिता सौं रहै बहु साधन कौ सॅग ब्रह्मकथा नित होइ जही।
गुरु तैं फुनि स्रौन कर बहु बार जु ग्रंथ अनेक अध्यातम ही।
सुनिबे कौ फिरै वहु तीरथ ठौरनि ग्यॉन नही इनतैं कब ही।
यहै मन आनि सँदेह बिना बिनु ब्रह्मअनुग्रह ग्यॉन नही॥ ७॥
सुनि ही सुनि फेरि बिचार करै फुनि पूछै बिसेषन जानै तही।
सुनि कै समुझै बहु भाँति बिचारि करै निहचै मन चिंतन ही।
निदध्यासन फेरि करै नितहीं तउ ग्यॉन नही इनतैं कब ही।
यहै मन आनि सँदेह बिना बिनु ब्रह्मअनुग्रह ग्यॉन नही॥ ८॥
ग्यॉन न साधन तैं उपजे न उपाइ कछू उपजै यह जातैं।
द्रिष्टि अगोचर रूप नही कछु देखन मैं नहि आवत यातैं।
न बनै कहतैं सु सुनैं न वने बनिहै कहि कैसैं बनाये तैं बातैं।
याही तैं जानि अनुग्रह साधिहै आप ही ग्यॉन सरूप है तातैं॥ ९॥
सु कर्म कछू न किये कबहूँ जब तैं तन पाय बस्यौ जग मैं।
सतसंगति कौं परस्यौ कबहूँ न धर्यौ नहिं साधन के मग मैं।
असैं भये हूँ गयौ न कछू पग हैं सब कुंजर के पग मैं।
होत अनुग्रह काज भयौ सब भाखत देखि यहै निगमैं॥१०॥

(दोहा)

जसवॅतसिंह कीनौ समुझि अनुग्रह तैं स्रुतिसार।
सिधाँतबोध या ग्रॅथ कौ धर्यौ नाम निरधार॥ ११॥
अनुग्रह के फल कौ अरथ जानै अनुग्रह जाहि।
कहौं कहा बिस्तार कै बौहौत बात मैं वाहि॥ १२॥

इति श्रीमहाराज श्री श्री श्री श्री श्री जसवंतसिंह कृत सिद्धांत-बोध ग्रंथ संपूर्ण।

---

[७] सु रहै (खोज), सौ रहै। कौ सग (जोध), के सग। होत (खोज), होइ। स्नान करै (जोध), श्रोन करै। कु फिरै (खोज) कौ फिरै। इनै (जोध), इन तै।

[८] जानैं तही (उदय), जानतही। तोऊ (खोज), तउ।

[९] धातै (खोज), यातैं। स सुनै (जोध), सु सुनै।

[१२] बौहौत (उदय); बौहत (जोध), बहुत।

सिद्धांतसार

(दोहा)

सत चेतनि आनदमय महा प्रकासक आहि ॥
ग्याँन रूप अरु गुनरहित ऐसो जानो ताहि ॥ १ ॥

इछ्या जानि सरूप है प्रियता हू निज रूप ॥
प्रियता कौं माया समुझि सो फिरि भई अनूप ॥ २ ॥

महा बल्ल सामर्थ्थ तैं माया कह्यो प्रकास ॥
बहुर्यो प्रकिति सुभाइ तैं उपज्यौ त्रिगुन बिलास ॥ ३ ॥

तब तैं फैल्यौ भरम यह बिधि बिधि नाना भांति ॥
बिना अनुग्रह ताहि फुनि सक्यो न कोऊ जीति ॥ ४ ॥

भरम कह्यौ है ब्रह्म त ईस्वर भिन्न प्रकार ॥
निगुन सगुन ए मानि फिरि भरम रच्यो ब्यौहार ॥ ५ ॥

भरम कह्यो करता सगुन भरम अकरता कीन ॥
निरबिसेस सबिसेस द्वै कोने भरम नवीन ॥ ६ ॥

निगुन सगुन पर भरम नै करयौ बौहोत बिस्तार ॥
ताकौ कबहूँ होत नहि काहू तैं निरवार ॥ ७ ॥

भरम करो निज रूप लै ताहि अबिद्या जानि ॥
आबरन रु बिछ्छेप ए सक्ति दई द्वै मानि ॥ ८ ॥

भरम भरयो आकास फुनि भरम करयौ है बाइ ॥
तेज नीर अरु भूमि हू कीनो भरम बनाइ ॥ ९ ॥

---

[२] सरूप (सर, उदय), स्वरूप ।
[६] नरम (उदय), भरम ।
[८] है (जोध), द्वै ।
[९] बरयौ (उदय); भरयौ । बाच (जोध—); बाय कीमी
(उदय—), कीनी ।

नाना कीनै जीव भ्रम ताहू मैं द्वै रीति ॥
ब्रह्मभ्रस अबिछिन कहै अरु प्रतिबिंब प्रतीति ॥१०॥

पचतत्व ए भरमकृत पचीक्रित फिरि कोन।
इहिं बिधि रचि भ्रम बिस्व सब सतिता कौ बर दीन ॥११॥

स्वेदज अडज उदबिद, रु करै जरायुज जानि।
भरम रचो है जीव को इहिं बिधि च्यारौ खानि ॥१२॥

भरम किये ए करम सब करि कीनौ निरधार।
करम लगाए मानसनि औरन तैं निरवार ॥ १३ ॥

करम जीव ए भरम नै दोऊ करे अनादि।
कौन अचभौ कीजियै जिन के है भ्रम आदि ॥१४॥

त्रिबिध करम कीनै भरम सचित अरु क्रियमान।
और प्रारबध तीसरैं भ्रम के खेल निदान ॥१५॥

भरम कर्यौ है करम सब पर तैं जिय काँ आनि।
करत भोग फिरतै रहत त्यौं ही त्यौं यह मानि ॥१६॥

अतहकरन करि भरम नै किये भेद ए चार।
सॅकलप बिकलप मन करै निस्चै बुधि निरधार ॥१७॥

निस्चै जाको बुधि करै सो सुधि राखत चित्त।
करता मानै आपकौं अहकार को म्रित्त ॥१८॥

इहिं बिधि करि ए भरम नै इद्री करी बनाइ।
स्रवन सुनत देखत द्रिगनि परसत परस सुभाइ ॥१९॥

---

[१०] द्वि (सर०), द्वी (उदय), द्वै।
[११] पचीक्रिन (उदय), पचाक्रित।
[१४] लगाए (उदय, जोध); लगए।
[१५] अरु क्रिय (सर, उदय), क्रिय अरु।
[१६] करत (उदय); कर (जोध), करी।
[१७] च्यार (उदय), चारि (जोध), चार।
[१८] बुद्धि (उदय, जोध), बुधि। सोधि (उदय); सौ सुध।

रसना रस हू भरम तैं भ्रम तैं आघ्रन घ्रान।
करमेंद्री कारज सहित भ्रमहीं करै निदान॥२०॥
भरम किये जे करम हैं तिनतैं जग मैं जाइ।
मात पिता संजोग तैं पुत्र भयो है आइ॥२१॥
भरम पिता माता भरम भरमै पुत्र सरूप।
भरमानद बँधाय मन भरम कहायौ भूप॥२२॥
भरम गोत्र भरमै बरन भरम धरायो नाँव।
भरम अनदित ग्रिह भयौ भरम अनदित गाँव॥२३॥
भरम नछत जनम्यौ भलैं भले नवो ग्रह जोग।
बौहोत होइगो आयबल बोहोत करैगौ भोग॥२४॥
पोता देखैं सुख भयौ चाचा पूछत बात।
भइया ल्यावत खेलनै बहिनि गोद ले जात॥२५॥
भाभी देखि सिहात मन मौसी बलि बलि जात।
फुफी झुलावत पालनै झूलत है दिन रात॥२६॥
दिन दिन अब बढतै चल्यौ त्यों त्यौं भ्रमहू साथ।
पढिबे लायक देखिकैं दयौ बिप्र कैं हाथ॥२७॥
ब्रह्मचारी ह्वै गुरु निकट बैठ्यौ है चित लाइ।
जो जो सधा देत गुरु सो सो पढ़त बनाइ॥२८॥
पढ़त पढत पडित भयौ मन मैं धर्‌यौ गुमान।
को मासौं अब बोलिहै यह करि रह्यो प्रमान॥२९॥
पिता पुत्र जान्यौ पढयो तब लै आयो गेह।
गुरुदछिना दै बिप्र कौं अरु कीनो बहु नेह॥३०॥
पिता सगाई पुत्र की करि कै कर्‌यौ बिबाह।
न्यात गोत सबही मिले मन मैं धरैं उछाह॥३१॥

---

[२०] रसलहू (सर); रस हू। निमान (सर), प्रदान (उदय); निदान।
[२४] ग्रहि (उदय), ग्रिह।
[२५] चाचा (उदय) बाचा।
[२८] नीकट ह्वै (जोध), निघट। हि (उदय—); हित (उयय+); है।

ब्रह्मभोज नीकैं दयौ दछिना हू फुनि दीन।
बौहौत दियौ बंदीजननि सब बिधि तैं जस लीन ॥३२॥
भरम खेल भरमै पढ्यो भरम कियौ ब्रह्मचर्ज।
ग्रहस्थ भयो अब भरम तैं देखौ भ्रम आस्चर्ज।।३३॥
ग्रहस्थ भयौ लागौ करन पूजा सजम जाप।
पुन्य करत तजि पाप कौं देखौ भरम संताप ॥ ३४ ॥
क्रियावान जोबन छक्यौ बिद्या कौ अभिमान।
दानि सूर सुदर महा सब कोउ करै प्रमान ॥ ३५ ॥
कानननि सुनि जसु आपनौ गरब धरत मन माँहि।
करत सुभासुभ कम्म पै अपबस ते कछु नाँहि ॥ ३६ ॥
पुत कलत्र धन धाम अरु सेवक सुजन सनेह।
इनतैं लै सुख बिस्व सब सति करि जान्यौ येह ॥ ३७ ॥
एक दिना सोवत हुतौ परयौ सुपन मैं जाइ।
देखै तौ इक पुरुष है तिन यह लियौ बुलाइ ॥ ३८ ॥
डरियै मति कहि लै चल्यौ आगै आपुन होइ।
चले जात बन सघन मैं पुरुष आहि ए दोइ ॥ ३६ ॥
चले जात उन यह रही आगै नगर अनूप।
सब पुरवासी यौं कह्यौ इहाँ नहीं कोउ भूप ॥ ४० ॥
पठयौ मोकौं सबन मिलि प्रथम मिलै सो ल्याउ।
महानगर अरु देस कौ ताकौ करियै राउ ॥ ४१ ॥
तातैं मन आनद धरि तोकौं दैहैं राज।
देस नगर पुर ग्राम फुनि हय गय सकल समाज ॥ ४२ ॥

---

[३५] दानि सूर (उदय ; दानसुर (जोध); दानीसुर।
[३६] जासु (उदय), बखि। पै (उदय), यै।
[३७] गेह (उदय); येह।
[३८] सुपनै (उदय—); सुपन।
[३६] आगइ (उदय), आगै। चुरस (उदय); पुर।
[४०] चलेव (बोध); चले।
[४१] सबन मिलि (उदय); सब मिलन। मिलै (उदय); मिल्यै।

ऐसैं सुनिकै मन बिषैं धार्यौ हरष उछाह।
लाग्यौ चलन उताइलै राज लहन की चाह ॥ ४३ ॥
जात जात तहँ बन बिषैं नदी बहत मग माँहि।
दोउ कगारनि भरि बहै थाह कहूँ हूँ नाँहि ॥ ४४ ॥
तहाँ एक बेरो जुरो इक खेवट ता माँहि।
बैठे दोऊ नाव पर चले पार कौं जाहि ॥ ४५ ॥
बीच धार मैं जब गए तब वह बूडी नाव।
महा भँवर जल जोर मैं तैसी ही फिरि बाव ॥ ४६ ॥
बूडत याकौं जल बिषैं लकरा लाग्यो हाथ।
ताहि गहैं बहतै चल्यौ जलप्रबाह के साथ ॥ ४७ ॥
बहत बहत लकरा कहूँ टापू लाग्यौ जाइ।
तापर देख्यौ मगर इक निस्चै देख्यौ खाइ ॥ ४८ ॥
मानस देख्यो मगर नै पकरन आयौ धाइ।
गह्यौ जानि अति त्रास तैं तब जाग्यौ अकुलाइ ॥ ४९ ॥
जागैं हू छिन एक द्वै मिट्यौ न मन तैं त्रास।
सुपन जानि जान्यौ यहै प्रबल भरम कौ पास ॥ ५० ॥
ऐसैं बीते बौहोत दिन राग द्वेष के माँहि
अब कीजै साधन कछू जीबौ निस्चै नाहि ॥ ५१ ॥
जासौं पूछी तिन कही मनहू कह्यो बिचार।
बानप्रस्थ अब कीजियै यह कीनौ निरधार ॥ ५२ ॥
देखि मुहूरत पुत्र कौ थाप्यौ अपनी ठौर।
कुलमारग कौं छाडि कैं जिनि मन धारै और ॥ ५३ ॥

---

[४३] घरयौ (उदय, जोध); धारयौ।
[४४] तहा (उदय, जोध), तहँ।
[४५] ताहा (जोध), तँहा। एक बरो (उदय); एक बेरो। खेटव (उदय); षेवट।
[४८] जान्यो (सर, उदय); देख्यो।
[४९] त्रासतइ (उदय); त्रासतै।
[५०] है (जोध), द्वै। मतै (जोध); मन तै।
[५३] अनी (जोध), अपनी।

सुजन सनेही सौं कह्यौ यासौं करियौ प्रीति।
ताही बिधि निरबाहियौ जो मोसौं ही रीति॥ ५४॥
यह कहिकै घर सों चल्यौ लई भारजा संग।
जाइ कुटी करि घास की रहे निकट तट गग। ५५॥
स्नान करत नित नेम प्रति भिछ्छा देत बनाइ।
मन लगाइ पूजै रिषिन कथा सुनन कौं जाइ॥ ५६॥
कथा सुनत रोवत रहै रीझि रीझि मन माँहि।
यहै सोच मन मैं करै कहा करौं का नॉहि॥ ५७॥
सोच करै सताप सों पूछन अति सकुचात।
कासौं पूछौं जाइकै अपनै मन की बात॥ ५८॥
को मोसों कहियै दई मेरे हित की जोइ।
जातें या जिय देह की परम भलाई होइ॥ ५९॥
सोचत ही केतिक दिना ऐसैं गए बिहाइ।
कथा सुनै दरसन करै नित प्रति आवै जाइ॥ ६०॥
कथा सुनत इक दिन सुन्यौ साधन करियै जोइ।
ग्याँन पाय निस्चै बहुरि आवागवन न होइ॥ ६१॥
तब इन पूछ्यौ बिनय करि साधन देहु बताइ।
कहियै नोकैं बिधि सहित जे हैं मुक्ति उपाइ॥ ६२॥
पूछत तुमकों मानि गुरु कहियैं होइ क्रिपाल।
तुम बिनु और उपाय नहि काटन कौं भ्रमजाल॥ ६३॥
बिनै बचन सुनि मुनि कह्यौ चित कौ करि बिश्राम।
साधन सब नोकैं कहौं तिनतैं ह्वैहै काम॥ ६४॥
प्रथम जम रु फिरि नैमु करि आसन जो सुख साध।
प्रानायामहि करि करौ प्रान आपनैं बाँध॥ ६५॥

---

[५५] भारज्या (उदय); भारजा। नींकट तट (जोध), निकट तर।
[५७] करु (उदय); करौ।
[५९] कहि है (उदय); कहियै।
[६०] हिना (जोध); दिना।
[६४] तिनतिं (उदय); तिनतै।
[६५] अपानै (उदय); आपनैं।

बहुरयौ प्रत्याहार करि सब दिस तैं मन ल्याइ।
मन थिर सोई धारना और न कितहू जाइ ॥ ६६ ॥

धारयौ मन जो एक दिस धरयौ रह्यौ तिहि ठौर।
सोई निस्चै ध्यान है मन की चाल न और ॥ ६७ ॥

ध्याता ध्यान रु धेय जब भए एकरस जानि।
जहाँ भास भासै नहीं ताहि समाधि बखानि ॥ ॥ ६८ ॥

याहि जानि अष्टाग तूं यहै कहावै जोग।
याकौं साधैं होत नहि फिरि प्रपंच कौ भोग ॥ ६९ ॥

ए तूं नीकै साधि करि मो सौं कहियै आइ।
बिधि पूरब तो कौं बहुरि कहिहौं ग्यान सुनाइ ॥ ७० ॥

ऐसैं ये सुनि मुनिबचन तब करि चल्यौ प्रनाम।
सावनबिधि सुनि मन धरी साधै आठौ जाम ॥ ७१ ॥

आइ कह्यौ निज नारि सौं क्रिया करी मुनि मोहि।
स्वागत भिछ्छा अतिथिहित यह सब करनौ तोहि ॥ ७२ ॥

यह कहि रह्यौ एकात ह्वै आसन धर्यौ बिछाइ।
बिधि सौं जम अरु नेम कौं लाग्यौ करन बनाइ ॥ ७३ ॥

बुरौ न चाहत और कौ ताहि अहिंसा जान।
असत बचन बोलत नहीं सति करि रह्यौ प्रमान ॥ ७४ ॥

---

[६६] ध्यावना (जोध), धारना (उदय); धावना। ल्याइ (उदय); जाइ।

[७०] आहि (जोध), आइ। कहिहौ (उदय), कहि यौ।

[७१] प्रनाम (उदय), प्रमान। मुनि (उदय), मन। साधै (उदय), साधौ।

[७२] नारि सु (उदय), नार सौं।

[७३] आछन (उदय); आसन।

जा० १२ (१६०० - ६५)

बिनु दीने कछु लेत नहि मन अस्तेय बिचारि।
रह्यौ भारजासंग तजि ब्रह्मचरिज चित धारि॥ ७५॥

ममता त्यागी सकल बिधि अपरिग्रह सो आहि।
इहिं बिधि पंच प्रकार जम करै रह्यौ ज्यौं याहि॥ ७६॥

चित इंद्री कौं सुध करै सुचिता यहै प्रमान।
त्रिष्णत्याग संतोष यह तप उपवासबिधान॥ ७७॥

करत अध्यातमपाठ नित स्वाध्याय यह जान।
सिवचिंतन छिन छिन करत आहि यहै प्रनिधान॥ ७८॥

ऐसैं पाँच प्रकार सौं साध्यौ नैम बनाइ।
मुनिसुमिरन करि मन बिषैं बैठौ आसन जाइ॥ ७९॥

आसन बैठि सुचित्त ह्वै पूरक कुंभक रेच।
प्रानायाम प्रकार तैं करत पवन के पेच॥ ८०॥

दियौ बिस्व तैं रोकि कै इंद्रिन कौ संचार।
मन लगाइ लाग्यौ करन बिधि सौं प्रत्याहार॥ ८१॥

मुनिमूरति धरि मन बिषैं मन मूरति मैं धारि।
इहि बिधि राखी धारना दई चपलता डारि॥ ८२॥

भई प्रौढ़ जब धारना तब नाँही निज भान।
मुनिमूरति यह मन भयौ ऐसैं लाग्यौ ध्यान॥ ८३॥

मूरति मन अरु जाननौ तीनो गए बिलाइ।
इहिँ बिधि रह्यौ समाधि मैं मुनिप्रताप तैं जाइ॥ ८४॥

बीते याहि समाधि मैं केतिक दिन अरु रात।
खान पान अरु नींद बिनु ऐसैं काल बिहात॥ ८५॥

---

[७५] ब्रह्मचरिज (उदय), ब्रह्मचर्य।

[७६] आइ (बोध); आहि। ज्यौं याहि (उदय), जो आहि।

[७८] अध्यातन (पचक), अध्यातम।

[८०] बिठ (सर); बैठ।

[८१] संसार (उदय), संचार।

[८३] नाहि (उदय, बोध), नाही। गभान (उदय); भान। सुनि (बोध); मुनि।

ऐसैँ सुनि वाकी दसा मुनि आयौ या पास।
आइ जगायौ जतन करि तब भास्यौ आभास॥ ८६॥

सिथिल अंग तन खीन तैँ मुनि कौँ बंदन कीन।
तब मुनि धनि याकौँ कह्यौ काहि समाधि मैँ लीन॥ ८७॥

तब मुनि यासौँ यौँ कह्यौ अब तूँ करि संन्यास।
यह निस्चै करि जानि मन ह्वैहै ग्यानप्रकास॥ ८८॥

गुर के सँग आसन गयौ लयौ जाइ संन्यास।
महावाक्य उपदेस करि लै बैठौ अपपास॥ ८९॥

तब गुर वासौँ यौँ कह्यौ प्रथम आपकौँ जानि।
तन इंद्रीगन नाँहि तूँ जाहि रह्यौ है मानि॥ ९०॥

मैँ जासौँ तूँ कहत है सो मति जानै देह।
इंद्री तेरे तूँ नहीँ यह निस्चै करि लेह॥ ९१॥

मन तेरौ तूँ मन नहीँ बुधि तेरी तूँ जानि।
चित हू तेरौ तूँ नहीँ तूँ न्यारौ है मानि॥ ९२॥

इन सबतैँ तूँ आपकौँ न्यारौ करिकै जानि।
चित जड़ कौ सजोग जो ताहि आप करि मानि॥ ९३॥

ऐसैँ हू तूँ आपकौँ जिनि समुझै सुनि बात।
गएँ अबिद्या अंस कैँ तूँ स्वरूप ठहरात॥ ९४॥

मैँ कीनौ मैँ यौँ करौँ मैँ करिहौँ अब याहि।
देखि अबिद्या अंस तैँ अहंकार यह आहि॥ ९५॥

---

[८७] सिथल (सर, उदय), सीतल। मुनि (सर+, बोध); मुनि।
[८८] ह्वै (उदय), ह्वै है।
[९३] जड कौं (सर, उदय); जड जो। सजोग (उदय); संजोग जो।
[९४] समझै (उदय), समुजै। सरूप (उदय); स्वरूप।

अहंकार इहिँ रीति कौ यह तेरौ तूँ नाँहि।
करता चेतन आपकौं यहै समुझि अपमाँहि ॥ ९६॥

कह्यौ समुझि सब बिस्व कौँ मिथ्या करि मन माँहि।
एक आतमा अतिरिकत और दूसरौ नाँहि ॥ ९७ ॥

नाना बिधि भासत जगत हेत अविद्या ताहि।
ईस्वर जीव अभेद तैँ नास अविद्या आहि ॥ ९८ ॥

देखि अविद्या सत नही नही असत हू जानि।
नाँहि कही वह सतअसत अनिरबचन लै मानि ॥ ९९ ॥

जानि अविद्या रूप तम परप्रकास तैँ भास।
याहि दिखावत ताहि सत जानौ ब्रह्मप्रकास ॥ १०० ॥

और अविद्या की सकति द्वै प्रकार तैँ जानि।
आवरन रु बिछ्छेप हैं नाम दोइ ए मानि ॥ १०१ ॥

जातैं कछु भासै नहीँ कहै आवरन ताहि।
आन भास भासै कछू तब बिछछेप सु आहि ॥ १०२ ॥

रीति अविद्या की कही लछ्छन रूप समेत।
उपजाई उपजी नहीँ भई बिस्व के हेत ॥ १०३ ॥

ग्यान भए तैँ होत है याकौ नास प्रमान।
याहि अविद्या कौं समुझि निस्चै है अग्यान ॥ १०४ ॥

ग्यान भएँ अग्याँन कहि रहै कहाँ किहि ठौर।
निज सरूप समुझ्यौ तबै नाँहि दूसरौ और ॥ १०५ ॥

---

[९६] इहि (सर, उदय); यह। तेरौ (उदय); तेरै। नाहि (सर, उदय); जानि। करत (उदय, जोध); करता। अ माहि (पचक), अपमाहि।

[९७] बिस्व कौं (उदय, जोध); बिस्वा कौं।

[९८] 'उदय' में दूसरा दल नही है।

[९९] वेष (जोध), वाहि (पंचक), देषि। लैं (पचक); ली।

[१०१] दोइ (सर, उदय); होय।

[१०५] निस (उदय); निज। नासत (जोध); भासत।

तेरो ही सब रूप है यह निस्चै करि जानि।
नाना बिधि भासत तऊ अपन्यारे मति मानि ॥ १०६ ॥
ईस्वर माया तैं भयौ सो माया करि दूर।
ईस्वर मिटि सोई भयौ सु तौ जपहि लै मूर ॥ १०७ ॥
ऐसें ई यह जानि तूँ जीव अबिद्या कीन।
जीव ब्रह्म तें भिन्न नहि भयौं अविद्या हीन ॥ १०८ ॥
मिटैं अबिद्या देखि तूँ माया कौ नहि भान।
एकपनै मैं तब कह्यौ चाहै कौन प्रमान ॥ १०९ ॥
ऐसैं ही निज रूप कौं भलै समुभि अपमाँहि।
जे जे देखत ते सबै तोतैं न्यारे नाँहि ॥ ११० ॥
सकल बिस्व सब ठौर मैं व्यापक ब्रह्म अनूप।
तातैं सिगरे रूप ए वाकौं जान सरूप ॥ १११ ॥
वहै व्यापि व्यापक सबै वहै एक है जानि।
सख्या को सौ एक नहि दूजे बिनु यह मानि ॥ ११२ ॥
नाना बिधि सो है कहा सब कहियै सो काहि।
द्रिस्य कहा दरसन कहा कहि द्रिष्टा को आहि ॥ ११३ ॥
कहा भास भासै कहा कहा भास अवकास।
जहँ स्वरूप निज ग्यान कौ पूरन जोतिप्रकास ॥ ११४ ॥
ऐसैं कहिकै यौं कह्यौ स्रवन भयौ सब तोहि।
कहि नीकैं तूँ मनन करि दसा आपनी मोहि ॥ ११५ ॥

---

[१०७] दूर (उदय); दूरि। हुतौ (उदय, जोध); सु तौ। मूर (उदय); मूल।

[१०८] ऐसेंही (उदय); ऐसेंई।

[१०९] कहौ (उदय), कह्यौ। प्रनाम (जोध); प्रमान।

[११०] न्यारौ (सर+); न्योर (पचक); न्यारे।

[११२] वहै (मर, उदय), सबै। दूजै (उदय), दूजो।

[११३] कहा (जोध+) काहि।

[११४] जहा सरूप (उदय), जहँ स्वरूप।

तुम प्रताप कीनौ स्रवन मनन भयौ तिहि काल।
बिना अनुग्रह ब्रह्म के को काटै भ्रमजाल ॥ ११६ ॥

कहौं बात हौं आपनी सुनियै प्रभु चित लाइ।
क्रिया तुम्हारी तैं दसा मोकौं भई जु आइ ॥ ११७ ॥

भरम पूत भरमै पिता माता भरमस्वरूप।
भरम भारजा हित सहित देख्यौ भरम अनूप ॥ ११८ ॥

भरम गोत भरमै बरन भरम कहावै जात।
भरम नाँव लै लै कहत जैसँ जाहि सुहात ॥ ११९ ॥

ब्रह्मचारी ह्वै भरम तैं भ्रम कीनौ गुरु मानि।
पढ़न पढ़ावनहार ह्वै ए दोऊ भ्रम जानि ॥ १२० ॥

भरम पढ्यौ पूरन भरम भरम धर्यौ अभिमान।
भरम और तैं आप कौं जानत अधिक प्रमान ॥ १२१ ॥

भरम गेह मैं आइ फिरि कीनौ भरम बिवाह।
भरम कहाई नाइका भरम कहाए नाह ॥ १२२ ॥

भरम थाप कुलदेव कौं भरम ग्रिहस्थाचार।
पूजा प्रतिमा भरम ए भरमै पूजनहार ॥ १२३ ॥

भरम दान प्रतिग्रह भरम भरमै तीरथ जात।
भरम स्नान उपवास ह्व भरम नेम नित प्रात ॥ १२४ ॥

भरम सुकृत दुष्कृत भरम भरम जानि बिस्वास।
भ्रम तैं चाहत फल भरम भ्रम तैं मानत बास ॥ १२५ ॥

भ्रम जाग्रत भरमै सुपन भरम सुषोपति आहि।
है तौ भ्रम यह एक हो त्रिविधि कहायौ काहि ॥ १२६ ॥

भरम आपकौं मानिकै भरम धरी यह चाह।
भरम प्रतिष्ठा जगत मैं सुनि भ्रमि धर्यौ उछाह ॥ १२७ ॥

---

[११७] अपनी (उदय), आपनी। तुमीरी (उदय), तुम्हारी।
[११८] सरूप (उदय), स्वरूप। ज्या (बोध), जा।
[१२२] गेह (पचक), ग्रेह। कहाये (उदय), कहा है।
[१२३] कुं (उदय), कौं।

भरम आस त्रिष्ना भरम भरम पुत्र परिवार।
सुजन सनेही हू भरम भरम परस्पर प्यार॥ १२८॥

भरम लाभ हानी भरम भरम सोक उछाह।
भ्रम उपाय भरमै जतन भरम करन निरबाह॥ १२९॥

भरम बाद उद्दिम भरम भरम हार अरु जीति।
भरम चलन बैठन भरम भरमै रीति कुरीति॥ १३०॥

भरम देस भरमै नगर भरम आहि सब गाँव।
भरम बसै अरु अनबसै भरमैं ठाँव कुठाँव॥ १३१॥

भरम ममत मन मैं धरै भरम निवासी लोग।
भरम अनंदित ह्वै रहै भरम मानि कै भोग॥ १३२॥

आपस मैं अनुराग भ्रम भरम परस्पर द्वेष।
एक एक कौं भरम तैं देखौ करत अदेख॥ १३३॥

भरम सुदेस बिदेस हू भरमै देसाचार।
परे भरम बस करत ए नाना बिधि ब्यौहार॥ १३४॥

भ्रम कुटंब परिवार सब भरम ग्रिहस्थाबास।
भरम उदासी भरम ए बानप्रस्थ सन्यास॥ १३५॥

पंच अगनि तापन भरम भ्रम ग्रीषमरिति माँहि।
भ्रम बरखा मैं बैठनो सहन मेह बिनु छाँह॥ १३६॥

भरम सीति रितु मैं निसा भ्रम पैठन जलबीच।
धूमपान भ्रम तैं कर आगि बारि कै नीच॥ १३७॥

---

[१२८] भर (जोध), भरम।
[१२९] हानौ (उदय, जोध), हानी। जतन (सर, उदय), जगत।
[१३०] उद्दिम (उदय, जोध), उद्यम।
[१३१] आदि (उदय), आहि।
[१३४] भर (जोध), भरम।
[१३५] भरम (उदय), भर्म (जोध), भ्रम।
[१३६] × (उदय), भरम।
[१३७] निसा (सर, उदय), भरम।

भरम करत परिदच्छिना भ्रम बैठन इक ठौर।
भ्रम तैं ठाढ़ौ नैमु गहि लहै न भ्रम के त्यौर ॥ १३८ ॥

भरम बाहु ऊरध करै भरम लैन व्रत मौन।
भरम द्रिष्टि ऊरध धरी भ्रम तैं बच्यौ सु कौन ॥ १३९ ॥

भरम त्याग अन कौ करत भरम करत पैपान।
भ्रम ही यह निस्चै कस्यौ इनतैं मुक्ति प्रमान ॥ १४० ॥

जम जो पाँच प्रकार कौ सोऊ भरम प्रतीति।
नैमु करन फिरि पंच बिधि यहौ भरम की रीति ॥ १४१ ॥

आसन प्रानायाम हू ए पुनि भरम प्रकार।
भरमै दिसि दिसि रोध भ्रम भरमै प्रत्याहार ॥ १४२ ॥

भरम धारना ध्यान भ्रम भरमै आहि समाधि।
जेते साधन ते सबै हैं केवल भ्रम न्याधि ॥ १४३ ॥

साधन अकरन करन फुनि ए सब भरम कलोल।
चित थिर राखन अचल करि भरमै डोल अडोल ॥ १४४ ॥

साधन करि फल चाहनौ भ्रम कीनौ प्रतिबाय।
भ्रम तैं फुनि प्रास्चित करे कर्मबिपाक दिखाय ॥ १४५ ॥

करत करम मन मैं धरैं स्वर्गादिक कौ भोग।
बिकल भए जानत नहीं असे भरम कैं रोग ॥ १४६ ॥

सकल पदारथ अनित ए कछू कहे हैं नित्त।
नित्यानित्त बिचार ए ताकौ भरम निमित्त ॥ १४७ ॥

---

[१३८] मरम (जोध), भरम।
[१४०] प्रनाम (जोध), प्रमान।
[१४१] का (उदय), की।
[१४२] याशन (जोध), आसन।
[१४५] अन (सर), यन (जोध), भ्रम। कीनै (उदय, जोध); कीनौ।
[१४७] नित्यानिन तू (जोध), नित्यानित्त। बिचार जो (उदय); बिचार ए।

सुखहू मानत भरम तैं भ्रम ही तैं दुख होइ।
परमानँद सुख एक है भ्रम कीने ये दोइ ॥ १४८ ॥

भ्रम कीनौ यह बिस्व है तामैं भरम बिलास।
पूछत भ्रम कहनौ भरम भरमै पूरन आस ॥ १४९ ॥

भरमै गुरु सिषि हू भरम भरमै बाकबिचार।
पूर्वपछ्छ सिद्धात हू भरम आहि निरधार ॥ १५० ॥

स्रवन भरम मननौ भरम निद्ध्यासन भ्रमरूप।
सब्दारथ हू भरम है लछना भरम अनूप ॥ १५१ ॥

भरम जीव ईस्वर भरम भरम करम द्वै एक।
भरममई ए सब गनौ जे हैं व्रत्ति अनेक ॥ १५२ ॥

नहि उपाधि ईस्वर बिषै अरु नाहिन बिछ्छेप।
भेदबुद्धि एकत्व मैं भरम करै आछेप ॥ १५३ ॥

जो उपाधि ईस्वर बिषैं तौ को सकै निवारि।
नहि उपाधि निरुपाधि मैं भरमै लेहु बिचारि ॥ १५४ ॥

ईस्वर तौ एकै कहैं (अरु) मानत जीव अनेक।
मुक्ति होइगो तब कहैं द्वै जब ह्वै हैं एक ॥ १५५ ॥

जब उपाधि दोऊ मिटैं मुक्ति कहैं तब होइ।
एक जीव के साथ ही ईस्वर डारयौ खोइ ॥ १५६ ॥

---

[१४९] पूछन (उदय), पूछत।
[१५०] वाकु (सर), वाकि (उदय); वाक।
[१५२] करम (उदय), करन। ब्रित (सर), व्रिचि (उदय); व्रत्ति (जोध), व्रत्त।
[१५३] मन माहि (उदय), नाहिन। बुधि (जोध); बुद्धि। भम (जोध), भरम।
[१५४] उपाधा (जोध), उपाधि।
[१५५] ह्वै (जोध), द्वै।
[१५६] कहइ (उदय), कहैं।

एते जीवन की भुगति इहिँ बिधि कैसैं होइ।
कासौं करियै एकता ईस्वर नाँहिन दोइ ॥ १५७ ॥

नहिं उपाधि ईस्वर बिषैं नाहिन ताहि बिछेप।
निरबिसेस ईस्वर सदा निरबिकार निरलेप ॥ १५८ ॥

निर्चित सुद्ध अरु गुनरहित केवल बोधप्रकास।
ताकौं कैसें होइगौ जीव संग सँग नास ॥ १५९ ॥

यहै नित्ति ईस्वर यहै यहै ब्रह्म निरधार।
व्यापि यहै बयापिक यहै यहै अनत अपार ॥ १६० ॥

कहत याहि सउपाधि जे तेई आहिं अग्यान।
परे अविद्याजाल मैं तिन यह करयौ प्रमान ॥ १६१ ॥

अप अपनै आरोप, तैं ईस्वर करयौ सदोष।
तिनकौ अपनी भूल तैं होनौ नाँहि सँतोष ॥ १६२ ॥

सगुन दोष ईस्वर बिषैं जे मानत अग्यान।
ते सदोष या बिस्व कौं साचैं करत प्रमान ॥ १६३ ॥

जोव भरम ईस्वर भरम भरम दुहूँ मैं दोष।
भरम मिलावन दोइ कौ भरम गयैं सतोष ॥ १६४ ॥

सुनन भरम कहनौ भरम भरम अरथ अरु बात।
मानन अनमानन सबै भरम साथ ये जात ॥ १६५ ॥

सकल बिस्व भासत हुतौ नाना बिधि बहु रीति।
सो सब अब एकै भयौ कित बह गई प्रतीति ॥ १६६ ॥

---

[१५७] ये (उदय); × (जोध), हैं।
[१६०] यहै अनत (उदय, जोध), है अनत।
[१६१] याहि (उदय), आहि। यह (उदय), ये।
[१६२] सदोष (उदय), सो दोस।
[१६३] जे (उदय); जो।
[१६४] भम (जोध) भरम।

देह भरम इद्री भरम मन बुधि भरमस्वरूप।
अहंकार अरु चित भरम भ्रम न्यारो मैं रूप ॥ १६७ ॥
सत चित अरु आनंद मय ग्यान रूप सु प्रकास।
नित्य एक सो एक है सब करि जानौ तास ॥ १६८ ॥
गुरु कहियै सो कौन है सिष कहियै को मानि।
अहं ब्रह्म घोखैं बिना परमानंद निरबान ॥ १६९ ॥
पूर्वपच्छ सिद्धात ए कैसैं कहियै आन।
अहं ब्रह्म घोखैं बिना परमानंद निरबान ॥ १७० ॥
को मानन अनमाननो चाहियै काहि प्रमान।
अहं ब्रह्म घोखैं बिना परमानंद निरबान ॥ १७१ ॥
कहा प्रतिछ अनुमान हू कहा सब्द उपमान।
अहं ब्रह्म घोखें बिना परमानंद निरबान ॥ १७२ ॥
वेय कहा ध्याता कहा करै कौन कौ ध्यान।
अहं ब्रह्म घोखैं बिना परमानंद निरबान ॥ १७३ ॥
कहा सत्वपति भूमिका सपति कहा बखान।
अहं ब्रह्म घोखैं बिना परमानंद निरबान ॥ १७४ ॥
कहा पदारथ भावनी तुरिया कहा सुजान।
अहं ब्रह्म घोखैं बिना परमानंद निरबान ॥ १७५ ॥
कहा ग्येय ग्याता कहा काकौं कहियै ग्यान।
अहं ब्रह्म घोखैं बिना परमानंद निरबान ॥ १७६ ॥

---

[१६७] बुद्धि (उदय), बुधि। सरूप (उदय), स्वरूप।
[१६८] एकहि (उदय), एक है।
[१६९] घोषे (उदय, जोध), घोखे। निरबान (उदय), निरधान।
[१७०] घोखे (पचक), घोषे।
[१७१] घोषे (उदय, जोध), घोखे।
[१७२] घोषै (जोध); घोखे।
[१७३] घोषे (उदय, जोध), घोखे।
[१७४] सत्वापति (उदय), सत्वपति। घोषे (उदय, जोध); घोखे।
[१७५] घोषे (उदय, जोध), घोखे।
[१७६] गेहा (उदय), गेह। घोषे (उदय, जोध), घोखे।

कहा भयौ न हुतौ कहा कहा बिसेस समान।
अह ब्रह्म घोखैँ बिना परमानँद निरबान॥ १७७॥
को कारज कीना कहा कारन कहा प्रमान।
अहं ब्रह्म घोखैँ बिना परमानँद निरबान॥ १७८॥
कासौँ को अपरोछ है काकौँ अनुभव ग्यान।
अहब्रह्म घोखैँ बिना परमानँद निरबान॥ १७९॥
अह सब्द उच्चार मैँ घोखैँ को सी रीति।
है तौ नाँही दूसरो पै कछु होत प्रतीति॥ १८०॥
कह्यौ जहाँ लौँ कहि सक्यौ रह्यौ सब्दसचार।
अनबोलैँ है यह कह्यौ नाहिन वारापार॥ १८१॥
मन मैँ मुनि सुख पाइकै कह्यौ तोहि साबास।
ज्यौँ कौ त्यौँ तोकौँ भयौ पूरन ग्यानप्रकास॥ १८२॥
मुक्त दसा तेरी सुनैँ भयौ परम सुख मोहि।
निस्चै मैँ जान्यौ अबै मिट्यो भरम भय तोहि॥ १८३॥
भयौ परस्पर या समै परम पवित्र बिचार।
सिद्धाँत सार य ग्रथ कौ धर्यौ नाव निरधार॥ १८४॥
सुनै सिद्धातसार कौँ जो नीकैँ मन लाइ।
मुक्त होन कौँ ताहि फिरि करनौ नाहि उपाइ॥ १८५॥
कीनौ जसवँतसिंघ यह आतमज्ञानबिचार।
कह्यौ कहाँ लौँ कहि सकौँ जाकौ नाँहिन पार॥ १८६॥

इति श्रीमहाराजाधिराज महाराजा श्री श्री श्री श्री श्री जसवत-सिंघजीकृतसिद्धातसारग्रथ समाप्त॥

———

[१७७] घोषे (उदय जोध), घोखे।
[१७८] कीनौ (उदय), कीना। घोषे (उदय, जोध १), घोखे।
[१७९] घोषे (उदय, जोध १), घोखे।
[१८२] प्र प्रकास (जोध); प्रकास।
[१८३] मै (उदय), भय।
[१८४] नीव (उदय); नाव।
[१८५] मुक्त हौन (उदय); मुक्ति होय।

छूटक दोहा

प्रथम प्रेम फुनि भक्ति है पैँम करत बैराग।
ता पाछैँ अष्टाग है प्रान उठत फिरि जाग ॥ १ ॥

पढ़ैँ ब्रह्म चीन्हैँ नहीँ ते जिस खेवनहार।
पार उतारत और कौँ आप वार के वार ॥ २ ॥

मिलै बिना कुसुभ तैँ नीर न मेट्यो जाइ।
तैसैँ ही मिलि ब्रह्म सौँ देख्यौ ब्रह्म बनाइ ॥ ३ ॥

आपहि पूछत आपकौँ अपनी ही फिरि बात।
अपनी इछया आप तैँ गुनहगार भयौ जात ॥ ४ ॥

कहै कहा काकी कहै कहनहार है कौन।
तातैँ सब तजि कै गहौ महासुखी है मौन ॥ ५ ॥

[सोरठा]जगत जितै मैदान मुक्त होन की लालसा।
बाँध्यौ कहि अग्यान छूटै बाँध्यौ होइ जौ ॥ ६ ॥

ब्रह्म जगत अँगैँ लखत जे नर ग्यानी होत।
ताप अगनि, न्यारे नहीँ ज्यौं नग नग की जोत ॥ ७ ॥

कहौं कहा प्रभु की कथा मो पैँ कही न जाइ।
जिहि जैसौ निश्चै करयौ ताकौ ताही भाइ ॥ ८ ॥

कागद पर ज्यौँ लेखनी चलैँ लीक परि जात।
ऐसैँ ही ब्रह्म एक तौँ द्वैत होत कहैँ बात ॥ ९ ॥

जौ लौँ हैँ हरि भावते तौ लौँ हेत न छीन।
हरि सौँ मिलि हरि ही भयौ कहन सुनन भयौ लीन ॥ १० ॥

नीर भए तैँ सिंधु को पारावार लखात।
ब्रह्म भएँ हूँ ब्रह्म कौ पार न पायौ जात ॥ ११ ॥

[सोरठा]लोकनि कैँ मत मैँ जु मो मत मैँ तौ मैँ नहीँ।
मो पर झूठी मैँ जु कैसैँ कै ठहरति कहौ ॥ १२ ॥

जामैँ है गुन एक हू सो कहियै गुनवत।
गुनी कहावै कौन विधि जामैँ गुन बिनु अत ॥ १३ ॥

लह्यो रूप अपनौ यहै ईस्वर अनुग्रह जानि।
पिछले जन्मनि कौ तबै चढयौ थकैलो आनि॥ १४॥

को ईस्वर को हौ जगत गई जु ही पहिचानि।
पिछले जन्मनि कौ जबै चढयौ थकैलो आनि॥ १५॥

एक समुझि कै एक है रहै अचलपनु ठानि।
पिछले जन्मनि कौ जबै चढ्यौ थकैलो आनि॥ १६॥

कहन सुनन देखन चलन सही चारि ए हानि।
पिछले जन्मनि कौ जबै चढ्यौ थकैलो आनि॥ १७॥

पोट डार दी सीस तैं बैठे पाइनि भानि।
पिछले जन्मनि कौ जबै चढ्यौ थकैलो आनि॥ १८॥

कुवति नैको ना रही मैं कहिबै की आनि।
पिछले जन्मनि कौ जबै चढ्यौ, थकैलो आनि॥ १९॥

रहै अचल ह्वै आपु मैं गई चलन की बानि।
पिछले जन्मनि कौ जबै चढ्यौ थकैलो आनि॥ २०॥

ग्यानी ग्यान सरूप है व्यापि गयौ सब माँहि।
कहा भयौ जौ या हियौ लहत अग्यानी नाँहि॥ २१॥

अपने कीयै होत जौ तौ घटि बढि कौ फेर।
ईस्वर अनुग्रह तैं बढ्यौ सो घटिहै किहि बेर॥ २२॥

मैं स्वरूपा जानैं बिना कहत न आवै लाज।
बकरी ज्यौं मैं मैं करै सरै न एकौ काज॥ २३॥

साधिन के जो साध नहि सु बदन मैं न अमाइ।
बिना अनुग्रह ताहि कहि क्यौं करि जान्यौ जाइ॥ २४॥

बिना करम तैं होत जौ सोई कारन देह।
सञ्चित पिछलै करम जौ तन सूछम सौं एह॥ २५॥

थूल सरीर जु देखियै ताहि कहै प्रारब्ध।
आनि करम क्रियमाण है दोऊ सौं सबध॥ २६॥

मन इन्द्री के बीच मैं होत आवरन जानि।
ताही तैं बह लेत है झूठै कौं सत मानि॥ २७॥

रस वै ही ए जानि तूँ नौ रस बचनबिलास।
परमारथ रस एक है ता आगैं सब हास॥ २८॥

[कुंडली]

फिबिक अभागिनि कल सरी जागि रही बौराइ।
जैं पिउ चाहो आपनैं सूतौ लई जगाइ।
सूतो लई जगाइ जिन्हैं मन उद्दिम नाँही।
रूठै जानि उपाइ भई निर्बल मन माँही।
जतन तज्यौ जिन जानि तेइ पीतम मन भाईं।
ते लोनी मन मानि और कबहूं मन नाईं॥ २९॥

[सोरठा]

साँची मैं के साथ झूठी मैं जौ लग रही।
वाहि किये अपहाथ याकौ डारै सिद्ध है॥ ३०॥
तातैं कबहूँ दूसरौ उपज्यौ कह्यौ न जाई।
तापर कहि करतापनौ कैसैं कै ठहराइ॥ ३१॥
सत प्रकास अरु चेतना ग्यांनप्रियता मानि।
इच्छा अरु सामर्थ्यता ए सब निरगुन जानि॥ ३२॥
महा प्रबल सामर्थ्यता उपजै प्रक्रित बिहार।
तातें उपजै जानि तूं त्रिगुन बिस्व ससार॥ ३३॥
तीन गुननि सौं जानि गुन तातैं सगुन स्वरूप।
त्रिगुन परे जे जे कहैं ते सब निगुन अरूप॥ ३४॥
वहै सगुन निरगुन वहै वहै रूप जब ग्यानि।
वाही मैं सब रूप ए वहै एक करि जानि॥ ३५॥
प्रतछ साँच सब कै मतैं देखत दिष्ट उदोत।
यह निस्चै काननि करयौ जु दिख्यौ झूठौ होत॥ ३६।

— —

भगवद्गीता टीका भाषा

(१)

धृतराष्ट्र उवाच—धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सव ।
मामका पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

टीका—धर्म कौ छेत्र ऐसौ जो कुरुछेत्र ता विषै समवेत एकत्र भए ऐसे जे मेरे अरु पाडु के पुत्र कैसे हैं जुद्ध की इच्छा धरत हैं हे संजय ते कहा करत भए ।

संजय उवाच—दृष्ट्वा तु पाण्डवानीक व्यूढ दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

टीका—दुर्योधन पाडवौं कौ सैन्य देखि द्रोणाचारज पास जाइ अरु बचन बोल्यौ ।

पश्यैता पाडुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढा द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

टीका—हे आचाय पाडु पुत्रौं की बड़ी जु सैन्या ताकौं देखौ । कैसी है—तुम्हारौ सिष्य जो द्रुपद को पुत्र तिन रची है ।

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमायुधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥

टीका—या सेना विषैं बडे धनुरधर सूर संग्राम मैं भीम अर्जुन सारीषे ऐसे ए हैं सात्वकी जादौ बिराट द्रुपद ।

धृष्टकेतुश्चेकितान काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुतिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गव ॥ ५ ॥

टीका—धृष्टकेतु चेकितान कासीराज पुरजित् कुति भोज शैव्य ।

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

टीका—युधामन्यु उत्तमौजा सौभद्र द्रौपदेय ए सब महारथ हैं ।

अस्माक तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य सज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥

टीका—अब अपनी सेना विषै जे विशिष्ट हैं तिनकौं सुनौ मेरे सैन्य के सुभट हैं तिनकौ नाँव कहौं।

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सोमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥

टीका—तुम भीष्म कर्ण कृपाचार्य अस्वत्थामा विकर्ण सोमदत्ति।

अन्ये च बहव शूरा मदर्थे त्यक्तजीविता।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदा ॥ ९ ॥

टीका—औरहूँ ऐसे अनेक सूर हैं कैसे हैं मेरे अर्थ तज्यौ है जीवित जिन अरु नाना सस्त्रधारी हैं सबहूँ जुद्ध मैं कुसल हैं।

अपर्याप्त तदस्माक बल भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्त त्विदमेतेषा बल भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

टीका—अरु हमारौ सैन्य भीष्म नें राख्यौ है पै तथापि व्याकुल है थिरचित्त नाँहि अरु पाडवन कौ सैन्य भीम ने राख्यौ है पै धीरजवान हैं थिर हैं।

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिता।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवत सर्व एव हि ॥ ११ ॥

टीका—अब सब कोऊ अपनैं अपनैं ठिकानैं सौं सावधान रहौ अरु भीष्म बिषैं दृष्टि राखौ।

संजय उवाच—तस्य सजनयन् हर्ष कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनाद विनद्योच्चै शख दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥

टीका—दुरजोधन कौं हर्ष उपजाइ भीष्मपितामह सिंहनाद करि सखधुन कीयौ।

ततः शखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखा।
सहसैवाभ्यहन्यत स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

टीका—तब भाँति भाँति के बाजित्र ठौर ठौर तैं बाजे सो सब्द उग्र भयौ।

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ ।
माधव. पाण्डवश्चैव दिव्यौ शखौ प्रदध्मतु. ॥ १४ ॥

टीका—ता पाछै स्वेत अस्वजुक्त ऐसौ जु रथ ता बिषै बैठे ऐसै श्रीकृष्ण अरजुन दिव्य सख धुन कीयौ ।

पाञ्चजन्य हृषीकेशो देवदत्त धनजय ।
पौंड्र दध्मौ महाशख भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥

टीका—हृषीकेस पाचजन्य नाम सख धुन कीयौ अरजुन देवदत्त नाम सख धुन कीयौ भीमसेन पौंड्र नाम संख कौ धुन कीयौ ।

अनतविजय राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिर ।
नकुल सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

टीका—युधिष्ठिर नैं अनतबिजै नाम सख कौ धुन कीयौ नकुल अरु सहदेव नैं सुघोष अरु मणिपुष्पक नाम सख कौ धुन कीयौ ।

काश्यश्च परमेष्वास. शिखडी च महारथ ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्याकश्चापराजित. ॥ १७ ॥

टीका—तब कासिराज सिखडी धृष्टद्युमन बिराट सात्यकि ।

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वश पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शखान् दध्मु पृथक् पृथक् ॥ १८ ॥

टीका—द्रुपद द्रुपदी के पुत्र अभिमन्यु इन सबनि अपनैं अपनैं सख धुन कियै ।

स घोषो धार्तराष्ट्राणा हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवी चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

टीका—सो सब्द नैं कौरवन कौं हिरदै बिदारन कीयो अरु आकास अरु पृथिवी में प्रतिसब्द भयौ ।

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसपाते धनुरुद्यम्य पाण्डव. ॥ २० ॥

टीका—या उपरान कौरवों कौं उद्यत देखि जुद्ध प्रवृत्यौ देखि अरजुन गाडीव धनुष उठाइ ।

हृषीकेश तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
अर्जुन उवाच—सेनयो उभयोर्मध्ये रथ स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

टीका—श्रीकृष्ण सौं कह्यौ हे कृष्ण दोनौं सैना के बीचि मेरौ रथ ले जाइ ठाढौ करौ ।

यावदेतान्निरीक्ष्येह योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

टीका– जौं लौं ए जुद्ध करिबे कौं आए हैं तिनकौं देखौं अरु देखौं कि कौंन कौंन मुझसौं लडेंगे ।

योत्स्यमानानवेक्ष्येह य एतेत्र समागता ।
धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

टीका—दुरबुद्धि दुरजोधन के हित कौं जुद्ध करैंगे ऐसै कौंन कौंन हैं ।

सजय उवाच—एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेषेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषा च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥ २५ ॥

टीका—अर्जुन जब यौं कह्यौ तब कृष्ण नैं दौनू सेना के बीचि भीष्म द्रोण के सनमुख रथ ठाढो करि कह्यो हे अर्जुन कौरवौं कौं देखि ।

तत्रापश्यत् स्थितान्पार्थ. पितृनथ पितामहान् ।
आचार्यान् मातुलान् भ्रातृन् पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा ॥ २६ ॥

टीका—तब अरजुन देख्यौ पितर हैं। पितामह हैं। आचारज हैं। मामू हैं। भाई हैं। पुत्र हैं। पौत्र हैं।

श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान् समीक्ष्य स कौन्तेय सर्वान् बधूनवस्थितान् ॥ २७ ॥

टीका—ससुर हैं। सनेही हैं। इनकौं देखिके कह्यौ कि यह तौ सब मैरो ही कुटब है ।

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।

टीका—दुख कौं पाउत परम कृपाजुक्त यौं कह्यौ ।

अर्जुन उवाच—दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८ ॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥

टीका—हे कृष्ण जुद्ध करिबै कौं आइ ठाढौ ऐसौ जु कुटुंब तिनकौं देखि मेरै गात सिरात हैं। अरु कंठसोष होत है। कंप होत है। रोमांच होत है।

गांडीवं स्रंसते हस्तात् त्वक् चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥

टीका—गांडीव धनुष हाथ तैं गिरै है। त्वचा मैं दाह होत है। रथ परि रहि न सकौं हौं। मन मेरौ भ्रमै है।

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

टीका—निमित्त विपरीत देखौं हौं। संग्राम विषै स्वजन कौं मारि कछू भलाई न देखौं हौं।

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ ३२ ॥

टीका—ऐसौ बिजैहूं न चाहत हौं। राजसुख भी न चाहत हौं। हमकौं राज सौं कहा है। भोग सौं कहा है। अरु जीवित सूं कहा है।

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥

टीका—जिनकै काज राजभोग अरु सुख चाहियै ते तौ प्रान धन तजि जुध करिबै कौं ठाढ़े हैं।

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबंधिनस्तथा ॥ ३४ ॥
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किन्नु महीकृते ॥ ३५ ॥

टीका—आचारज पितर पुत्र पितामह मातुल सुसरा पौत्र साला। संबंधी ते जो मोकौं मारै तउ मोपैं ऐ मारे नाहि जात हैं। जो त्रैलोक कौ राज होइ पृथ्वी कौ राज तौ कहा है।

निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्न का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिन. ॥ ३६ ॥
तस्मान्नार्हा वय हतु धार्त्तराष्ट्रान् स्वबाधवान्।
स्वजन हि कथ हत्वा सुखिन स्याम माधव ॥ ३७ ॥

टीका—हे कृष्ण इन कौरवन कौं मारैं हमकों कौन सुख होइगौ पाप ही होहिगैं। यातें हम इनकों मारिबै कौं जोग नांही।

यद्यप्येते न पश्यति लोभोपहतचेतस ।
कुलक्षयकृत दोष मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥
कथ न ज्ञेयमस्माभि पापादस्मान्निवर्त्तितुम्।
कुलक्षयकृत दोष प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

टीका—क्यौं जु ए लोभ करि हमकौं स्वजन नहि देखे हैं अरु कुलक्षय कियें कौ मित्रद्रोह कियै कौ पाप नांहि जानत हैं पे हे कृष्ण हम तौ कुलक्षय किये कौ पाप जानैं हैं।

कुलक्षये प्रणश्यति कुलधर्माः सनातना ।
धर्मे नष्टे कुल कृत्स्नमधर्मोभिभवत्युत ॥ ४० ॥

टीका—कुलछय कियें कुलधर्म कौ नास होइ। धर्मनास मैं अधर्म पराभक्र कर।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यंति कुलस्त्रिय. ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसकर ॥ ४१ ॥

टीका—अधर्म पराभव तें कुलस्त्री असती होहि कुलस्त्री असती भयें बरनसकर होइ।

सकरो नरकायैव कुलघ्नाना कुलस्य च।
पतति पितरो ह्येषा लुप्तपिण्डोदकक्रिया ॥ ४२ ॥

टीका—बरनसकर के कर्मन तें कुलछयकर्ता कौं अरु कुल कौं नरक होइ अरु उनकै पितर हैं ते पिण्ड पिंड अरु उदक क्रिया करि हीन नरक बिषैं पडे हैं।

दोपरेतैः कुलघ्नाना वर्णसकरकारकै ।
उत्साद्यते जातिधर्मा कुलधर्माश्च शाश्वता ॥ ४३ ॥

टीका—कुलछयकरता कै दोष तें जातिधर्म अरु कुलधर्महूं जाइ।

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

टीका—अरु जिनकौ कुलधर्म गयौ तिनकौं निस्चै नरकवास है ।

अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यता ॥ ४५ ॥

टीका—अहो हम जानिबूझि बड़ो पाप करिबै कौं भयैं हैं जु राजसुख के लोभ
तथौ स्वजन कौं मारन कौं उद्दित भए हैं।

यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणय ।
धार्त्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

टीका—तातें मैं जुद्ध कौ उपाय छोड्यौ अरु और जुद्धहूँ छोड्यो अरु ऐ
मौंपौं एसे मारे तऊ भले हैं।

संजय उवाच—एवमुक्त्वार्जुन संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानस. ॥ ४७ ॥

टीका—अर्जुन ऐसें कहि धनुष बाण श्रीकृष्ण के आगे छाँडि बिरक्त होइ
रथ पाछो जाय बैठो ।

इति श्रीभगवद्गीतायां प्रथमोध्याय. ।

(२)

संजय उवाच—तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदंतमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदन. ॥ १ ॥

टीका—ऐसे कृपाजुक्त अरु आँसू भरे ब्याकुल नेत्र जाकै बिषाद कौं पायौ
ऐसै अर्जुन प्रति श्रीकृष्ण बोले ।

श्रीभगवानुवाच—कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

टीका—हे अर्जुन यह मोह तौकौं कहाँ तें आइ लाग्यौ जा समैं न चाहियै
ता समैं आयौ यह नीच पुरुष होइ तिनकौं आवै ।

क्लैब्य मा स्म गम पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्र हृदयदौर्बल्य त्यक्त्वोत्तिष्ठ परतप ॥ ३ ॥

टीका—ऐसी अधीरज बात या समैं तोकौं न चाहियै ऐसी ओछी बात छोड़ि उठि कार्ज करि ।

अर्जुन उवाच--कथ भीष्नमह सख्ये द्रोण च मधुसूदन ।
इषुभि· प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

टीका—हे कृष्ण तुम साँच कहौ हौ पै भीष्म अरु द्रोण पर पुष्प डारै चाहियै तिन पर बाण क्यौंकर डारौं ।

गुरूनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तु भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामास्तु गुरूनिहैव भुजीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

टीका—गुरुन कौं बिना मारै भिच्छा करि कालछेप करीयैं तोउ नीके हैं गुरुन कौं मारिकै जे सुख भोगबै ते सुख रुधिर सौं साने हैं ।

न चेतद्विद्म कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयु· ।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिता प्रमुखे धार्त्तराष्ट्रा ॥ ६ ॥

टीका—वह नही जानी जाइ है कि इनसौं जीतैं हम कौं भलाई है अथवा हारै भलाई है जिनकैं मारै अपनौं जीवनौ न भावे ते सनमुख सग्राम कौं खरे हैं ।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभाव पृच्छामि त्वा धर्मसमूढचेता: ।
यच्छ्रेय स्यान्निश्चित ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽह शाधि मा त्वा प्रपन्नम् ॥ ७ ॥

टीका--थोरे समुझनै सौं ब्याकुल हौं या तैं तुमकौं पूछौं हौं या मेरौ धर्म होइ सो मोकौं कहियै हौं सरन आयो हौं जामैं मेरो धर्म रहै सौ मोकौं कहियै ।

नहि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिंद्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्ध राज्य सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

टीका—तुम बिना मेरे या सोक कौंण मिटावै ऐसौ और कोई मोकौं नाँहि सूझत ।

संजय उवाच--एवमुक्त्वा हृषीकेश गुडाकेश परंतपः।
न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

टीका--अर्जुन कृष्ण सौं ऐसै कहि अरु कह्यो कि मैं जुद्ध न करौं यौं कहि चुप भयौ।

तमुवाच हृषीकेश प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषोदतमिद वचः ॥ १० ॥

टीका--तब श्री कृष्ण अर्जुन सौं मुसक्याइ कै कह्यौ।

श्रीभगवानुवाच--अशोच्यानन्वशोचस्त्व प्रज्ञावादाश्च भाषसे।
गतासूनगतासूश्च नानुशोचति पडिता ॥ ११ ॥

टीका--हे अर्जुन तूं जा बस्तु को सोच न कियौ चाहियै ता बस्तु कौ सोच करै है यह तूं फिरि फिरि अपनी ही बात ठहरावे है अनसमुझ्यौ हठ सौ करै है जे बिबेकी हैं ते मुवे अरु जीविते कौ सोक नांही करै हैं क्यौंकि मरनौ अरु जीवनो दोनूं मिथ्या हैं।

न त्वेवाह जातु नास न त्व नेमे जनाधिपा।
न चैव न भविष्याम सर्वे वयमत परम् ॥ १२ ॥

टीका—कदाचित हूं मैं न हुतौ। यौ नहीं तूं न हुतौ यौ नहीं ए राजा न हुतै यौ नहीं अरु आगेहूं न हौहिंगे।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमार यौवन जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

टीका—यौं हीं देही कौं जैसे देह मैं बाल अवस्था जोबन अवस्था बृद्ध अवस्था ए होतै हैं तैसे ही जुदे जुदे देह की प्रापति है धीर कौं या ठौर मोह नांही होत है।

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदु खदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तास्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥

टीका—ए इन्द्रिन के बिषै जु है तै सुख दुख करता है तोतै ए सहे चाहियै।

य हि न व्यथयत्येते पुरुष पुरुषर्षभ।
समदु खसुखं धीर सोमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

टीका—ए इन्द्रिन कै सुख दुख जाकों न ब्यापै है जाकौ ए सुख दुख समान हैं अरजुन सो पुरुष मोछ को अधिकारी है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

टीका—असत कौ भाव नाँही सत कौ अभाव नाही जे तत्वदरसी हैं तिन इन दुहूँन कौं ओर लौं देखे हैं ।

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिद ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

टीका—अर्जुन अबिनासी ताकौं जानि जो सर्बव्यापक है या अबिनासी कौं बिनास काहू तैं न होइ ।

अतवत इमे देहा नित्यस्योक्ता शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ १८ ॥

टीका—नित ऐसौ जु देही ताके ए देह अत धरे हैं वह तो अबिनासी है अप्रमेय है । हे अर्जुन तातैं जुद्ध करि ।

य एन वेत्ति हतार यश्चैन मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नाय हति न हन्यते ॥ १९ ॥

टीका— या देही कौं जो मार्यौ समुझै है अरु मारनहार समुझै है ते दोऊ भाँत न समुझै हैं न यह मारै है न यह मार्यो जाइ है ।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूय ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽय पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥

टीका—न यह कदाचित उपजे है न यह मरै है न यह उपज्यौ है न यह उपजैगौ यह अज है नित्य है सदा एक सौ है अनादि है सरीर कैं हन्यै हन्यौ न जाइ है ।

वेदाविनाशिन नित्य य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुष पार्थ क घातयति हति कम् ॥ २१ ॥

टीका—जो याको नित्य अज अबिनासी समुझै है सौ पुरुष कौन कौं मारै अरु कौन कौं मरवावै ।

वासासि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

टीका—जैसैं पुरुष जीर्ण वस्त्र छाँडि और वस्त्र गहै है तैसैं ही देही यह देह छाँडि और देह गहै है ।

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥

टीका—यह देही कौं सस्त्र न छेदै है अग्नि न दहै है याकौं जल न भेदै है वायु न सोखै है ।

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥

टीका—यह अच्छेद है अदाह्य है अभेद्य है असोष्य है नित्य है सर्वगत है स्थिर है अक्रिय है सनातन है ।

अव्यक्तोऽयमचिंत्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

टीका—अव्यक्त है अचिंत्य है अविकारी है तातैं या देही कौं ऐसे जानिकै तूं सोच कौं जोगि नाही ।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नानुशोचितुमर्हसि ॥२६॥

टीका—जो तूं उपजनौ अरु मरनौ हूं मानै तऊ सोक करवे योग्य नाँही ।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

टीका—क्यौं जु उपज्यौ है ताकौं मरनौ है अरु जो मरे है ताकौ उपजणौ है ही जो अर्थ मिटायौ न मिटै ताको सोक कहा ।

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥

टीका—इन भूतन कौ आदि अप्रगट है मध्य प्रगट है अंत अप्रगट है तहाँ

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येन वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥

टीका—तातैं या देही को मध्य अवस्था मैं कोऊ अचरज सौ देखै है कोऊ अचरज सौ कहै है कोऊ अचरज सौ सुनै है कोऊ सुनहु के न जाणे है।

देही नित्यमवध्योऽय देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्व शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

टीका—सबके देह मैं यह देही नित्य है अवध्य है तातें अर्जुन सब भूतन कौं सोच करनौ तौ जोग्य नाँही।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३१ ॥

टीका—छत्री कौं जुद्ध तैं और भलाई नाँही।

यदृच्छया चोपपन्न स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥

टीका—सहज ही आय बन्यौ स्वर्ग को उघारो द्वार ऐसौ जु जुद्ध सु याकौं सुकृती छत्री होहिं ते पावैं।

अथ चेत्त्वमिम धर्म्यं सग्राम न करिष्यसि।
तत स्वधर्मं कीर्ति च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

टीका—जो तूँ अपनौ धर्म जो सग्राम सो न करैगो तौ तेरो धर्म अरु कीर्ति जायगी अरु पाप होइगो।

अकीर्त्ति चापि भूतानि कथयिष्यति तेऽव्ययाम्।
संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥
भयाद्रणादुपरत मस्यते त्वा महारथाः।
येषा च त्व बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥

टीका—भूत हैं ते तेरी बड़ी अकीर्ति कहैंगे अरु तोकौं अकीर्ति है सो मरण हूँ ता अधिकी होइगी। तुमकौं सब लोक भय तैं फिरो जानैंगे जिनकैं मत तूँ धीर है ते तोकौं अधीर जानैंगे।

अवाच्यवादाश्च बहून् वदिष्यति तवाहिता ।
निंदतस्तव सामर्थ्यं ततो दु खतर नु किम् ॥ ३६ ॥

टीका—तेरे अहितू हैं ते तोकौं अयोग्य बचन कहैंगे तेरे सामर्थ्य कौं निंदैंगे यातैं अधिक दुख कहा है ।

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चय ॥ ३७ ॥

टीका—अर्जुन जो हन्यौ जावै है तौ स्वर्गलोक पावै है अरु जो जीते है तौ पृथ्वी भोगवे है ताते अर्जुन जुद्ध कौं निस्चै करि उठि ।

सुखदु खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

टीका—सुख दुख लाभ हानि जय पराजय समान करि जुद्ध कौं तत्पर हूवो ऐसै पाप न होइगौ ।

एषा तेऽभिहिता साख्ये बुद्धिर्योगे त्विमा शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबध प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

टीका—हे अर्जुन यह बुद्धि जु मैं तोसूं कही सु यह साख्य बिषै जानि साख्य कहै भली भांत कह्यौ है आत्मतत्व जा विषैं अब जोग बिषैं यह बुद्धि है सुनि तूं जा बुद्धि सजुक्त होइ कर्मबध छोड़ैगौ ।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

टीका—यह कर्मजोग जु मैं तोसौं कह्यो है ताके फल को नास नांही प्रत्यवाय नांही या धर्म को अलपहूं अस बड़े भय तैं राखै ।

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनदन ।
बहुशाखा ह्यनताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥

टीका—आत्मनिश्चै बुद्धि एक ही है अरु जिनकूं आत्मनिस्चै नांही तिनकी बुद्धि अनत है अरु बहुसाखाविस्तार है ।

यामिमा पुष्पिता वाच प्रवदत्यविपश्चितः ।
वेदवादरता पार्थ नान्यदस्तीति वादिन ॥ ४२ ॥

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम् ।
क्रियाविशेषबहुला भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्ताना तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धि समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥

टीका—हे अर्जुन जै अविवेकी हैं कर्मफल दिखाइ मीठी मीठी बात कहत हैं जामैं नाना प्रकार क्रिया बिसेष कहै हैं सब्दजाल करत हैं और कछु है ही नहीं यौं कहत हैं तिनकी बुद्धि समाधि बिषै नाँही ।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वंद्वो नित्यसत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ ४५ ॥

टीका—अर्जुन वेद त्रिगुणपर है त्रिगुणरहित होहु जाकै दूसरौ नाँही तेरे न कछू पावनो है न कछू पायौ राखनौ है आत्मस्वरूप होहु ।

यावानर्थ उदपाने सर्वत सम्प्लुतोदके ।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥

टीका--अर्जुन जितनौ कार्य एक ही महाजल सुं होइ तैसै ही सकल वेदार्थ एक ज्ञानी मैं है ।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

टीका—तेरो कर्म हीं बिषै अधिकार है फल बिषैं कबहूँ नाँही । तूँ कर्म कै फल कौ हेतु मत होहु अरु कर्म कौ अभाव हू मत करि ।

योगस्थ कुरु कर्माणि सग त्यक्त्वा धनजय ।
सिद्धयसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्व योग उच्यते ॥ ४८ ॥

टीका—अद्वैत द्रिष्टि सौं कर्म करि दूसरैं कौ सग छोड़िकै अरु सिधि अरु असिधि मैं समरूप होइकै अर्जुन एकपनो ही योग कहियैं है ।

दूरेण ह्यवर कर्म बुद्धियोगाद्धनजय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणा फलहेतव ॥ ४९ ॥

टीका—यह आत्मजोग तें सकल कर्मजाल दूरऊ रहै है । यह बुधि ही कै सरन जाहु । अर्जुन जै फल चाहत हैं ते सदा हीन हैं ।

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योग कर्मसु कौशलम् ॥ ५० ॥

टीका- जो बुद्धिजुक्त है सो भली बुरी करनी दोनूं छोड़ै है मैं जैसैं तों सौं जोग को अर्थ एकरूप करि कह्यौ तूं तैसौ होहु जोग जुक्त ह्वै सु करम की बड़ी कुसलता है ।

कर्मज बुद्धियुक्ता हि फल त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबधविनिर्मुक्ता पद गच्छन्त्यनामयम् ॥ ५१ ॥

टीका—अर्जुन मनीषी पडित कर्मजन्य फल कौ तजि बुधिजुक्त ह्वै तें कर्मबध सौं छूटे है निर्भय पद कों पावै हैं ।

यदा ते मोहकलिल बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गतासि निर्वेद श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥

टीका—जब अर्जुन तेरी बुद्धि मोहजाल के पार होइगो तब सुननौ अरु सुन्यौ दोनौ तोकौं न भावैगौ ।

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

टीका—नाना प्रकार फल सुनि मेरी बुधि जु फैली है सु जब समाधि बिषें थिर होइगी तब तूं जोग कौ पावैगौ ।

अर्जुन उवाच—स्थिरप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव ।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥ ५४ ॥

टीका—हे कृष्ण स्थितप्रग्य कौ कहा लछन जाकौ समाधिस्थ कहियै है वह कहा बोलै बैसैं चलैं ।

श्रीभगवानुवाच—प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्ट स्थितप्रज्ञास्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

टीका—जब सब मन की कामना कौं तजै अरु आपसों आपही बिषै सतुष्ट होइ तब स्थितप्रग्य कहियै ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

टीका—हे अर्जुन जाकौ मन दुख बिषैं उद्वेग न धरै है अरु जो सुख बिषैं इच्छा न धरै अरु जाकें राग भय अरु क्रोध ए गए हैं सो स्थितधी कहियै ।

य· सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनदति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

टीका—जो सब बसतन कैं बिषैं स्नेहरहित है जो सुभ पावै तऊ अरु जो असुभ पावै तऊ न हर्षै न द्वेष करै ताको प्रग्या स्थिर है।

यदा सहरते चाय कूर्मोंगानीव सर्वश. ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

टीका—जब यह कूर्म ज्यौं अपनै अग समेटै ताकी प्रग्या स्थिर है।

विषया विनिवर्तंते निराहारस्य देहिन ।
रसवर्ज रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९ ॥

टीका—अर्जुन निराहार जो पुरुस ताहू कै बिषैं तौ निबरतै हैं पै तृष्णा न निबरतै है तृष्णा परम पुरुषार्थ पायै बिरतै है।

यततो ह्यपि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चित ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरति प्रसभ मन ॥ ६० ॥

टीका—पुरुष जतन करै है विवेकी है तऊ इद्री जे हैं तै बलिष्ठ हैं मन कौं हरै हैं।

तानि सर्वाणि सयम्य युक्त आसीत मत्पर ।
वशे हि यस्येंद्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

टीका—तिन सब इद्रिन कौं सयम मैं ल्यागु जुक्त होइ आत्मपरायन होइ बैठै ऐसैं इद्री जाकैं बस हौहि ताकी प्रग्या स्थित है।

ध्यायतो विषयान्पुस सगस्तेषूपजायते ।
सगात् सजायते काम कामात्क्रोधोभिजायते ॥ ६२ ॥

टीका—अर्जुन जो पुरुष बिषै कौ चिंतन करै ताकौ बिषै कौ सग होइ अरु बिषै सग सौं काम होइ अरु काम सौं क्रोध होइ।

क्रोधाद्भवति समोह समोहात्स्मृतिविभ्रम· ।
स्मृतिभ्रशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

टीका—क्रोध सौं मोह उपजै अरु मोह सौं सास्त्र अरु गुरु कै वाक्यन कौं बिस्मरन होइ अरु जब बिस्मरन भयौ तब बुद्धि कौ नास भयौ अरु बुधिनास तैं आप ही नष्ट होइ।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिंद्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥

टीका—अर्जुन रागद्वेषनैं रहित अपनै बस ऐसैं जे इद्री तिन करिकै बिषै कौ गहि तौ अरु अतहकरन बस है जाकै ऐसौ जु पुरुष सो विश्राम कौं पावै।

प्रसादे सर्वदुःखाना हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धि पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

टीका—ऐसै जब विश्राम भयो प्रसन्नता भई तब सब दुख गए अर्जुन जाकौ चित्त प्रसन्न है ताकी बुधि सीघ्र ब्रह्मरूप होइ।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शातिरशातस्य कुत सुखम् ॥ ६६ ॥

टीका—जाकैं जोग नाँही ताकैं बुद्धि नाँही अरु जो जोगयुक्त नाँही ताकैं भावना नाही अरु जा भावनारहित है ताकैं साति नाँही अरु असात कौ सुख नाँही।

इद्रियाणा हि चरता यन्मनोऽनुविधयते।
तदस्य हरति प्रज्ञा वायुर्नावमिवाम्भसि ॥ ६७ ॥

टीका—अर्जुन ए इद्री अपनै अपनै बिषै पर जाइ हैं तिनकै साथ मन जाइ-है सो मन याकी प्रग्या कौं हरै है जैसे जल बिषैं वायु नाव कौं हरै।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वश.।
इद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

टीका—तातैं अर्जुन जिन इद्रिन कौं बिषैं तैं रहित किए है ताकी प्रज्ञा स्थित है।

या निशा सर्वभूताना तस्या जागर्ति सयमी।
यस्या जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने ॥ ६९ ॥

टीका—सकल प्राणी कौं जो निशा है यह सयमी ता बिषैं जागै है अरु जा बिषैं ए प्राणी जागै हैं ता मैं यह सयमी नाँही देखै है।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥

टीका—स्थिर है प्रतिष्ठा जाकी ऐसौ जो समुद्र ता विषैं ज्यौं सब जल प्रवेस करै हैं तैसें सकल कामना जा बिषैं लीन होहिं सो सांति कौ पावै कामी पावै न क्योंकि कामना किए ।

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शांतिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

टीका—जो सकल कामना कौं तजि निहकाम होइ निरमम होइ निरहंकार होइ सो सांति कौं पावै ।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामंतकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥

टीका—अर्जुन ए मैं तोसौं ब्राह्मी स्थिति कही जु याकौं पावै ताकौं मोह न होइ अंतकालहू बिषैं जो स्थित मैं होइ तौ निरबान ब्रह्म पावै ।

। इति श्रीभगवद्गीतायां द्वितीयोध्यायः ।

(३)

अर्जुन उवाच—ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥

टीका—हे कृष्ण जो कर्मन तैं तुम्हारे मत बुधि ऐसी बड़ी है तौ मोकौं ऐसै घोर कर्म विषैं कहि क्यो प्रेरत हौ ।

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥

टीका—और यह नाना अर्थ भासै ऐसै वाक्य कहि मेरी मति कौं मोह सौ उपजावत हौ तातैं मौसौं प्रकट करि कहौ जा करिकै मौकौं परम सुख होइ ।

श्रीभगवानुवाच—लोकेस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ ।
ज्ञानयोगेन साख्याना कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥

टीका—अर्जुन लोक बिषैं निष्ठा दोय भाँति की है पहिलै कही तामैं पहिलै साख्य कहतै साख्य सब्दं आत्म अनात्म विवेक कह्यौ अर्थात् तत्व पदार्थ को सोधन ताकौं जे समुझै हैं तिनकुँ ज्ञानजोग करिकै और या उपर जो जोगी है जोग कौं प्रवृत्ते है जोग कहै जीवात्मा परमात्मा की एकता तिनकौं कर्मजोग करिकै कर्मजोग कहै जीवात्मा परमात्मा कौ एक करणौ सोई कर्म तातैं कर्मजोग ।

न कर्मणामनारभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोश्नुते ।
न हि सन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥

टीका—अर्जुन कर्म के अनआरभै कछू पुरुष जौं कर्म कौ त्याग भयौ यौं नाँही और सन्यास ही कीए तैं सिधि पावै यौं हू नाँही ।

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवश. कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

टीका—अर्जुन कदाचित ही एको छिण कोई भी प्रानी कर्म कीयै बिनु ना रहै है सब कोई प्रानी प्रकृति करि जै गुण तिनसौं अबस कर्म करै है ।

कर्मेंद्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचार. स उच्यते ॥ ६ ॥

टीका—और जो पुरुष कर्मेंद्रिय कौ सयम करि मन सौं इद्रिन के बिषै को स्मरन करे है सो मूढात्मा है ताकौं मिथ्याचारी कहियै ।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेंद्रियै कर्मयोगमसक्त. स विशिष्यते ॥ ७ ॥

टीका—और जो पुरुष मन कौ सयम करि अरु कर्मेंद्रिय सौं कर्मजोग आरभै है ताकौ असक्त कहियै सो श्रेष्ठ है ।

नियत कुरु कर्म त्व कर्म ज्यायो ह्यकर्मण ।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मण ॥ ८ ॥

टीका—तातैं अर्जुन निश्चै कर्म करि कर्म न करनैं तैं करनो श्रेष्ठ है और कर्मन कौं बिनु कियै तेरे सरीर कौ निरवाह कैसे होइ ।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोय कर्मबधन॰ ।
तदर्थं कर्म कौतेय मुक्तसग समाचर ॥ ९ ॥

टीका—अर्जुन जग्य के अर्थ जै पसुहिंसादिक कर्म कहे हैं ते कर्म जग्य बिना बर्जित हैं पै जग्य बिषैं बर्जित नांही तेसैं तूं मुक्त होइ कर्म करि ।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥

टीका—अर्जुन पहिलैं हूं प्रजापति प्रजा अरु जग्य साथ सृजिकै कह्यौ है कि तुम जग्य करिकै फैलौ ।

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयतु व ।
परस्पर भावयत. श्रेय परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

टीका—यह जग्य करिकै तुम्ह देवता की भावना करौ तब देवा तुमारी भावना करैंगे ऐसी परस्पर भावना तैं तुम परम सुख पाओगे ।

इष्टान् भागान् हि वो देवा दास्यत यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुक्ते स्तेन एव स· ॥१२॥

टीका—और कह्यो ए देव जग्यभावना तें तुमकौं इष्टभोग देंगे तब तुम फेरि हूं जग्य करौ क्योंकि कह्यौ है जो पुरुष देवतान कौ बिनु दीयैं भोग करैगो सो अपराधी है ।

यज्ञशिष्टाशिनः सतो मुच्यते सर्वकिल्बिषै ।
भुजते ते त्वघ पापा ये पचत्यात्मकारणात् ॥१३॥

टीका—जग्य करिकै भोजन करैं हैं जै सतपुरुष तै पापरहित हैं जे आत्मकरण भोजन करैं हैं तै पाप भोगता हैं ।

अन्नाद्भवति भूतानि पर्जन्यादन्नसभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

टीका—अर्जुन प्राणी अन्न तैं होत हैं अन्न मेह तें होत है अरु मेह जग्य तैं होत है अरु जग्य कर्म त हात है ।

कर्म ब्रह्मोद्भव विद्ध ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगत ब्रह्म सर्वं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

टीका—कर्म वेद तैं होत है अरु वेद अच्छर तैं होत है अरु अच्छर ब्रह्म है तातैं ब्रह्म सर्वगत है यज्ञ विषैं नित्य प्रतिष्ठित है ।

एव प्रवत्तित चक्र नानुवर्तयतीह य ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघ पार्थ स जीवति ॥१६॥

टीका—या भाँति यह चक्र फिरायौ है याकौं या भाँति जो न फिरावै ताकौ आयुर्बल पाप रूप है वह इन्द्रियाराम है मिथ्या जीवत हैं ॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानव ।
आत्मन्येव च सतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥१७॥

टीका—अरु जो अपनैं स्वरूप मैं रातौ है आत्मतृप्त है आत्मा ही विषैं सतुष्ट है ताकौं देवतान मत कछू कार्य कर्तव्य नाही ।

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रय: ॥१८॥

टीका—अरु और कार्य ही कीयै कछू अर्थ नाँही न कीयै हू कछू अर्थ नाँही क्यौंकि याकौं काहू सौं प्रयोजन नाँही ।

तस्मादसक्त' सतत कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुष ॥१९॥

टीका—अर्जुन तातैं असक्त होइ करिबे कौं जु कर्म है सो सदा करि पुरुष असक्त होइ जे कर्म करे ते कर्म कछू परम पद कै बाधक नाँही परमपद वाकौं है ही ।

कर्मणैव हि ससिद्धिमास्थिता जनकादय ।
लोकसग्रहमेवापि सपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥२०॥

टीका—अर्जुन जनकादिक हैं तैं कर्म करनै तैं सिधि कौं पाए सौं लोक मर्यादा कौं देखतो तूं कर्म करनै कौं जोग्य है ।

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन ।
स यत्प्रमाण कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥२१॥

टीका—अर्जुन श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरै और लोक सो सो करैं वह श्रेष्ठ जो प्रमाण करै सोई सब प्रमाण करै ।

न मे पार्थास्ति कर्तव्य त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्य वर्त्त एव च कर्मणि ॥२२॥

टीका—देखि अर्जुन मेरे कछू तीन हूँ लोक मैं कर्तव्य नाँही अरु मेरे कछू अनपायो नहीं अरु कछू पावनौ ही नाँही तऊ कर्म तौ करत हौं ।

यदि ह्यहं न वर्त्तेय जातु कर्मण्यतद्रित'।
मम वर्त्मानुवर्तते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥२३॥

टीका—अर्जुन जो हौं कर्म न आचरौं तौ अर्जुन ए सब मनुष्य मेरे ही मार्ग कौं अनुसरै।

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्या कर्म चेदहम्।
सकरस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमा प्रजाः ॥२४॥

टीका—तातैं ए लोक सब जो हौं कर्म न करौं तौ नष्ट होहिं तो सकर कौ करता मैं ही होहुं तब कहा यह प्रजा मैं ही नष्ट करौं।

सक्ताः कर्मण्यविद्वासो यथा कुर्वंति भारत।
कुर्याद्विद्वास्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसग्रहम् ॥२५॥

टीका—अर्जुन जैसे अविवेकी कर्म विषैं सक्त होइ कर्म करत हैं तैसे ही विवेकी कर्म विषैं असक्त होइ करैं क्योंकि लोक व्योहार राखनौ।

न बुद्धिभेद जनयेदज्ञाना कर्मसगिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥२६॥

टीका—जै कर्म संगी हैं सु उनपैं कर्म करवावै आपहूं मिलकै करैं।

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहकारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ॥२७॥

टीका—प्रकृति के गुन करिकै होत है जे कर्म और अहकार सौं मूढ भौ पुरुष सौ तिन कर्मन हू कौ कर्ता आपकौं मानैं है।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणागुणेषु वर्तंत इति मत्वा न सज्जते ॥२८॥

टीका—जो तत्ववेत्ता है गुन कर्म दोनूं जानैं है सो इन्द्री जे हैं तैं विषैन मैं बरतैं है यौं मानि आप असग रहै है।

प्रकृतेर्गुणसमूढाः सज्जते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मदान्कृत्स्नविन्न विचालयेत् ॥२९॥

टीका—अर्जुन प्रकृति गुन कौ जै नहि जानत तै गुन कर्म कौं अपनै कीए मानै है तै थोरो समुझै हैं जो ग्यानी हैं सो उनपैं कर्मभग न करावै।

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्याध्यात्मचेतसा ।
निराशीर्निममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वर ॥३०॥

टीका—अर्जुन तू मेरै बिषै सब कर्म कौं आरोप करि अध्यात्मचित्त सौं जुधि करि निराशी होइ निरमल होइ सताप छाडिकै ।

ये मे मतमिद नित्यमनुतिष्ठति मानवा ।
श्रद्धावतोऽनसूयतो मुच्यते तेऽपि कर्मभि. ॥३१॥

टीका—अर्जुन जो पुरुष मेरै या मत कौं सधाव्रत होहिं नित्य करत हैं तै निंदा पर नाही एसै कर्म सूं मुक्त होत हैं ।

ये त्वेतदभ्यसूयतो नानुतिष्ठति मे मतम् ।
सर्वज्ञानविमूढास्तान् विद्धि नष्टानचेतस ॥३२॥

टीका—और जे दोष द्रिष्टि लगाइ मेरे या मत पर नाँही चलत तै मूढ हैं अग्यान हैं अचेत हैं न कछु हैं ।

सदृश चेष्टते स्वस्या प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं याति भूतानि निग्रह कि करिष्यति ॥३३॥

टीका—अर्जुन ग्यानी हू अपनैं प्रकृति कै समान सब चेष्टा करै है क्यौं भूत जै हैं प्रकृति कै गुन पर जात हैं निग्रह कहा करैगौ प्रकृति कै गुन कहै प्रारबध ।

इद्रियस्येंद्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥३४॥

टीका—अर्जुन इद्रिय कै विषै मैं राग द्वेष है तै रागद्वेष अपनै न जानै अपनै जानें तैं इद्रिय के सत्रु हैं ।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह. ॥३५॥

टीका—अर्जुन अपनै धर्म नीकैं होइ न आवै तऊ भलै है परधर्म भलीभाँति हू कीयै भलै नाही अपनैं धर्म मैं मरै हू सुख है अरु परधर्म भयानक है ।

अर्जुन उवाच —अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥३६॥

टीका—हे कृष्ण या पुरुष कौं पाप कौन के प्रेरे होत हैं याके बिना चाहे हूँ होत है जैसे कहूँ नै बलातकार सौं प्रेरो होइ।

श्री भगवानुवाच काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भव ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥

टीका—अर्जुन ए कामक्रोधादिक जान रजोगुन तैं उतपन हैं ए ऐसे है कि सबकौ बिनास करैं हैं महापाप रूप हैं इनकौं बैरी समुझि देखि।

धूमेनाव्रियते बह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

टीका—अर्जुन धूम अग्नि कौं आवरैं है जैसै दरपन कौं मैल आवरै है जैसे चर्म सुं गर्भ आवर्यौ है तैसै ही इन कामक्रोधादिन यह ज्ञान आवर्यौ है।

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौंतेय दुष्पूरेणानलेन च ॥ ३९ ॥

टीका—ए सदा कै वैरी हैं ए क्यौंहूँ पूरन न हौहिं ऐसै अग्नि है।

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्टानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥

टीका—मन बुधि अरु इंद्री ए इनके अधिष्ठान हैं ए ज्ञान कौं आवरन करि इनही अधिष्ठान सौं या देही कौं मोह उपजावत हैं।

तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

टीका—तातै अर्जुन तूं इंद्रिन संयम करिकै इनकौ संग तज ए ज्ञानकै विरोधी हैं।

इंद्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥४२॥

टीका—अर्जुन विषै तैं इंद्रिन तैं मन पर है अरु मन तैं बुधि पर है अरु बुधि तैं पर आत्मा है।

एव बुद्धे पर बुद्ध्वा सस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रु महाबाहो कामरूप दुरासदम् ॥४३॥

टीका—अर्जुन ऐसे बुधि तैं पर है ताकौं जानिकै आपही सौं आप निश्चल होइ कामक्रोधादिकन कौं दूर करि ।

इति श्रीभगवद्गीतायां तृतीयोऽध्याय ॥

(४)

श्रीभगवानुवाच—इम विवस्वते योग प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

टीका—यह जोग मैं पहिलैं सूर्य सौं कह्यौ सूर्य मनु सौं कह्यौ मनु इक्ष्वाकु सौं कह्यौ ।

एव परपराप्राप्तमिम राजर्षयो विदु' ।
स कालेनेह महता योगो नष्ट परतप ॥ २ ॥

टीका—ऐसैं ही परस्पर और हूँ राजर्षिन पायो सो यह जोग बोहत काल बीच गयौ तातैं अप्रसिद्ध भयौ ।

स एवाय मया तेद्य योग' प्रोक्त' पुरातनः ।
भक्तोसि मे सखा चेति रहस्य ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

टीका—अब वहै पुरातन जोग मैं तोसों कह्यौ तूं भक्त है, मित्र है तातैं यह बड़ो रहस्य कह्यौ ।

अर्जुन उवाच—अपर भवतो जन्म पर जन्म विवस्वत ।
कथमेतद्विजानीया त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

टीका—सूर्य पहिलैं है तुम्हारौ जन्म उरे है मैं कैसैं जानाँ कि तुम सूर्य सौं कह्यौ ।

श्रीभगवानुवाच—बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यह वेद सर्वाणि न त्व वेत्थ परतप ॥ ५ ॥

टीका—अर्जुन जनम मेरै बोहत भए ऐसै तेरै ही बोहत जनम भए तै सब हूँ जानौ हौं तूं नहीं जानत ।

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सभवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

टीका—और जद्यपि मैं अज हौं अविनासी हौं सकल भूतन कौं ईस्वर हौं तऊ अपनी प्रकृति कौ अधिष्ठान गहि अपनी माया ही सौं उपज्यौ हौं ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

टीका—अर्जुन जब धर्म की छीनता होत है अरु अधर्म की वृधि होत है तब आपकौं प्रगट करौ हौं ।

परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे ॥ ८ ॥

टीका—जै साधु हैं सज्जन हैं तिनकी रच्छा के अर्थ अरु जै दुरात्मा हैं पापी हैं तिनकै बिनास कै अर्थ अरु धर्म के स्थापन कै अर्थ जुग जुग बिषैं प्रगट होत हौं ।

जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नैति मामैति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥

टीका—अर्जुन ऐसै मेरो जन्म दिव्य है ताकौं जा तत्व तैं जानै सो पुरुष देह कौं तजि फेरि जन्म न पावै मौ कौ पावै ।

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिता. ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागता ॥१०॥

टीका—अर्जुन बोहत पुरुष गए हैं राग भय क्रोध जिनकै मोकौं आस्रए हैं मुझमैं हैं तै ग्यान तप सौं पवित्र हैं मौसौं उनको नित्य प्रति जानि ।

ये यथा मा प्रपद्यत तास्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तंते मनुष्या पार्थ सर्वश ॥११॥

टीका—अर्जुन जो जैसैं मौकौं जाने है ताकौं तैसै ही हौं अरु सब मनुष्य मेरै ही मार्ग मैं हैं ।

काङ्क्षन्त कर्मणा सिद्धिं यजत इह देवता ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥१२॥

टीका—कर्म की सिधि कौं चाहत है देवतान कौं भजै है और लौकिक कर्म की सिधि सीघ्र होत है ।

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ॥१३॥

टीका—ए च्यारौ बरन मैं सृजे हैं गुन कर्म के बिभाग सौं ताकौ करता मो कौं जानि, अरु मैं अकर्ता हौं अबिनासी हौं ।

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥१४॥

टीका—मो कौं कर्म लिपत नांही अरु न मेरे कर्मफल इच्छा है अर्जुन ऐसै जो मौकों जानैं ताकौ कर्मबंध मिटै ।

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥१५॥

टीका—पहिले हूँ जै मुमुक्षु भए तिन ऐसैं जानि कर्म काए तातैं यह कर्म तूँ हूँ करि यह कर्म हूँ पुरातन है अरु पुरातन पुरुष करत आए हैं ।

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः ।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यद् ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥१६॥

टीका—कर्म कहा अरु अकर्म कहा या कहौं जाकै जानैं तूँ असुद्ध तैं छूटैगौ ।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥१७॥

टीका—अर्जुन कर्म कौ तत्व जाननौ अरु विकर्म को तत्व जाननौ अरु अकर्म कौ तत्व जाननौ या भाँति कर्म की गति गहन है ।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥१८॥

टीका—तातैं सुनु कर्म कौं जौ अकर्म देखै अरु अकर्म कौं जो कर्म देखै मनुष्यन बिषैं वहै बुधिमान है वहै जुक्त है वहै अलिपत कर्म कौ करता है ।

यस्य सर्वे समारभा कामसकल्पवर्जिता ।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पडित बुधाः ॥१९॥

टीका—जाकै सकल आरभ कामनारहित है वह कैसौ है ग्यान अगनि तैं दगध भए हैं कर्म जाकै अर्जुन ए पडित ताकौ पडित कहत हैं।

त्यक्त्वा कर्मफलासग नित्यतृप्तो निराश्रय ।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोपि नैव किंचित्करोति स ॥२०॥

टीका—कर्म फल की इच्छा तजि नितत्रिपत होइ जो कर्म विषैं प्रवरतै हैं तऊ वह कछू नाँही करत ।

निराशी र्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रह ।
शारीर केवल कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम् ॥२१॥

टीका—निराशी होइ चित्त कौ सयम करि सकल कामना तजि केवल सरीर मात्र सौं कर्म करै तौ ताकौं कछु कर्मबध नाहीं।

यदृच्छालाभसतुष्टो द्वद्वातीतो विमत्सर. ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबद्ध्यते ॥२२॥

टीका—जो लाभ कौं सहज जान कैं सतुष्ट है जो द्वयी सौं जुदौ है मछररहित है सिधि अरु असिधि दोनूं मैं समान है तौ वह पुरुष कौं कीयै हूँ अनकीयै हूँ कछु बध नहीं।

गतसगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः।
यज्ञायाचरत कर्म समग्र प्रविलीयते ॥२३॥

टीका—जाकैं द्वैत कौ सग गयौ है जो मुक्त है जो ग्यानमय है अरु व्यौहार मैं लौकिक कर्म करै है ताकै सकल कर्म आत्माविषै लीन हैं।

ब्रह्मार्पण ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गतव्य ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥

टीका—जासौं अर्पन कीजिए सौ अरु जो हविष्य है सौ अरु जो अग्नि है सौ अरु जो होम कौ करता है सौ अरु पावनौ है सौ अरु जो कर्म समाधि है सौ ए सब तूँ ब्रह्म ही जानि।

दैवमेवापरे यज्ञ योगिन पर्य्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञ यज्ञेनैवोपजुह्वते ॥२५॥

टीका—अर्जुन केतेक पुरुष देवतान कै जग्य उपासै हैं अरु केते ब्रह्माग्नि बिषैं जग्य ही कौं होमै हैं।

श्रोत्रादीनिन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति।
शब्दादीन्विषयानन्य इंद्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥

टीका—और केतेक श्रवणादिक इंद्रिन कौं सयम रूप जो अग्नि ता विषैं होमै हैं। और केतेक सब्दादिक बिषैन को इंद्री रूप अग्नि बिषै होमै हैं।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

टीका—और केतेक सब इंद्रिन के कम को अरु प्रान कै कर्म कौं आत्म-सयम जोग रूप जो अग्नि ता बिषैं होमै हैं वह अग्नि ग्यान प्रकाशित है।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८ ॥

टीका—ऐसै केतेक द्रव्यजग्य हैं। तपोजग्य हैं। जोगजग्य हैं। स्वाध्यायजग्य हैं, ज्ञानजग्न हैं।

अपाने जुह्वति प्राण प्राणेऽपान तथापरे।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥

टीका—अरु केतेक अपान विषें प्राण कौं होमे हैं अरु केतेक प्राण बिषैं अपान को होमे हैं अरु केतेक प्रान अरु अपान की गति कौं रुधि प्राणायाम करते हैं।

अपरे नियताहारा प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

टीका—और केतेक आहार कौं नेम कर प्रान हीं बिषै प्रान कौं होमे हैं अर्जुन ए सब ही जग्यबिग्य हैं जग्य ही सौं निहपाप हैं।

यज्ञशिष्टामृतभुजो याति ब्रह्मसनातनम्।
नाय लोकोस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्य कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

टीका—जग्यसेष अम्रित के भोगता ह्वै सनातन ब्रह्म कौं पावै हैं अरु जो इन जग्य कौं नहि जानत ताकौं यह लोकहूँ नाही तौ परलोक कहाँ तैं।

एव बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान् सर्वानेव ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥

टीका—अर्जुन ऐसै बौहत भाँति के जग्य ब्रह्मा के मुख तैं सुनै हैं तिन सब जग्यन कौं तूँ कीयौ तैं होत हैं यौं जानि ऐसें जानै मुक्त होइगौ।

श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाद् ज्ञानयज्ञः परतप।
सर्वं कर्माखिल पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

टीका—देखि द्रव्यमय जग्य तैं ग्यानजग्य श्रेष्ठ है। सकल कर्म ग्यान मैं समास हैं।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यति ते ज्ञान ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिन ॥ ३४ ॥

टीका—ता ग्यान कौं बौहोत बिनै सौं फिरि फिरि पूछै सेवा कीयैं जे ग्यानी हैं तत्वदरसी हैं ते ज्ञान कौ उपदेस करैंगे यौ जानि।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेव यास्यसि पाडव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५ ॥

टीका—जाकै जाने फेर तूँ ऐसौ मोह न पावैगौ जा करिकै तूँ सकल भूतन कौ आप बिषैं देखैगो अथवा मौ बिषैं देखैगौ।

अपि चेदसि पापेभ्य' सर्वेभ्य पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिन सतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

टीका—जो तूँ सकल पाप कौ अधिष्ठान है तऊ ग्याननाव सौं सकल पाप कैं तरैगौ।

यथैधासि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥ ३७ ॥

टीका—जैसे देदीपमान अग्नि काष्टमात्र को भस्म करै तैसै ही यह ग्यानरूप अग्नि सकल कर्म कौं भस्म करै।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥३८॥

टीका—अर्जुन ग्यान सरीखो पवित्र और नांहा सो ग्यान जोगसिध पुरुष आपहीं केतेक काल सौं आपुहीं मैं पावै ।

श्रद्धावाल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेंद्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥३९॥

टीका—स्रधावान होइ सो ग्यान पावै जो ततपर होइ जाकै इंद्रीसंजम होइ अरु ग्यान पाइकै शीघ्र ही परम सांति कौं पावै ।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥

टीका—जो अज्ञ है स्रधा रहित है अरु संसै बोहात धरे है सो बिनास पावैगौ जाकै संसै है ताकौ इह नाँही परलोक नाँही ताकौ सुख काहे कौ ।

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्न संशयम् ।
आत्मवंतं न कर्माणि निबध्नंति धनंजय ॥४१॥

टीका—जोग विषै जै हैं कर्म अरु जिन जानतैं छिदे हैं संसै जाकै ऐसौ जु आत्मवंत ताकौं कर्म कछु बाधक नाहीं ।

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ।
छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥४२॥

टीका—तातैं अर्जुन अग्यान तैं उपज्यौ ऐसौ जु यह संसै ताकौं ग्यान खड्ग सौं छेदि अरु जोग गहि उठि ।

॥ इति श्रीभगवद्‌गीतायां चतुर्थोऽध्यायः ॥

(५)

अर्जुन उवाच—संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥

टीका—हे कृष्ण तुम मोकौं सांख्य हूँ कहत हौ कर्मजोग करि यौ हूँ कहत यौं इन दुहन विषैं जु निस्चै मेरै काम कौ होइ सौ मौकौं कहौ ।

श्रीभगवानुवाच—सन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

टीका—अर्जुन सन्यास अरु कर्मजोग ए दोनू मोक्षकारी हैं पै इन दुहून मैं कर्म कै सन्यास तैं कर्मजोग श्रेष्ठ है।

ज्ञेय. स नित्य सन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुख बन्धात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

टीका—अर्जुन ताकौं नित्य सन्यासी जानि जो न द्वेष करै न कछु चाहै द्वैतरहित होइ सोइ सुखेन बंध तैं छूटै।

साख्ययोगौ पृथग्बाला प्रवदंति न पडिता।
एकमप्यास्थित सम्यगुभयोर्विदते फलम् ॥ ४ ॥

टीका—और साख्य अरु जोग ए जुदे यैं अग्यानी कहै हैं पडित यौं न कहै है काहै तैं इन दुहून मैं भली भाँति एक कौं आश्रयें दुहून कों फल पावै।

यत्साख्यै प्राप्यते स्थान तद्योगैरपि गम्यते।
एक साख्य च योग च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥

टीका—सांख्य कै ग्यान सौं जो स्थान पावनौ है सौ जोग सौं गम्य है अरु समुझनो है सौ साख्य अरु जोग कौ एक समुझै है।

सन्यासस्तु महाबाहो दु खमाप्तुमयोगत।
योगयुक्ता मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

टीका—हे अर्जुन जोग बिना सन्यास सौं ब्रह्म पावनौ कठिन है अरु जु जोगयुक्त है सो साध्र ब्रह्म पावै है।

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥

टीका—और जोगजुक्त है सुध आत्मा है जितात्मा है जितेंद्री है सबकौ अतरजामी है सो करत है तऊ लिपत नाँही।

नैव किंचित्करोमी त युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्वसन् ॥ ८ ॥

टीका—जो जोगजुक्त है तत्त्ववित् है सो जद्यपि देखे है सुनै है परसै है गध गहै है खाइ है चलै है सोवै है स्वास लेवै हैं।

प्रलपन् विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ।
इंद्रियाणींद्रियार्थेषु वर्त्तंत इति धारयन् ॥ ९ ॥

टीका—बोलै है छोड़ै है ग्रहै है उनमेष करै है निमेष करै है पै न कछु करै है ए इंद्री अपनै अपनै बिषै मैं बरतै हैं ऐसैं यह जानै है ।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संग त्यक्त्वा करोति य ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०॥

टीका—कर्म कौं ब्रह्मबिषै जानि अरु इंद्रिन कौं संग तजि जो करै है सो लिपत नाँही होत जैसे पदमपत्र जल सौं लिपत नाँही ।

कायेन मनसा बुद्ध्या कैवलैरिंद्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वंति संग त्क्त्वात्मशुद्धये ॥११॥

टीका—जे जोगी है तै या मन सौं बुधि सौं केवल इंद्रिन सौं करम करत हैं पै संग कौं तजि कै आत्म सुद्धि कै अर्थ ।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्त कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥१२॥

टीका—जो जुक्त है कर्मफल कौं तजि अरु साति कौं पावै अरु जो अजुक्त है सो मन सौं करै क्योंकि फल चाहे है ताकौं बंधन है ।

सर्वकर्माणि मनसा सन्यस्यास्ते सुख वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन् न कारयन् ॥१३॥

टीका—सकल कर्म कौं मन सौं तजि यह जोगी जाकै सब बस है सुखी है सो यह नवद्वार पुर तामैं देही कहाइ न कछु करे है न कछु करावै है ।

न कर्तृत्व न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु ।
न कर्मफलसंयोग स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥

टीका—या देही तैं न कछु करतौ है न कछु कर्म है न कछु कर्मफल संयोग है यह सुभाव ही प्रवरतै है ।

नादत्ते कस्यचित्पाप न चैव सुकृत विभु ।
अज्ञानेनावृत ज्ञान तेन मुह्यंति जतवः ॥१५॥

टीका—यह न काहू कौ पाप लेत है न काहू कौ पुण्य लेत है अग्यान सौं ग्यान आवरयौ है तातैं सब जतु मोह पावे हैं।

ज्ञानेन तु तदज्ञान येषा नाशितमात्मन॰।
तेषामादित्यवद् ज्ञान प्रकाशयति तत्परम् ॥१६॥

टीका—जिनकौ वह अग्यान आत्मग्यान तैं मिट्यौ है तिनकौं वह ग्यान सूर्य ज्यौं प्रकास करैं है सो प्रकास ब्रह्म कौ है।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणा ।
गच्छत्यपुनरावृत्ति ज्ञाननिर्धूतकल्मषा॰ ॥१७॥

टीका—तद्रूप है बुधि जिनकी जै तदात्मा हैं ताही बिषैं है निष्ठा जिनकी ऐसै ब्रह्मपरायन हैं तिनकौं आवागमन नांही क्यौंकि ग्यान तैं गए हैं पाप जिनकै ऐसै हैं।

विद्याविनयसपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पडिताः समदर्शिन ॥१८॥

टीका—बिद्या बिनै सौं जुक्त ऐसै ब्राह्मण बिषैं गो बिषैं हस्ती बिषै स्वान बिषैं चडाल बिषैं जै पडित हैं तै समदरसी हैं।

इहैव तैर्जितः स्वर्गो येषा साम्ये स्थित मनः ।
निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥१९॥

टीका—अरु जिनकौ मन समता बिषैं है तिनकौं या लोक ही बिषैं स्वर्ग है अर्जुन ब्रह्म निरदोष है सम है तातै जै समता लीयै है तै ब्रह्ममय ही है।

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थित ॥२०॥

टीका—जो प्रिय वस्तु कौ पाइ हर्ष न करै अप्रिय वस्तु कौं पाइ सोक न करै जो स्थिर बुधि है ब्रह्म कौ जानै है सो ब्रह्म ही है,

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोग युक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥२१॥

टीका—जो विषैं मैं आसक्त नाँही अरु आत्मा विषैं सुख पावै है ताकौं ब्रह्मजोगजुक्त कहियै सो अछय सुख कौं पावै।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यंतवंत कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥२२॥

टीका—अर्जुन जै बिषै कै भोग हैं ते दुख ही के मूल हैं ते आदि अंत धरै हैं जो ग्यानी है सो उन बिषैं न रमैं है।

शक्नोतीहैव य सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भव वेग स युक्त स सुखी नर ॥२३॥

टीका—काम क्रोध तैं उतपन जो वेग ताकौं सहिबे कौं जो समर्थ है सोई जुक्त है, सोई सुखी है।

योऽतःसुखोऽतरारामस्तथातर्ज्योतिरेव य ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥

टीका—जो आत्मसुख सूँ सुखी है अपनै ही आराम मैं है अपनैं ही प्रकास तैं प्रकासित है वहै जोगी वहै ब्रह्म निरबाण कौ पावै।

लभते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषा ।
छिन्नद्वैधा यतात्मान. सर्वभूतहिते रताः ॥२५॥

टीका—अर्जुन ते निरबान ब्रह्म कौं पावै जै निहपाप है जिनकै द्विधा नाँही जिनकै आत्मा बिषै दृढ निसचै है जै सकल प्रानी कौं हित चाहत हैं।

कामक्रोधवियुक्ताना यतीना यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाण वर्तते विदितात्मनाम् ॥२६॥

टीका—जे काम क्रोध रहित हैं जिनके निसचै है ते ब्रह्म रूप ही हैं।

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्याश्चक्षुश्चैवांतरे भ्रुवो ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा न.साभ्यतरचारिणौ ॥२७॥

जितेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥२८॥

टीका—जिन बाह्य विषै बाहर किये हैं और नेत्र दोऊ भौंहन कौं बिषै किए हैं और पान अपान दोऊ नासिका मैं समान फिरायै है जिन इन्द्री मन बुधि जीते हैं जो मोक्षपरायन हैं जाके इच्छा भय अरु क्रोध गए हैं, सदा मुक्त ही हैं।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शांतिमृच्छति ॥२९॥

टीका—अर्जुन जग्य अरु तप तिनकौ भोगता अरु सब लोकन कौ ईस्वर अरु सकल प्रानी कौ हितू एसै मौकौं जानि सांति कौं पावै।

इति श्री भगवद्गीतायां पंचमोध्यायः।

(६)

श्रीभगवानुवाच—अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ १ ॥

टीका—अर्जुन जो कर्म के फल कौं न चाहै अरु कर्तव्य कर्म करै वहै सन्यासी जोगी होइगौ यौं नांही जो अग्नि अरु क्रिया कौं त्यागै।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥

टीका—अर्जुन जाकौं सन्यास कहत हैं ताही कौं जोग जानि, कोई ऐसौ नांही जु सकल्प बिनु तजें जोगी होइ।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

टीका—जाको जोग बिषै रुचि है ताकौ कारन कर्म है अरु जो जोगारूढ है ताकौं सांति कारन है।

यदा हि नेंद्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

टीका—जब विषै अरु कर्मन तें जुदो होइ सकल सकलप कौ त्याग करै तब जोगारूढ कहियै।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

टीका—यह आप ही सौं आपकौ उधार करै है अरु आपही सौं आपकौ नास करै है आपही आपकौ रिपु है सोई आपही आपकौ हितू है ।

बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥

टीका—जिन आपहीं तैं आप जान्यौ है अरु जिन आपतैं आप न जान्यौ है सो आप ही रिपु है ।

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥

टीका—जाकौ निश्चै पूरन है सु सांत है ताकौं सीत उष्ण सुख दुख मान अपमान बिषै समाधान है ।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ८ ॥

टीका—जो ज्ञान तैं त्रिप्त है कूटस्थ है जितेंद्री है ताकौं जुक्त कहियै समान है लोहो पाथर अरु कांचन जाकै सु जोगी ।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

टीका—जो हितू बिषैं मित्र बिषैं अरि बिषैं उदासीन बिषैं मध्यस्थ बिषैं दुरजन बिषैं बंधु बिषैं साधु बिषैं पापी बिषैं समबुधि है सो श्रेष्ठ है ।

जोगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥१०॥

टीका—जो जोग साधै सो एकांत बिषैं एकाकी होइ सुध चित्त होइ निरासी होइ अपरिग्रह होइ ।

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥

तत्रैकाग्रमनः कृत्वा यतचित्तेंद्रियक्रिय ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥

टीका—पवित्र स्थान के बिषैं प्रथम दर्भ ता पर मृगचर्म ता पर वस्त्र बोहत ऊचो नहीं बोहत नीचो नहीं ऐसौ थिर आसन डारि एकाग्रमन करि इद्री अरु चित्त थिर करि ता आसन पर बैठि अरु जोग साधना करे आत्मसुधि के अर्थ ।

सम काय शिरोग्रीव धारयन्नचल स्थिर. ।
सप्रेक्ष्य नासिकाग्र स्व दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥

टीका—सूधे है काया सिर ग्रीवा ऐसौ स्थिर होइ अपनी नासिका के अग्र बिषै द्रिष्ट राखि और दिसा न देखै ।

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मन सयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्पर. ॥१४॥

टीका—सात होइ निर्भय होइ ब्रह्मचरिज राखै मन कौं सजम करि मेरै बिषैं चित्त राखै युक्त होइ मौ बिषैं ततपर होइ ।

युञ्जन्नेव सदात्मान योगी नियतमानसः ।
शातिं निर्वाणपरमा मत्सस्थामधिगच्छति ॥१५॥

टीका—ऐसी भाँति जोग करै निसचै मन मैं करकै तौ परम निरबान साति मौ बिषै है ताकौं पावै ।

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥१६॥

टीका—जो बहुत आहार करै तापैं जोग न सधै अरु जो निराहार रहै ताहूँ पै न सधै अरु जो बोहत सोवै ताहूं पै न सधै अरु जो बहुत जागै ताहू पै न सधै ।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दु खहा ॥१७॥

टीका—जो पुरुष जथायोग्य आहार ब्यौहार करै कर्म कौ यथाजोग करै अरु सोवनो जागनो जाके जथाजोग है जोग ताको सफल होइ ।

यदा विनियत चित्तमात्मन्येवातिष्ठते ।
निस्पृह: सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

टीका—जब चित्त थिर होइ आत्मा ही बिषैं रहै अरु जो सकल कामना सौं रहित होइ तब जुक्त कहावै ।

यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मन: ॥१९॥

टीका—जिन चित्त जीत्यौ है अरु जोग साधना करै है सो जैसे निर्बात स्थान के बिषै जैसे दीपक ऐसे अडोल होइ ।

यत्रोपरमते चित्त निरुद्ध योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मान पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥

टीका—जोगसाधना सौं थिर कियौ ऐसौ जु चित्त सौं चित्त जहाँ लीन होइ अरु जहाँ आपहीं आपकौं देखि आप बिषैं सतुष्ट होइ ।

सुखमात्यतिक यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतींद्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवाय स्थितश्चलति तत्त्वत ॥२१॥

टीका—अरु जो इद्रीगम्य नाँही केवल निरुपाधि बुधि सौं जान्यौ जाइ है ऐसौ जु परम सुख जाकौ जहाँ पावै तहाँ तैं फिर चलिबौ है ही नाँही ।

य लब्ध्वा चापर लाभ मन्यते नाधिक तत ।
यस्मिन् स्थितो न दु खेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥

टीका—जाकै पाए औ दूसरो अधिक लाभ न मानै जा बिषै स्थित होइ कै महादुख हूँ सौं न डिगै ।

त विद्यादु खसयोगवियोग योगसज्ञितम् ।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥२३॥

टीका—ऐसौ जोग जामैं दुख सयोग नाँही ताकौं निसचै सौं निरुपाधि चित्त सौं साधै ।

सकल्पप्रभवान्कामास्त्यक्त्वा सर्वानशेषत ।
मनसैवेन्द्रियग्राम विनियम्य समतत ॥२४॥

टीका—सकलप तैं उपजै जै कामनानि कौं तजि अरु मन ही सौं इद्री वर्ग कौं जीत।

शनै शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसस्थ मन कृत्वा न किंचिदपि चितयेत् ॥२५॥

टीका—धीर्य करि गही ए ऐसी जु बुधि ता करिकैं धीरैं धीरैं उपरम कौं पावै अरु मन कौ आपहीं बिषैं लीन करि और कछू न बिचारैं।

यतो यतो निश्चरति मनश्चचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येववश नयेत् ॥२६॥

टीका—यह चचल जु मन सो जित जित चलै तित तित सौं रोक आत्मा ही बिषैं राखै।

प्रशातमनस ह्येन योगिना सुखमुत्तमम्।
उपैति शातरजस ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥

टीका—जब याकौ मन आत्मा मैं होइ तब यह निहपाप है निर्गुन है परमसुख कौं पावै ब्रह्मरूप होइ।

युञ्जन्नेव सदात्मान योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसस्पर्शमत्यत सुखमश्नुते ॥२८॥

टीका—ऐसी भाँति जो जोग साधे सो सुख सूँ ब्रह्मानुभव पावै।

सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन ॥२९॥

टीका—जोगसिद्ध पुरुष सब भूतन बिषैं आपकौं देखै अरु सब भूत कौं आप बिषैं देखै है सर्वत्र समदरसी है।

यो मा पश्यति सर्वत्र सर्व च मयि पश्यति।
तस्याह न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥३०॥

टीका—अरु जो मोकौं सर्व मैं देखै है अरु सबकों मो मैं देखै है ताकौं हौं अबिनासी हौं अरु वह मेरे अबिनासी है।

सर्वभूतस्थित यो मा भजत्येकत्वमास्थित।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥३१॥

टीका--जो सब मैं हौं ऐसौ जु मैं सु मोकौं एकता सौं भजै है सो सर्वथा ब्यौहार बिषैं बरतै है जऊ मौं बिषैं बरते है ।

आत्मौपम्येन सर्वत्र सम पश्यति योऽर्जुन ।
सुख वा यदि वा दुःख स योगी परमो मत ॥३२॥

टीका--जो अपनी हौं भाँति सब मैं समता सौं देखै है कहा सुख कहा दुख सो परम जोगी ।

अर्जुन उवाच--योऽय योगस्त्वया प्रोक्त. साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याह न पश्यामि चचलत्वात्स्थिति स्थिराम् ॥३३॥

टीका--हे कृष्ण जो जोग तुम्ह कह्यौ ताकी स्थिति न देखौ हौं क्योंकि मन स्थिर नाँही ।

चचल हि मन कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याह निग्रह मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥

टीका--हे कृष्ण मन अति चचल हैं बलिष्ठ है दृढ है इद्रिन कौं चचल करै है ताकौ निग्रह अति कठिन है जैसे वायु को निग्रह न होइ सकै ।

श्रीभगवानुवाच--असशय महाबाहो मनो दुर्निग्रह चलम् ।
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

टीका--अर्जुन निसचै ऐसौ ही मन चचल ताकौ निग्रह कठिन पैं अभ्यास सौं अरु बैराग्य सौं गह्यो जाइ है ।

असयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मति ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायत ॥३६॥

टीका--जो सयमी नाँही ताकौं जोग दुर्लभ है अरु जो सयमी है जतन करै है ताकौं उपाय तैं सुलभ है ।

अर्जुन उवाच--अयति श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानस ।
अप्राप्य योगससिद्धिं का गतिं कृष्ण गच्छति ॥३७॥

टीका--जो पुरुष सधाजुक्त होइ अरु जोगसाधन तैं सिधि कौं न पहुँच्यौ, बीच्चि बिघन भयौ तो जोगसिधि कौं न पावै यह कौन गति कौं पावै ।

कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

टीका—यह दोनौं तें गयौ तौ ओछै बादर ज्यौं नास तौ न पावै क्यौं जु ब्रह्ममार्ग बिषैं प्रतिष्ठा नाही पाई तातैं बिमूढ है ।

एतन्मे सशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषत ।
त्वदन्य. सशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥३९॥

टीका—हे कृष्ण यह मेरे ससै कौं छेदिबे कूँ तुम ही जोग्य हौ और कोई नाँही।

श्रीभगवानुवाच—पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥

टीका—अर्जुन या लोक बिषैं वाकौ नास कहौं नाँही न कल्याण कर्म कौ कर्ता कोई दुर्गति कौं पावै ।

प्राप्य पुण्यकृता लोकानुषित्वा शाश्वतीः समा॰ ।
शुचीना श्रीमता गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

टीका—अर्जुन वह पुरुष पुण्यलोक कौं पाइ बोहत काल उहाँ कौ भोग करि जै पवित्र हैं लक्ष्मोवत हैं वह जोगभ्रष्ट तिनकै बिषैं उपजै ।

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतर लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

टीका—अथवा जे जोगाभ्यासी हैं बुधिमत हैं तिनके कुल बिषैं उपजै पैं अर्जुन लोक बिषैं ऐसौ जागभ्रष्ट कौ जन्म दुर्लभ है ।

तत्र त बुद्धिसयोग लभते पूर्वदेहिकम् ।
यतते च ततो भूय ससिद्धौ कुरुनदन ॥४३॥

टीका—फिरि तहाँ उपजै उपरात वहै पूर्वजन्म कै बुधि सयोग कौं पावै तब फिरि जोगसिधि कौ जतन करै ।

पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः ।
जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥४४॥

टीका—जु याकै पूर्वाभ्यास है सो या पैं वहै कार्य करावै जद्यपि यह अबस है अरु यह जिग्यासु है असक्त है पैं पूर्वसाधन कै बल तैं सकल कर्मजाल कै पार पौहच्यौ है ।

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी सशुद्धकिल्विष ।
अनेकजन्मससिद्धस्ततो याति परा गतिम् ॥४५॥

टीका—सो यह जोगी निहपाप है जतन सौं सावै ऐसौ अनेक जन्म सौं सिध होइ परमगति कौं पावै ।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥४६॥

टीका—अर्जुन तपस्वी तैं जोगी अधिक अरु जिग्यासु तैं जोगी अधिक अरु कर्मठ तैं जोगी अधिक तातैं तूं हीं जोगसिद्ध होइ ।

योगिनामपि सर्वेषा मद्गतेनान्तरात्मना ।
श्रद्धावान् भजते यो मा स मे युक्ततमो मत ॥४७॥

टीका—अर्जुन सकल जोगिन कैं बिषैं वहै जोगी श्रेष्ठ है जो सधावत है अरु सकल ब्रह्मजानि के मौही कौं भजै है ।

। इति भगवद्गीताया षष्ठाध्यायः ।

(७)

श्रीभगवानुवाच—मय्यासक्तमना पार्थ योग युञ्जन्मदाश्रय ।
असशय समग्र मा यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥

टीका—अर्जुन मेरैं बिषैं आसक्त है मन जाकौ ऐसौ तूं मैरौ आसैं गहि जोग साधै ससैरहित समग्र कौं जा भाँति जानैगौ सो सुनि ।

ज्ञान तेऽह सविज्ञानमिद वक्ष्याम्यशेषतः ।
यद् ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यद् ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

टीका—मैं तोकौं ग्यान सच्छातकार रूप कहत हौं जाकैं जानैं और जानिवे कौं कछू न रहै ।

मनुष्याणा सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धाना कश्चिन्मा वेत्ति तत्त्वत ॥ ३ ॥

टीका—देखि अर्जुन मनुष्यन कै सहस्रन मैं कोइक ग्यान कै अर्थ जतन करत है अरु जै जतन करत हैं तिनहूँ मैं मौकौं तत्व तै जानै ऐसौ कोइक होइ ।

भूमिरापोनलोवायु ख मनो बुद्धिरेव च।
अहकार इतीय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥

टीका—मेरी प्रकृति आठ भाँति है भूमि जल तेज वायु आकास मन बुधि अहकार यह आठ भाँति।

अपरेयमितस्त्वन्या प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूता महाबाहो ययेद धार्यते जगत् ॥ ५ ॥

टीका—यह अपर है डरै है या तैं दूसरी प्रकृति जीव रूप है ताकौं जानि जिन यह जगत धरयौ है।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अह कृत्स्नस्य जगत प्रभव प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

टीका—ए सकल भूत यातें उपजै हैं ऐसैं समुझि अर्जुन सकल जगत कै उत्पत्ति स्थानक अरु प्रलयस्थानक मैं ही हौं।

मत्त परतर नान्यत् किंचिदस्ति धनजय।
मयि सर्वमिद प्रोत सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥

टीका—अर्जुन मौ तैं दूसरौ कछू नाँही जैसै सूत्र बिषै सब मणि पोए हैं तैसै यह सब मौ बिषै है देखि।

रसोहमप्सु कौंतेय प्रभास्मि शशिसूर्ययो।
प्रणव. सर्ववेदेषु शब्द खे पौरुष नृषु ॥ ८ ॥

टीका—जल बिषैं रस मैं ही हौं ऐसैं ससि अरु सूर्य बिषैं प्रभा मैं हौं सर्व वेद बिषैं प्रणव मैं हौं आकास बिषैं शब्द मैं हौं पुरुष मैं पुरुषार्थ मैं हौं।

पुण्यो गध. पृथिव्या च तेजश्चास्मि विभावसौ।
जीवन सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

टीका—पृथ्वी मैं गध हौं अग्नि बिषैं तेज मैं हौं सकल भूतन बिषैं जीवन मैं हौं तपस्वी बिषैं तप मैं हौं।

बीज मा सर्वभूताना विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥१०॥

टीका—अर्जुन सकल भूतन को सनातन बीज मौं कौं जानि बुधिमत की बुधि मैं हौं तेजस्वी कौ तेज मैं हौं।

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥११॥

टीका—बल कामना अरु राग बिना धर्म सौं अविरुध ऐसौ भूतन विषैं काम मैं हौं।

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

टीका—चित्त के भाव सात्विक है राजस है तामस हे तै मौ ते हैं हौं उनमैं नांहीं।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥

टीका—और ए तीन गुनमय भावान जगत मोह्यो है तातैं इन त्रिविध भावन तें परे ऐसौ मौकौं नहि जानत।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरंति ते ॥१४॥

टीका—और यह मेरी माया अपार है त्रिगुनमय है अर्जुन जे मेरे ही सरन आवैं ते या माया कौं तरें।

न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यंते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ १५॥

टीका—जे पापी हैं पुरुषन मैं अधम हैं मूढ हैं ते मेरे सरन नहीं आवत अरु माया ने हरयौ है ग्यान जिनकौ अर भाव कौं आश्रयौ है।

चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥

टीका—अर्जुन च्यार भाँत के पुरुष मौकौ भजत हैं एक दुखी एक जिग्यासु एक अर्थी एक ग्यानी।

तेषा ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमह स च मम प्रियः ॥१७॥

टीका—इन च्यारौ मैं ज्ञानी श्रेष्ठ है मौकौं ग्यानी प्रिय है हौं ग्यानी के प्रिय हौं ।

उदारा सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमा गतिम् ॥१८॥

टीका—ए सब अपनी अपनी ठौर उत्तम हैं अरु ग्यानी तो आत्म सरूपी है वाकैं मैं ही गति हौं मेरो ही रूप है ।

बहूना जन्मनामते ज्ञानवान्मा प्रपद्यते ।
वासुदेव सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ ॥१९॥

टीका—बोहत जन्म कै अत ग्यानी होइ मोकौं पावै यह सब ब्रह्म है ऐसै जानैं सौ महापुरुष दुर्लभ है ।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना· प्रपद्यतेऽन्यदेवताः ।
त त नियममास्थाय प्रकृत्या नियता स्वया ॥२०॥

टीका—भाँति भाँति की बिषै कामना तैं हरयौ गयो है ग्यान जिनकौ तैं भाँति भाँति कै नेमु धरि भाँत भाँत कै देवता मानैं हैं अग्यानबस भए हैं जै ।

यो यो या या तनु भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचला श्रद्धा तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥

टीका—जो जो जा जा सरूप कौं स्रधा सौं भजै है तहाँ तहाँ तिन तिन सरूपन मैं होइ मैं ही उनकी स्रधा बढाऊँ हौं ।

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान् ॥२१॥

टीका—वा स्रधा सौं जुक्त होइ वह पुरुष वाही सरूप कौं आराधन करै है अरु कियै तैं कामना कौं पावै है तिन तिन कामना कौ दाता मैं ही हौं ।

अतवत्तु फल तेषा तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान् देवयजो याति मद्भक्ता याति मामपि ॥२३॥

टीका—ए फल बिनास पावै ऐसै फल कौं जे चाहैं तै अलपबुधी हैं देखि अर्जुन जे देवतान कौं भजै तै देवतान कौं पावै अरु जे मौकौं भजै तै मोकौं पावै ।

अव्यक्त व्यक्तिमापन्न मन्यते मामबुद्धयः ।
पर भावमजानतो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥

टीका—अर्जुन जे तुछबुधी हैं तै मौकौं अव्यक्त कौ व्यक्त करि मानै हैं ते मेरे अबिनासी सर्वव्यापक अनत ऐसै भाव कौं नहीं जानत ।

नाह प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृत ।
मूढोऽय नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

टीका—मैं सबके देषन मैं नाँही आवत हौं क्योंकि लोकन कौ माया को आवर है तातैं मूढ हैं मोकौं नहि जानत मैं अज हौं अबिनासी हौं ।

वेदाह समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मा तु वेद न कश्चन ॥२६॥

टीका—जे भए हैं जै हैं अरु जै होहिंगे तिन सबन कौं हौं जानत हौं मोकौं कोई एक नहीं जानत है ।

इच्छाद्वेषसमुत्थेनऽद्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि समोह सर्गे याति परतप ॥२७॥

टीका—इच्छा अरु द्वेष तैं उपज्यौ ऐसो जु द्वैतमोह ता करिकैं सृष्टि बिषैं सब प्रानी मोह कौं पावत हैं ।

येषा त्वतगत पाप जनाना पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजते मा दृढव्रता. ॥२८॥

टीका—और जिनकै पाप कौ अत आयौ है जे मुक्तो हैं तै द्वैत मोह तैं छूटै हैं तिनकौं निसचौ मो बिषै हैं मोकौं भजै हैं ।

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्म कर्म चाखिलम् ॥२९॥

टीका—जे जरा मरन के भय मिटावन कैं मोकौं आश्रित होइ जतन करत हैं तै ब्रह्म कौ जानत हैं अरु अध्यातम अरु कर्म जानै हैं ।

साधिभूताधिदैव मा साधियज्ञ च ये विदुः ।
प्रयाणकालेपि च मा ते विदुर्युक्तचेतसः ॥३०॥

टीका—जै अधिभूत अधिदैव अधियग्य ऐसै मो कौं जै जानैं तै युक्तचित्त ऐसै प्रयाणकालहूँ बिषैं मौकौं जानैं ।

इति श्रीभगवद्गीताया सप्तमोऽध्याय ।

(८)

अर्जुन उवाच—किं तद्ब्रह्म किमध्यात्म किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूत च किं प्रोक्तमधिदैव किमुच्यते ॥ १ ॥

टीका—हे कृष्ण ब्रह्म सो कहा अध्यात्म सो कहा कर्म कहा अधिभूत कहा अधिदैव कहा ।

अधियज्ञ. कथ कोऽत्र देहेस्मिन् मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथ ज्ञेयोऽसि नियतात्मभि ॥ २ ॥

टीका—या देही बिषें अधिजग्य सो कहा जे निह्चत हैं तै प्रयाणकाल बिषैं तुमकौं कैसै जानैं ।

श्रीभगवानुवाच—अक्षर ब्रह्म परम स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्ग कर्मसज्ञित ॥ ३ ॥

टीका—अर्जुन ब्रह्म सौ अछर अरु स्वभाव सौ अध्यात्म सौ जीव कर्म सौ जोगादि कर्म ।

अधिभूतं क्षरोभावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतावर । ४ ॥

टीका—अरु जो छर कहे बिनासी है जु भाव सो अधिभूत जो इद्रिन कौ अधिष्ठाता देव तिनकौ जौ नियता मन सो अधिदैवत अरु या देही बिषैं अधियग्य कहे साछी सो मैं ।

अंतकालेऽपि मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भाव याति नास्त्यत्र सशय ॥ ५ ॥

टीका--और अंत काल हुँ बिषैं मेरो स्मरन करत सरीर तजै सो मोकौं पावै तामैं संदेह नाँही।

य य वापि स्मरन्भाव त्यजत्यते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावित॰ ॥ ६ ॥

टीका--और यह जीव जैसो जैसो स्मरन करत सरीर तजै तैसौ तैसौ पावे।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिमामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥

टीका—तातैं अर्जुन सदा मेरो स्मरन करि अरु युद्ध करि मेरैं बिषैं मन बुधि कौ अर्पन करेगो मौही कौं पावैगो।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परम पुरुष दिव्य याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ ८ ॥

टीका—अर्जुन अभ्यास जोगजुक्त चित्त परम पुरष कौ चितन करै सो ताही कौं पावै।

कवि पुराणमनुशासितारमणोरणीयासमनुस्मरेद्य ।
सर्वस्य धातारमचिंत्यरूपमादित्यवर्णं तमस परस्तात् ॥ ९ ॥

टीका—जो पुराण पुरुष है सबकौ नियता है सूछम तें सूछम है सबकौ आसौ है तम तें परै है ऐसै परम पुरुष कौं प्रयानकाल बिषै जो स्मरन करै सौ ताही कौं पावै।

प्रयाणकाले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् स त पर पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥१०॥

टीका—जो प्रयाणकाल हू बिषैं मन थिर करि भक्तिजुक्त होइ जोगबल सूँ प्राण है ताकौं भ्रुवौं के मध्य आरोपै सौ दिव्य परम पुरुष कौं पावै।

यदक्षर वेदविदो वदति विशति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छतो ब्रह्मचर्यं चरति तत्ते पद सग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥११॥

टीका—वेदविद जाकौं अछर कहै हैं ऐसैं सुद्ध ब्रह्म कौं बीतराग पावैं अरु जाकी इछा सौं ब्रह्मचर्ज धरैं है सो पद सछेप सौं कहौं ।

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥

टीका—सब द्वार कौं सजम करिकै मनकौं हृदै बिषैं रोधि कै प्राण कौं मस्तक बिषैं राखिकै ऐसी जोगधारणा करि ।

ओमित्येकाक्षर ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
य· प्रयाति त्यजन्देह स याति परमा गतिम् ॥१३॥

टीका—प्रणव जपै मेरो स्मरन करै ऐसै जु देह तजै सो मौकौं पावै ।

अनन्यचेता सतत यो मा स्मरति नित्यश· ।
तस्याह सुलभ पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन ॥१४॥

टीका—और अनन्य चित्त होइ जु मेरो स्मरन सदा करै है वह नित्य योग है ताके मैं सुलभ हौं

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवति महात्मान ससिद्धि परमा गता ॥१५॥

टीका—मौकौं पाइ फिरि ऐसौ जन्म न पावै क्यौं जु परमसिधि कौं पाए है ।

आब्रह्मभुवनाल्लोका· पुनरावर्त्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥१६॥

टीका—अर्जुन ब्रह्म भुवन पर्यंत जे लोक तिनकौं पुनराब्रिति है पैं मोकौं पाइकै बोहुर जन्म नहीं।

सहस्रयुगपर्यंतमहर्यद्ब्रह्मणो विदु ।
रात्रि युगसहस्रांता तेऽहोरात्रविदो जना ॥१७॥

टीका—अर्जुन सहस्र जुगपर्यंत ब्रह्मा कौ एक दिन कहैं तैसैं ही सहस्र जुग की रात्रि ऐसैं दिन रात्रि लोक जानैं है ।

अव्यक्ताद्व्यक्तय सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥१८॥

टीका—अरु दिवस कै आगम मैं अव्यक्त सूँ समस्त व्यक्त होत हैं अरु रात्रि कै आगम मैं उनहि जु अव्यक्त मैं प्रलै होत है ।

परस्तस्मात्तु भावाऽन्यो व्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥२०॥

टीका—यह भूत समूह सोई फिरि फिरि उपजि लय पावै है परबस है यातैं जु पर है सो सनातन है सो सब भूतन कै नास भएँ नास नहीं पावत है ।

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
य प्राप्य न निवर्तंते तद्धाम परमं मम ॥२१॥

टीका—सो अव्यक्त सो अक्षर सो परमगति जाकौं पाइ फिरि न आवै सो मेरो परम धाम है ।

पुरुषः स पर पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यात स्थानि भूतानि येन सर्वमिद ततम् ॥१२॥

टीका—अर्जुन जा पुरुष बिषैं सब भूत रहे हैं जा पुरुष तैं यह जगत् सर्व कीयो है सो परम पुरुष असाधारन भक्तिलभ्य है ।

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिन ।
प्रयाता याति त काल वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥२३॥

टीका—अर्जुन जा काल विषै जोगीस्वर जै हैं ते प्रयाण कीयै तैं पुनर्जन्म नहीं पावत अरु जा काल बिषैं प्रयाण कीयै पुनर्जन्म पावत हैं सौ काल कहत हौं ।

अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयाता गच्छति ब्रह्म ब्रह्मविदो जना ॥२४॥

टीका—अर्जुन प्रयाणमार्ग दोय हैं एक उत्तरायन एक दछिनायन तहाँ उत्तराइन मार्ग मैं अग्नि है ज्योति है दिवस है सुकल पक्ष है अरु छ मास है ता मार्ग मैं जे प्रयाण करे ते ब्रह्म पावै ।

धूमोरात्रिस्तथा कृष्ण षरमासा दक्षिणायनम् ।
तत्र चान्द्रमस ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥२५॥

टीका—और दक्षिनायन मैं धूम है राति है कृष्ण पक्ष है, अरु छ मास है अरु चद्रजोति है, ता मार्ग मैं जाइ सौ फिरै ॥

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ।
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुन ॥२६॥
नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥२७॥

टीका—ए दौनूँ मार्ग जानै सौ मोह न पावै तातै तूँ सदा जोग जुक्त होइ।

वेदेषु यज्ञेषु तपस्सु चैव दानेषु यत्पुण्यफल प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिद विदित्वा योगी पर स्थानमुपैति चाद्यम् ॥२८॥

टीका—वेद बिषै जग्यविषैं तपविषैं दानविषैं जु पुन्यफल कह्यौ तै सब सौं अतिक्रमि बरतै जो जोगी ए दौनूँ मार्ग की गति जानै आदि स्थान कौं पावै ।

॥ इति श्री भगवद्गीतायां अष्टमोध्यायः ॥

(९)

श्रीभगवानुवाच—इद तु ते गुह्यतम प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञान विज्ञानसहित यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥

टीका—अर्जुन तौ सौं परमगुप्त गोप्य कहौ हौं ग्यान बिग्यान सहित कहौं हौं जाकै जानें असुभ तें छूटैगौ ।

राजविद्या राजगुह्य पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगम धर्म्यं सुसुख कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

टीका—राजबिद्या है अति गोप्य है अति पवित्र है प्रत्यक्ष है धर्मरूप है बौहत सुख सैं कीजै ऐसे है ।

अश्रद्दधाना पुरुषा धर्मस्यास्य परतप ।
अप्राप्य मा निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

टीका—या धर्म विषैं सधा न धरै हैं ऐसै जै पुरुष तै मौकौं न पावैं फिरि फिरि संसार मैं आवैं ।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थित ॥४॥

टीका—अर्जुन मोसौं यह सब जगत व्यापत है अरु मैं अप्रकट मूर्त्ति हौं ए सब भूत मेरे आश्रै हैं काहू कैं आसे नाँही ।

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावन ॥ ५ ॥

टीका—अर्जुन ए सब भूत मो विषैं हैं अरु मौं विषैं नाँही यह मेरो ऐश्वर्य ताकौं जोग देखि सकल भूत कौं धरो हौं अरु आपकौं आश्रै काहू कौ नाँही ऐसे मैं आत्मभूतन पर अनुग्रह करत हौं ।

यथाकाशस्थितो नित्य वायु सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

टीका—जैसैं आकास बिषैं वायु है ऐसैं समुझि ।

सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृतिं याति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

टीका—अर्जुन प्रलैकाल बिषैं सब भूत मेरी प्रकृति कौं पावै हैं फिरि स्रिष्टिकाल बिषैं उनकौ मैं ही सिरजौ हौं ।

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुन. पुन ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

टीका—अपनी प्रकृति कौं आश्रयैं फिरि फिरि भूतग्राम कौं सिरजौ हौं कैसौ है भूतग्राम परबस है प्रकृति कैं बस है ।

न च मा तानि कर्माणि निबध्नति धनजय ।
उदासीनवदासीनमसक्त तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥

टीका—अर्जुन तिन कर्मन कौं कछु मौकौं बधन नाँही मैं उदासीन हौं अलिपत हौं उन कर्म तैं ।

मयाध्यक्षेण प्रकृति सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौंतेय जगद्विपरिवर्तते ॥१०॥

टीका—मैं अधिष्ठाता हौं तातैं प्रकृति प्रपञ्च कौं सृजौ हौं यही कारन तैं यह जगत फिरि फिरि कै प्रकृति ही मैं समावै है।

अवजानति मा मूढा मानुषी तनुमाश्रितम्।
पर भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥११॥

टीका—मूढ जै हैं तै मौकौं देहवंत करि मानैं हैं बड़ाई अपरिमित है ताकौं नाही जानत।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिता ॥१२॥

टीका—तिनकी आसा निष्फल है कर्म निफल है, ग्यान निफल है अचेतन है राक्षसी अरु आसुरी प्रकृति कौ आश्रयै हैं।

महात्मानस्तु मा पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥१३॥

टीका—जै महापुरुष हैं देवी प्रकृति कौं आश्रयै हैं तै अनन्य चित्त होइ सकल भूतन कौ आदि अबिनासी ऐसैं जानि मौकौं भजै हैं।

सतत कीर्त्तयतो मा यततश्च दृढव्रताः।
नमस्यतश्च मा भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥१४॥

टीका—मेरो ही कीरतन करत हैं दृढ होइ मोही कौं उपासत हैं।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजतो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥१५॥

टीका—केतेक ज्ञान जग्य सौं मौकौं उपासत हैं केतेक एकता सौं अरु केतेक भिन्नता सौं उपासत हैं ऐसैं बोहोत भाँति है, मैं सब भाँति हौं।

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥१६॥

टीका—मैं जग्य हौं मैं जग्य कौ भोक्ता हौं मैं स्वधा हौं मैं हविष्य हौं मैं मत्र हौं मैं घ्रित हौं मैं अग्नि हौं मैं होम हौं।

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।
वेद्य पवित्रमोंकारमृक्सामयजुरेव च ॥१७॥

टीका—या जगत को पिता मैं हौं माता मैं हौं धाता मैं हौं पितामह हौं जानिबे की बस्तु मैं हौं पवित्र मैं हौं, प्रणव मैं हौ ऋगबेद यजुर्वेद सामवेद मैं हौं ।

गतिर्भर्ता प्रभु साक्षी निवास शरण सुहृत् ।
प्रभव प्रलयः स्थान निधान बीजमव्ययम् ॥१८॥

टीका—सबकी गति मैं हौं भर्ता मैं हौं प्रभु मैं हौं साक्षी मैं हौं निवासी मैं हौं सरन मैं हौं सनेही मैं हौं उतपति मैं हौं स्थिति मैं हौं प्रलै मैं हौं ।

तपाम्यहमह वर्ष निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।
अमृत चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥१९॥

टीका—मैं ही तपौ हौं मैं ही बरसौ हैं, मैं ही निग्रह करौ हौं मैं ही उत्सर्ग करौ हौं मैं ही अमृत हौं मैं ही मृत्यु हौं मैं ही सत हौं मैं ही असत हौं ।

त्रैविद्या मा सौमपा पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयंते ॥
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक-
मश्नंति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥२०॥

टीका—अर्जुन जै बेदोक्त कर्म करै हैं तै जग्य करिकै स्वर्ग कौ प्राथैं हैं जग्य पुन्य तैं स्वर्ग जाइ देवतान कै भोग पाइ ।

ते त भुक्त्वा स्वर्गलोक विशाल क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोक विशति ।
एव त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागत कामकामा लभते ॥२१॥

टीका—बोहौत काल रहि जब पुन्य छीन होइ तब मृतलोक मैं आवत हैं ऐसैं बेदधर्म कौं जै कामना सौं अनुसरैं हैं तै फिरि फिरि आवागमन पावै हैं ।

अनन्याश्चितयतो मा ये जना. पर्युपासते ।
तेषा नित्याभियुक्ताना योगक्षेम वहाम्यहम् ॥२२॥

टीका—जै अनन्य चित्त होइ मौकौं उपासतै हैं, जै नित्यजुक्त हैं तिनकै जोगछेम कौं निर्वाह मैं करौ हौं ।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजते श्रद्धयान्विताः।
तेपि मामेव कौंतेय यजत्यविधिपूर्वकम् ॥२३॥[१]

टीका—और जे अन्य देवता के भक्त हैं स्रधा सैं

[क्षिप्र भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति।
कौंतेय प्र]तिजानीहि, न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३१॥

टीका—सीघ्र धर्मात्मा होइ निरंतर साति कौं पावै अर्जुन निहचै जानि मेरे भक्त कौ बिनास नाँही।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्यु पापयोनय।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि याति परां गतिम् ॥३२॥

टीका—अर्जुन मो कौं आश्रै करि जे पापजोनहू हैं स्त्री हैं वैस्य हैं सूद्र हैं तेऊ परम गति कौं पावै हैं।

किं पुनर्ब्राह्मणा पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यमसुख लोकमिम प्राप्य भजस्व माम् ॥३३॥

टीका—जे पवित्र ब्राह्मण अरु राजर्षि हैं तिनकौं तौ कहा कहनो तातैं अनित्य असुख ऐसै या लोक कौं पाइ मोकौं भजि।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मा नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मान मत्परायणः ॥३४॥

टीका—मो मैं मन राखि मेरौ भक्त होइ मोकौं भजि मोकौं नमस्कार करि ऐसैं मुझ परायन हो इहैं देह कौं छाँड मोकौं पावैंगौ।

॥ इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायायोगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसवादे राजविद्या राजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्याय ॥

(१०)

श्रीभगवानुवाच—भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं वचः।
यत्तेह प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

टीका—अर्जुन औरहूँ मैं तोसौं कहत हौं सुनि तूँ मोकौं अति प्रिय है तातैं तेरे हित के अर्थ कहत हौं।

---

१ सूचना—हस्तलेख का ६०वाँ पत्र अप्राप्त है। ६१वें पत्र से आगे की प्रतिलिपि प्रारंभ की गई है।

न मे विदु सुरगणा प्रभव न महर्षयः।
अहमादिर्हि देवाना महर्षीणा च सर्वश ॥ २ ॥

टीका—मेरे महिमा कौं देवता नहि जानत बडे बडे रिषि हैं तै नहि जानत हौं देवतान हूँ तैं रिषिन हूँ तैं आदि हौं सबतैं आदि हौं।

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असमूढ स मर्त्येषु सर्वपापै. प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

टीका—जो पुरुष मोकौं अज अनादि सकल लोकन को महेस्वर ऐसैं जानैं सो मूढ नाँही सो सब पाप सैं मुक्त है।

बुद्धिर्ज्ञानमसमोह' क्षमा सत्य दम शमः।
सुख दु ख भवोऽभावो भय चाभयमेव च ॥ ४ ॥

अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दान यशाऽयश ।
भवति भावा भूताना मत्त एव पृथग्विधा. ॥ ५ ॥

टीका—और बुधि ग्यान समोह छमा सत्य दम सम सुख दुख भव अभाव भय अभय अहिंसा समता तुष्टि तप दान जस अपजस ए भूतन कै भिन्न भिन्न प्रकार के भाव मोहीं तैं होत हैं।

महर्षय सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषा लोक इमा प्रजाः ॥ ६ ॥

टीका—पहिलै सप्तरिषि अरु च्यार मनु ए मानस हैं मो तैं भए हैं जिनतैं यह सब प्रजा है।

एता विभूतिं योग च मम यो वेत्ति तत्त्वत.।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र सशय ॥ ७ ॥

टीका—मेरी या बिभूति कौं अरु जग कौं तत्व तैं जानै सो जोगजुक्त होइ जु फिरि न डिगै।

अह सर्वस्य प्रभवो मत्त सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजते मा बुधा भावसमन्विता ॥ ८ ॥

टीका—मैं सबको उतपतिस्थानक हौं सब मैंतै प्रवृत्ते हैं जै ग्याता हैं तै ऐसैं जानि भावजुक्त होइ मोकौं भजै हैं।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयत परस्परम्।
कथयतश्च मा नित्य तुष्यति च रमति च॥ ९ ॥

टीका—कैसे हैं मो बिखं हैं चित्त जिनकौ मो विषै हैं प्रान जिनकै परस्पर ग्यान चर्चा करत हैं उनको बोलनौ मैं ही हौं ऐसैं नित्य सतुष्ट हैं क्रीडा करत हैं।

तेषा सततयुक्ताना भजता प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोग त येन मामुपयाति ते ॥१०॥

टीका—तिनकौं ऐसौ बुद्धिजोग देत हौं जा करिकै मोकौं पावै हैं।

तेषामेवानुकपार्थमहमज्ञानज तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानेदीपेन भास्वता ॥११॥

टीका—तिनकै अनुग्रह कै अर्थ महाप्रकास ग्यानदीप करिके अग्यानरूप अधकार कौ नास करत हौं अतरजामी हौं।

अर्जुन उवाच—पर ब्रह्म पर धाम पवित्र परमं भवान्।
पुरुष शाश्वत दिव्यमादिदेवमज विभुम् ॥१२॥

आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा।
असितो देवलो व्यास स्वय चैव ब्रवीषि मे ॥१३॥

टीका—परमब्रह्म परमधाम परमपवित्र तुम ही हौ सब रिषीस्वर अरु नारद असित देवल अरु व्यास तुमकौं परम पुरुष नित्य दिव्य आदिदेव अज बिभु ऐसैं कहतु हैं तुम आपहूँ मो सौं ऐसे ही कहतु हौ ॥

सर्वमेतद्दत मन्ये यन्मा वदसि केशव।
न हि ते व्यक्ति भगवन् विदुर्देवा न दानवा. ॥१४॥

टीका—यह सब सत्य है मैं मानौ हौं तुम्हारै स्वरूप कौं देव नहीं जानत दानव नहीं जानत।

स्वयमेवात्मनात्मान वेत्थ त्व पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥१५॥

टीका—तुम आप ही आपु कौं जानत हौ तुम भूतभावन हौ भूतेस हौ देवदेव हौ जगतपति हौ।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतय ।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमास्त्व व्याप्य तिष्ठसि ॥१६॥

टीका—मोकौं अपनी दिव्य बिभूति कहौ जिन बिभूतिन सैं सब लोक मैं व्यापकर रहे हौ ।

कथ विद्यामह योगिंस्त्वा सदा परिचिंतयन् ।
केषु केषु च भावेषु चिंत्योऽसि भगवन्मया ॥१७॥

टीका—मैं सदा तुम्हारो चिंतन करि तुमकौं कैसें जानो कौन कौन भाव बिषैं तुम्हारो चितन करौं ।

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।
भूय. कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥१८॥

टीका—तातें बिस्तार करिकै आपनों जोग अरु बिभूति फिरि कहौ या अमृत सुनत मोकौं तृपति नाँही होत ।

श्रीभगवानुवाच—हत ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
प्राधान्यत कुरुश्रेष्ठ नास्त्यंतो विस्तरस्य मे ॥१९॥

टीका—अर्जुन मैं तोसैं अपनी दिव्य बिभूति कहतु हौं सछेप सैं बिस्तार को तो अत नाँही ।

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थित ।
अहमादिश्च मध्य च भूतानामत एव च ॥२०॥

टीका—अर्जुन मैं आत्मा सब भूतन कौ सकल भूत मेरे आसरै सकल भूतन कौ आदि मध्य अत मैं हो ।

आदित्यानामह विष्णुर्ज्योतिषा रविरशुमान् ।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामह शशी ॥२१॥

टीका—आदित्यन मैं बिष्णु मैं हौं ज्योतिन मैं सूर्य मैं हौं मरुतदेवगन मैं मरीचि मैं हौं नछत्रन मैं ससी मैं हौं ।

वेदाना सामवेदोस्मि देवानामस्मि वासव ।
इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥२२॥

टीका—बेदन मैं सामबेद मैं हौं देवतान मैं इंद्र मैं हौं इंद्रियन मैं मन मैं हौं भूतन मैं चेतना हौं ।

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥२३॥

टीका—रुद्र मैं संकर मैं हौं जक्षराक्षसन मैं कुबेर मैं हौं बसून मैं पावक मैं हौं पर्वतन मैं सुमेरु मैं हौं ।

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम् ।
सेनानीनामहं स्कंदः सरसामस्मि सागरः ॥२४॥

टीका—पुरोहितन मैं बृहस्पति मैं हौं सेनानीन मैं स्कंद मैं हौं सरवरन मैं सागर मैं हौं ।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् ।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥२५॥

टीका—महारिषिन मैं भृगु मैं हौं बाणी मैं मधु अक्षर मैं हौं जग्य मैं जप-जग्य मैं हौं थावरन मैं हिमाचल मैं हौं ।

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां महर्षीणां च नारदः ।
गंधर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥२६॥

टीका—बृक्षन मैं पीपल मैं हौं देवऋषिन मैं नारद मैं हौं गंध्रर्बन मैं चित्ररथ मैं हौं सिद्धन मैं कपिल मुनि मैं हौं ।

उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् ।
ऐरावतं गजेंद्राणां नराणां च नराधिपम् ॥२७॥

टीका—अस्वन मैं उच्चैस्रवा मैं हौं हस्तीन मैं ऐरावत मैं हौं पुरुषन मैं राजा मैं हौं ।

आयुधानामहं वज्रं धेनूनामस्मि कामधुक् ।
प्रजनश्चास्मि कंदर्पः सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥२८॥

टीका—आयुधन मैं बज्र मैं हौं गायन मैं कामधेनु मैं हौं अभिलाषन मैं काम मैं हौं सर्पन मैं वासुकि मैं हौं ।

अनंतश्चास्मि नागानां वरुणो यादसामहम् ।
पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम् ॥२९॥

टीका—नागन मैं सैषनाग मैं हौं जलनरन मैं बरुण मैं हौं पितरन मैं अर्यमा मैं हौं संजमीन मैं जम मैं हौं ।

प्रह्लादश्चास्मि दैत्याना काल· कलयतामहम् ।
मृगाणा च मृगेंद्राह वैनतेयश्च पक्षिणाम् ॥३०॥

टीका—दैतन मैं प्रह्लाद मैं हौं गणनाकर्त्ता मैं काल मैं हौं मृगन मैं सिंघ मैं हौं पछिन मैं गरुड मैं हौं ।

पवन. पवतामस्मि राम: शस्त्रभृतामहम् ।
झषाणा मकरश्चास्म स्रोतमामस्मि जाह्नवी ॥३१॥

टीका—वेगवतन मैं पवन मैं हौं शस्त्रधारी मैं रामचद्र मैं हौं माछिन मैं मगर मैं हौं नदीन मैं गगा मैं हो ।

सर्गाणाम·दिरतश्च मध्य चैवाहमर्जुन ।
अध्यात्मविद्या विद्याना वाद प्रवदतामहम् ॥३१॥

टीका—अब सृष्टि मैं आद मध्य अत मैं हौं बिद्यान मैं अध्यात्मविद्या मैं हौं बादीन मैं तत्व मैं हौं ।

अक्षराणामकारोऽस्म द्वद्व सामासिकस्य च ।
अहमवाक्षय काला धाताह विश्वतोमुख ॥३३॥

टीका—अछरन मैं ऊकार मैं हौं समासन मैं द्वद मैं हौं अक्षयकाल मैं ही हौं धाता मैं ही हौं जिन कोइ देखै तित मैं ही हौ ।

मृत्यु सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्ति श्रीर्वाक्च नारीणा स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥३४॥

टीका—सबकौ सघारकर्ता मृत्यु मैं ही हौं सबकौ उतपति कर्ता मैं ही हौं स्त्री जाति मैं कीरति लछमी बानी स्मृति मेधा धृति छमा मैं ही हौं ।

बृहत्साम तथा साम्ना गायत्री छदसामहम् ।
मासाना मार्गशीर्षोहमृतूना कुसुमाकर ॥३५॥

टीका—सामन मैं बृहत् साम मैं हौं छदन मैं गायत्री मैं हौं मासन मैं मगसिर मैं हौं रितुन मैं बसत मैं हौं ।

द्यूत छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्व सत्त्ववतामहम् ॥३६॥

टीका—छलकर्ता मैं जुवा मैं हौं, तेजस्विन मैं तेज मैं हूँ, जय मैं हौं उद्यम मैं हौं सत्ववत कौ सत्व मैं हौं ।

वृष्णीना वासुदेवोऽस्मि पाण्डवाना धनजयः ।
मुनीनामप्यह व्यास कवीनामुशना कवि ॥३७॥

टीका—जादवों में बासुदेव मैं हौं पाण्डवन मैं अर्जुन मैं हौं मुनिन–व्यास मैं हौं कबियन मैं शुक्र मैं हौं ।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौन चैवास्मि गुह्याना ज्ञान ज्ञानवतामहम् ॥३८॥

टीका—दंडकर्तान मैं दड मैं हौं जीत्यौ चाहै तिनमैं नीति मैं हौं गोप्यन मैं मौन मैं हौं ग्यानवत मैं ग्यान मैं हौं ।

यच्चापि सर्वभूताना बीज तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूत चराचरम् ॥३९॥

टीका—सकल भूनन को बीज सो मैं हौं इन चराचर भूतन मैं सो कछु नाँही जु मौं बिना ।

नान्तोस्ति मम दिव्याना विभूतीना परतप ।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥४०॥

टीका—अर्जुन मेरी दिव्य विभूतिन कौ अत नाँही यह मैं तौ सौं उपदेस मात्र कह्यौ ।

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्व श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्व मम तेजोऽशसभवम् ॥४१॥

टीका—अर्जुन जो जो बिभूतवत पदार्थ हैं सो सब मेरे तेज कै अस तैं उपज्यौ जानि ।

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन ।
विष्टभ्याहमिद कृत्स्नमेकाशेन स्थितो जगत् ॥४२॥

टीका—अथवा अर्जुन तोकौं बोहत जानै तैं कहा प्रयोजन है यह जानि कै सब कुछ मैं एक अस तैं थाँभ रह्यौ हौं ।

॥ इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्याया योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन-सवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्याय ॥

(११)

अर्जुन उवाच—मदनुग्रहाय परम गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्त वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥१॥

टीका—हे कृष्ण मेरे अनुग्रह के अर्थ जो अध्यात्म बचन तुम कह्यो ता करिकै मेरो मोह गयौ ।

भवाप्ययौ हि भूताना श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्त कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥२॥

टीका—अरु भूतन कौ उपजनौ अरु बिनास तुम्ह तें सुयो और कयौं बिनासी ऐसौ माहात्म्य सुन्यौ ।

एवमेतद्यथात्थत्वमात्मान परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वर पुरुषोत्तम ॥३॥

टीका—याही भाँति जैसैं तुम आत्मा कह्यौ ऐसैं ही तुम्हारौ ऐस्वर्य रूप देख्यौ चाहत हौं ।

मन्यसे यदि तच्छक्य मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्व दर्शयात्मानमव्ययम् ॥४॥

टीका—जो मैं देखि सकौ ऐसो होइ तो मोकौं अबिनासी ऐसौ अपनौ स्वरूप दिखावौ ।

श्रीभगवानुवाच—पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥५॥

टीका—अर्जुन देखि मेरं रूप सत सहस्र हैं नाना भाँति हैं दिव्य हैं नाना वर्ण हैं नाना आकृति हैं ।

पश्यादित्यान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥६॥

टीका—आदित्यन कौ देखि बसुन कौं देखि रुद्रन कौं देखि अश्विनीकुमार कौं देखि मरुतन कौं औरहूँ पहिलें न देखे ऐसे बोहत अचरिज देखि ।

इहैकस्थ जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छसि ॥७॥

टीका—अर्जुन इहाँ सचराचर जगत एकठौ देखि मेरे देह के बिषै औरौ जु कछु देख्यौ चाहै सु देखि ।

न तु मा शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्य ददामि ते चक्षु पश्य मे योगमैश्वरम् ॥८॥

टीका—पैं इन नेत्र सौं मोकौं देखि सकेगौ नाँही तातैं हौं तौकौं दिव्य चक्षु देत हौं मेरौ ऐस्वर्यजोग देखि ।

सजय उवाच—एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परम रूपमैश्वरम् ॥९॥

टीका—हे धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण अर्जुन सौं ऐसैं कहि परम ऐश्वर्य रूप दिखायौ ।

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरण दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥१०॥

टीका—और अनेक मुख हैं अनेक नेत्र हैं अनेक अद्भुत देखियै है अनेक दिव्य आभरन हैं अनेक दिव्य आयुध हैं।

दिव्यमाल्याबरधर दिव्यगधानुलेपनम् ।
सर्वाश्चर्यमय देवमनत विश्वतोमुखम् ॥११॥

टीका—दिव्य माला अबर धरै हैं दिव्य सुगध कौ अनुलेपन है बौहत आश्चर्यमय है अनत है जित देखिये तित समुख है।

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भा सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥१२॥

टीका—जो आकास बिषैं सहस्र सूर्य साथ उदित भये हौहिं तो तिनकी काति समान कही जाइ ।

तत्रैकस्थ जगत्कृत्स्न प्रविभक्तमनेकधा ।
अपश्यद्देवदेवस्य शरीरे पाडवस्तदा ॥१३॥

टीका—और सब जगत अनेक भाँति भिन्न भिन्न है ऐसैं कृष्ण के सरीर बिषैं देख्यौ ।

ततः स विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा धनञ्जयः ।
प्रणम्य शिरसा देव कृताञ्जलिरभाषत ॥१४॥

टीका—तब विस्मय भयो रोमाञ्च भयो तब अर्जुन हाथ जोड़ नमस्कार करि बोल्यो ।

अर्जुन उवाच—पश्यामि देवास्तव देव देहे सर्वांस्तथाभूतविशेषसघान् ।
ब्रह्माणमीश कमलासनस्थमृषींश्चसर्वानुरगाश्च दिव्यान्॥१५॥

टीका—हे कृष्ण तुम्हारी देह विषै देवन देखत हौं अरु भूतन के समूह कौं देखत हौं कमलासन ऐसे ब्रह्मा कौं देखत हौं रिषिन कौं देखत हौं ।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्र पश्यामि त्वा सर्वतोऽनतरूपम् ।
नात न मध्य न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूपम् ॥१६॥

टीका—और अनेक बाहु हैं अनेक उदर अनेक मुख अनेक नेत्र हैं जाके ऐसे सब और अनत रूप तुमकों देखत हौं न आदि न मध्य न अत देखो हौं ऐसे तुमकों विश्वरूप देखो हौं ।

किरीटिन गदिन चक्रिण च तेजोराशि सर्वतोदीप्तिमतम् ।
पश्यामि त्वा दुर्निरीक्ष्य समताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥१७॥

टीका—मुकुटधारी गदाचक्र धरै तेज के समूह सब ओर दीपतमत देखि न सकियै देदीपमान अनेक सूर्य अनेक अग्नि जाको पार नांही ऐसे देखत हौं ।

त्वमक्षर परम वेदितव्य त्वमस्य विश्वस्य पर निधानम् ।
त्वमव्यय शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्व पुरुषो मतो मे ॥१८॥

टीका—हे कृष्ण तुम अक्षर हौ परम हौ जानबे की बस्तु हौ या बिस्व के परम निधान हौ अव्यक्त हौ सदा धर्म के रक्षक हौ सनातन हौ परम पुरुष हो ।

अनादिमध्यांतमनतवीर्यमनंतबाहु शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वा दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपंतम् ॥१९॥

टीका—अनादि हौ अमध्य हौ अनत हो अनतवीर्य हौ अनतबाहु हौ ससि सूर्य नेत्र जाकौ अपनै तेज सौं विश्व कौं प्रकास करतु हौ जाजल्यमान अग्नितुल्य मुख जाकौ ऐसै तुमकौं देखत हौं।

द्यावापृथिव्योरिदमतर हि व्याप्त त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।
दृष्ट्वाद्भुत रूपमुग्र तवेद लोकत्रय प्रव्यथित महात्मन् ॥२०॥

टीका—यह आकास अरु प्रिथी के बीचि सब तुम व्याप करि रहे हौ। सब दिसा व्याप करि रहे हौ। यह तुम्हारो अद्भुत रूप देख लीनै लोक व्याकुल है।

अमी हि त्वा सुरसघा विशति केचिद्भीताः प्राजलयो गृणति।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसघाः स्तुवति त्वा स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥२१॥

टीका—और ए देवतान के समूह तुम विषैं प्रबेस करत हैं केतेक डर तैं हाथ जोर स्तुति करत हैं महारिषिन सिध के समूह स्वस्ति कौं पढि भाँति भाँति की स्तुति करि तुम्मारी स्तुति करत हैं।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च।
गधर्वयक्षासुरसिद्धसघा वीक्षते त्वा विस्मिताश्चैव सर्वे ॥२२॥

टीका—और रुद्र आदित्य वसु विस्वेदेवा अस्विनीकुमार मरुन पितर गधर्व जच्छ असुर सिद्ध इनके समूह सव बिसमित होइ तुमकौ देखत हैं।

रूप महत्ते बहुवक्त्रनेत्र महाबाहो बहुबाहूरुपादम्।
बहूदर बहुदष्ट्राकराल दृष्ट्वा लोका प्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३॥

टीका—यह तुम्हारौ बडौ रूप है बहुदत है विकराल है देखि सब लोग डरत हैं मैं हूं डरत हौं।

नभःस्पृश दीप्तमनेकवर्णं व्यात्तानन दीर्घविशालनेत्रम्।
दृष्ट्वा हि त्वा प्रव्यथितातरात्मा धृतिं न विदामि शम च विष्णो ॥२४॥

टीका—यह तुम्हारौ रूप आकास पर्यंत है देदीपमान है विकराल है अनेक वर्ण है बिसाल मुख है बिसाल मेत्र है ऐसौ देखि अतरात्मा व्याकुल है धीरज नहीं पावत हौं।

दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि।
दिशो न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥२५॥

टीका—ए अनेक बिकराल मुख देखि मोकौँ दिसा कौ ग्यान नाँही मोकौँ साति नाँही तातैं हे देवेस हे जगन्निवास प्रसन्न होहु।

अमी हि त्वां धृतराष्ट्रस्यपुत्रा. सर्वे सहैवावनिपालसघैं।
भीष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥२६॥

टीका—और ए धृतराष्ट्र के पुत्र सब राजान के समेत भीष्म करन द्रोण और हमारे जोधा।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि।
केचिद्विलग्ना दशनातरेषु सदृश्यते चूर्णितैरुत्तमागैः ॥२७॥

टीका—सीघ्र तुमारे मुख विषैं प्रवेस करत हैं कितेक दतन मैं लागि रहे हैं केतेक चूर्ण होइ गए हैं।

यथा नदीना बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवति।
तथा तवामी नरलोकवीरा विशति वक्त्राण्यभिविज्वलति ॥२८॥

टीका—जैसैं नदी के प्रवाह समुद्र बिषैं प्रवेस करत हैं तैसैं ए सब पुरुषवीर जोधा जाजल्यमान एसैं तुम्हारैं मुखबिषैं प्रवेस करत हैं।

यथा प्रदीप्त ज्वलन पतगा विशति नाशाय समृद्धवेगा.।
तथैव नाशाय विशति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९॥

टीका—जैसे अग्नि विषैं पतग विनास कौं प्रवेस करत हैं तैसे ही ए सब लोक तुम्हारे मुख बिषैं प्रवेस करत हैं।

लेलिह्यसे ग्रसमान. समताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्र भासस्तवोग्राः प्रतपति विष्णो ॥३०॥

टीका—हे कृष्ण तुम सब लोकन कैं मुष सौ ग्रसत हौ और तुम्हारी काति तेज सौ सब लोकन कौं परिपूरण करि रही है।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोस्तु ते देववर प्रसीद।
विज्ञातुमिच्छामि भवतमाद्य न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥३१॥

टीका—हे कृष्ण मोकौं कहा ऐसैं उग्र रूप तुम काँण हौ तुमकौं नमस्कार प्रसन्न होहु मैं तुमकौं जान्यो चाहत हौं हे कृष्ण मैं तुम्हारी प्रवृत्ति कौं नहीं जानत हौं।

श्रीभगवानुवाच—कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वा न भविष्यति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः॥३२॥

टीका—अर्जुन लोकन को छयकर्ता ऐसौं मैं कालस्वरूप हौं लोकन के सघार कौं प्रवृत्यौ हौं ए सब जे सैन्य बिषैं जोधा ठाढे हैं एक तुझ विगु कोई और न रहेगौ ।

तस्मात्त्व उत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्य समृद्धम् ।
मयैवैते निहता. पूर्वमेव निमित्तमात्र भव सव्यसाचिन् ॥३३॥

टीका—तातैं अर्जुन उठि सत्रुन कौं हनिकै जस लेहु समिद्ध राज्य कौं भोग करि ए ता मैं ही पहिलै मारे हैं अर्जुन तू निमित्त मात्र होहु ॥

द्रोण च भीष्म च जयद्रथ च कर्ण तथान्यानपि योधवीरान् ।
मया हतास्त्व जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥३४॥

टीका—ए द्रोण भीष्म जयद्रथ कर्ण औरहू जौधावीर मैं मारे हैं तिनकौं तू मति कछु व्यथा पावै जुध करि सग्राम मैं सत्रुन कौं जीतैगौ ।

संजय उवाच—एतच्छ्रुत्वा वचन केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ।
नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्ण सगद्गद भीतभीतः प्रणम्य ॥३५॥

टीका—हे धृतराष्ट्र अर्जुन श्रीकृष्ण कौं ऐसौ बचन सुनि काँपत हाथ जोर नमस्कार करि गदगद कठ होइ डरतौ फिर बोल्यौ ॥

अर्जुन उवाच—स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवति सर्वे नमस्यति च सिद्धसघा ॥३६॥

टीका—हे कृष्ण यह घटे ही तुम्हारी कीरति सौं जगत हर्ष पावै है अनुरक्त होत है राक्षस भय सौं दूर भाज जात हैं सब सिद्ध के समूह तुमकौं नमस्कार करत हैं ।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनत देवेश जगन्निवास त्वमक्षर सदसत्तत्पर यत् ॥३७॥

टीका—यह जथार्थ है क्यों न नवैं तुम बडे हो ब्रह्माहू के आदि करता हो हे अनंत हे देवेस हे जगन्निवास तुम अछर हो सत असत तैं पर सौ तुम हो ।

त्वमादिदेवः पुरुष पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य पर निधानम् ।
वेत्तासि वेद्य च पर च धाम त्वया तत विश्वमनतरूपम् ॥३८॥

टीका—तुम आदि देव हौ पुरान पुरुष हौ या विस्व के परम निधान हौ वेत्ता हौ वेद्य हौ परमधाम हौ या अनत रूप विस्व कौं व्यापि रहे हौ ।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाक प्रजापतिस्त्व प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्व पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥३९॥

टीका—तुम वायु हौ जम हौ अग्नि हौ बरुन हौ चद्र हौ प्रजापति हौ आदि हौ आदि ब्रह्मा हौ तुमकौं सत सहस्र लछन नमस्कार करत हौं ।

नम पुरस्तादथपृष्ठतस्ते नमोस्तु ते सर्वत एव सर्व ।
अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्व सर्व समाप्नोषि ततोसि सर्वः ॥४०॥

टीका—सब दिस नमस्कार करत हौं हे अनतवीर्य अमितविक्रम तुम सर्वव्यापक हौ ।

सखेति मत्वा प्रसभ यदुक्त हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमान तवेद मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥४१॥

टीका—और मैं अपनै मित्र जानि ढिठाई सौं हे कृष्ण हे यादव हे सखे ऐसें कह्यौ सो छमा कीजौ मैं तुम्हारे या महिमा कौ न जानत हौं प्रमाद तें अथवा प्रणय तें जो कछु कह्यो छमा कीजौ ।

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्ष तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥४२॥

टीका—हास्य विषैं खेल विषैं सोवतैं बैठतैं भोजन करतैं बोहत लोक विषैं अथवा एकात विषैं जो कछु मैं ढिठाई की होइ सो छमा करावत हौं तुम अप्रमेय हौ ।

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिक कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥४३॥

टीका—या चराचर लोक के पिता हौ गुरू हौ पूज्य हौ बडे हौ तुम्हारै समान नाँही तौ अधिक कहाँ तें तीनौ लोक विषैं तुम्हारै महिमा कौ दूसरौ नाँही ।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय काय प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्यु प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥४४॥

टीका—तातैं हूँ नम्र होइ नमस्कार करि तुमकौं प्रसन्न करौ हौं तुम ईस हौ पूज्य हौ जैसैं पिता पुत्र कौं सहै मित्र मित्र कौं सहै प्रिय प्रिय कौं सहै तैसैं सहिबैं कौं जोग्य हौ ।

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूप प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥४५॥

टीका— कबहूँ न देख्यौ ऐसै देखि बोहत हर्ष्यौं हौ और भय सौं मेरो मन बहोत व्यथित भयौ है तातैं मोकौं वहि रूप दिखाहु प्रसन्न होहु ।

किरीटिन गदिन चक्रहस्तमिच्छामि त्वा द्रष्टुमह तथैव ।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥४६॥

टीका—मैं तुम्हारौ वहै रूप देख्यौ चाहत हौं तुम वहै चतुरभुज रूप होहु मुकुट गदा चक्रादिक धरैं ।

श्रीभगवानुवाच—मया प्रसन्नेन तवार्जुनेद रूपं पर दर्शितमात्मयोगात् ।
तेजोमय विश्वमनतमाद्य यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥४७॥

टीका—अर्जुन मैं प्रसन्न होइकै अपनी जोगशक्ति तैं यह अपनौ रूप तेजोमय बिस्वमय अनंत दूसरै काहू न देख्यौ ऐसौ तोकौं दिखायौ ।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः ।
एवरूपः शक्य अह नृलोके द्रष्टु त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥४८॥

टीका—यह रूप बेद करि जग्य करि अधैन करि दान करि क्रिया करि तप करिकै हूँ तुजतै दूसरौ कोऊ न देखि सकै ।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम् ।
व्यपेतभीः प्रीतमना पुनस्त्व तदेव मे रूपमिद प्रपश्य ॥४९॥

टीका—यह मेरौ ऐसो भयानक रूप देखि बिथा मति पावै निर्भय होहु प्रसन्न होहु अब मेरौ वहै पैहिलौ रूप देखि ।

संजय उवाच—इत्यर्जुन वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वक रूपं दर्शयामास भूय. ।
आश्वासयामास च भीतमेन भूत्वा पुन सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥

टीका—हे राजन् श्रीकृष्ण अर्जुन सौं ऐसैं कहि अपनैं वहै रूप दिखाइ अरु अर्जुन की आस्वासना की ।

अर्जुन उवाच—दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥५१॥

टीका—हे कृष्ण तुम्हारौ यह सौम्य रूप देखि मैं अब सचेत भयौ अपनी प्रकृति कौं पायौ।

श्रीभगवानुवाच—सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकांक्षिणः ॥५२॥

टीका—यह तैं देख्यौ सौ रूप देखनौ अति कठिन है या रूप देखिबे कौं देवता हूँ अभिलाषा धरत हैं।

नाहं वेदैर्न तपसा दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥५३॥

टीका—जैसैं मोकौ तैं देख्यौ तैसैं बेद करि दान करि तप करि जग्य करि कोऊ देखि न सकै।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥५४॥

टीका—या भाँति मोकौं अनन्यभक्ति सौं जानिबे कौं देखिबै कौं तत्व तैं मिलन कौं जोग्य है।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥५५॥

टीका—अर्जुन जो कर्मन कौं मेरे जानि करै मैं ही जाके परम हौं मेरो ही भक्त सब संग तजै सब भूतन विषैं बैररहित ऐसौ होइ सो मोकौं पावै।

॥ इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनो नामैकादशोऽध्यायः।

(१२)

अर्जुन उवाच—एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १ ॥

टीका—हे कृष्ण या भाँति निरंतर जुक्त होइ जे भक्त तुमकौं उपासत हैं तिन दुहूँन मैं श्रेष्ठ जोगवित्तम कौन।

श्रीभगवानुवाच—मय्यावेश्य मनो ये मा नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मता ॥ २ ॥

टीका—जे मेरे बिषैं मन कौ आवेस करि सधाजुक्त होइ नित्य जुक्त ऐसैं मोकौं उपासत हैं ते श्रेष्ठ जोग जुक्त हैं।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्त पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिंत्य च कूटस्थमचल ध्रुवम् ॥ ३ ॥
सन्नियम्येंद्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धय।
ते प्राप्नुवंति मामेव सर्वभूतहिते रता ॥ ४ ॥

टीका—अरु जे अक्षर है बतावनैं मैं न आवै अव्यक्त सर्वगत अचिंत कूटस्थ अचल नित्य ऐसैं कौं इद्रीन सजम करि सर्वत्र समबुधि होइ उपासत हैं तेऊ मोही कौं पावे हैं ते सब भूतन के हित बिषैं ततपर हैं।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःख देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

टीका—अव्यक्त ब्रह्म बिषैं जिनकौ चित्त है ते महापुरुष हैं पैं यह वा तैं अति कठिन है क्योंकि देखि देहधारिन कौं अव्यक्त गति पानी अति कठिन है।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्परा.।
अनन्येनैव योगेन मा ध्यायंत उपासते ॥ ६ ॥

टीका—अर्जुन जे कर्मन कौं मेरै बिषैं आरोपि मुझ परायन होइ अनन्य जोग सौं मेरो ध्यान करि मोकौं उपासत है।

तेषामह समुद्धर्ता मृत्युससारसागरात्।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

टीका—तिनकौं मैं सीघ्र या ससार सागर तैं उधार करत हौं क्योंकि मेरै बिषै उन चित्त आरोप्यो है।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न सशय. ॥ ८ ॥

टीका—तातैं अर्जुन मेरै ही बिषैं मन कौं धारि मेरै ही बिषैं बुधि कौ आरोपि ऐसै किऐ उप्रात निसंदेह मोहीं कौं पावैगौ।

अथ चित्त समाधातु न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तु धनजय ॥ ६ ॥

टीका—अथवा जो मेरे विषै चित्त थिर करि न सकै तो अभ्यास जोग करि मोकों पावैगो ।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥१०॥

टीका—अरु जो अभ्यास हूँ न करि सकै तौ मेरै अर्थ करि ऐसै हूँ करि सिधि पावैगो ।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्याग ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥

टीका—अरु ऐसै हूँ न करि सकै तौ सर्वकर्मफल कौ त्याग करि ।

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाद् ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छातिरनतरम् ॥१२॥

टीका—अर्जुन अभ्यास तैं तौ ग्यांन श्रेष्ठ है पैं ग्यांन तैं ध्यान श्रेष्ठ है पैं ध्यान तैं कर्मफलत्याग श्रेष्ठ है क्योंकि त्याग उप्राति साति ही है ।

अद्वेष्टा सर्वभूताना मैत्र करुण एव च ।
निर्ममो निरहकारः समदुःखसुख क्षमी ॥१३॥

सतुष्ट. सतत योगी दृढात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्त स मे प्रिय ॥१४॥

टीका—जो सब भूतन कौं द्वेष न करै सब सौं कृपा करै सबकौ मित्र निरमम निरहकार सुखदुख जाकै समान छमावत नित्य सतुष्ट जोगी जितात्मा दृढ है निसचै जाकै मेरे बिषै आरोपै हैं मन बुधि जिन ऐसो जो भक्त सो मोकों प्रिय ।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो य स च मे प्रिय ॥१५॥

टीका—अरु जातैं कोऊ उद्वेग न पावै अरु जो काहू तैं उद्वेग न पावै जाकैं हर्ष क्रोध भय उद्वेग हूँ नाँही सो मौकौं प्रिय ।

अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥

टीका—अरु जो काहू की अपेक्षा न करै सुचि है दक्ष है उदासीन है बिथा रहित है सब आरंभ कौ त्यागी है सो भक्त मोकौं प्रिय।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥

टीका—अरु जो हर्षै नहीं द्वेष न करै न सोचै न चाहै सुभ असुभ दोनूं फल कौ त्यागी ऐसौ भक्त सो मोकौं प्रिय।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥१८॥
तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः ॥१९॥

टीका—अरु सत्रु बिषैं मित्र बिषैं मान बिषैं अपमान बिषैं सीत बिषैं उष्ण बिषैं सुख बिषैं दुख बिषैं समान है असंग है निंदा अरु स्तुति जाकैं तुल्य है मौन धरै है थोरै मैं संतुष्ट है जाकैं कहूं बंध नाहीं जाकी मति थिर है ऐसो भक्त सौ मोकौं प्रिय है।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

टीका—अर्जुन जो पुरुष धर्मरूप अमृतमय ऐसै या मत कौं आश्रयै है स्रधावंत है मुज परायन है तै भक्त मोकौं प्रिय है।

॥ इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥

(१३)

अर्जुन उवाच—प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥ १ ॥

टीका—प्रकृति अरु पुरुष छेत्र अरु छेत्रग्य ग्यांन अरु गेय मौकों इनके जानिबे की इच्छा है।

श्रीभगवानुवाच—इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञमिति तद्विदः ॥ २ ॥

टीका—अर्जुन यह शरीर छेत्र कहियै वाकौं जानै सो छेत्रग्य कहियै ।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत् तद् ज्ञानं मतं मम ॥ ३ ॥

टीका—अर्जुन सब छेत्रन विषैं छेत्रग्य मोही कौं जानि अरु छेत्र छेत्रग्य कौ जाननो सो ग्यॉन सो हौं ।

यत्क्षेत्रं यच्च यादृक्च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ४ ॥

टीका—जो जैसो है जिन विकारनि सौं जुक्त है जातैं है जु कार्यरूप है और सो छेत्रग्य जैसैं महिमा सौं है सो सुनि ।

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छंदोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ५ ॥

टीका—यह बात रिषीस्वरन बोहत भाँति कही है स्तुति करिकै निसचै जुक्तिपूर्वक उपनिषध वाक्य करिकैं भिन्न भिन्न रीति सौं कही है सब सुनि ।

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इंद्रियाणि दशैकं च पंच चेंद्रियगोचराः ॥ ६ ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ७ ॥

टीका—महाभूत अहंकार बुधि अव्यक्त एकादस इंद्रिन इंद्रिन के विषैं इच्छा द्वैष सुख दुख संघात चेतना धृति यह सब मैं तौसौं विकारसहित छेत्र कह्यौ ।

अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ८ ॥
इंद्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ९ ॥
असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ १० ॥

टीका—और अमान अदभ अहिंसा छमा सरलता आचारज सेवा सुचिता स्थिरता आत्मनिग्रह बिषैंन मैं बिराग अनहकार जन्म मृत्यु जरा व्याधि दुख दोष दूनो कौ देखिबौ असक्तता स्त्री पुत्रादिक बिषैं असग नित्य समान चित्त जौ इष्टवस्तु की प्राप्ति होइ अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति होइ तऊ

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनससदि ॥ ११ ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्व तत्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतद् ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञान यदतोऽन्यथा ॥ १२ ॥

टीका—मैरैं बिषैं अनन्य जोग सौं भक्ति एकात स्थानक रहनौ बहुसंगत नाँही नित्य अध्यात्म ग्याँन कहावै तत्त्वग्यानार्थ कौ देखनौ यह ग्याँन कहावै याते उलटौ सौ अग्याँन।

ज्ञेय यत्तत्प्रवक्ष्यामि यद् ज्ञात्वामृतमश्नुते।
अनादि मत्पर ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १३ ॥

टीका—अब गेय है सो सुनि जाके जानैं मोक्ष पावै। परब्रह्म अनादि है न सत है न असत है।

सर्वत पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १४ ॥

टीका—सब ठौर है हाथ पाव जाके सब ठौर है नेत्र सिर मुख जाकै सब ठौर है स्रवन जाकै जौ सबकौ व्यापक है।

सर्वेंद्रियगुणाभास सर्वेंद्रियविवर्जितम्।
असक्त सर्वभृच्चैव निर्गुण गुणभोक्तृ च ॥१५॥

टीका—सब इंद्री गुण कौ आभासक है सब इंद्री रहित है असक्त है अरु सब धरै है निरगुन है अरु गुन भोक्ता है।

बहिरतश्च भूतानामचर चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेय दूरस्थ चातिके च तत् ॥१६॥

टीका—सब भूतन के अतर अरु बाहर है अचर है अरु चर है सूक्ष्म है ताते अबिगेय है दूर है निकट है।

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च तद् ज्ञेय ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥१७॥

टीका—सब भूतन मैं मिल्यौ है अरु जुदो है थिर है सकल भूतन कौ भर्त्ता है वहै ग्यान सबकौ ग्रसै है सबकी उतपति करै है

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमस परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेय ज्ञानगम्य हृदि सर्वस्याधिष्ठितम् ॥१८॥

टीका—सब जोति की जोति वहै है अग्यॉन तें पर है ग्यॉन सरूप है ग्यॉन-गम्य है सबके हिरदै कौ अधिष्ठाता है ।

इति क्षेत्र तथा ज्ञान ज्ञेय चोक्त समासत ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥१६॥

टीका—अर्जुन मैं तोसौं सछेप सौं छेत्र ग्यॉन अरु गेय कह्यौ मेरौ भक्त यह जानि मेरे भाव कौं पावै ।

प्रकृतिं पुरुष चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकाराश्च गुणाश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान् ॥२०॥

टीका—और प्रकृति अरु पुरष ए दोनू अनादि जान अरु विकार अरु गुन ए प्रकृति तैं उपज्यौ यौं जान ।

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते
पुरुष सुखदु.खाना भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥२१॥

टीका—कारन अरु कार्य ए दोनूं प्रतिक्ष होइ सो प्रकृति तैं और सुख दुख के भोग को कारन पुरुष ।

पुरुष. प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारण गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनि जन्मसु । २२॥

टीका—पुरुष प्रकृति सौ मिलि प्रकृति तैं उपजै है गुन तें अपने मानिकैं भोगता होत है प्रकृति के किएँ गुन पुरुष अपनैं कार्य मानै है तातैं अनेक जनम लेतु है।

उपद्रष्टानुमंता च भर्त्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुष परः ॥२३॥

टीका—पुरुष जा है सो द्रष्टा है अलिपत है भरता है इंद्रिन कौ स्वामी भोगता है बुधि कै कार्य कौ प्रकासक महेस्वर है परमात्मा है या देह मैं।

य एव वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥२४॥

टीका—जो या भांति पुरुष कौं जानै अरु गुन सहित प्रकृति कौ जानै सो ससार मैं बरतै है तऊ फिरि जनम न पावै ।

ध्यानेनात्मनि पश्यति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये साख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥२५॥

टीका—केतेक पुरुष ध्यान करिकै आ तहो सौं आपकौ आप विषैं देखत हैं और केतेक सांख जोग करिकै देखत हैं और केतेक करम जोग करिकै देखत हैं।

अन्ये त्वेवमजानत श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेपि चातितरंत्येव मृत्यु श्रुतिपरायणा ॥२६॥

टीका—और केतेक हैं तै न जानैं हैं पै जै जानत हैं तिन तैं सुनि सधावत होइ उपासत हैं तेऊ ससार तैं तरत हैं क्यौं जु स्रुतिपरायन हैं।

यावत्सजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २७ ॥

टीका—जु कछु स्थावर जगम सत्व उपज्यौ है सो छेत्र अरु छेत्रग्य कै संयोग तैं जानि।

सम सर्वेषु भूतेषु तिष्ठत परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यत य पश्यति स पश्यति ॥ २८ ॥

टीका—अर्जुन सब भूतन मैं समान स्थिति उनकैं बिनास तैं जाकौ बिनास नांही ऐसे परमेस्वर कौं जो देखत है सोई देखत।

सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मान ततो याति परा गतिम् ॥ २९ ॥

टीका—सर्वत्र समान ह्वै रह्यौ ऐसैं ईस्वर कौं जो देखत है सो आप सौं आपकौं नांही हनै है तातैं परम गति कौं पावै ।

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ ३० ॥

टीका—और जो प्रकृति करिकैं होत है जे सब कर्म तहाँ आत्मा कौं अकर्ता ऐसै जो देखै है सोई देखै ।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ३१ ॥

टीका—जब यह नानाविध भूतन कौं देखै है पैं एक आत्मा करि देखे है अरु यह सब विस्तार आत्मा ही करि देखै तब ब्रह्म ही होइ ।

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौंतेय न करोति न लिप्यते ॥ ३२ ॥

टीका—यह परमात्मा है अनादि है निर्गुन है अबिनासी है तातैं देह धरै है तऊ न कछु करे है पैं सूक्ष्मता सुँ कहूँ लिप्त नाही ।

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥ ३३ ॥

टीका—जैसैं आकास सूक्ष्मता सौं कहूँ लिप्त नांही तैसैं देह विषैं सर्वत्र आत्मा है पैं लिप्त नांही ।

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३४ ॥

टीका—जैसे एक सूर्य सब लोक कौं प्रकास करत है तैसैं छेत्रग्याँन पूर्ण क्षेत्र कौं प्रकास करत है ।

क्षेत्र - क्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृति मोक्षं च ये विदुर्यांति ते परम् ॥ ३५ ॥

टीका—ऐसैं छेत्र अरु छेत्रग्य को अंतर अरु भूत प्रकृति जो माया ताके मोक्ष कौं ग्यांनद्रिष्टि तैं जे जानै ते परमपद पावै ।

॥ इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देशो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥

(१४)

श्रीभगवानुवाच—परं भूय प्रवक्ष्यामि ज्ञानाना ज्ञानमुत्तमम्।
यद्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परा सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥

टीका—अर्जुन फिरि मैं तोसों ग्यानन मैं उत्तम ग्यान है सो कहत हौं जाकौं जाने मुनि परमसिधि को पावैं।

इद ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।
सर्गेपि नोपजायते प्रलये न व्यथति च ॥ २ ॥

टीका—और या ज्ञान कैं आसरैं तैं मेरी समता कौं पाए सृष्टि मैं उपजत नांही प्रल मैं नास नहीं पावत।

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सभव सर्वभूताना ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

टीका—उतपति स्थानक महत तत्व है तामैं गर्भ मैं धरौं हौं तातैं सब भूतन की उतपति होत है।

सर्वयोनिषु कौंतेय मूर्त्तयः सभवति याः।
तासा ब्रह्म महद्योनिरह बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥

टीका—अर्जुन सब जोनि बिषैं जे जे मूर्ति उपजत है तिन सबन कौं उतपति स्थानक महत तत्व है अरु बीजदाता मैं हौं।

सत्व रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसभवा।
निबध्नाति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥

टीका—अर्जुन सतु रज अरु तम ए तीन गुन प्रकृति तें उपजे हैं देह बिषैं अबिनासी एसौ देही कौं एइ बाँधत है।

तत्र सत्व निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम्।
सुखसगेन बध्नाति ज्ञानसगेन चानघ ॥ ६ ॥

टीका— तहाँ सत्व गुन जो है सो निर्मल है प्रकासक है दुःखरहित है तातें सुखसग करिकैं अरु ग्यान सग करिकै बाँधै है।

रजो रागात्मक विद्धि तृष्णासगसमुद्भवम्।
तन्निबध्नाति कौंतेय कर्मसगेन देहिनम् ॥ ७ ॥

टीका—रजोगुन है सो रागात्मक है तातें तृष्णासग तें उपज्यो है कर्मसग करिकै बाँधे है।

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥

टीका—तमोगुन है सु अग्यांन तें उपजै है तातें सबकौं मोह करै है अर्जुन सो तम प्रमाद आलस अरु निद्रा इन करिकै बांधै है।

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९ ॥

टीका—और सत्व जु है सौ सुख कौं संग करावै है रज जु है सो कर्म कौं संग करावै है अरु तम जु है सो ग्यांन कौं आवर कै प्रमाद कौं संग करावै है।

रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १० ॥

टीका—और रज अरु तम इनकौ पराभव करिकै सत्व दृढ होत है और रज सत्व अरु तम कौ पराभव करि दृढ होत है और तम सत्व अरु रज कौ पराभव करि दृढ होत है।

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥

टीका—जब देह विषै सब द्वारन विषैं प्रकास उपजै अरु ग्यांन होत है तब सत्व की वृद्धि जानियै।

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥

टीका—और जब लोभ होइ कार्यप्रवृत्ति होइ कर्मन कौ आरंभ होइ असांत होइ अरु तृष्णा होइ तब रजोगुन की बृधि जानियै।

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते प्रवृद्धे कुरुनंदन ॥१३॥

टीका—और अर्जुन जब अप्रकास होइ काय की अप्रवृत्ति होइ प्रमाद होइ मोह होइ तब तम की बृधि जानियैं।

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥१४॥

टीका—और जब सत्व की वृधि होइ तब देह छूटै तौ उत्तम निर्मल लोक कौं पावै ।

रजसि प्रलय गत्वा कर्मसगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥१५॥

टीका—ऐसैं ही रजोगुन की वृधि मैं देह छूटै तो कर्म सगिन बिषैं उपजै और तमोगुन की वृधि मैं देह छूटै तो मूढजोनि बिषैं उपजै ।

कर्मण सुकृतस्याहुः सात्विक निर्मल फलम् ।
रजसस्तु फल दुःखमज्ञान तमस फलम् ॥१६॥

टीका—सत्वगुन को फल सुकृत अरु रजोगुन कौ फल दुख अरु तमोगुन कौ फल अग्यांन है ।

सत्वात्सजायते ज्ञान रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥१७॥

टीका—सत्व तैं ग्यांन होइ रज तैं लोभ होइ प्रमाद मोह अरु अग्यांन ए तम तै होहि ।

उद्र्ध्वं गच्छति सत्वस्था मध्ये तिष्ठति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छति तामसाः ॥१८॥

टीका—सत्व मैं होतैं ऊर्धगति पावै रज मैं होतैं मध्य बिषैं रहै तामस मैं होतैं अधोगति पावै ।

नान्य गुणेभ्य कर्त्तार यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च पर वेत्ति मद्भाव सोऽधिगच्छति ॥१९॥

टीका—जब द्रष्टा है सो कर्त्ता कौ गुण हू ता और न देखै अरु गुनहूँ ता पर है सो जानै सो मदभाव कौं पावै ।

गुणानेतानतीत्य त्रीन् देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादु खैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥२०॥

टीका—ए देह तैं उपजै ऐसैं तीन इनकौं लघै सौ जन्म मृत्यु जरा दुख सैँ छूटै मोछ पावै ।

अर्जुन उवाच—कैर्लिगैस्त्रीन् गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचार कथ चैतास्त्रीन् गुणानतिवर्त्तते ॥२१॥

टीका—हे कृष्ण गुणातीत जो होइ सौ कौन चिह्न सेँ होइ और ताकौ आचार कैसौ होइ ।

श्रीभगवानुवाच—प्रकाश च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाडव ।
न द्वेष्टि सप्रवृत्तानि न निवृत्तानि काक्ष्ते ॥२२॥

टीका—प्रकास कौं प्रवृत्ति कौं अरु मोह कौं ए त्रिगुन कार्य कौं प्रवृतै तैं द्वैष न करै अरु निवृतै तैं आकाक्षा न करै ।

उदासीनवदसीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणावर्त्त त इत्येव योऽवतिष्ठति नेंगते ॥२३॥

टीका—उदासीन जो रहै गुन जाको चलाइ न सकै गुन अपने कार्य मैं हैं ऐसैं निसचै सौ रहै आपनै विषैं कछु करि चित्त न मानै ।

समदुःखसुखः स्वस्थ समलोष्ठश्मकाचन. ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिंदात्मसस्तुति ॥२४॥

टीका—जाके दुख सुख समान है स्वस्थ है लोहौ पाथर कचन जाकै समान है प्रिय अप्रिय दोनौं समान अरु निंदा स्तुनि दोनौ समान जाकै ऐसौ ।

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यमित्रारिपक्षयो ।
सर्वारंभपरित्यागी गुणातीत स उच्यते ॥२५॥

टीका—मान अपमान तुल्य जाके मित्र सत्रु तुल्य जाकैं सर्व आरंभ कौ परित्यागी ऐसौ होइ सौ गुणातीत कहियै ।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥

टीका—और जो अनन्य भक्ति जोग करिकैं माकौं सेवै सो गुणातीत होइ ब्रह्मभाव कौं पावै ।

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकातिकस्य च ॥ २७ ॥

टीका—अर्जुन ब्रह्म मैं ही हौं सबकौ अधिष्ठान मैं ही हौं अबिनासी निरतर ऐसै धर्म कौ अधिष्ठान मैं ही हौं अरु अत्यन्त सुख कौ अधिष्ठान मैं ही हौं ।

॥ इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्याया योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्याय. ॥

× × ×

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय ॥ ७२ ॥

टीका—हे अर्जुन यह तें एकाग्र चित्त सों सुन्यौ तेरो अग्यांन मोह नास भयौ मोसौं कहि ।

अर्जुनोवाच—नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ ७३ ॥

टीका—हे कृष्ण मोह गयौ ज्ञान पायौ तुम्हारे अनुग्रह तैं अब निसंदेह रह्यौ हूँ तुम्हारौ बचन करोंगौं ।

संजयोवाच—इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

टीका—हे राजन या भाँति श्रीकृष्ण को अरु अर्जुन को महा अद्भुत संवाद मैं सुन्यौ ।

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद् गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ ७५ ॥

टीका—जो यह बेदब्यास की कृपा तैं साक्षात् श्रीकृष्ण के मुख तैं जोग परम गुह्य सुन्यौ ।

राजन्संस्मृत्य-संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ ७७ ॥

टीका—सो यह फिर फिर समरण करि करि बौहोत हर्ष पावत हौं और यह अद्भुत श्रीकृष्ण को रूप समरण करि करि मोकौं बिस्मै होत है । अरु महाहर्ष होत है ।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

टीका—हे राजन यह मोकौं निस्चय है जो जहाँ जोगेस्वर श्रीकृष्ण हैं अरु जहाँ धनुर्धर अर्जुन हैं तहाँ सर्वथा लक्ष्मी है बिजै है बिभूति है अरु नीति है मेरी मति यौं कहै है।

इति श्री महाराजाधिराज महाराजा श्री ५ जसवतसिंह जी कृत भगवद्गीता टीका भाषा लिख्यते।

अध्याय अठारह। १८

सवत् १६५८ फागुण बदि ६ शनिवारे लि मुजैत सघ नागोरे माँहि माधो सघ री पोथी सू लिखी छै।

जथा परतगगीता नितंतत छै
पढँ सुणँ से परम तनु पावै।

———

श्रीमद्भगवद्गीता भाषा दोहा

(१)

(दोहा)

धृतराष्ट्र—धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र मैं मिले जुद्ध के माज।
सञ्जय मो सुत पाडवन कीने कौन जु काज ॥ १ ॥

संजय—पाडवसेना व्यूह लखि दुर्जोधन ढिग आइ।
निज आचारज द्रोन सौँ बोल्यो ऐसैँ भाइ ॥ २ ॥
पाडवसेना अति बड़ी आचारज तूँ देखि।
धृष्टदुमन तव सिष्य ने रच्यो जु व्यूह बिसेषि ॥ ३ ॥
सूर धनुषधारी बडे अर्जुन भीम समान।
द्रुपद महारथ और पुनि है विराट युयुधान ॥ ४ ॥
धृष्टकेत अरु कासिपति चैकितान बलवंत।
कुंति भोज अरु सैव्य पुन पुरजित सत्रु निकंत ॥ ५ ॥
युधामन्यु अतिबिक्रमी उत्तमौज रनधीर।
द्रौपदसुत अभिमन्न जे महारथी बलबीर ॥ ६ ॥
मो सेना मैं जे बडे ते सम गन दिजराज।
नीकैँ जानो तुम तिनैँ खडे जुद्ध कैँ काज ॥ ७ ॥
तुम अरु भीषम कर्न कृप जिन जीते सग्राम।
भूरिश्रवा जु बिकर्न पुन औ असथामा नाम ॥ ८ ॥
और जु बहुतै सूर हैँ मो हित तजैँ पिरान।
भाँत भाँत आयुध लिये सभै जुद्ध बलवान ॥ ९ ॥
मो सैना असमर्थ सी भीषम राखत जाहि।
परसैना समरथ है राखत भीम सु ताहि ॥१०॥
आसपास मो व्यूह कैँ तुम सभ ठाढे होइ।
भीषम की रक्षा करो वरि कै मन मैँ छोह ॥११॥

दुरजोधन कैं हरष कौं भीषमजू चित चाइ ।
सिंहनाद उच्चै कियौ दुस्सह सख बजाइ ॥१२॥
तबहि सख भेरी पनव आनिक गोमुख धूर ।
ताही छिन बाजत भए सब्द रह्यो भरपूर ॥१३॥
स्वेत बरन घोरे लगे दीरघ रथहि बनाइ ।
हरि अर्जुन तापै चढे रहिसो सख बजाइ ॥१४॥
देवदत्त अर्जुन लियो पाचजन्न जदुराइ ।
भीम भयानक भै दियो पौंड्रक सख बजाइ ॥१५॥
नृपति जुधिष्टर हूँ कियो अनँत बिजय को घोष ।
पुन सैदेव जु नकुलहूँ मनि पुषपक जु सघोष ॥१६॥
महाधनुषधर सत हैं रथी सिखडी जान ।
धृष्टदुमन जु बिराट अतिबली सात्यकैं मान ॥१७॥
द्रुपद द्रौपदीसुत सभैं और सुभद्रापूत ।
अपने अपने सख लै धुनि कीनी तासूत ॥१८॥
फुट्यौ हियो कौरोन को सब्द सुन्यो ता बार ।
पृथिवी अरु आकास मैं पूरि रह्यो गुजार ॥१९॥
देखे सुत धृतराष्ट्र के अर्जुन धनुष समारि ।
कपिबर जाकी ध्वज लसै सस्त्रन परत निहारि ॥२०॥
अर्जुन कही सु कृष्न सौं मोरैं चिंतवन चित्त ।
दुहूँ सैन कैं माझि लै रथ ठाढौ करि मित्त ॥२१॥
जब लगि देखौं हौं इन्हें जुरे जुद्ध कै दाइ ।
कौन कौन सौं हौं लरौं या रन मो सम पाइ ॥२२॥
जुद्ध करन जोधा जितै आए हैं या साज ।
दुर्बुद्धी कौरोन कौं मिले करन कौं काज ॥२३॥
संजय —ऐसै कहि श्रीकृष्न जू सुनि अर्जुन की बात ।
दोउ सैन के माझि रथ लै राख्यो तद्यात ॥२४॥
भीषम द्रोनहि आदि दै नृप जु हते ता ठौर ।
अर्जुन सौं बोलत भए करिकै रन की ओर ॥२५॥
अर्जुन ते देखत सबै पिता पितामह भाइ ।
गुर मामा भाई सखा सुत नातो कैं दाइ ॥२६॥

अर्जुन—स्वसुर सुहृद बांधव सकल दुहूँ जु सैना माहि।
तिन्हैं देख करुना भई तब बोले नर ताहि ॥२७॥
देखे मैं सभ बंधु ए कृष्ण जुद्ध कैं दाइ।
मो मुख सूकत जात है अंग अंग सिथराइ ॥२८॥
रोमहर्ष मो देहि मैं अरु कपैं जमाइ।
धनुष गिरत है हाथ सौं त्वचा तपत अधिकाइ ॥२९॥
ठाढो होइ नहीं सकत भ्रमत जु मो मन मीत।
ए सुभ सगुन न देखियतु कैसो यह बिपरीत ॥३०॥
स्वजन हनौं संग्राम मैं तातैं हरि यह जानि।
अपनो भलो न देखियतु है बिपरीत जु मानि ॥३१॥

बिजै न चाहौं कृष्न जू नहिँ चाहत सुख राज।
राजभोग गोबिंद जू अरु जीवन किंह काज ॥ ३२ ॥
राजभोग सुख कृष्न जू करियतु इन्हकै काज।
लरत जीव धनु छाड़ि कैं हम नहि चाहत राज ॥ ३३ ॥
गुर मातुल सुत स्वसुर अरु सारे हूँ अवरेखि।
ए मारैं मोकौ जदपि हौ नहिं हनौं बिसेषि ॥ ३४ ॥
राज तजौं तिहुँ लोक को किती इती यह भूमि।
सुत न हनौं धृतराष्ट्र के किंह सुख रहिहौं भूमि ॥ ३५ ॥
पाप होइ इन्हकैं हनैं जद्यपि लै हथियार।
तातैं ये हनियैं नहीं बंधु सहित निरधार ॥ ३६ ॥
कृष्न स्वजन कौं मारि कैं सुख लहिये किंह भाइ।
वह जु भुलाने लोभ सौं तैं देखे इह दाइ ॥ ३७ ॥
कुलक्षय कीने दोष जो और मित्र को द्रोहि।
जानि बूझि या पाप कौं किहि बिधि कीजै जोहि ॥ ३८ ॥

कुलक्षय कीनैं कुल धरम जात जु सभैं नसाइ।
धर्म नसैं कुल मैं सभै होत अधर्म स्वभाइ ॥ ३९ ॥

कृष्न अधर्मन कै बढैं दुष्ट होहिँ कुलनारि।
होइ बर्नसंकर सभै त्रियादोष निरधारि ॥ ४० ॥

नर्क परैं संकर भएँ कुलघाती जे लोइ।
पतित हौंइ तिन्हके पितर पिंड जु दे नहिँ कोइ ॥ ४१ ॥

कुलै बर्नसकर भएँ दारिद दोष बढाइ।
जात धरम औ कुल धरम दोऊ देत नसाइ ॥ ४२ ॥
कुलधर्मन के नसत ही निर्मदेहि यह होइ।
सदा नर्क मैं ते रहैं कहत जु यूँ सभ कोइ ॥ ४३ ॥
बडे पाप के करन कौ निस्चय कियो बिचार।
चित मैं आनौ राजसुख हनि कुटुब निरधार ॥ ४४ ॥
कर मैं लै हथियार ये आवैं सो समधाइ।
मोहि हनैं जौ सहज ही मानि लेहुँ सुख भाइ ॥ ४५ ॥
सजय—ऐसें कहि अर्जुन तबै बैठि गयो रथ माहि।
कर तैं डारैं सर धनुष सोक बढ्यौ नरनाहि ॥ ४६ ॥

अर्जुन विषादयोग नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

(२)

सजय—लै उसास अँखियान भरि अर्जुन करुना भाइ।
बहु बिषाद सजुक्त लखि बोले श्रीजदुराइ ॥ १ ॥
कृष्ण—अर्जुन या सग्राम मैं कियुँ दुख पायो मीत।
कीरत अरु स्वर्ग हरैं कायर ज्यूँ भैभीत ॥ २ ॥
कायरता तैं जिन करै यहि ताकौं नहिं जोग।
छाँडि कचाई जीय की सत्रुन कौं दै रोग ॥ ३ ॥
अर्जुन—हरि जू या सग्राम मैं हैं भीषम अरु द्रोन।
पूजा के सर सौं हनों मो सौं कहिये सो न ॥ ४ ॥
गुरहि मार भोगैं करो भखौं सु लोहू रीति।
भीख माँगि बरु खाइये गुरु हंनबो जु अनीति ॥ ५ ॥
यह अब हम नहि जानहीं हार भलो कै जीत।
जिन मारैं हम ना जियैं ते ठाढे हैं मीत ॥ ६ ॥
धर्म माहि हौं मूढ हौं पूछत कृपन सुभाइ।
दीन तिहारी सरन हौं दीजै जुक्ति बताइ ॥ ७ ॥
भूमिलोक सुरलोक को लहौं अकटक राज।
इद्री सोषत जीय कों जाइ न सोकसमाज ॥ ८ ॥
सजय—ऐसे कहि श्रीकृष्न सौं अर्जुन ताही बार।
जुद्ध न हौं हरिजी करों कीनो यहि निरधार ॥ ९ ॥

दुहूँ सैन कैं माँझि यूँ अर्जुन कियो बिषाद।
कृपावत ह्वै कृष्न जू कीनो बचन प्रसाद ॥ १० ॥

श्रीकृष्ण—सोच असोची कौं करत कहत ज्ञान की बात।
सोच न पंडित करत हैं जीव न उपजत जात ॥ ११ ॥
यहि हम तुम नरपति जिते इन्हकौ नास न होइ।
तिहूँ काल थिर हैं जु ये ऐसें सम कों जोइ ॥ १२ ॥
बाल जुवा अरु बृद्धता या देही मैं होत।
तैसे देहाँतर लहै धीरैं मोह न होत ॥ १३ ॥
अर्जुन इंद्री चित्त मिलि बिषै जु सुख दुख देत।
सीत उष्न नहिं थिर रहै सहु तिन्हकों यहि हेत ॥ १४ ॥
जाकै बृथा न होइ कछु सुख दुख गनैं समान।
वहै धीर मुक्तैं लहै बात यहै परिवान ॥ १५ ॥
जो है सो बिनसै नहीं जो बिनसै सो नाहि।
जो इन्ह तत्वन कों लखै गनियै ज्ञानिन माहि ॥ १६ ॥
जाओं जगु यह है भयो सो अबिनासी जान।
जाहि बिनासि न कोउ सकै ताही आतम मान ॥१७॥
अतवंत सभ देह हैं जीव रहत है निच्च।
अबिनासी बहु बस्तु है जुद्ध करैं क्यु न मित्त ॥१८॥
जो याकों हता गनै इन्यों गनै जो कोइ।
यह न मरै मारै नहीं अज्ञानी वै दोइ ॥१९॥
यह न मरै उपजै नहीं भयो न आगै होइ।
अजै पुरातन नित्य है मारै मरै न सोइ ॥२०॥
जो जानत यहि आतमा अज अबिनासी नित्त।
सो नर मारै कौन कौं ताहि हनै को मित्त ॥२१॥
जैसें पटु जीरन तजै पहिरत नर जु नवीन।
देह पुरातन जीव तज नई गहत परबीन ॥२२॥
यहु न कटै हथियार सौं पावक सकै न जार।
भिजै सकै जल नाहिनै सोष न सकै बियार ॥२३॥
कटै जरै सूकै नहीं और न भिजवन जोग।
नित्य रहै सभ ठौर थिर अबिनासी बिन रोग ॥२४॥

प्रगट नहीं जु अचिंत है अविकारी तूँ जानि।
एसें वाकों जानिकैं सोक लेहु निज भानि ॥२५॥
जौ तूँ जानत जीव कौं जनम मरन जो होइ।
तऊ सोक तूं मत करै मन दृढता मैं गोइ ॥२६॥
जो उपजै सो बिनसिहै मरै सु उपजै आइ।
होनहार सो होत है तहाँ न सोक बढ़ाइ ॥२७॥
पाछैं जाहि न जानिये आगैं परै न जान।
माँझ जु यहि कछु देखिये ताको सोक न मान ॥२८॥
जो याहैं देखै कहै सूझै अर्जुन भाइ।
सुनें अचभा सो लगै वह जान्यो नहिं जाइ ॥२९॥
जीव न मार्यो जातु है बसत सभन के देह।
तातें सोच न कीजिये करि काहू सें नेह ॥३०॥
अपनो धर्म बिचार तूं जिन छाडो संग्राम।
धर्मजुद्ध तैं छत्रिअन और न कछु अभिराम ॥३१॥
अपनी इच्छा तैं लह्यो खुल्यौ स्वर्ग कौ द्वार।
भाग्यवंत छत्री लहै ऐसे रन या बार ॥३२॥
और धर्म सग्राम कौं जो तूं करिहै नाहि।
तजिकै कीरति धरम कौं परिहै पापन माहि ॥३३॥
सभै लोक कहिहै अबै तेरो अजस बढाइ।
अजस प्रतिष्ठावत कौ मरबै तें अधिकाइ ॥३४॥
भै तैं अर्जुन रन तज्यौ यौं कहिहैं ये बीर।
तोहि बहुत कहि मानते अब गनिहैं लघु धीर ॥३५॥
तेरे अरि सभ कहैंगे जे अनकहिनी बात।
निज घटियाई कैं सुनैं बहु दुख लागत तात ॥३६॥
लरत मरै लहिहै स्वरग जीतैं पुहवी भोग।
उठि अर्जुन तू जुद्ध करु यहि ताकों है जोग ॥३७॥
लाभ हान सुख दुख सभै जीत अरु हार समान।
तातैं अर्जुन जुद्धि करु पाप लेहु जिन मान ॥३८॥
साख्य बुद्धि तोसों कही कहौं जोग बिधि तोहि।
ता बुधि कैं सजोग तें रहै न कर्मन मोहि ॥३९॥

अल्प कियैं हूँ धर्म यह काटत भौ भै तासु।
कर्म करै बिन कामना ताको होइ न नासु ॥४०॥
बुद्धि जु निस्चैवत की एकै है तू जान।
जिन्हकै निस्चै नाहिनै ते नहिं बहु बुधिमान ॥४१॥
बेदैं मानत स्वर्ग फल ते अज्ञानी लोइ।
कहत इहाँ कछु और नहि तिनमैं ज्ञान न होइ ॥४२॥
स्वर्गलोक की कामना रहत जु जिनके चित्त।
भोग बड़ाई कैं लियैं करत क्रिया मो नित्त ॥४३॥
भोग बड़ाई कामना जिनके चित हार लेत।
निस्चै करि ते बुद्धि कौं नाह समाधि मै देत ॥४४॥
त्रिगुन कर्म कौ कहत हैं वेद सु तजि तूँ मित्त।
धीर्ज धर्म दुख सुख सहा जोगछेम तजि चित्त ॥४५॥
सरिता सागर कूप सौं सरत जु एकैं काज।
तातैं जानौ ब्रह्म कौं लहत वद कौं साज ॥४६॥
तौ अधिकार जु कर्म मै नाहि फलन सौं हेत।
कर्मन कै फल छाड़ि कैं करि कर्मन गत चेत ॥४७॥
योगस्थित ह्वै कर्म करि सभै सग कौं त्याग।
सिद्धि असिद्ध समान गनि यहै जोग अनुराग ॥४८॥
बुद्धिजोग तें कर्म कौं अर्जुन तूँ घटि जान।
सरन होइ तूँ बुद्धि की दीन कामना मान ॥४९॥
बुद्धिजुक्त दोऊन जन कहा पुन्य कह पाप।
जोग कर्म मै चतुरइ सोऊ कर तूँ आप ॥५०॥
चाहत नाहि जु कर्मफल जे पडित बड़भाग।
कर्मबध कौं डारिकै लहत मुक्ति अनुराग ॥५१॥
मोह सघन तजिहै जबै अर्जुन तेरी बुद्धि।
तब चाहै बैराग्य कौं चित मैं करिकैं सुद्धि ॥५२॥
तेरी मति बैराग्य मैं थिरु रहिहै जब मित्त।
तब समाधि मैं जोग लहि हुइहै निस्चल चित्त ॥५३॥
अर्जुन— जाकि बुधि निस्चल सदा ताके चिह्न बताइ।
कैसे बोलत किम रहत चलत जु हैं किह भाइ ॥५४॥

श्रीकृष्ण— जे हैं मन मैं कामना तिन्हकौं तजै जु कोइ।
आतम सौं सतोष गहि निस्चलबुद्धि सु होइ ॥५५॥
सुख कौं तजि भागै नहीं सुख चाहै नहिं चित्त।
तजै नेह औ क्रोध भै निस्चल बुद्धि सु मित्त ॥५६॥
नेह न काहू सौं करै भले बुरे की चाह।
भले बुरे सौं काज नहिं थिरबुधि कहिये ताहि ॥५७॥
ज्यौ कूरम निज अग कौं खैंच आपकौं लेत।
तैसें खैंचै इद्रियन तजि बिषयन को हेत ॥५८॥
बिषै करत है दूर सो तजत जु है आहार।
आतम देख्यो जातु है अभिलाषा निरधार ॥५९॥
ज्ञानवत जो पुरुष हैं जतन कठिनता साधि।
इद्री अति बलवत हैं तिन्हौं लगावत ब्याधि ॥६०॥
तातें रोकै इद्रियन मो में चित कौं लाइ।
बस कीनी जिन ए सभैं सो थिरबुद्धि सुभाइ ॥६१॥
जब धावत हैं बिषय कौं तिनसौं उपजत सग।
काम जु उपजत सग सौं तातें क्रोध अभग ॥६२॥
मोह होत है क्रोध तैं होत मोह सुधनास।
सुद्धि गएँ बुधि जात है बुद्धि नसैं मृतु तास ॥६३॥
राग द्वेष कौं जो तजै करै न बिषयन सेव।
जो इद्रिय निज बस करै लहै सात को भेव ॥६४॥
साति जु हिय मैं गहत है होत दुखन की हानि।
बुद्धि तबै थिर होत है यूँ हित लीजो मानि ॥६५॥
जोग बिना बुद्धिहुँ नहीं बुधि बिन होहि न ध्यान।
ध्यान बिना साती नहीं ता बिन सुख न सुजान ॥६६॥
इद्री जित जित फिरत है तित तित ल्यावत खैंचि।
मन बुद्धी हरि लेत है बायु नाउ ज्यौं ऐंचि ॥६७॥
जिन इद्री जीती सभै ठौर ठौर तैं आनि।
बिषैत्याग है जिन कियो थिरबुधि ताहि जु मानि ॥६८॥
जो जन जाग्रत है तहाँ जहाँ सभन कौं रात।
जीव जहाँ जाग्रत सभै सो मुनि कौं निसि भात ॥६९॥

जैसे जल सम सरित को मिलत समुद्रै जाइ।
त्यौं समाहिं सब कामना साति रहै तिहिं आइ ॥७०॥
मन सौं तजि सब कामना जो निसप्रेही होइ।
अहंकार ममता तजै तामै साति समोइ ॥७१॥
ब्रह्मज्ञान तोसौं कह्यो यातैं मोह नसाइ।
सो बुधि अत समै रहै मिलै ब्रह्म मैं जाइ ॥७२॥

साख्ययोग नामक
द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

(३)

अर्जुन—बुद्धि भली है कर्म तैं कृष्न कही तुम जोहि।
कर्म भयानक में कहौ कैसें डारत माहिं ॥ १ ॥
बचन सुने संदेह के मो बुधि है भरमाति।
निस्चै करि एकै कहौ मुक्ति लहौं जिहि भाँति ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण—निष्ठा जो द्वै भाँति की सो मैं कही बनाइ।
साधन कौं ज्ञानै भलौ कर्मी कर्म बताइ ॥ ३ ॥
कर्म बिना कीने पुरुष ज्ञानै लहै न कोइ।
किये बिना सन्यास कैं दोऊ मुक्ति न होइ ॥ ४ ॥
कर्म करे बिनु छिनक हूँ रहै न कोऊ जतु।
बिबस भए कर्मन करैं बाँधें मायातंतु ॥ ५ ॥
कर्मेंद्रिय को रोकि कें मन बिषयन को ध्यान।
कपटी मूरख है बड़ो ताको दंभी जान ॥ ६ ॥
मन सो रोकै इंद्रियन कछुअक कर्म पचाइ।
फल अभिलाषा कौं तजै बात यहै अधिकाइ ॥ ७ ॥
अनकर तें जे कर्म हैं भले सु तूँ करि मित्त।
बिन कीने तैं कर्म कै देह न निभहै नित्त ॥ ८ ॥
जज्ञकर्म बिनु कर्म जो जगबंधन ते होत।
तिन काजैं कर्मन करौ मेटि फलन को मोत ॥ ९ ॥
और तुम्हारो यज्ञ तै कामधेनु यहि तात।
जज्ञ स तरबौ जगत कौ कही बिधाता बात ॥१०॥

यज्ञन करि देवन जजौ देव तुम्हैं फल देहु।
वृद्धि परस्पर जौ करौ मनबांछित फल लेहु ॥११॥
इष्टभोग कों देत हैं देव जजै तें मित्त।
बिन पूजैं जो लेत है सु वै चोर निस्चित्त ॥१२॥
जज्ञसेष जो खात है पापन डारत धोइ।
जज्ञ बिना जो खात है अघन लहत है सोइ ॥१३॥
कर्म जु उपजत बेद तें बेद ब्रह्म तें मान।
ब्रह्म जु भासत सबन मैं जाहि जज्ञ करि जान ॥१४॥
बेद बताए कर्म जे नर जु करत है कोइ।
पापि इंद्रियनबस भए जन्म रहत है खोइ ॥१५॥
आतम सौं संतुष्ट जे आतम सौं रत होइ।
तृप्त जु आतम सौं रहै ताहिं न नीको कोइ ॥१६॥
जाहि करें तें पुन्य नहिं बिनु कीने नहिं दोष।
ब्रह्मादिक सों काज नहि आतम हा सों तोष ॥ १७ ॥
फल कर्मन कौं छाड़ि कै कर्म करौ तुम मित्त।
सग बिना कर्मन करै मुक्ति लहै तिह नित्त ॥ १८ ॥
लही सिद्धि जनकादिहू कीने कर्मसमाज।
लोकरीत जो देखि कै तुम ही करो सु काज ॥ १९ ॥
बडे आचरैं जो करैं सोई मानैं आन।
ताही मग सब जग चलै बडे करैं सु प्रमान ॥ २० ॥
मोकौं कछु करनो नहीं तिहूँ लोक मैं काज।
कछु न लह्यो लहिबो न कछु कर्म करत या साज ॥ २१ ॥
जो हौं कर्मन नहिं करौं रहौं आलसी मीत।
त्यूँ हूँ नर सब ही गहै मेरै मग की रीत ॥ २२ ॥
जो हों कर्मन नहिं करों सबको होवै नासु।
प्रगट होहि संकर तबै हनौं प्रजा या आसु ॥ २३ ॥
मूरख जो कर्मन करै करि बहु प्रीति जु भाइ।
लोककाज ज्ञानी करै मन तासौं न लगाइ ॥ २४ ॥
तिनकी बुधि भेद न तजै रहे कर्म लपटाइ।
सावधान ज्ञानी रहै पोषै तेई दाइ ॥ २५ ॥

माया के गुन करत हैं सबैं कर्म सह ज्ञान।
अहंकार करि मूढ जे लेत आपको मान ॥ २६ ॥
गुन अरु कर्म बिभाग कौं जानैं तत्व जु कोइ।
इंद्रिय बिषयन सौं लगी आप गमन नहिं होइ ॥ २७ ॥
माया गुन करि मूढ जे रहे बिषय लपटाइ।
ता मग तैं ज्ञानी तिन्हैं देत न क्यूं हूं चलाइ ॥ २८ ॥
चित अध्यातम आनिकै कर्मन मो मैं राख।
अहंकार ममता तजो बुद्धहि को अभिलाष ॥ २९ ॥
जो नित या मेरे मतैं सरधा सौं गहि लेत।
जिनके जिय निस्चै करम करम तजैं करि चेत ॥ ३० ॥
जो मेरैं या मतहि कौं करत न दोष लगाइ।
ते मूरख जानैं नहीं हैं अचेत के भाइ ॥ ३१ ॥
ज्ञानवंत हूं करत हैं अपनी प्रकृति समान।
सब कोई निज प्रकृतिबस रोकैं ते जु अजान ॥३२॥
सब इंद्रिन कौं बिषय मैं राग द्वेष जो होइ।
तिन्हहीं नर बस जाइ नहिं रहैं जु अरि सम जोइ ॥३३॥
नून होइ नर धर्म जा पर तैं अधिको मानु।
मीचु भली निजु धर्म मैं परधर्मो भय जानु ॥३४॥
अर्जुन—कहो जु प्रेरैं कौन कैं पुरुष करत है पाप।
याकैं इच्छा नाहिनैं बस देत संताप ॥३५॥
श्रीकृष्ण—यह जु काम अरु क्रोध है रजगुन ही तैं होइ।
क्यों हूं जु पूरन होत नहिं पापी कौ अरि जोइ ॥३६॥
अग्नि ढपै ज्यूं धूम सौं दपन मल कैं भाइ।
गर्भ जुचा ज्यूं ढपै जगु इन ताही के दाइ ॥३७॥
ज्ञानी हूं कौ ज्ञान इन बैरी राख्यौ झोंप।
काम जु दुष्पूर अग्नि याहि सकै न कोऊ दांब ॥३८॥
इंद्रिय मन अरु बुद्धि ह एई जाको ठान।
इन्ह करि मोहत जु ह ज्ञानी हूं का ज्ञान ॥३९॥
अर्जुन या ते पहलहीं इंद्रिन कौं तूं रोक।
हरत ज्ञान बिज्ञान जो इन्ह पापन कौं ठोक ॥४०॥

इंद्रिय है सभ तैं परे तिन्हैं परैं मन जोइ।
मन तैं परैं जु बुद्धि है तातैं आतम होइ ॥४१॥
आतम लखि बुधि तैं परैं मन बस करु तिहि माँहि।
काम रूप अरि दुस्सहै मारै जर नर ताहि ॥४२॥
कर्मयोग नामक तृतीय अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

(४)

श्रीकृष्ण—यह जु जोग है मैं कह्यो पहिल प्रमुख सौं आइ।
परंपरा या जोग की जानत हैं रिखराइ ॥ १ ॥
बहुत दिना बीते गए सोई जोग नसाइ।
याही तैं मो मत जु है और भगत कै भाइ ॥ २ ॥
अर्जुन—तुम्ह तो प्रगटे हो अबैं सूर पुरातन देव।
तुम्ह कब तासौं है कह्यो हौं जान्यो नहि भेव ॥ ३ ॥
श्रीकृष्ण—तेरे अरु मेरे जनम बीते हैं बहु बार।
तूं तिन्हकौं जानत नहीं हौं जानत निरधार ॥ ४ ॥
अज अबिनासी प्रगट हौं जगत ईस करतार।
अपनी इच्छा लेत हौं सुद्ध सत्य अवतार ॥ ५ ॥
जब अर्जुन जग मैं धरम घटत बढत है भार।
बढत अधर्म जहाँ तहाँ तब हौं जन्मौं आइ ॥ ६ ॥
साधन की रच्छा करौं पापी डारौं मार।
थापत जीत जु धर्म की जुग जुग धर्म बिचार ॥ ७ ॥
मेरे जन्म जु कर्म कौं तत्वु लहै जो जानि।
देह तजै मोकौं मिलै बहुर न जन्मै आनि ॥ ८ ॥
काम क्रोध भय कौं तजै मो मैं राखि जु भाइ।
बहुत ज्ञान तप करि गहै मो हिय माझ समाइ ॥ ९ ॥
जो मोकौं जैसे भजत हौं तैसैं फल देत।
अर्जुन नर सम जगत मैं मेरो मग गहि लेत ॥१०॥
कर्म सिद्धि की चाह करि पूजन देवन लोइ।
कर्मन की नरलोक मैं सिद्धि बेग नहि होइ ॥११॥
चारो बरन जु मैं रचे करि गुन कर्म बिभाग।
हौं इन्हकौ करतार हौं नाहि मोहि अनुराग ॥१२॥

कर्म न मौकों लगत हैं मोहि न फल की चाहि।
ऐसें जो मोकों लखत कर्म न बाँधै ताहि ॥१३॥
जो चाहत है मुक्ति कौं करैं कर्म तिह आइ।
तातैं तुंहू जु कर्म कर पहलन की मति पाइ ॥१४॥
कौन अकर्म सुकर्म को रहत पडितौ मोहि।
मुक्ति काज सोई करम कहे देत हूँ तोहि ॥१५॥
जान्यौ चहियै कर्म हूँ और बिकर्म सुभाइ।
सुन अकर्म रति लीजिये गहन कर्म की दाइ ॥ १६ ॥
कर्मन माँझ अकर्म जे लहै अकर्मन कर्म।
बुद्धिवत तिन्ह सभ किये मेटे मन के भर्म ॥ १७ ॥
जाकै सभ आरभ निज बिना कामना होत।
ताकों पडित कहत हैं दह कर्म कै गोत ॥ १८ ॥
कर्मफलन छाड़ै सदा करै न ताकी आस।
ताको कर्मन करत हूँ लगै न भय की फास ॥ १९ ॥
जितनी इद्री देह मन काम परिग्रहि जोहि।
देह काज कर्मन करें पाप न लागत तोहि ॥ २० ॥
जथालाभ सतोष जो सुख दुख लखै न दोइ।
सिद्धि असिद्धी एक सी कमन बध न होइ ॥ २१ ॥
तजै सभै जो कामना ज्ञान लगावै चित्त।
जज्ञ काज कर्मन करै सो न बाँधिये मित्त ॥ २२ ॥
होम अग्नि हवि ब्रह्म है अपै ब्रह्महि जान।
जाइ ब्रह्म में सो रहै कर्मसमाधिहि गान ॥ २३ ॥
देवन कों इकु जजत हैं करत जज्ञ बहु भाइ।
एक ब्रह्म में जजत है ज्ञानजज्ञ के दाइ ॥ २४ ॥
एक जु होमत इद्रि को सजम अग्नि अनूप।
बिषयन होमत एक हैं इद्री अगिन सरूप ॥ २५ ॥
जे सभ इद्रिन के करम और कर्म सभ प्रान।
होमत सजम अग्नि मैं प्रगट होत चित ज्ञान ॥ २६ ॥
एक जजत है दरब सों एक तपस्या जोग।
एक जु पठ कै ही जजै एक ज्ञान सौं लोग ॥ २७ ॥

होम अपानै प्रान मैं प्रान अपानहि माह।
प्रान अपानहि रोकिकैं जजत रहै नरनाह ।। २८ ।।
प्रानन हीं मैं प्रान कों होमत तजै अहार।
ये सभ जानत जज्ञ कों मेटत पापबिकार ।। २९ ।।
जज्ञसेष अमृत भखत होत ब्रह्म में लीन।
या जु लोक बिन जज्ञ नहि परलोकन है छीन ।। ३० ।।
बहुत भाँति बेदन कहे जज्ञ सभै ये जानि।
ते सभ जानो कर्म तैं लेहु मुक्ति श्रीखानि ।। ३१ ।।
दरब जज्ञ तैं है बड़ो ज्ञान जज्ञ यहि भाइ।
कर्म जिते बेदन कहे ज्ञानहि रहे समाइ ।। ३२ ।।
कीजै बहुत जु नम्रता प्रस्नु जु सेवा भाँति।
तैं ज्ञानी उपदेस है ज्ञान जिन्हैं तिह साँति ।।३३।।
अर्जुन तू याकैं लहैं रहै जु फिरि नहिं मोहि।
सभ जीवन कौं देखिकैं आप माझ को जोहि ।।३४।।
सभ पापन मैं जो बड़ो पापी ही तू होहि।
ज्ञान नाउ चढि उतरिहै पापसिंधु सम जोहि ।।३५।।
जैसे ज्वाल हुतास की डारत है सभ जारि
ज्ञान अग्नि त्यू प्रबल है डारत कर्म निवारि ।।३६।।
ज्ञान समान न लोक मैं पावन नहीं जु और।
जोगसाधना जा करै लहै ज्ञान की ठौर ।।३७।।
इद्रीजित श्रद्धासहित पावत ये मो ज्ञान।
तब पावै ततकाल ही सुख औ साति सुजान ।।३८।।
जो मूरख श्रद्धा बिना ताको होइ बिनास।
जाकौं यह सदेह है दुहूँ लाक सु निरास ।।३९।।
मो मैं अरपै करम करि करि सदेह सु दूरि।
ज्ञानी बधै न कर्म सो रहै सदा सुख पूरि ।।४०।।
सदेह जु अज्ञान तैं उपज्यौ अर्जुन आइ।
ज्ञान खड्ग सौं काटि कै जोग करौ नरनाह ।।४१।।

कर्मसन्यासयोग नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ।४।।

(५)

अर्जुन—कबहूँ हौ सन्यास कौं कबहि कर्म को जोग।
निस्चै करि एकै कहो मेटौं क्यूँ भवराग॥ १॥

श्रीकृष्ण—कर्मजोग सन्यास अरु ये दोऊ समदैन।
कर्मजोग सन्यास मैं कर्मन लहिये चैन॥ २॥
द्वैष तजै चाहै तजै सो सन्यासी जान।
रागद्वेष तें जो रहित ताहि छुट्यो तूँ मान॥ ३॥
जोग साख्य द्वै कहत हैं मूरख पडित नाहि।
दोउन मैं एकै भजत दोऊ फलिहैं ताहि॥ ४॥
थान जु लहिये साख्य तैं सोउ जोग तैं होइ।
साख्य जोग एकै गनै ताकौं ज्ञानी जोइ॥ ५॥
लहत सँन्यासै दुख सो बिनु कर्मन रे मित्त।
जोग जुगति जो करत हैं जुगनि लहत निस्चित्त॥ ६॥
इद्रियजित हुइ सुद्ध जे जोगजुगति जो कोइ।
जीवन जानत आतमा कर्मलिप्त सु न होइ॥ ७॥
ज्ञानी कर्म जु करत है लेत किये नहिँ मान।
सूँघत देखत चलत पुनि सुनत छुवत हूँ खान॥ ८॥
सोवत जाग्रत चलत हूँ बोलत डारिहुँ देत।
इद्रिय बिषयन सौं पगी जानत है सभ हेत॥ ९॥
कर्म करै तजि सग कौं समै ब्रह्महूँ जान।
ताकौं पाप न लगत है पद्मपत्र जल मान॥१०॥
देही मन बुधि इद्रियन जोगी होइ निसग।
कर्म करत अति चाहि सों चित्त सुद्ध कै ढग॥११॥
ज्ञानी मुक्ति जु लहत है कर्म करैं फल छोडि।
मूरख फल की आस करि बँधत कामना आडि॥१२॥
मन करि कर्मन जे तजत ज्ञानी तिन्हकौं मानि।
नव द्वारन पुर मैं बसत लेत सुखन की खानि॥१३॥
ईस्वर रचै न सृष्टि कौं नहि कर्मन कर्तार।
कर्मफलैं हूँ नहि सृजत प्रकृति करत बिस्तार॥१४।

मुक्त न काहू कौं गहै और पाप नहि लेत।
ढाप्यौ ज्ञान अज्ञान तैं प्रगट न मोहै देत ॥१५॥
दूर कियो अज्ञान जिन दियो ज्ञान प्रगटाइ।
देखत ईस्वर रूप तै ज्ञान सूरु कैं दाइ ॥१६॥
जे मन कौं अरु बुद्धि कौं राखत ईस्वर माइ।
जन्म मरन तिन्हकों नहीं मुक्त होंहि नरनाह ॥१७॥
बिद्या बिनय जो लिये द्विज गो गज स्वपचरु स्वान।
ज्ञानी इन्हकों सम गनै भेद लेत नहि मान ॥१८॥
समता जिन्हकैं हीय मैं तिन जीत्यो ससार।
समता ब्रह्महि को कहत ब्रह्मलीन निरधार ॥१९॥
सुख पावै हरषै नहीं दुख पावै न रिसाइ।
राखै थिर निज बुद्धि कौं ब्रह्महि रहै समाइ ॥२०॥
बाहर के सुख कों तजै हियसुख रहै सुजान।
ब्रह्मबिषै चित को धरै लहै जु आनँदखान ॥२१॥
बिषै जिते ससार के ते हैं दुख के मूल।
उपजत बिनसत ही रहैं पडित गहै न भूल ॥२२॥
काम क्रोध के वेग कौं जे सहि सकैं सुभाइ।
ते जोगी नित ही रहैं थिर सुख मैं लपटाइ ॥२३॥
जाके हीय प्रगास है अतर सुख आराम।
वह जोगी परब्रह्म है लहै ब्रह्म को धाम ॥२४॥
जो ज्ञानी पापन तजै होत ब्रह्म मैं लीन।
भेद न ताकैं जिय रहै होत सभन सौं दीन। २५॥
काम क्रोध सो दूर करि बस कीनो जिन चित्त।
ज्ञानवत ते हैं सदा ब्रह्म चहूँ दिस नित्त ॥२६॥
तजे बिषै ससार के दृष्टि भौंहु मै राख।
प्रान अपानहि सम करे नासा मधि अभिलाख ॥२७॥
जीतै इन्द्रिय बुद्धि मन मुक्ति जु मुनि मन देइ।
इच्छा भय क्रोधै तजै मुक्ति पदारथ लेइ ॥२८॥
तप जज्ञन को भोक्ता सभ लोकन को ईस।
सांति लहै जो जानिकै मोकों प्रभु जगदीस ॥२९॥
सन्यासयोग नामक पचम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

(६)

श्रीकृष्ण— कर्मन फल चाहै नहीं कर्म करै निहकाम।
जोगी सन्यासी वहै पावत है सुख धाम ॥१॥
बिन सन्यासैं जोगु नहि यह जु भाँत तूँ मान।
जाकों सन्यासी कहे वहै जोगि तूँ जान ॥२॥
जोगहि कर्मन तैं लहै ज्ञानी चित्तबिचार।
जोगु गहै साम्तै लहे बिषै इद्रियन मार।३॥
बिषयन सों अरु कर्म सों होइ प्रीति जब दूरि।
सब सङ्कल्पन कों तजै जोग रहै तब पूरि ॥४।
निज आतम कौं उद्धरै अधोगमन जु करेइ।
आतम ही रिपु आपनो आतम ही सुख देइ ॥५॥
आपहि जीतै आतमा सोई बंधु जु याहि।
जिन जीत्यो नहिं सो वहै अरि ह्वइ बर्तत ताहि ॥६॥
जिन जीत्यो है आतमा सांति लही बहु ज्ञान।
सीत उष्न सुख दुख जु सम समै मान अपमान॥७॥
जानत ज्ञान विज्ञान जो औ इंद्रीजित होइ।
कंचन पाहन एक सम गनै जु जोगी सोइ ॥८॥
मित्र उदासी सत्रु पुनि निज अरु बंधु समान।
साधू पापी चित्त मैं गनत एक उनमान ॥९॥
बैठि इकोसो इकचितो जोगी साधे जोग।
एकाकी चाहै न कछु लोरै नहि सुख भोग।१०॥
ठौर पुनीत निहारि कैं करि आसन बिस्तार।
नहिं ऊंचो नीचो नहीं पटु कुस अजिन बिथार ॥११॥
करि बैठै मन कौं जु थिर सब इंद्रिय कांर्ज ति।
करिकैं आतम सुद्ध कौं जोग करै इहि रीति ॥१२॥
काया सिर अरु ग्रीव कौं राखै एक समान।
डीठ करैं निज नासिका देखै नहिं दिस आन ॥१३॥
सात गहै भय कों तजै ब्रह्मचर्ज ब्रत लेइ।
मो मैं राखै रोकि मन रहै जग कैं भेइ ॥१४॥

या बिधि करै जु जोग कौं निज मन कों थिर राखि।
साति लहै मोकौं मिलै रहै अमीरस चाखि ॥१५॥
जोग लहै नहि बहु भखैं बिनु खाएहू मीत।
सोवत हूँ सोचै नहीं अति जाग्रत है नीत ॥१६॥
जुक्त जु हार बिहार सों कर्मजुक्त पुन होइ।
जाग्रत सोवत यों जुगत सो डारत दुख धोइ ॥१७॥
जतनन सों मन रोकि कैं राखै आतम माइ।
तजै सबै जो कामना सो जोगी नरनाह ॥१८॥
जैसे दीप समीर बिनु रहै जोति ठहिराइ।
जोगी निस्चल चित्त कौं उपमा है या भाइ ॥१९॥
जोगी सेवत जोग कौं चित्त जहाँ ठहिराइ।
निरख जु आतम कों तहाँ रहै महासुख पाइ ॥२०॥
जो सुख इंद्रिन तें परे बहुत बुद्धि गहि लेत।
या दुख कौं जानै तबै जा सुख पाछै नेत ॥२१॥
जा पाएं लाभ न अधिक और हानि नहिं मित्त।
थिरता गहि डोलै नहीं बहु दुख पाएँ चित्त ॥२२॥
दुख हू कें सजोग तें मानि जु लेत बियोग।
निस्चै करि जोगै करै ताहि कहत है जोग ॥२३॥
सकल्पादि जे कामना तिन्हैं तजै चित चाइ।
मन सों रोकै इंद्रियन जोग करै या भाइ ॥२४॥
धीरज धरि अरु बुद्धि करि हरुएँ हरुएँ त्यागि।
कछू करै नहिं कामना, आतम मैं अनुरागि ॥२५॥
मन चचल जित तित चलै ताकों राखै रोकि।
करि सजम निज आतमा सजै जु ताकौं टोकि ॥२६॥
जाके मन मैं साति है पापरहित जो होइ।
मगन जु ब्रह्मानद मैं ता जोगी कैं जोइ ॥२७॥
जो जोगी यहि बिधि करै जोग पाप कौं त्यागि।
लहै सहज सुख ब्रह्म को रहत सदा अनुरागि ॥२८॥
मोहि लखै सब ठौर जो सब कैं मोही माहि।
मोहिं जु देखत सो सदा हौं हूँ देखत ताहि ॥२९॥

व्यापक हौं सभ जीउ मैं मोहिँ जु सेवत कोइ।
कैसे ही कित हूँ रहौ ताकों मो महि जोइ ॥३०॥
सर्ब विषै इस्थित जु हौं इमि लखिहै जो मोहि।
रहौ कौन हीं भाँत वह मो मैं बर्तत जोहि ॥३१॥
सभ कों देखै आप सम सुख दुख एकै आइ।
सो जोगी सभ सों बड़ो मोमै रहै समाइ ॥३२॥

अर्जुन—जोग कह्यो तुम कृष्न जू मोकों एक समान।
रहै न मो मन चचलहि मो तुम कियो बखान ॥३३॥
मन है चचल कृष्न जू बहु छोभक दृढ जानि।
ताकों रोकन पौन सम है अति कठिन सुमानि ॥३४॥

श्रीकृष्ण -अर्जुन तैं साँची कही मन चचल न गहाइ।
जोग किये बैराग सों नीकै पकड्यौ जाइ ॥३५॥
जिन पकड्यो नहिं चित्त निज तापै जोग न होइ।
जिन अपनौ मन बस कियो लहत तपन सों मोइ ॥३६॥

अर्जुन—अजती अरु सर्धासहित जोगभ्रष्टता पाइ।
लहै न सिद्धि सुजोग की कौन जु गति कों जाइ ॥३७॥
कहूँ दुहूँ तैं भ्रष्ट है बादर ज्यूं बिनसाइ।
ताकों कछू न आसरो रह्यो मूढ कैं भाइ ॥३८॥
मेरे या सदेह कौं दूर करौ जगदीस।
मेटौ या सदेह कौं कौन करै तुम्ह रीस ॥३९॥

श्रीकृष्ण—अर्जुन दोऊ लोक मैं ताको होइ न नास।
भले कर्म जो करत हैं ताकों नहिँ अवबास ॥४०॥
पुन्यवत के लोक लहि रहत बहुत दिन जाइ।
जोगभ्रष्ट धनधानजुत तिह घर जन्मै जाइ ॥४१॥
बुद्धिवत जोगीकुलन आइ लेत औतार।
जन्म लेन ऐसे घरन दुर्लभ है निरधार ॥४२॥
तितहूँ पहिली देह कौं लहत बुद्धिसजोग।
जतन करत है सिद्धि कों बहु बिधि साधै जोग ॥४३॥
ज्यूँ सो अपने बस नहीं है पहिलो अभ्यास।
तातैं उपजै जोग जो ब्रह्मसिद्धि महिँ बास ॥४४॥

जोगी जो जतनहि करै सभ अघ डारे धोइ।
बहुत जनन करि सिद्धि लहि ताहि परम गति होइ ॥४५॥
तपसी सैं जोगी अधिक ज्ञानी हूँ तैं जान।
कर्मिन हूँ तैं है अधिक अर्जुन जोग सु मान ॥४६॥
जो जोगी राखत मनहि मो मैं निश्चल भाइ।
श्रद्धाजुत मो कों भजै सो सभ तैं अधिकाइ ॥४७॥

आत्मसंयमयोग नामक षष्ठ अध्याय समाप्त। ६ ॥

(७)

श्रीकृष्ण—मेरो ही कर आसरो मो ही मैं चित राख।
मो कों जाने सत्त वहि यूँ समझायो भाख ॥ १ ॥
ज्ञान जु औ विज्ञान कों तो सों कहौं विधान।
या कैं जानैं जानबो कछु न रहत है जान ॥ २ ॥
जतन करत है सिद्धि कौ एकै जो नर माहिं।
तिन मैं हूँ कोऊ लखत और लखै मुहि नाहि ॥ ३ ॥
भूमि नीर पावक पवन अंबर मन बुधि मान।
अहंकार हैं आठवों माया भेद न जान ॥ ४ ॥
माया मेरी एक यह जिन जु गह्यौ संसार।
सांची मन मैं मानि लै जीवरूप निरधार ॥ ५ ॥
माया तैं उत्पन्न हैं सभै जीव यहि दाइ।
हौं उपजावत जगत कौं नास करौं चित चाइ ॥ ६ ॥
अर्जुन मो तैं जो परैं और बात जिन मान।
ज्यूं मनियन महि सूत इक त्यूं सभ माहिं पिछान ॥ ७ ॥
चंद सूर को किरन हौं जल रस मोकों मान।
बेदन मैं हौं प्रनव हौं पौरुष सब्द बखान ॥ ८ ॥
गंध जु हौं ही फूल महि हौं पावक मैं तेज।
.. ॥ ९ ॥

सभ जीवन कौ बीज हौं मोहि जानि यौं लेइ।
बुद्धिवंत मैं बुद्धि हौं सभ तेजन को गेह ॥१०॥
बल बलवंतन कों जु हौं कामराग तित नाहिं।
कामरूप हौं ही जु हौं धर्म बसै मुझ माहिं ॥११॥

राजस तामस सातकी जेई सिगरे भाइ।
ये सभ मो मै बसत है मोहिं न इनसों चाइ ॥१२॥
तीनो गुन के भाउ जे तिन्ह मोह्यो ससार।
मोहिं जु कोऊ ना लखत इन्हकै परले पार ॥१३॥
मेरी माया गुनमई दुस्तर तरी न जाइ।
जो कोइ आवै मो सरन सो जु तरै सुख भाइ ॥१४॥
पापी मूरख जे जगत ते नहिँ पावत मोंहि।
ज्ञान जु माया करि हरौं असुर गुनन मो जोहि ॥१५॥
पुन्यवत ते चार विधि मोहिँ भजत चित आन।
ज्ञानी रागी कामजुत जिज्ञासी सु निदान ॥१६॥
ज्ञानी जो भगतिहि करै सो सभ ते अधिकाइ।
ज्ञानी कों बल भुज जु हौं ज्ञानी मोहिँ सुहाइ ॥१७॥
मेरे मति यह सभ बढे ज्ञानी मो कों जान।
उत्तम गति पाई जु तिन्ह मेर लेत नहि मान ॥१८॥
बहु जन्मन मोकों लहै ज्ञानवत रे मित्त।
बासुदेव सभ मैं लखै सो दुर्लभ जित चित्त ॥१९॥
ज्ञान नहीं जिनकै हिये सेवत और देव।
अपने काम स्वभाव सों बँध्यो जु ताही भेव ॥२०॥
श्रद्धाजुत जे पूजही देवन कों चित चाइ।
ताकों ताही माझ हौं श्रद्धा देउँ बढाइ ॥२१॥
सो वाही श्रद्धा सहित पूजत वाही देव।
देत जु हौं ही कामना वह नहिँ जानत भेव ॥२२॥
फल थोथा पावत जु वह बिना ज्ञान है मूढ।
देवन कै देवन मिलै मो भगती मैं रूढ ॥२३॥
जाके थोड़ी बुधि जु है प्रगट न जानत मोहि।
अबिनासी उत्तम जु हौं सभ तैं न्यारो जोहि ॥२४॥
ढँप्यो जु माया जोग हौं काहू कौं न प्रकास।
मूरख मोहि न जानही अजर अमर सुखबास ॥२५॥
जीव जिते जानत इन्हैं बरतमान हूँ मित्त।
मैं निहारि सभ कौं लखौं मोहि लखै नहिँ चित्त ॥२६।

राग द्वेष अज्ञान तें सभैं जु मोहित होत।
मान लेत हैं आपकों हम हैं सुखन उदोत ॥२७॥
पुन्य करैं जे जगत मैं दूरि कियो निज पाप।
तेई छूटत मोह तैं मो कों पावत आप ॥२८॥
जरा मरन की हानि को जो कोउ करत उपाइ।
जानत जे अध्यातमैं ब्रह्म कर्म कै भाइ ॥२९॥
अधिदैवत अधिभूत जो मोको जानत मित्त।
मरन समै भूलत नहीं जोगी मेरो चित्त ॥३०॥

ज्ञानयोग नामक सप्तम अध्याय समाप्त ॥७॥

(८)

अर्जुन— अध्यातम को ब्रह्म को कर्म कहा जगदीस।
अधिदैवत अधिभूत को जानत बिस्वैबीस ॥१॥
अधिजज्ञहि कासों कहत या देही मैं कौन।
कैसैं तुम्हको जानियै प्रान करत जब गौन ॥२॥

श्रीकृष्ण— अछर ब्रह्म सौं हैं कहत अध्यातम जु सुभाइ।
जो उपजावत जगत कौं सोई कर्म सदाइ ॥३॥
देह जु है अधिभूत यह अधिदैवत है जीव।
सब देहिन की देह मों सो अधिजज्ञ सु पीव ॥४॥
अत रमैं देहै तजै ता सों सिमरन होइ।
सो तबही मोकों मिलत तहाँ न ससौ कोइ ॥५॥
प्रानी जब देहै तजत सिमरत जोई काज।
यामै ससौ नहि कछू पावत सोई साज ॥६॥
मेरो सिमरन नित करै, सिद्ध वरौ रस मीत।
अर्पै मो मैं बुद्धि मन तब आऊँ मैं चीत ॥७॥
जोग जुगत अभ्यास मैं जाको चित थिर होइ।
मो मैं मन राखै सदा पावत पुरुषै सोइ ॥८॥
सब करता सूछम जु अति कबि सु पुरातन मान।
रबि समान तातैं परै सिमरन ताको ठान ॥९॥

मरन समै मनु थिर करै भक्त जोग बलवान।
भ्रकुटी मध्यै प्रान धरि परम पुरुष मैं जान ॥१०॥
अच्छर तासों कहत हैं बीतराग जिहिँ जात।
ब्रह्मचर्ज को जे करैं ता पदवी की बात ॥११॥
सभ द्वारन को बस करैं मन रोकै हिय माहि।
प्रानहि राखैं सीस महि रहै धारना गाहि ॥१२॥
प्रनवाच्छर को जप करै सिमरै मा कों नित्त।
या बिधि जो देहैं तजै लहै परम गति मित्त ॥१३॥
थिर चित ह्वै मोकों जपै सदा निरंतर होइ।
जोगी कों हौं सुलभ हौ और लहै नहिँ कोइ ॥१४॥
महापुरुष सिद्धै लहै मो मैं होत सु लीन।
दुख को घर यह जन्म है तासो होत सु दीन ॥१५॥
ब्रह्मलोक लौं लोक जे तिन्ह में फिरत जु लोइ।
अर्जुन मो कों पाइकैं जन्म लहै नहि कोइ ॥१६॥
सहस जुगन के अंत जो ब्रह्मा को दिन जान।
रात जु तितनी होति है ज्ञानी कहैं बखान ॥१७॥
ब्रह्मा के दिन उवत ही प्रगटत यह संसार।
निसि कै आए जात है माया को ता बार ॥१८॥
बार बार उपजत समै जीवन मत रे मित्त।
ब्रह्मा कै दिन रैन मैं वह जात हैं नित्त ॥१९॥
ब्रह्म जु माया तै परे इंद्रिन गह्यो न जात।
सभ जीवन को नसत हीँ सो कबहूँ न नसाइ ॥२०॥
सोई अच्छर परम गति ताहि न देखै काइ।
॥२१॥

फिरै न कर तै पाइय परम पुरुष सो जान।
जो गहि सिमरै जात है जगु बिस्तार्यो आन ॥२२॥
फिरि आवत जा काल में नहि आवत जा काल।
अर्जुन तासों कहत हों सुनि यहि सीख बिसाल ॥२३॥
अग्निजोत दिन सुक्लपछ उतरायन के मास।
जात जु ज्ञानी जा समै लहत ब्रह्म मै बास ॥२४॥

धूम निसा जो दच्छिने ऐन कृष्न पख होइ।
ससिमंडल जोगी लहै फिरि आवत है सोइ ॥२५॥
सुक्लपक्ष यहि गति गही ते संसारहि होत।
फिरि आवत है एक गति एक लहत है जोत ॥२६॥
जो जानत दोऊ गनत जोगिहि मोह न होइ।
जोगी होइ अर्जुन तु हूँ सभ कालन मैं जोइ ॥२७॥
बेद जज्ञ तप दान कौं फल जु गहै है मित्त।
जोगी ता फल कौं लहै सभ दिन रहै निचित्त ॥२८॥
सभ फल कौं फल मास फल जोगी हरि सजोग।
भक्ति करै मोर्कों मिलै फल त्याग करि भोग ॥२९॥

महापुरुषयोग नामक अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

(९)

श्रीकृष्ण—अर्जुन तो सौं हौं कहौं एक गुप्त यहि बात।
समझि ज्ञान बिज्ञान कौं लहै मुक्ति की घात ॥ १ ॥
उत्तम बिद्या राज है अति पवित्र तूँ जान।
फल ताको परतच्छ है करिकै हूँ सुख मान ॥ २ ॥
करबे कौं या धर्म के जाकैं श्रद्धा नाहिं।
ते मोकौं पावत नहीं डोलैं हैं भव माहिं ॥ ३ ॥
बिस्तारो सभ जगत मैं मोहिं न देखै कोइ।
सभै जीव मो महिं बसैं मोहि न तिन्ह मैं जोइ ॥ ४ ॥
मो मैं कोउ न बसत है यह ईस्वरता देख।
उपजावत पालन जु हौं नहिं तिन्ह मैं अवरेख ॥ ५ ॥
ऐसे पवन अकास मै फिरत रहै सभ बार।
त्यूँ मो मैं यहि जीव सभ फिरैत रहै निरधार ॥ ६ ॥
मेरी माया मैं रहैं प्रलै भए सभ जतु।
कल्प आदि सिरजत तिन्हैं मम तानी को ततु ॥ ७ ॥
अपनी माया तै जु हौं सिरजत बारबार।
माया ही के बस परौ रहत सदा ससार ॥ ८ ॥
अर्जुन मोकौं कर्म हूँ नैंक जु बाँधत नाहिं।
सदा उदासी रहत हौं सक्ति नहीं तिहि माहिं ॥ ९ ॥

हौं प्रेरत माया जु जब उपजत तब संसार।
पारथ याही हेत हैं फिरत जु बारबार ॥१०॥
मोकौं मानुष जानिकैं आदर करै न कोइ।
मूरख यूं जानत नहीं यहै जु ईस्वर होइ ॥ ११ ॥
उन्हकी आसा सफल नहिं ज्ञान कर्म जे भाइ।
प्रकृति आसुरी तुच्छ सी ता महिँ बूड़त धाइ ॥१२॥
देव प्रकृति महि जे मिले काम क्रोध कों त्यागि।
रागद्वेष इत्यादि सौं रहत जु हैं अनुरागि ॥१३॥
कीर्तन नहिँ मेरो करैं जतनन मो ब्रत राख।
भक्तिसहित मोकौं नवत मेरे ही गुन भाख ॥१४॥
ज्ञानजज्ञ कोऊ भजत मोकौं सेवत मीत।
कोऊ मानत एक करि कोऊ बहुत पुनीत ॥१५॥
हौं ही क्रतु अरु जज्ञ हौं स्वधा औषधी जान।
हौं पाठक अरु होम हौं मन्त्रौ मोहिं जु मान ॥१६॥
मात पिता या जगत को हौं ही हौं करतार।
ऋगु जजु सामु पवित्र हौं और बेद्य ओंकार ॥१७॥
गति निवास भर्ता सरन साच्छो प्रभु अरु बंधु।
प्रलै इस्थान निधान हौं बीज सुभाउ अबधु ॥१८॥
तपत गहत छांडत जु हौं बर्षत मोहीं जान।
अमृत मृत कारन करन मोहीं अज तूं मान ॥१९॥
जज्ञ करत पापन दहत चाहत स्वर्ग जु बास।
इद्रलोक लहि भोगिहैं दिव्यभोग सुबिलास ॥२०॥
फिरि आवत भूलोक मैं छीनपुन्य जब होइ।
आवागौन करत रहै कामवत जे लोइ ॥२१॥
भक्ति करैं जु अनन्य ह्वै मोहीं मैं चित राखि।
जोग छेम ताको करौं निज जन कौं अभिलाखि ॥२२॥
और देव कों भक्त जे सेवत श्रद्धावंत।
बिधि छाडे मोकों जजत लहै न मेरो तंत ॥२३॥
सब जज्ञन को भोगता अरु सब जग को ईस।
ते मम तत्व न जानहीं डारत तिन्ह कों खीस ॥२४॥

देवभक्ति देवन लहैं पित्त्र पूजि पितुथान।
भूत पूजि भूतन लहैं मो पूजें भगवान ॥२५॥
पत्त फूल फल नीर को जो अर्पे करि प्रीति।
लियो दियो मैं भक्त को करै प्रेम की रीति ॥२६॥
जो कछु करत जु खात हौ जो होमत जो देत।
अर्जुन जो तूँ तप करै मोहिं देत करि हेत ॥२७॥
भले बुरे जे कर्म हैं तिन्ह तें छूटहि मित्त।
जोग जुगत सन्यास करि मो मिलिहौ निहचित्त ॥२८॥
मैं सभ ठोर जु सम रहत मेरे प्रीति न द्रोह।
मो को सेवत भक्त जे तिन्ह मो मैं सो माँहि ॥२९॥
बेग होइ धरमातमा साति लहत बहु भाइ।
अर्जुन निस्चै जान तूँ नहिं मो भक्त नसाइ ॥३०॥
अर्जुन सेवत मोहि ज पाप जोनि बी होइ।
इस्त्री सूद्र जु बैस्य पुनि लहै परम गति सोइ ॥३१॥
द्विज पुनीत अरु भक्त बर राजरिषी सुख भाइ।
असुख आनत या लोक तजि भजि मोकों चित लाइ ॥३२॥
मोको भजै जु नम्र ह्वै माहीं मैं मनु राखि।
यहैं जगत तूँ मोहिं मिलि हुइ प्रसन्न अभिलाखि ॥३३॥

राजविद्या राजगुह्ययोग नामक नवम अध्याय समाप्त ॥९॥

१०

श्रीकृष्ण— दुरि बात तोसों कहौं सुन अर्जुन चित लाइ।
तूँ प्रसन्न तो सों कहत तेरे हित कों भाइ ॥१॥
देवऋषी नाहिं जानहीं मो उतपात्त जु गात।
देव ऋषिन की आदि हौं तिन्हहीं रहौं पुनीत ॥२॥
अज अनादि जगदीस प्रभु मो को लखै जु कोइ।
सभ मैं ज्ञानी बहु बडो पापन डारत खोइ ॥३॥
बुद्धि ज्ञान सम दम छिमा अव्याकुलता होइ।
दुख सुख भाव अभाव भै और अभै हूँ जोइ ॥४॥
तोष अहिंसा दान तप तजम जस यू जान।
जीवन को सभ भाव यह मोतें होइ सु मान ॥५॥

सातौं ऋषि औ चार मनु मो मन तैं जु उदोत।
सभ लोकन मैं हैं भरे है इनहीं तैं गोत ॥६॥
ऐसैं जोग बिभूति कौ तत्वज्ञान जो लेत।
निस्चल जोगहि सो लहत रहत जु याही चेत ॥७॥
हौं हीं ईस्वर जगत कौ मोहीं तैं सभ होइ।
ज्ञानवत यह जानि करि मोहीं सेवत जोइ ॥८॥
प्रान चित्त मैं मोहि धरत बोध परस्पर देत।
मेरे चरितन कहत नित मानि तोष सुख लेत ॥९॥
सेवत मोकौं ते सदा भक्त जोग के भाइ।
भली बुद्धि ते लहत हैं रहन जु मो मैं आइ ॥१०॥
तम अज्ञानहि दूर करि दयावत ते होत।
करत जु जिन्ह कैं होय मैं दीपक ज्ञान उदोत ॥११॥

अर्जुन— पारब्रह्म जु पवित्र तुम्ह परमानंद को थान।
अबिनासी अज पुरुष हौं आदिदेव तुम्ह मान ॥१२॥
सभ ऋषि या बिधि कहत हैं नारद देवल जानि।
ब्यास असित तुमहूँ कहत तातैं लीने मानि ॥१३॥
जो कुछ तुम्ह मोसों कहत मानत हौ सतिभाइ।
दानव देव न जानहीं तुम्ह प्रगटे कौ दाइ ॥१४॥
आपन जो आपन लखौ तुम्ह पुरुषोत्तम देउ।
जीवन उपजीवन रहत तारन देवौदेउ ॥१५॥
निज बिभूति मोसों कहौ प्रभजू मो चित चाइ।
जो बिभूति श्रीकृस्न कू रही जगत मैं छाइ ॥१६॥
ध्यान तिहारौ करत प्रभु कैसें जानौं तोहिं।
कौंन पदारथ मैं लखौं सो समझावौ मोहिं ॥१७॥
जोग बिभूतिहि आपनी कहिये मो सौं देउ।
मोकौं तृप्ति न होति है सुनत अमीरसभेउ ॥१८॥

श्रीकृष्ण—अर्जुन तो सौं कहत मैं निज बिभूति बिस्तार
मुख्य जिती तेऊ कहौं तू हिय दृढन निहार ॥१९॥
सभ जीवन के हीय मैं मोहि आतमा जानि।
आदि मध्य अरु अत हौं मोहीं सभ मैं मानि ॥२०॥

आदित्त्न मैं बिष्नु हौं जोतिन मैं रबि देखि।
बायुन माझ समीर हौं नच्छत्रन ससि लेखि ॥२१॥
साम बेद सब बेद मैं इद्र जु अमरन माहि।
जीवन मैं हौ चेतना मन इद्रिन के ताहिँ ॥२२॥
रुद्रन मैं सकर जु हौं जच्छन माहिँ धनेस।
पावक हौं हो बसुन मैं सैल सुमेर सुदेस ॥२३॥
देवपुरोहित मुख्य जो मोहिँ वृहस्पति मानि।
षटमुख सैनापतिन मैं सरि मैं सागर जानि ॥२४॥
महाऋषिन ही माझ भृगु बर्नन मैं ओंकार।
जज्ञन मैं जप जज्ञ हौं स्थावर हिमआधार ॥२५॥
बृच्छन मैं पीपल जु हौं ऋषि मैं नारद देउ।
गधर्बन मैं चित्ररथ सिद्ध कपिलमुनि भेउ ॥२६॥
अस्वन मैं उच्चैश्रवा गज ऐरावत नाम।
नरन माहि हौं नृपति हौं पोषत सब के काम ॥२७
हथियारन मैं बज्र हौं कामधेन हौं गाइ।
काम प्रजन के माझ हौं बासुकि सर्पनराइ ॥२८॥
नागन माझ अनत मैं बरुन जु हौं जलजत।
पित्रन मैं हौं अर्जमा जम हौं सजमवत ॥२९॥
दैत्यन मैं प्रहलाद हौं मारनहारो काल।
सिंघ जु हौं सब मृगन मैं पच्छिन मैं रिपुब्याल ॥३०॥
उचालन मैं पवन हौ सस्त्रधरन मैं राम।
जलजतन मैं मकर हौं नदी गग अभिराम ॥३१॥
अध्यातम बिद्यान मै बाद बिबादन माहि।
आदि अत अरु मध्य मैं सबै सृष्टि की ताहिँ ॥३२॥
अछरन माझ अकार हौं दु दु समासन जान।
हौं ही अक्षय काल हौं धाता मोहि जु मान ॥३३॥
जुद्ध सँघारन सबन हौं और उपावन हार।
श्री कीरति सरसुति छिमा हौं ही बोध सभार ॥३४॥
महासाम हौं साम मैं छँदन गयत्री छद।
मासन मैं मँगसिर जु हौं रित बसत सुखकद ॥३५॥

जूआ हौं सम छलन मैं तेजस्विन मैं तेजु।
जै अरु उद्यम सत्य हौं सत सतवंतन के जु ॥३६॥
जदुकुल मैं हौं कृष्न हौं अर्जुन पँडवन माहिं।
मुनिन माझ हौं ब्यासु मैं गनैं सुक्र कबि ताहिं ॥३७॥
दंडवान मैं दड हौं जसवत मैं जीति।
ज्ञानिन मैं हौं ज्ञान सुभ मौन दुरावन रीति ॥३८॥
औषध मैं जव अन्न हौं कंचन धातुन माह।
सर्ब तृनन मैं दर्भ हौं यूँ समझो नरनाहि ॥३९॥
सभ जीवन कौ बीउ हौं अर्जुन मो कों जान।
थिर चर या ससार मैं मौ बिन कछू न मान ॥४०॥
मेरी दिव्य बिभूति कों अत न जान्यौ जाइ।
यह तो सौं थोरी कही मैं बिभूति कै भाइ ॥४१॥
जो कछु या ससार मैं काहू गुन अधिकाइ।
श्री सत मेरौ तेजु है दीनो तोहि बताइ ॥४२॥
बहुत कहा तो सौं कहौं अर्जुन बात बनाइ।
सभ जग अपने अस सों मैं राख्यो ठहिराइ ॥४३॥
बिभूतियोग नामक दशम अध्याय समाप्त ॥१०॥

(११)

अर्जुन—मो ऊपर कीनी दया अध्यातम प्रगटाइ।
बचन तिहारे सुनत ही गयो सु मोह नसाइ ॥ १ ॥
जीवन को उतपति सुनी अरु परलै की रीति।
कही जु तुम्ह बिस्तार सें आतम की सुभ नीति ॥ २ ॥
है यों ही ज्यो कहत हौ तुम्ह प्रभु अपने भेउ।
देख्यो चाहत मैं अबै रूप तिहारो देउ ॥ ३ ॥
देखन जोग जु मोहिं प्रभु जानत हौ जदुराइ।
अबिनासी निज रूप त्यूं दीजै मोहिं दिखाइ ॥ ४ ॥
श्रीकृष्ण—अर्जुन तूं अब देखिहै सत सहस्र मो रूप।
बहुत भाँति है दिव्य जो नाना बर्न अनूप ॥ ५ ॥
देख रुद्र आदित्य बसु अस्विन मरुत मो माहि।
औरौ अचरज रूप जे पहले देखे नाहि ॥ ६ ॥

एक ठौर मो देह मैं थिर चर रहे समाइ।
देख्यो चाहत जो कछू सोई देउँ दिखाइ॥ ७ ॥
इन्ह नैनन नहि देखिहै देउ दिव्य दृग तोहि।
ऐस्वर जोग सँयुक्त तू जैसे देखे मोहि॥ ८ ॥

संजय—जो जोगीस्वर कृष्न जू कहे बचन या भइ।
जो ऐस्वर्ज जु परम हौ सो दीनो प्रगटाइ॥ ९ ॥
बहु अनत लोचन बहुत देखैं अचरज होत।
भूषित नाना भूषनैं सस्त्र अनेक उदोत॥१०॥
दिव्य हार दिव्यै बसन दिव्य सुगध लगाइ।
अग्नि रूप मुख है दिपत सोभत नाना भाइ॥११॥
सहस दिव्य रबि नभ गु है पूरि रही सो जोत।
दीपति ता प्रभु की लखैं तेउ न समता होत॥१२॥
अन्य भेद जे जगत मैं देखे सम इक ठौर।
देवदेव की देह मैं अर्जुन देखे और॥१३॥
ताको अब अचरज भयो रोमहरष कै दाइ।
बासुदेव परनाम करि बोल्यौ चित के चाइ॥१४॥

अर्जुन—देखत हौं तुव देह मैं सम सुर थिर सम सिद्ध।
कमलासन ऋषि ईस पुनि सर्बनाग सम बृद्ध॥१५॥
बहुत बाहु उदरौ बहुत मैं देखें बहु सीस।
आदि अंत मधि एक हा ऐसै तुम जगदीस॥१६॥
मुकट सीस कर चक गदा रूपरासि भगवान।
दृगन चौंध चितवत लगै हौ रबि अग्नि समान॥१७॥
अक्षर हौ तुम्ह परम ही हौ सम जगत निधान।
अबिनासी रक्षक सभन उत्तम हौ अनुमान॥१८॥
आदि अंत मधि रहित तुम्ह रबि ससि तुमरे नयुन।
तुम्हरो मुख दीपत अगिन सम हौ कौं तपऐन॥१९॥
गगन भूमि मधि सर्बदिसि ब्यापि रहे यूँ है जु।
अद्‌भुत रूप सु उग्र लखि ब्यथित तिलोक सभै जु॥२०॥
बैठि देव तो मांहि सभै स्तुति करत भय मानै।
ऋषि अरु सिद्ध महामुनी नँवत जु तुम्ह कौं जानि।२१॥

रुद्र साध्य आदित्य बसु अस्विनिसुत अरु बाय।
सिद्ध जच्छ गंधर्व सुर देखत अचरज पाय।२२।।
रूप बड़ो बहु मुख नयन भुज पद बहु उदरौ जु।
देखि भयानक दाढ बहु बिथकत लोक रहौ जु ।।२३।।
पाइ पताल अकास सिर दृग दीरघ मुहु बाइ।
ऐसे तुम्हकों देखिकै धीरज गयो पराइ ।।२४।।
काल अग्नि सम दाढ तुव देखौं अति भयभीत।
दिसि भूली सुख हूँ गयो अब कीजै प्रभु प्रीत ।।२५।।
पूत सभैं धृतराष्ट्र के सभ नृप ताके संग।
कर्न द्रोन भीषम जितै जोधा हैं तो अंग ।।२६।।
ज्वलत तिहारे बदन मैं सभै परत हैं आइ।
कोऊ दाढन तल दले कोउ रहे लपटाइ ।।२७।।
ज्यूँ सरिता बरखा रुतैं परत सिंधु मैं जाइ।
त्यूँ नृप तेरे बदन मैं सभैं परत हैं आइ ।।२८।।
ज्यूँ पतंग परि दीप मैं लहत आपनो नास।
तैसें नृप सभ परत हैं तेरे मुख कैं पास ।।२९।।
लीलौ हौ तिन्हकौं जु लै रसना सौं लपटाइ।
कांति रावरी जगत कौं देत ताप बहु भाइ ।।३०।।
उग्ररूप तुम कौन हौ मो सौं कहिये देव।
जान्यौ चाहत हौं तुम्हैं तुव बातन को भेव ।।३१।।
श्रीकृष्ण—कालरूप हुइ हौं ठयौ सभ को मारनहार।
तो बिन सभ जोधान कौं भखि जैहौं निरधार ।।३२।।
तातैं उठि रन जीति अरि लै कीरति करि राज।
मैं हनि राखे हैं नृपति यह सभ तेरो काज ।।३३।।
भीष्म द्रोन पुनि जैदरथ कर्न आदि जे और।
मै तजि अर्जुन जुद्ध करि और न माया ठौर ।।३४।।
सञ्जय—बचन सुने श्रीकृष्न के काँपी अर्जुन देह।
तब प्रभु कै पग लागिकैं बोल्यो बचन सनेह ।।३५।।
अर्जुन—सभ जग को यह जुक्त है तुम्हरे है अनुराग।
सिद्ध नवत तुम्ह कौं सदा राच्छसजात जु भाग ।।३६।।

क्यूँ न नवौं तुम्ह कौं जु मैं ब्रम्हा के करतार।
जगत ईस अक्षर अनँत तुम्ह सभ तैं हैं पार ॥३७॥
पुरुष पुरातन आदि हौ तुम्ह ही जगतनिधान।
तुम्ह तैं जग सभ बिसतर्यो जानत तुम्ह ही ज्ञान ॥३८॥
बायु प्रजापति अग्नि जम बरुन चद्र तुम्ह रूप।
बार बार सहसानि सत हैं ही प्रनवँ अनूप ॥३९॥
आगै तैं तोकौं नतवं पाछै तैं जु अनत।
आगै तैं तोकों नतव अमित प्रबल भगवत ॥४०॥
मित्र जानि तोसौं कही सु छमियहि हो देव।
जानौं कहा जु बापुरो तुम्हैं तुम्हारो भेव ॥४१॥
भोजन सैन बिहार मैं कियो अनादर भाइ।
तुम्ह जु छिमा सभ कीजिये प्रभु जू केसवराइ ॥४२॥
पिता जु तुम्ह ससार के तुम्ह ही हो गुरु ईस।
तुम्ह पटतर कोउ नाहिनै कौन करै तुम्ह रीस ॥४३॥
डँडवत तुम्हैं प्रसन्न हौ छिमौ दोष प्रभु मोंहि।
ज्यूं पित सुत कौं पति त्रिया मित्र मित्र कों जोहि ॥४४॥
रूप लख्यो यहि रावरो मोहिँ हर्ष मैं होइ।
पहिलो रूप दिखाइयै हैँ जोवत जिहिँ जोइ ॥४५॥
मुकट बिराजत सीस पर सख चक्र तुम्ह हाथ।
वहि अब मोहि दिखाइयै प्रभु तुम्ह हौ जगनाथ ॥४६॥
चार भुजा धरि प्रगट हुइ मोकों दरसन देहु।
तुम्ह मूरति जु अनत है मोकौं वासौं नेहु ॥४७॥

श्रीकृष्ण—तोहि दिखायो रूप मैं अति प्रसन्न चित होइ।
आदि स्वरूप अनत मो देखि सकै नहि कोइ ॥४८॥
बेद जज्ञ तप औ क्रिया औ पुन करै जु दान।
ऐसे मेरे रूप कौं तो बिन लखै न आन ॥४९॥
रूप भयानक देखि कै तू जिन जीव डराहि।
अब भय कौं तूं डारिहै मेरे रूपहि चाहि ॥५०॥

संजय—अर्जुन सौं ऐसे कही पहिलो बपु प्रगटाइ।
समाधान बहुबिध कियो भै तैं लियो बचाइ ॥५१॥

अर्जुन—रूप अनूप जु तुम्ह धर्यो तास रूप हौं देखि।
प्रकृति लही मैं आपुनी भयौं सचेत बिसेखि ॥५२॥

श्रीकृष्ण—देख्यो परत न रूप यहि जो तैं देख्यो मित्त।
ताहि रूप कौं देवना देख्यो चाहत नित्त ॥५३॥
दान जज्ञ तप बिधि किये मोहिं न देखत कोइ।
बिनु सम पारथ तूं अबै रह्यौ जु मोकौं जोइ ॥५४॥
भक्त अनन्य जु को करै मो देखै या भाइ।
नीके जानै माहि सो मो मैं रहै समाइ ॥५५॥
मो निमित्त कर्मन करै सजै भक्ति तजि और।
बैर न काहू सौं धरै मो मैं लहै सु ठौर ॥५६॥

विश्वरूपदर्शन नामक एकादश अध्याय समाप्त ॥११॥

(१२)

अर्जुन— जो सेवत तुम्हको सदा करि कर्मन के काज।
अच्छर ब्रह्मै ते भजत बड़ा कौन कहि राज ॥१॥

श्रीकृष्ण— जो मो मैं मनु राखिकै सेवत सेवकभाइ।
बहु श्रद्धा सों जो जजत सो सभ तैं अधिकाइ ॥२॥
जो धावत है अच्छरहि यों नहि प्रगट स्वरूप।
व्यापी माया तें परें अज अचिंत जु अनूप ॥३॥
सभ इद्रिन कों रोकि कैं सभ कों लखत समान।
सभ जीवन को हित करै मोहिँ मिलै करि ज्ञान ॥४॥
तिन्हैं क्लेश बहु होतु है ब्रह्म लगाएँ चित्त।
रूप रेख जाके नहीं दुख सों लोये मित्त ॥५॥
जे सभ कर्मन्न करत हैं अरपत मोकों जानि।
ध्यावत केवल भक्ति सों बहु उपासना ठानि ॥६॥
मृत्यु सहित भौ उदधि तैं ताको करत उधार।
मोमैं चित राख्यो उन्हन बहु भाँतन निरधार ॥७॥
तातैं अर्जुन बुद्धि मन मो ही मैं तू राखि।
पाओगे मुहि देहि मैं बसिहै तू अभिलाखि ॥८॥

जो तू तो मैं नहि सकै चित अपनो ठहिराइ ।
करि अभ्यास मो मिलन कों मोहिं निरंतर ध्याइ॥९॥
जो अभ्यास न करि सकै करम समरपौ मोंहि ।
मेरे कर्मन करत ही सिद्धि होइगी तोहि ॥१०॥
यहौ न जो तू करि सकै मो सरनैं अनुरागि ।
सर्व कर्म कै फलन कों अर्जुन तू दै त्यागि ॥११॥
जोग भलो अभ्यास तैं तातैं ज्ञान बिसेष ।
फलत्यागै तातें भलो तातैं सातिहि लेख ॥१२॥
द्वेष न काहू सौं करै मित्र भाइ करुना जु ।
अहंकार ममता तजै दुख सुख सम छिमता जु ॥१३॥
सदा रहै संतोष सौं मनु राखै निज हाथ ।
प्रान बुद्धि मो मह धरै वहि प्यारो मुहिं साथ ॥१४॥
वह काहू तैं नहि डरै भय औरैं नहि देइ ।
हर्ष सोक दोऊ तजै सो मोकौं हरि लेइ ॥१५॥
चाह न काहू की करै रहै पुनीत उदास ।
सभ आरंभन कों तजै रहै जु मेरे पास ॥१६॥
पाए प्रीउँ अनद नांहिं अप्रिय लहै न द्वेष ।
सोच सु कान्छा नहि करै तजि सुभ असुभ विहेष ॥१७॥
सत्रु मित्र कों सम लखै समै मान अपमान ।
सीत उसन सुख दुख तजै सग करै नहि आन ॥१८॥
उस्तुति निंद्या एक सी गहै मौन संतोष ।
डरु न करै थिर मति रहै लहै भक्ति अरु मोख॥१९॥
धर्म अमृत जो मैं कह्यो ताहि जु सेवै कोइ ।
श्रद्धाजुत मेरो भगत मोहि पियारो होइ ॥२०॥

भक्तियोग नामक द्वादश अध्याय समाप्त ॥१२॥

(१३)

अर्जुन—प्रकृति पवन अरु पुरुष को क्षेत क्षेत्रज्ञ कहौ जु ।
यहि जानन की लालसा ज्ञान ज्ञेय पुन कौ जु ॥ १ ॥
श्रीकृष्ण—क्षेत्र कहत या देहि कों अर्जुन ज्ञानी लोइ ।
जानत है जौ देहि कों सो क्षेत्रज्ञ जु होइ ॥ २ ॥

सो मम रूप जु आतमा बसत सभन की देह।
यहै ज्ञान कों जान तूं मेरो मन है एह॥ ३॥
क्षेत्र जहा तें है भयो जो है जैसे भाइ।
जे बिकार या मांझ हैं कहुँ सक्षेप सुभाइ॥ ४॥
ऋषन कहे बहु भाँत ज औ श्रुति हूँ जू भाख।
हेतुवादि निहचै जु करि गहि उपनिषदन साख॥ ५॥
इच्छा दुख सुख चेतना द्वेष धीरता देहि।
यहि जु कहीं सक्षेप सो क्षेत्र जानि तूँ लेहि॥ ६॥
महाभूत हकार है बिधि माया हूँ जान।
एकादस इद्री बिषै पाँच अगोचर मान॥ ७॥
क्षमा सरल अरु दभ तजि हिंसा तजि अभिमान।
गुरु सेवा सजम करन थिरता सौच प्रधान॥ ८॥
बिषयन सोँ बैराग धरि तजै रहै हंकार।
जन्म मृत्यु दुख सुख जरा ब्याधि दोष निरधार॥ ९॥
नेह न पुत्र कलित्र सौं ता दुख दुखी न होइ।
चित मैं धरै समानता बुरी भली कोँ खोइ॥१०॥
अटल भक्ति मो मैं धरै सभ कों आतम जान।
रहै सदा एकात महिं तजै सभासनमान॥११॥
अध्यातम ज्ञानैं धरै तत्वज्ञान कों देखि।
यह जो सभ कछु मैं कह्यो यहै ज्ञान अवरेखि॥१२॥
कह्यो अमृत सभ जानिकै या तेँ मुक्ति जु होइ।
कारज कारन तेँ परै आइ ब्रह्म कों जोइ॥१३॥
सर्वत्रहिं कर चरन सिर त्यूँ ही मुख दृग कान।
ब्यापि रह्यो सभ जगत में मोहिँ दसा दिस जान॥१४॥
सभ बिषयन तै रहित हौँ समता को अभ्यास।
सग बिना सभ कौं धरै निर्गुन गुन न प्रकास॥१५॥
जत जिते चर अचर हैं अतर बाहर सोइ।
सभ तैं दूर सुनिकट हौं सूक्षम लखै न कोइ॥१६॥
या महिँ भेद कछू नहीं सभ तैँ रहित बिभाग।
उपजावत नासत सभन पालन कर अनुराग॥१७॥

जोतन्हूँ की जोत हौं अधकार तें पार।
ज्ञान जानिबो हीय मैं सभ कौं है निरधार ॥१८॥
क्षेत्रज्ञान अरु ज्ञेय मैं तोकौं दियो बताइ।
इन्ह कों जानि भगति लहै जो सा मेरो भाइ ॥१९॥
माया पुरुष अनादि है अर्जुन दोऊ जान।
गुन बिकार सभ जे भए माया हू तें मान ॥२०॥
करन कार्ज कर्तार फुन माया इन्हको हेतु।
दुख अरु सुख के भोग कौं वहै पुरुष गहि लेतु ॥२१॥
पुरुष प्रकृति मैं बैठिके करत बिषै को भोग।
ऊँचे नीचे जन्म कौं कारन गुन सजोग ॥२२॥
परमात्मा है देहि तैं न्यारो जानत लोइ।
द्रष्टा भरता भोगता ईस्वर निर्गुन होइ ॥२३॥
जो कोऊ ऐसें लखै गुरू प्रकृति गुन भाइ।
सो क्यौं हूँ जग मैं रहो बहुरि न उपजै आइ ॥२४॥
देहि माहिं आतम लखत कोऊ कीये ध्यान।
सांख्य जोग अरु कम करि लखत जु है ब्रतमान ॥२५॥
जे ऐसें नहिं जानहीं सुनि औरन पै आनि।
मम उपासना करत हैं भौ भै मृत्युहि जानि ॥२६॥
जिते जीव या जगत मैं थावर जगम होत।
क्षेत्र औरु क्षेत्रज्ञ तें सभै होत उद्योत ॥२७॥
परमेस्वर सभ जत मैं बैठो एक समान।
तिन्हैं नसत बिनसै नहीं जो जानै सो जान ॥२८॥
ईस्वर को सभ ठौर जो जानत समता भाइ।
आतम ही सो होइकै रहै परमता पाइ ॥२९॥
माया करत जु कर्म सभ जीव अकर्ता जोइ।
जानत जो या भेद कौं लखत आतमा सोइ ॥३०॥
आतम इक इस्थित जु है सभ प्रानन को भाव।
आतम ही बिस्तार है लखै सु ब्रह्महु पाव ॥३१॥
आदि अत सौं रहित है निर्गुन आतम कोइ।
देहि मांझ जद्यपि रहै करै न लिप्त न होइ ॥३२॥

ज्यौ अकास सूछम बसै सभ मैं परसत नाहिं।
त्यूँ ही यह परमातमा लिप्त न देहन माहिं ॥३३॥
ज्यों प्रकास एकै करत सभ जग सूरज देव।
त्यूँ ही सभ की देहि मैं परमातम को भेव ॥३४॥
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के भेद लखै जो कोइ।
जीव प्रकृति अरु मोक्ष कों जानै मुक्त सु होइ ॥३५॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देश नामक त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥१३॥

(१४)

पर उत्तम जो ज्ञान है तोसों देत बताइ।
जाहि जानि कै मुनि सभै रहै मुक्ति कों पाइ ॥१॥
या ही ज्ञानहि सेइकै मेरो लहौ स्वरूप।
प्रलैबिथा तिन्ह कौं नहीं परै न ते भवकूप ॥२॥
ब्रह्म प्रकृति मम योनि है ता महिं गर्भहि राखि।
उपजावत सभ सृष्टि कों अर्जुन चित अभिलाखि ॥३॥
जे जे मूरति होति है सभ जानिन महिं आइ।
तिन्ह को हौं ही बीज हौं हौं ही पिता जु माइ ॥४॥
सत रज तम जे गुन भए माया ही तैं मानि।
देहि माझ या जीव कों यहै जु बाँधत आनि ॥५॥
निर्मल अरु परकासकर सत गुन सात सुभाइ।
ज्ञानसग सुखसग सों बाँधत जीवहि आइ ॥६॥
रज गुन राजस रूप है तृष्ना सँग तिहि हेत।
कर्मसग करि जीव कौं ऐसैं बधन देत ॥७॥
होत जु तम अज्ञान तैं मोहित सभ को होय।
आलस निद्रा बिकलता इन्ह सौं बाँधत जीय ॥८॥
सत गुन सुख मैं बढत है कर्म रजोगुन होइ।
आलस मैं तम गुन रहै ज्ञान सभै ही खोइ ॥९॥
राजस तामस पेलि कैं रहै सत्त्व गुन पूरि।
रज सत कों पेलै जु तम रज तैं सत तम दूरि ॥१०॥
सभ द्वारन मैं देहि के जबहि प्रकासत ज्ञान।
तबै बढ्यौ है सत्त गुन अर्जुन तूँ यहि जान ॥११॥

बढत रजोगुन है तबै नरसरीर महिँ आइ।
लोभ करत उद्यम सबैं इन्हैं देत प्रगटाइ ॥१२॥
अर्जुन सब ही करत है तम गुन आइ प्रकास।
आलस मोह अज्ञान तब मन मैं करत बिलास ॥१३॥
जो सत गुन की बुद्धि मैं तजै जीव निज देह।
तौ ज्ञानी के लोक मैं जाइ करै निज गेह ॥१४॥
रज गुन तजै जु प्रान कों कर्मवंत घरु जाइ।
तम गुन मैं जो मरत है पसुन माझ प्रगटाइ ॥१५॥
सुकृत कर्म जो होत है सातिक फल अति सुच्छ।
रजगुन को फल दुख है तम अज्ञान फल तुच्छ ॥१६॥
लोभ रजो तैं है भयो सत गुन तैं है ज्ञान।
तम गुन ही तैं बिकलता मोह और अज्ञान ॥१७॥
सातिक ऊचैं जातु है राजस मध्यम लोक।
तामस जात अधोगतैं पावत बहु बिधि सोक ॥१८॥
गुन ही कौं करतार करि जानै ज्ञानी कोइ।
मोहिँ लखै गुन तैं परे मो मैं लीन सु होइ ॥१९॥
देहि करत जो तीन गुन तिन्ह कौं देत जु त्यागि।
जन्म मृत्यु दुख तैं छुटै रहै मुक्ति मैं पागि ॥२०॥

अर्जुन— जिन्ह माहीँ है तीन गुन तिनके लच्छन कौन।
ताको कउ आचार है दुख सुख चपल न हौन ॥२१॥

श्रीकृष्ण— मोह ज्ञान अरु कर्म कौं जो जानै हिय माहि।
बिनु पाएँ चाहै नहीं लहि सुख पावै नाहि ॥२२॥
उदासीन बैठौ रहै दुख सुख चपल न होइ।
गुन सब कारज करत है जो जानै सो जोइ ॥२३॥
दुख सुख कौं करि सम गिनै कचन माटी भाइ।
प्रिय अप्रिय कौं तुल गनै स्तुति निंद एक रहाइ ॥२४॥
तुल्य मान अपमान अरु मित्र सत्रु सम जाहि।
सब आरभन जो तजै गुनातीत कहि ताहि ॥२५॥
मोकौं जो दृढ भक्ति सों सेवत चित के चाइ।
सो तीनो गुन कौं लहै रहै ब्रह्म कौं पाइ ॥२६॥

अर्जुन हौं ही अमृत गति मुक्त जु मेरो रूप।
हौं अबिनासी धर्म हैं आनँद परम अनूप ॥२७॥

गुणातीतयोग नामक चतुर्दश अध्याय समाप्त ॥१४॥

(१५)

श्रीकृष्ण— ऊर्ध जरैं साखा तरैं अबिनासी अस्वत्थ।
बेद पत्र जो जानही सो जानै सब अर्थ ॥१॥
गुन सींची साखा बढी बिषया फल बहु भाइ।
जर फैली कर्मन बढी मनुषलोक मैं जाइ ॥२॥
आदि अंत नहिं जानिये थान रूप नहि जाहि।
दृढ असंग हथियार लै दुसह मूल तब ढाहि ॥३॥
चाहि करैं ता ठौर की फिरैं न ताकौं पाइ।
सिष्टि भई जा पुरुष तैं ताकी सरन सु जाइ ॥४॥
काम संग अरु मोह तजि अध्यातम नित होइ।
सुख दुख तजि ताकौं लहै अबिनासी जो कोइ ॥५॥
पावक रबि अरु चंद्रमा ताहि करैं न प्रकास।
फिरैं न ताकौं पाइकै सो है मेरो दास ॥६॥
जीवलोक मैं जीव जो अबिनासी मुहिं रूप।
मनहि आदि जे इंद्रियन और प्रकृति को भूप ॥७॥
ज्यूं सरीर कौं तजत यहि जहाँ करैं सनबंध।
इंद्रिय ईस्वर सँग रहै बायू सूँ ज्यूं गंध ॥८॥
स्रवन नयन अरु नासिका त्वच अरु रसना जान।
इन्ह कौं गहि मनु संग लै लहत जीव बिषयान ॥९॥
इंद्रीजित निकसत रहत करत बिषै को भोग।
मूढ जीव कौं नाहि लखत लखैं जु ज्ञानी लोग ॥१०॥
जोगीस्वर जतनन किये देखत हैं हिय माहि।
मूरख जतन न करत है जीवहि देखत नाहिं ॥११॥
तेज जु है आदित्य मैं भासत है संसार।
चंद्र माझ अरु आग्न महि सो मेरा निरधार ॥१२॥
धारत हौं सभ जाव कौं करि पुहुमी परबेस।
पोषत हौं सभ औषधी ह्वै रस मैं ससि भेस ॥१३॥

हौं ही जाठर अग्नि हुइ सभ देहन महिँ आइ।
प्रान अपान सहाइ सौं जाठर अन्न पचाइ ॥१४॥
सभ कैं हिय मैं हौं रहौं मो तैं ज्ञान बिचार।
बेद सभै मोकौं कहैं मैं तिन्ह कौं करतार ॥१५॥
लोक माँझ द्वै पुरुष हैं छर अरु अछर भाइ।
छर सरीर कौं कहत हैं अक्षर जीव गनाइ ॥१६॥
उत्तम पुरुष जु और है परमातम कैं बेस।
तीन लोक सो धरतु है करिकै निज परबेस ॥१७॥
छर अरु अछर परै हौं सभ तैं हैं अधिकाउ।
या तैं बेद रु लोक मैं पुरुषोतम मो नाउ ॥१८॥
जो कोऊ मोकौं नहीं भजत ते मूरख जान।
अर्जुन जे मोकौ भजत तेई जान सुजान ॥१९॥
छिपा बात ग्रंथन जु ही सो तोसौं कहि दीन।
पारथ जो जानत यहै तेई बुद्धिप्रबीन ॥२०॥
पुरुषोत्तमयोग नामक पचदश अध्याय समाप्त ॥१५॥

(१६)

श्रीकृष्ण—अभै हिये की सुद्धता ज्ञानजोग थिरु होइ।
दान जज्ञ तप बेद रुचि दम जु सरलता जोइ ॥१॥
बिन हिंसा अरु सत्त मैं रहै क्रोध बिनु मित्त।
दान साति बहुबिध रुचै दोष न आवै चित्त ॥२॥
दया करै सभ जतु पै तजि चपलाई भाइ।
लाज अकर्मन तैं सुमृदु ब्यर्थ क्रिया छुटि जाइ ॥३॥
तेज छिमा सुच धैर्य जुत तजै द्रोह अभिमान।
देवसपदा गिनत हैं जामैं ये गुन जान ॥४॥
दभ दर्प अज्ञान रिस निज स्वारथ ब्यवहार।
आडबर नर आसुरी सपद धारनहार ॥५॥
दैवी सपत मोख हित आसुर बधन मान।
पारथ सोक न करि तनिक दैवी को करि ध्यान ॥६॥
दैव असुर इह लोक मैं मानस की है सिष्ट।
दैव सु बर्नन कर दियो आसुर सुनौ निकृष्ट ॥७॥

धर्म अधर्म न जानही जे नर आसुर होइ।
सौच अचार न सत्य कछु भेद न जानत कोइ ॥८॥

[श्रीकृष्ण—अभय हिये सुचिता लिये लिये ज्ञान को जोग।
दान जज्ञ तप भजन सों होइ सरल तजि भोग ॥१।
सत्य अहिंसा साति औ त्याग दया करि बोध।
थिर मृदु ह्वै दुरगुन तजै परनिंदादिक क्रोध ॥२॥
तेज छिमा सुचि धैर्य धरि तजहि क्रोध अभिमान।
दैवीसपति षड्गुनो सो पावहि मतिमान ॥३।
दंभ दर्प अभिमान अरु क्रोध परुष अज्ञान।
हे पारथ जिहि मन वही असुर सपदा जान ॥४॥
दैवी सपति मुक्तिदा असुरी बंधन देत।
हे पारथ तजि सोच तू दैव संपदा हेत ॥५॥
दैवी असुरी द्विविध सों सृष्टी करी बखान।
दैवी बिस्तर सौं कही अब असुरी सुनि ध्यान ॥६॥
असुर स्वभावी भूमि के धर्मप्रवृत्ति बिहीन।
सत्य सौच आचार बिन है निवृत्ति सौं छीन ॥७॥
जग असत्य जग कौं यही है कोऊ आधार।
कहै आसुरी बस रच्यौ मैथुन सों ससार ॥८॥
अल्पबुद्धि मन के मलिन जग देखहिं इहि भाँति।
क्रूर कर्मरत ह्वै जगत अहित करहिं दिन राति ॥९॥
दुसपूरन लै कामना दंभ मान मद युक्त।
अग्राही दैवनि भजैं मोह असुचि सयुक्त ॥१०॥
चिंता मैं जो लौ रहैं तौ लौं छुटै सरीर।
प्रकृति आसुरी सुख लहै काम भोग के तीर ॥११॥
अगनित आसापास बाँधि क्रोध काम आधीन।
धनसचय अन्याय सौं करत भोग लवलीन ॥१२॥
पाया मैंने आज ये आसा पाऊँ अन्य।
ये धन मेरे गेह मे औ धन गहूँ अगन्य ॥१३॥
जे बैरी मैंने बध्यो औरनि बधूँ अभाल।
ईस सिद्ध भोगी सुखी मैं हूँ बली बिसाल ॥१४॥

मैं ही धनी कुलीन हूँ मो सम कौन प्रवीन।
यजौं देव हुलसहुँ यही लच्छिन ज्ञानबिहीन।१५॥
बिबिध भाँति चित भ्रमित ह्वै फसहिं मोह के जाल।
काम भोग के भ्रमर फसि गरकहिं नरक कराल॥१६॥
करत बड़ाई अपुन अपु रत धन मद अभिमान।
पाखण्डी नर यजत हैं जज्ञ बिना बिविज्ञान॥१७॥
अहंकार बल दर्प अरु काम क्रोध करि हेत।
जब जग मैं रमि मैं रह्यो तउ द्वेषी दुख देत॥१८॥
जे द्रोही अरु क्रूर हैं पापी अधम महान।
अशुभ आसुरी जोनि मैं डारहुँ सदा निदान॥१९॥
जनम जनम मैं मूढ ते जोनि आसुरी पाहिं।
हे पारथ मोहि न मिलैं परम अधमगति जाहिं॥२०॥
काम क्रोध औ लोभ ये तीन नरक के द्वार।
इन तीनहुँ को परिहरहु करहिं आत्मसहार॥२१॥
तीन नरक के द्वार जे पारथ तिनहिं बिहाय।
करहिं जतन कल्यान के तबहि परम गति पाय॥२२॥
तजहिं सास्त्र बिधि काम रत कातर तासैं होइ।
सुख सिद्धी औ परगती पावहिं कबहु न कोइ॥२३॥
यासौं करम अकर्म की सास्त्रब्यवस्था जान।
रत हो वाही कर्म मैं जामै सास्त्र प्रमान॥२४॥

दैवासुरसपाद्भागयोग नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त॥१६॥]

(१७)

अर्जुन— जे सासनबिधि छाँड़िकै जजत सश्रद्धा जौन।
सत्व रजो तम माँह सो तिनकी निष्ठा कौन॥१॥
श्रीकृष्ण— तीन भाँति श्रद्धा कही मानस की सो भाइ।
सात्विक राजस तामसी सुन तीनो को दाइ॥२॥
परंपरा ही जन्म की श्रद्धा होत समान।
श्रद्धामै यह पुरुष है श्रद्धा ताहि प्रमान॥३॥
बेदन रुचैं सातुकी राजस रच्छस जच्छ।
भूत प्रेत गन ते जजहिं नर सु तामसी पच्छ॥४॥

घोर तपस्या जे करैं जे न बेदमत होहिं।
करैं दंभ हंकार सों काम राग लगि मोहिं॥५॥
पंचभूत जे देहि मैं तिन्हकों ते दुख देत।
हिय मैं मोहू कों हनत ते हैं असुर अचेत॥६॥
तीन भाँत आहार यहि सभ ही कौं रुच होइ।
जज्ञ दान तप भेद जे मो पैं सुन तू सोइ॥७॥
सरस थीर हृद चीकनो सातिकप्रिय आहार।
आयु सत्व अरु अगबल प्रीत बढावनहार॥८॥
दाहक रूखो उष्न कटु तीछन खाटो खार।
सोक रोग दुख देत हैं राजस ये आहार॥९॥
जाहि रिंधे पहरक गयो बासी उठ्यो बसाइ।
जूठैं और पबित्र नहिं भोजन तामस खाइ॥१०॥
विधि बिधान सों कीजिये छाड़ि फलन की आस।
जज्ञ करै श्रद्धा सहित सातिक है सुखरास॥११॥
करिकैं फल का कामना और दंभ के दाइ।
ऐसैं जो जज्ञन करै सो राजस है भाइ॥१२॥
बिना अन्न बिनु दच्छिना बिना मंत्र बिधिहीन।
बिन श्रद्धा जज्ञहि करैं सो हैं तामस लीन॥१३॥
ज्ञानी गुरु द्विज देवकों पूजैं सुध मृदु होइ।
ब्रह्मचर्य हिंसा तजै तप सारीरक होइ॥१४॥
मौन करै जे प्रिय बचन हितकारी सतभाइ।
करै बेद अभ्यास पुन वाचिक तप या दाइ॥१५॥
मनप्रसाद जो सरलमन इंद्रीनिग्रह मौन।
भाव सुद्ध यह कहत हैं मानस तपसी जौन॥१६॥
श्रद्धा सौं नर तप करैं सो है तीनो भाँत।
फल इच्छा छोडें करैं सोई सातिक सात॥१७॥
कारन आदर मान के और दंभ के काज।
सो तप राजस कहत हैं चंचल छिनक समाज॥१८॥
देहैं दुख दै मूढ अति हठ सों जो तप होइ।
पर कों कष्ट दिखावही तामस तप है सोइ॥१९॥

दान जु दै उपकार बिन पात्र बिप्र कों देखि।
देस काल कौं जानिकैं सातिक दान बिसेखि ॥२०॥
कीजै जो उपकारहित फल की आसा मानि।
जो दीजै अतिकष्ट सौं ताकौं राजस जानि ॥२१॥
बिना देस अरु काल बिनु दीजै नीचैं दान।
बिनु आदर अधिकारि बिनु तामस ताहि बखान ॥२२॥
ओं तत सद इति ब्रह्म के नाम जु तीन प्रकार।
बिप्र बेद अरु जज्ञ त्यूँ कीने पहली बार ॥२३॥
क्रिया जज्ञ अरु दान तप कहि पहिले ओंकार।
बेदब्रत जे कहत हैं बिधि बिधान बिस्तार ॥२४॥
तत इति करिकें करत हैं क्रिया जज्ञ तप दान।
फल अभिलाषा छाडिकैं चाहत मुक्ति निदान ॥२५॥
साधु भाव सत भाव मैं सत को करत बिचार।
और भले पुन कर्म मैं सत कौं गावत सार ॥२६॥
जज्ञ दान तप इस्थिनिहि ताहि कहत सत नाम।
ताके जे जे कर्म हैं ताको सत बिश्राम ॥२७॥
बिन श्रद्धा तप होम जप देत सबै जु अकाज।
अर्जुन सो यहि असत है दुहूँ लोक मैं लाज ॥२८॥

त्रिगुण कर्मविभागयोग नामक सप्तदश अध्याय समाप्त ॥१७॥

(१८)

अर्जुन—त्याग तत्व जान्यो चहत कहिऐ जू भगवान।
तत्व और सन्यास कौ न्यारो कहौ बखान ॥१॥

श्रीकृष्ण—कामजुक्त कर्मन तजै ताहि नाम सन्यास।
कर्मफलन कौं त्याग यहि त्याग सहित सुख रास ॥२॥
कर्मन छाडें दोख बहु कोउ कहत या रीति।
जज्ञ दान तप कर्म जिन तजौ और यह नीति ॥३॥
या ठौरहिं अब त्याग तूँ मेरे निहचै जानि।
तीन भाँति को त्याग यहि अर्जुन चित मैं आनि ॥४॥

जज्ञ दान तप कर्म जे कीजै तजिऐ नाहिँ।
यातैं पंडित आन जन गनत पवित्रन माहिँ ॥५॥
फलु छाड़ै संगति तजै कर्म करै चित चाइ।
अर्जुन यह मेरो जु मत निहचै उत्तम दाइ ॥६॥
जो अवस्य करनो करम ताकौं छाड़ि न देइ।
जो छाडै अज्ञान तैं सो तामस गनि लेइ ॥७॥
यहि जानै कर्मन तजै मन देही दुख होइ।
यहि तो राजउ त्याग हैं या महिँ फल नहि कोइ ॥८॥
करनो कर्म अवस्य यह जान जु कीजै कर्म।
संग और फल को तजै सातिक त्याग सु धर्म ॥९॥
बुरे कर्म निंदा नहीं भलें रहै नहिं लागि।
बुद्धिवंत संदेह बिन यहि है सातिक त्यागि ॥१०॥
देहिवंत पै कर्म सब नाहि जु छाडे जाहिँ।
कर्मफलन कौं जो तजै सोई त्यागी माहि ॥११॥
स्वर्ग नरक अरु भूमि जे कर्म त्रिबिधि फल जान।
कर्मवंत कौं होत हैं सन्यासी नहि मान ॥१२॥
अर्जुन मो पै सुन जु तूं कारन हैं ये पाँच।
कह्यो सांख्य सिद्धांत मैं कर्मभेद को साँच ॥१३॥
अधिष्ठान कर्ता जु है करन बहूते भाइ।
नानाबिध व्यवहार अरु पंचम दैव गनाइ ॥१४॥
मन अरु बचन सरीर सौं कर्म करत या साज।
भलो बुरो कोऊ करै इन्ह बिन सरै न काज ॥१५॥
जे नर आतमराम कौं मानत हैं करतार।
देखत हूँ देखत नहीं ते नर मूढ गँवार ॥१६॥
जाकी बुधि निरलिप्त है अहंकार नहिँ जाहि।
सो इन्ह लोकन कैं हनत हनैं जु बध न ताहि ॥१७॥
प्रेरक तीनो कर्म कै ज्ञान ज्ञेय ज्ञातार।
करन करम कर्ता करम संग्रह तीन प्रकार ॥१८॥
त्रिबिध होत गुन भेद तें ज्ञान कर्म करतार।
गुन संख्या मैं ये कहैं जैसैं सुनि ये बार ॥१९॥

जा करि देखै जीव मैं अबिनासी इक भाइ।
न्यारे मैं न्यारो नहीँ सातिक ज्ञान बताइ ॥२०॥
नाना भाइन महिँ लखै न्यारो न्यारो ज्ञान।
भिन्न लखै सभ जीव कौँ राजस ज्ञान सु जान ॥२१॥
पूरन जानै एक मैं बिन कारन रे मित्त।
तत्व अर्थ बिन अल्प मत तामस ज्ञान अनित्त ॥२२॥
रग राग अरु द्वेष बिनु नियत कर्म जब होइ।
तजि फल इच्छा कीजिये सातिक कर्म जु सोइ ॥२३॥
जौ कीजै करि कामना कैधौँ करि हकार।
जा महि स्रम है अति घनो सो राजस निरधार ॥२४॥
पौरुष हिंसा सुभ असुभ द्रव्य खर्च न बिचार।
जो कीजत अज्ञान तैँ तामस कर्म निहार ॥२५॥
धीरज धरि उतसाह कौ तजै सग हकार।
निर्बिकार सिधि असिधि सम सातिक क्रम करतार ॥२६॥
रागी चाहै कर्मफल लुबधक हिसक होइ।
हर्ष सोक सजुत असुचि राजस कर्ता सोइ ॥२७॥
सुचि बिन रहै बिबेक बिनु सठ आलकसी नित्त।
सभ ही की निंदा करै अरु बिषादजुत चित्त ॥२८॥
थोरे दिन के काज कौँ बहुत लगावै बार।
ताही सोँ सभ कहत हैँ यहि तामस निर्धार ॥२९॥
बुधि अरु धीरज तीन बिधि होत जुगन के भाइ।
न्यारे न्यारे सभ कहत ते हौँ तोहि सुनाइ ॥३०॥
काज अकारज भै अभै अरु परबृति निबृत्त।
जामै बधन मुक्ति जो सातिक बुधि की बृत्ति ॥३१॥
धर्म अधर्मन कौँ लखै काज अकाजै जान।
जैसे महिँ तैसे गनै बुद्धि राजसी मान ॥३२॥
जानत पापहि पुन्न करि दभ अज्ञानी होइ।
लखै अर्थ बिपरीत सभ बुद्धि तामसी सोइ ॥३३॥
जासौँ इद्री रोकि करि चित्त क्रिया अरु प्रान।
जोगजुगत निहचल महा धीरज सातिक जान ॥३४॥

धर्म अर्थ अरु काम कौं जो धारत है आइ।
चलै जु फल परसग तैं धीरज राजस भाइ ॥३५॥
जो भय सोक बिषाद मद स्वप्न मांहि ठहिरात।
दुष्टबुद्धि जानै नहीं धीरज तामसजात ॥३६॥
अब अर्जुन मो पै जु सुन सुख के तीन प्रकार।
जाको भ्यास जु कीजिये दुख को होइ निवार ॥३७॥
पहिलैं जो बिष सो लगै बहुरि अमृत सो जोइ।
सो सुख सातिक सैं कहै बुधिप्रसाद तैं होइ ॥३८॥
इंद्रि बिषयसंजोग तैं पहिलैं अमृत समान।
पाछै जो बिष सो लगै सो राजस सुख आन ॥३९॥
पहिलैं सुख पाछैं दुखद मोहत करै जु कोइ।
निद्रा अलस प्रमाद सौं भयो तामसी सोइ ॥४०॥
जो पुहुमी महि नहिं कछू सुर मैं और अकास।
सत रज तम तीनो गुनन बँध्यो जु मायाफाँस ॥४१॥
द्विज अरु क्षत्री बैस्य के और सूद्र के कर्म।
निज सुभाव गुन सौं भए न्यारे न्यारे धर्म ॥४२॥
सम अरु दम तप सौच पुन और सरलता साति।
आस्तिक ज्ञान बिज्ञान यहि ब्रह्म कर्म की भाति ॥४३॥
सूर तेज धीरज चतुर जुद्धि माझ न पलाव।
दै ठकुराई सौं रहै क्षत्री कर्म स्वभाव ॥४४॥
खेती गोरच्छा बनिज बैस्य कर्म ये जान।
सभहूँ की सेवा करै सुद्र कर्म यह मान ॥ ४५ ॥
अपने अपने कर्म तैं सिद्धि लहै सभ कोइ।
सो बिधि अब मो पैं जु सुन कर्म सिद्धि ज्यूं होइ ॥ ४६ ॥
जातैं उपजन जीव सभ जिन्ह कीनो बिस्तार।
कर्म करत तोकौं भजै सिद्धि लहै नर सार ॥ ४७ ॥
नीकैहूँ परधर्म तैं निगुन भलो निज धर्म।
कछू पाप पावै नहीं करत आपनो कर्म ॥ ४८ ॥
दोषसहित निज कर्म लखि रहै न क्यूँ हूँ त्यागि।
दोष भरे आरंभ सभ धूमसहित ज्यूँ आगि ॥ ४९ ॥

लगन बुद्धि कहुँ नहिँ करै जीतै मन तजि आस।
कर्मसिद्धि निहकर्म ही पावै करि सन्यास ॥ ५० ॥
सिद्धि पाय परब्रह्म कौँ जैसैँ पावत सार।
कहौँ सु हौँ सछेप सौँ निष्ठाज्ञान अपार ॥ ५१ ॥
रहै बुद्धि जौ सुद्ध सौँ धीरज सौँ मन धारि।
सब्द आदि बिषिया तजै राग द्वेष कौँ मारि ॥ ५२ ॥
रहै सदा एकात मैँ लघु भोजन मन जीति।
ध्यानजोग तत्पर सदा यह बिराग की रीति ॥ ५३ ॥
क्रोध परिग्रह काम दल दर्प और हंकार।
ममता तजि निर्मल रहै सात ब्रह्म मैँ सार ॥ ५४ ॥
ब्रह्म भयो परसन्न मन सोच करै नहि चाहि।
सभ जीवन कौँ सम लखै पावै भक्ति परा हि ॥ ५५ ॥
मो कौँ जानै भक्ति करि जितनो होइ जु भाइ।
मोहि जानि कै तत्व सौँ मेरी भक्ति कराइ ॥ ५६ ॥
मो कर्मन कौँ नित करै मेरो आस्रै पाइ।
मम प्रसाद तैँ जो रहै अच्छर पदवी जाइ ॥ ५७ ॥
मन सौँ मौ मैँ कर्म धरि मो तत्परता लेइ।
बुद्धिजोग कौँ सेइ करि मोहीँ मैँ चित देइ ॥ ५८ ॥
मो प्रसाद तेँ दुर्ग सभ तरत जु बिनु आयास।
अहकार ते चित सु लहि है तूं जे अबिनास ॥ ५९ ॥
लरौ नहीँ ज्यौँ तुम कहत अहकार कौँ मान।
यहि तोकौँ अवरूढहै प्रकृति लरै है आन ॥ ६० ॥
अर्जुन अपने कर्म सौँ तेँ राख्यौ है मोहि।
करयो न चाहै मोह तैँ परबस करिहै सोइ ॥ ६१ ॥
ईस्वर सभ के हीय मैँ अर्जुन रहि तसु गूढ।
जीव सदा ही भ्रमत है करि माया आरूढ ॥ ६२ ॥
होहु सदा वाकी सरन अर्जुन तूँ सभ भाइ।
अबिनासी थिर सात पद ता प्रसाद तैँ पाइ ॥ ६३ ॥
जो कुछ है सभ तैँ दुरयो परम बचन मो मानि।
तूँ दृढबुद्धि जु मीत है तो हित कह्यौँ बखानि ॥ ६४ ॥

मो कौँ जजु तूँ सत्य यहि मो महिँ ही मन राखि।
अत समैं त मोहिं मैं प्यारे तुम्ह यहि भाखि ॥६५॥
सम धर्मन कौं त्यागि कै मो सरनैं तू आइ।
दूरि करौं सम पाप हौं सोक तजो या भाइ ॥६६॥
जाके तप नहि भक्ति नहिँ अरु सुसूषा नाहि।
तासों तूँ यहि मत कहै मो द्वेषी जग माहिँ ॥६७॥
मो भक्तन सो जो कहत परम दुर्यो यहि ज्ञान।
सो मेरा भक्तिहि लहै मो मैं रहे निदान ॥६८॥
मोकौं प्यारो बहुत वहि हौं प्यारो हूँ ताहि।
वहि मुहिं राखत हीय मैं हौं राखौं हिय वाहि ॥६९॥
धर्मवाद जो हम कियो पढ़ै जु कोऊ जान।
ज्ञान जज्ञ तिन्ह हौं जजौं यहि मेरो मत मान ॥७०॥
श्रद्धातुर दोखन बिना याहि सुनै जो कोइ।
पुन्नवत लोकन लहै मुक्ति जु ताकौं होइ ॥७१॥
चितु एकाकी होइकै सुन अर्जुन यहि धर्म।
मिटै मोह अज्ञान तब और छुटैं चित भर्म ॥७२॥
अर्जुन—मो हूँ कौं आई सुरत ये हो श्री भगवान।
भयो दूर सदेह अब तव आज्ञा परवान ॥७३॥
संजय—हरि अर्जुन की बात यहि सुनी जु मैं या भाइ।
अचरज रूप अनूप अति रोमहर्ष चितु चाइ ॥७४॥
परम दुर्यो मतु यहि जु हो सुन्यौ ब्यास परसाद।
जोगेस्वर श्रीकृष्न जू निज मुख कियो बिवाद ॥७५॥
बार बार सिमरत जु हौं वा सवादहिं राज।
हर्ष होत मो कों तहाँ अति पवित्र कैं साज ॥७६॥
अद्भुत रूप जु कृष्न को सिमर सिमर हौं ताहि।
हर्ष होत मोकों बहुत बिस्मै कौन जु वाहि ॥७७॥
यहि गीता अद्भुन रतन श्रीमुख कियो बखान।
बार बार निरधार किय परम मुक्त को ज्ञान ॥७८॥

भक्तबछल श्रीकृष्न जू यहै कियो निरधार।
करै भक्ति अभ्यास ह्वै यहै बेद को सार ॥७९॥
कृष्न जु अर्जुन सौं कही कारन बाकबिलास।
गीता की टीका करी यहि जसवंत प्रकास ॥८०॥

इति श्रीमहाभारतभीष्मपर्वगत, श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषद् मोक्षसन्यासयोगनामक अष्टादश अध्याय समाप्त।

इति श्रीकृष्णार्जुनसंवादमय श्रीमद्भगवद्गीताभाषा—दोहा, जसवंतकृत अष्टादश अध्याय समाप्त।

गीतामाहात्म्य

गीतामाहात्म्य

श्रीरामाय नम । अथ गीता माहात्म्यइतिहास कथा लिख्यते ॥

(१)

दोहा

गुर गोबिंद प्रणाम करि ' सारद पुनि ईस ।
सत चरण रज रेणि लै धरौं आपणौं सीस ॥ १ ॥
गीता की महिमा कहौं कही प्रथम जो व्यास ।
प्रगटी पद्मपुराण तै सबकी पूरण आस ॥ २ ॥
गीता बाचै जो सुणौं नैननि देखै कोइ ।
इतना कौ दरसन करैं भक्ति मुक्ति फल होइ ॥ ३ ॥
सो इतिहास सुणो गुणो कहौं पुरातन साषि ।
लक्ष्मी सौं बैकुंठ में नारायण जी भाषि ॥ ४ ॥
कैलास सिखर उत्तिम सदा तहा रुद्र कौ धाम ।
पारबती प्रसननि करे सबके पूरण काम ॥ ५ ॥

पार्वत्युवाच—चौपाई

हे प्रभु तुम कौं बूझौं सोइ । जातैं तुम पवित्र अति होइ ।
सकल जीव तुम ही कूं ध्यावैं । तुमरी दया मुक्ति सो पावै ॥६॥
बेइल चढ्यौं वाढ्यौं मृगछाला । अग भस्म मुडन की माला ।
विषधर सरप कठ मैं सोहै । बिष धतुरा कौ भछिछन सो है ॥७॥

दोहा

जेते लछन देखियै उन सन एक न आइ ।
क्यौं पवित्र तन मन भयो तो कहिये समझाइ ॥ ८ ॥
श्री महादेव उवाच ॥ दोहा ॥
सुण देवी तोसूं कहौ निज गीता को ज्ञान ।
जाहि पाइ सब कछु करै करमन लिये निदान ॥ ९ ॥

चौपाई

सो वह गीता ग्यान कहावै। मेरा हिरदा माँझि रहावै।
देह धरे सब करम करावै। गीता सुमरि परम पद पावै ॥१०॥

पार्वती उवाच (चौपई)

प्रभु जी तुम गीता यूँ गाइ। ताकी महिमा बहोत सुनाइ।
गीता सुनत भये जे पार। तिनकी साषि कहौ निरधार ॥११॥

श्री महादेवोवाच—चौपाई

सुनि देवी तोकूँ समझाऊँ। गीता भक्ति मुक्तिमय गाऊँ।
यौं ही प्रसन लछ्छमी करी। उत्तर दीन्हौ श्रीनरहरी ॥१२॥

दोहा

फनपति की सेज्या करी खीर समद के माहिँ।
चरन पलोटे लछ्छमी नारायन के ताहिँ ॥१३॥

चौपई

एक दिनाँ नारायन स्वामि। नैंन मुंदि रहे अंतरजामि।
अंतर उपज्यौ आनँद ऐन। तब तें लछमी बोली बैन ॥१४॥
तुम प्रभु सकल लोक के ईस। तुम पदरज बंद्ये सिव सीस।
नींद भूख आलस होइ ताहि। तामस जोनि जीव है जाहि ॥१५॥

श्रीनारायण उवाच

नारायण जी बोले ताहि। मोकूँ आलस निद्रा नाहि।
सबद सरूपी गीता कहिये। ताके ग्यान मगन होइ रहिये ॥१६॥
सो यह ग्यान बेदहू कहै। जाहि जानि जिव आनँद लहै।
तन की ताप छियै नहि ताकौं। गीता ग्यान प्रकासे जाकौं ॥१७॥
ज्यूँ चोबीस जानि अवतारा। त्यूँ ही गीता रूप हमारा।
निराकार आकार कहावै। सबद सरूप गात तनु पावै ॥१८॥
अध्यॉय पाँच मेरो मुख कहियै। दस अध्याय भुजा सो लहियै।
अध्यॉय एक सो उदर बखानौ। दोइ अध्याय चरन सो जानौ ॥१९॥
नौ नाडी इसलोक बखानौ। अख्खर सबै रोमावलि जानो।
जो गीता को अरथ बखानै। परमानद परम सुख मानै ॥२०॥

सुनि लछमी तू ऐसे जानै। चरन पलोटैं तैं सुख मानै।
गीता तैं मैं आनँद लहौं। गीता ग्यान मगन होइ रहौं ॥२१॥

लक्ष्मी उवाच

हे प्रभु गीता तुम यौं कह्यो। गीता सुणिया बर कैं लह्यो।
तिन के नाम करम समझावौ। मोरें मन आनद बढावौ ॥२२॥

श्रीभगवान उवाच

सुनि लछमी तिण सब गति पाइ। तिणकी कथा कहौं समुझाइ।
एक जाति को सुद्र जो होइ। चिंडाल करम को करता सोइ ॥२३॥
बकरी एक सु पाली ताही। चारो लेन गयो बन माही।
बृछ्छ जानि तोरन भया जबै। खायो सरप मृतक भयो तबै ॥२४॥
बहोत काल नरक में रह्यौ। बहुरौ जनम बइल कौ लयौ।
लूलै भिछ्छिक मोल सो लीनौ। तापरि चढि भिछ्या चित दीनौ॥२५॥
माँगत भीख नगर सब फिरै। साँझ होइ तब आवै घरै।
सुत दारा मिलि अन्न सु खाहीं। वाको फूस पेट भरि नाहीं ॥२६॥
भुस तुस खाव एक भर पावें। प्रात समै उठि मागन जावें।
कइक दिनाँ पेट दुख सौं भर्‍यौ। भूखौ एक दिनाँ गिरि पर्‍यौ ॥२७॥
प्राण न छूटै अति दुख पावै। देखन लोक नगर कौं आवै।
जप तप दान बहुत बिधि कीन्हौ। पुनि जु करैं सो सब मिलि दीन्हौ॥२८॥
पापी बैल मरिहु नहिं जाई। ताहि देखणौ गनिका आई।
क्यौं यह भीर बहोत सौं होई। बूझी बात कहैं सब कोई ॥२९॥
गनिका बोलै बात सुनाई। मै तो पुनि न कीन्हौ काई।
जाण अजाण पुनी जो होही। सो सब दियौ बैन मैं तोही ॥३०॥
मर्‍यौ बैल गनिका सुनि बैन। देह बिप्र की पाई ऐन।
बिद्या पढै बेद मति मानै। जन्म पीछलै की सब जानै ॥३१॥
एक दिनाँ मन मैं जु बिचारी। खोजि लैहुँ गनिका वह नारी।
जिनि मोहि पुन्य आपनौ दयौ। पसू पलटि उत्तम द्विज भयौ ॥३२॥
खोजत खोजत गनिका पाई। वाकौं बूझी बात सुहाई।
कहै बिप्र पहिछानत नाईं। गणिका कहै न जाणौं काईं ॥३३॥
गणिकाकरम हमारौ नीचौ। किसी पिछाणि बिप्र कुल ऊँचौ।
तब वह बिप्र कहै समझावै। कथा पाछिली गाइ सुनावै ॥३४॥

विप्र उवाच

बोलै बिप्र सुनौ हौ माई। तेरे पुन्य परम गति पाई।
मेरैं हुती बैल की देही। दियौ पुन्य तुम किया सनेही ॥३५॥
ज्यूँ मैं भयौ बिप्र अधिकारी। सो वह पुन्य कहौं बर नारी।
गनिका कहै पुन्य नहि मेरैं। फिरि फिरि चरन लगत हौं तेरैं॥३६॥
पर्यौ बिप्र ताकैं घर माहीं। देखै सुवटा पढतौ ताहीं।
कहै बिप्र सुवटा कछु भाखै। सरधहीण गनिका अब राखै ॥३७॥
सुणें पुन्य तें सदगति पाई। यह बेस्या जाणै नहि काई।
पूछे बिप्र सुवा कौ बात। जो तुम पढौ सुणावौ तात ॥३८॥
परे पिंजरा क्यूं करि आए। द्विज कौं सुवटा बचन सुनाए ॥३९॥

सुवा उवाच

हुतो बिप्र मैं पहिली देहा। जाणौ सबै सुणाऊं भेवा।
मैं गुर अग्या मानी नाहीं। गुर को कह्यो कियो ना काहीं ॥४०॥
गुर सूं कह्यौ कहा पढि जानै। गुर तैं आप अधिक करि मानै।
गुर नै श्राप मोहि जब दीन्हौ। पढि सुवटा पिंजरे कौ कीन्हौ ॥४१॥
बधिक पकरि नगरी मैं ल्यायौ। एक बिप्रसुत मोहिं पढायौ।
गीता सुत कौ पाठ करावै। पहिलौ सो अध्याइ पढावै ॥४२॥
सो मैं सुणी विप्र के बैना। मन निरमल करि सीखे ऐना।
एक दिन चौर विप्र कैं आए। देखि दलिद्र महा दुख पाए ॥४३॥
मो समेत ·· पिंजरा लीन्हौ। बेस्या मित्र ताहि लै दीन्हौ।
मैं नित पढौ प्रथम अध्याइ। गनिका सुणै सहज सुख पाइ ॥४४॥
समझै नहीं सुणत सुख पावै। बोलैं सुवा वाहि समुझावै।
सुवैं पुरातम गाथा गाइ। बिप्रहि गीता अति मन भाइ ॥४५॥
बिप्र सुवा कौं आसिक दीनी। पछी पलटी देवगति कीनी।
गणिका पुनि छाड्यौ वह करमा। सेवै सदा त्रिये सुरधर्मा ॥४६॥
गनिका बिप्र मुक्त सब भए। चढि बिमान बैकुंठहि गए।
नारायण जी बोले बाणी। सुणौ लछ्छमी सो पटराणी ॥४७॥
अणजाणेहू यह फल पावै। जाण सुणै कछु कहत न आवै ॥४८॥

दोहा

यह पहिली अध्याय को भाख्यौ महात्म ऐन ।
लछमी सूँ बोले प्रगट नारायण जी बैन ॥४६॥
सकल सार को सार है सकल ग्यान को ग्यान ।
सकल धरम सुभ करम है कह्यो भाखि भगवान ॥५०॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे सतीईश्वरसंवादे गीतामाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः॥१॥

(२)

दोहा

अब दुसरी अध्याय की भाखौं कथा सु ऐन ।
लछमी सौ जो कहत हैं श्रीनारायण बैन ॥ १ ॥

चौपाई

श्रीनारायण बोले बाणी । सुनौ लछमी कथा पुराणी ।
अब दूजी अध्याय सुनाऊँ । मुक्त भए ते परगट गाऊँ ॥ २ ॥

श्रीनारायण उवाच

नगर पुराणो दच्छिन माहीं । बिप्र सुसरमा बसे सु ताहीं ।
धन अरु बिद्या सब सुख पूरौ । सेवै सदा भक्त को जूरौ ॥ ३ ॥
पूछै प्रस्न कहौ सो ग्याना । मुक्ति होइ पावौं भगवाना ।
पूजै साध करै मन भायो । एक दिनाँ ब्रह्मचारी आयो ॥ ४ ॥
ताकौ बहोत कियो सनमाना । पूछ्यौ मोहिं देहु प्रभु ग्याना ।
तब बोले बालक ब्रह्मचारी । सुनहो बिप्र कहौं निरधारी ॥ ५ ॥
सुणौ दूसरी सो अध्याय । तजै बंध मुक्ती होइ जाय ।
कहै बिप्र नीके समझावो । मुक्ति भए ते परगट गावो ॥ ६ ॥
ब्रह्मचारी बोले यह बानी । कहौ बिप्र सो कथा पुरानी ।
एक गडरिया अज्या चरावै । मेनाबत सो नाम कहावै ॥ ७ ॥
बन में बकरी चरती फिरै । ऊँचे बैसि भजन सो करै ।
बकरी लीये बन कूँ आवै । ता बन में एक सिंघ रहावै ॥ ८ ॥
बकरी एक हुती सब आगै । ताकौं देखि सिंघ अति भागै ।
बकरी देखि सिंघ भजि गयो । अज्यापाल कूँ अचरिज भयो ॥ ९ ॥

ऐसी बात सुणी नहिँ देखी । अज्यापाल सोच भयो बिसेषी ।
अज्यापाल ये सोच चढायौ । तुरत एक ब्रह्मचारी आयौ ॥१०॥
अज्यापाल जब पूछै ऐसेँ । सिंघ भज्यो बकरी तैं कैसेँ ।
तुमकौं तीन काल की सुझै । वाहि गडरिया फिर फिर बुझै ॥११॥

ब्रह्मचारी उवाच

अज्यापाल तू बूझै मोहि । पिछली कथा सुनाऊँ तोहि ।
सिंघ बधिक हौ पहिली देहा । डाकणि हुती सो बकरी येहा ॥१२॥
पुरक मर्यो डाकनि कौ जबैं । तेहन पुरष खायौ सो तबैं ।
बधिक सिकारी गो बन माहीं । डाकनि लकरी बीनै ताहीं ॥१३॥
सो वह बधिक डाकणी खायौ । मरिकै सिंघ देह धरि आयौ ।
डाकणि मरि बकरी भइ एहा । सिंघ पीछली जाणै तेहा ॥१४॥
वातैं सिंघ महा भय पाइ । मोहि खाण कूं डाकणि आइ ।
अज्यापाल तब ऐसे भनै । बाल रूप ब्रह्मचारी सुनै ॥१५॥
हे प्रभु ऐसो कौन उपाय । डाकनि सिंघ मुक्ति होइ जाय ।
ब्रह्मचारी जब बोले ऐसैं । अधम देह तैं छूटै तैसैं ॥१६॥
अज्यापाल तब सिंघ बुलायो । मति जिव डरपै हाय मन भायो ।
ब्रह्मचारी कौं सबही सूझै । अपनी बात गडरिया बूझै ॥१७॥
मैं को हुतौ पीछली देह । कहौ कृपा करि धरौ सनेह ।
ब्रह्मचारी तब करैं बखानौं । तूँ चिंडाल हुतौ मैं जानौं ॥१८॥
कहै गडरिया यह मन धारौ । करि उपाय तीनन कौं तारौ ।
ब्रह्मचारी तब येह बिचारी । गीता बिना इन्हैं को तारी ॥१९॥
सरस सिला परबत कै माहीं । अध्यॉय दुसरी लिखी सु ताहीं ।
तबहि तीनि वै नैननि देखी । मन बच करम सत्ति करि लेखी ॥२०॥
अख्खर द्दष्टि देखि सुख पाए । तीन बिमान तुरति ही आए ।
अधम देह तैं छूटे तबै । रूप चत्रभुज धारयौ सबै ॥२१॥
तीनहु तुरति देवगति पाइ । अध्यॉय दुसरी ऐसे गाइ ।
पढै सुणै गीता चित लावै । फल असखि होइ बेद बतावै ॥२२॥
अछ्छरि देखि मुक्ति जिन लही । फल अनतहू को कह सही ।
महिमा कहत सेसहू थकै । नर बुधि ही कहि नाहीं सकै ॥२३॥

दोहा

यह दूजी अध्याय कौ कहीं माहतम भाखि।
लछमी सूं भगवान जी प्रगट सुनाई साखि ॥२४॥
इति श्रीपद्मपुराणे गीतामाहात्म्ये द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥

(३)

दोहा

अब तीजी अध्याय को भाषौं उत्तम ग्यान।
प्रसन पूछै लछमी कहैं आप भगवान ॥ १ ॥

श्रीभगवान उवाच ॥ चौपाई

श्रीनारायण बोले बाणी। सुनौ सत्य सो कमला राणी।
ताहि तिसरी अध्याय सुणाऊँ। ताको फल परगट करि गाऊँ ॥ २ ॥
एक द्विज करम सूद्र सौ भयौ। अति जड बाकौ नाम सो लयौ।
मनुवा नगर बास वा केरौ। तानै धन सच्यौ बहुतेरौ ॥ ३ ॥
अनरथ करि धन जोरयो ऐसैं। अरब खरब जख (पति)धन जैसैं।
बहुत पाप धन सचै भयौ। ज्यूँही आयौ त्यूँही गयौ ॥ ४ ॥
.. . .. . ।
. ... ॥५॥
बाको धन नास भयो तबै। बीते बहोत बरस सौ जबै।
जानि मानि कूँ बूझत फिरै। धन की इछ्या मन मैं धरै ॥ ६ ॥
भूमी सोधन मत्र सिखावै। गाड्यौ धन परगट होइ आवै।
नैननि कौ अजन जो होइ। थैली चोरौं गहै न कोइ ॥ ७ ॥
धन कै हिते माँस मद खावै। चौरी चुगली जुवा सु भावै।
अधरम करत जन्म सौ बीतौ। धन नहि भयो पर्यो सो रीतौ ॥ ८ ॥

दोहा

एक दिनाँ धन काम करि गयौ सो बन के माहिँ।
नाम छोहरा जानि कै चौरनि मार्यौ ताहिँ ॥ ९ ॥

चौपाई

मरि करि तुरत प्रेत तनु पायौ । बरस एक बन माहिँ रहायौ ।
हाहाकार पुकारि तकि रहै । दुख अनति सुख मूरि ना लहै ॥१०॥
त्राहि त्राहि करि महा पुकारै । मेरे बस होइ को तारै ।
वाकै पुत्र एक घर माहीँ । पूछी बात प्रान कै ताहीँ ॥११॥
कैसे मरयौ पिता सो मेरौ । करत हुतौ बिणज केहि केरौ ।
तब माता पुत्रनि समझायौ । तेरौ पिता द्रिव्य कौँ ध्यायौ ॥१२॥
घर कौ द्रिव्य नास ह्वै गयौ । तातैं वह त्रिष्ना बसि भयौ ।
त्रिसना हेति बिदेसहि ध्यायौ । बन मै चौरनि मार गिरायौ ॥१३॥
ठौर व मोहिँ बतावौ माइ । माता कछू न जाणौं काइ ।
तब बालक पडित कौं बूझै । तुम कौ ओर करम को सूझै ॥१४॥
मेरे पिता सू दुरगति पाइ । ता तारिबै कि कहूँ उपाइ ।
पढयौ बिप्र तब बोलै ऐसे । कहूँ तोहि पितु तरिहै जैसे ॥१५॥

गया जाहु करि पिंड सराध । सब पित्रन की पूरौ साध ॥१६॥

करि भोजन अरु बिप्र जिमावौ । पिता तिरै तुम सदगति पावौ ॥१७॥
बालक चल्यौ गया के ताईं । प्राग जाय गगा जी न्हाई ।
बाणारसी सुधिष तन भयौ । तब बालक आगैं कौं गयौ ॥१८॥
तहाँ एक बड़ छाया देखी । उतरचौ तहाँ सुपुत्र बमेखी ।
तीजी ध्याय चित्त मैं धरै । गीता पाठ सो नित ही करै ॥१९॥
गीता पढि सु बृछ्छ की छाहीँ । पिता प्रेत वाकौ सो ताहीँ ।
गुर के बचन जपे जो ऐन । तृतिय ध्याय सुणि पायो चैन ॥२०॥
सुनै प्रेत गीता के बैन । दिव्य देह धारी सो ऐन ।
दिव्य बिमान सुरग सूँ आयौ । तापरि चढि सुत कौं समझायौ ॥२१॥
पिता कहै सुत मेरौ होइ । मैं चौरनि मारयौ थौ सोइ ।
मोहि सुनायो गीता ग्यान । गयौ प्रेतता चढयौ बिमान ॥२२॥
चढि बिमान बैकुठहि जाऊँ । तोकौं एक और समझाऊँ ।
पुरुषा सात नरक तैं तारौ । अध्यॉय एक सबकौं निरधारौ ॥२३॥
अध्याइ तिसरी पाठ सो कीन्हीं । एक एक फल सबकौं दीन्हीं ।
सात बेर पढि सात उधारे । महा त्रास सकट सूँ तारे ॥२४॥

अहापतित बैंकुठ सिधारे। जमनि जाइ जमराज पुकारे।
नरकन कै रखवारे भाखैं। ऊभड़ नरक हम कहाँ राखैं ॥२५॥
पापी जीव नरक मैं डारे। चढि बिमान बैंकुठ सिधारे।
मानें नहीं तुमारी आन। पापि जीव लै चलै विमान ॥२६॥
तब जमराज तुरति मन धरी। जाइ पुकारौ श्रीनरहरी।
सेस सैन पाताल मँझारी। मुदगर पासि तहाँ लै डारी ॥२७॥
बहोत भाँति कीनौ परनाम। अष्टँग दँडवत करि मनसा म।
सुणिए प्रभु एक बात हमारी। नरकन जीव पर ढरौ भारी ॥२८॥
बहोत जन्म तैं पाप करावे। तातैं जम नरकनि मैं ल्यावे।
तुमरे तुरत पारषदि आये। चढि बिमान बैंकुठहि ल्याये ॥२६॥
काणि न मानी नैक तुमारी। बधन पासि तोरि सब डारी।
अहो अनत अविगत अविनासी। मुद्रा दड लेहु यह फासी ॥३०॥
करौ कोटवालै सो कोय। यातैं टहल तुमारी होय।
श्रीनारायण हसि कै कह्यौ। जमराई तुम दुख क्यूँ लह्यौ ॥३१॥
मन मैं दुख्ख कष्ट मति लहौ। ग्यान सरूप मगन होइ रहौ।
पापी हुते सु इतनी बार। अब कछु पुन्य प्रकासौं सार ॥३२॥
मेरी सीख एक तुम मानौ। सो मैं कहूँ सचि करि जानौ।
गीता पढै सुणै जो कोय। अध्यॉय तिसरी पढतौ होय ॥३३॥
सो वह पुन्य और कौं देवै। सौ [तौ] जीव नरक नहिं सेवैं।
सुणि ए प्रभु की अमृत बानी। रबिसुत हिरदै सति करि जानी ॥३४॥
अपने लोक धरम सो गये। अपनै गन कौ सिखवत भये।
गीता पुन्य देव जो जाही। तुम नैननि जिनि देखौ ताही ॥३५॥
गीता पाठ जो सुणत जो पावै। जोनी सकट बहोरि न आवै।
दियो पुन्य गीता कौ जेह। पापी जीव मुक्त भये तेह ॥३६॥

दोहा

श्रीनारायण जी कही यह तिसरी अध्याय।
भइ लछमी जी मगन सौ निज आनँद मन माइ ॥३७॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे गीतामाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

(४)

दोहा

श्रीनारायणजी कही लछमी सौं समझाय।
अब चौथी अध्याय की कथा कहत सुख पाय ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

जे जिव गीता सुणै सुणावै। तिनकौ फल का पैं कहि आवै।
तिनको कोइ अँग छुवै जो कोइ। छूटे बध मुक्तिफल होइ ॥ २ ॥
कहत लक्षमी अमृत बानी। तिनकी साखी कहौ सो आनी।
जिनके चरन छूवैं गति पाइ। तिनके नाम कहौ समझाइ ॥ ३ ॥
श्रीनारायण कहि समझावैं। लछमी के आनद बढावैं।
तुमकूं पूरण कथा सुणाऊँ। मुक्त भए ते परगट गाऊँ ॥ ४ ॥
भागीरथी जो गगा ताहीं। कासी नगर बसै सो वाहीं।
ता पुर मैं एक बेसि रहावै। भरथ नाम ताकौ सब गावै ॥ ५ ॥
नित्य नेम सौ गगा न्हाइ। पाठ करै चौथी अध्याइ।
सौ वह बड़ौ तपोधन कहियै। दूजौ धन वाके नहिं चहियै ॥ ६ ॥
एक दिना वाको मन भयौ। सो बन को सुख देखन गयौ।
वाकौं धूप लगी बन माहीं। बैठो एक वृच्छ की छांहीं ॥ ७ ॥
छाया सघन बैरि दोइ देखी। सोयो तपसी खरौ बमेखी।
एक बिरछ सिर छुवै सो ताकौ। दूजो चरन छुवै सो वाकौ ॥ ८ ॥
तिनके चरन छुवत ये भई। सुकि तुरति खखार होइ गई।
पवन लगत ही टूटी जबै। भई बिप्र घर कन्या तबै ॥ ९ ॥
सो वै कन्या बहोत सयानी। मात पिताहू तै पुनि ग्यानी।
कन्या सौं बोले सो तात। ब्याह करन की उत्तम बात ॥१०॥
दोनू मिलि कै बोली सोइ। हमारो ब्याह करौ मत कोइ।
जो हमरौ मन काम सिरावै। तौ हम जनम सुफल करि पावै॥११॥
कन्या पिछली सब गति जानैं। औरन सैति भेद नहि भानै।
जिन हमकौं तरु देह छुड़ाई। ताको दरस होइ की भाई ॥१२॥
तब कन्या बोली सो ऐसै। तीरथ करौं सुध्ध होइ जैसै।
मात पिता की अग्या होइ। ताकौ बुरौ कहै नहि कोइ ॥१३॥

चोले पिता तबै सुख पाइ। तजि सका तीरथ करा`` जाइ।
मात पिता की अग्या भई। दोनू कन्या तीरथ गई ॥१४॥
तीरथ करि कै आइ तहाँई। वाणारसी नगर है`` जहाँई।
तहाँ तपोधन बैठौ देख्यौ। लिया`` पीछाणि जाणि वह पेख्यौ॥१५॥
तपसी वेखि लियो जब चीन्ही। पायन पड़ी दडवत कीन्ही।
कन्या कह पीछाणत नाहीं। तपसी कहै न जाणूं काहीं ॥१६॥
तब कन्या ताकौं समझायौ। पिछलो जन्म आवनौ गायौ।
बन में बैर हुती सो हरी। तुमरे चरन छुवत ही परी ॥१७॥
एक दिना तुम बन मैं गये। हमरी छाया सोवत भये।
तुमरे चरण लगत सुकि गई। उत्तम द्विज कुल कन्या भई ॥१८॥
कन्या सूं तपसी यौं कही। हमकौं तौ यह खबरि न रही।
तुम अब कछु हम ही फुरमावौ। असरम हमरो सुफल करावौ ॥१९॥
कन्या कहैं सुनौ प्रभु मेरे। हम तो चरन गहे हैं तेरे।
सुद्र जोनि तै तुरति छुडावौ। दै करि ग्यान मुकति पहुचावौ ॥२०॥
गीता की चौथी अध्याइ। देहु पुन्य हमकौं सुख पाइ।
ऐसी कृपा करौ प्रभु सोइ। जातैं आवागमन न होइ ॥२१॥
बंस तपोधन ऐसो कीनौ। चौथी ध्याय पुन्य फल दीनौ।
दै करि पुनि आसिका दई। आवागमन रहित सो भई ॥२२॥
इतनी बात कही उनि जबही। देव विमान आय गया`` तबही।
आवागमन रहित सो भईं। तापरि चढि बैकुठहि गईं ॥२३॥
तबै तपौधन अचिरज देख्यौ। चौथी ध्याय महातम पेख्यौ।
मनसा वाचा यह मन धरै। निति पाठ गीता कौ करै ॥२४॥

दोहा

यह चौथी अध्याय कौ भाष्यौ उत्तम ग्यान।
लछमी जी सौं प्रगट करि कह्यौ आप भगवान ॥२५॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखडे गीतामाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥

५

दोहा

यह अध्याइ सु पचमी भाषत हैं भगवान।
कहै लछमी सौं प्रगट निज गीता कौ ग्यान ॥ १ ॥

श्री भगवानुवाच । चौपई

पिंगुल नाम बिप्र एक कहियै । जाति धरम तैं भिष्टि सो लहियै ।
नीच सग करि खावै माँस । मद पीवै बैस्या घरि बास ॥ २ ॥
अति नीची सगति मन धर्यो । कुल के लोगनि बाहिर कर्यौ ।
तब यह कर्यो और पुर बास । चुगली करै नरपती पास ॥ ३ ॥
सौक अकोर जौरि धन लीनौ । पीछैं ब्याह आपनौ कीनौ ।
सो नारी भइ अति बिभचारी । कह्यौ न मानै तब उन मारी ॥ ४ ॥
तब वह त्रिया गुसौ मन धार्यौ । दैकै विष अपणो पति मार्यौ ।
मरि करि गीध देह तिण पाई । सब जीवन कौं अति दुखदाई ॥ ५ ॥
वाकी नारि मरी पुनि ताहीँ । सुवटी भई गीध बन माहीँ ।
तबै गीध पहिचानी तहाँ । मोहि मारि सुवटी भइ इहाँ ॥ ६ ॥
ताकौ गीध मारनै धायौ । सुवटी भगी महादुख पायौ ।
सुवटी जाइ गिरी सो ताहीँ । एक बेसनव दग्यौ हो जाहीँ ॥ ७ ॥
ताकै सिर की खोपरी परी । अकास बुद पाणि सौं भरी ।
लरत लरत वा जल मैं परे । दोन्यौ पलटि देव तन धरे ॥ ८ ॥
दिब्य बिमान तुरत ही आये । लियै चढाइ मुकति पहुँचाये ।
सुवटी कही गीध सौं एह । कौन पुन्य तैं पलटी देह ॥ ९ ॥
बिकुठ लै चले हमकु बिवान । ताकौ पुनि कौन तुम जान ।
हम तुम पाप कियौ अति घनै । तिनकी गिणति कहत नहि बनै ॥१०॥
बिकुठ लोक कैसैं गति पाई । अचिरज भयौ कह्यौ नहि जाई ।
तब फिरि बोलै गीध सयानौं । यह अचिरज मैं हू नहि जानौं ॥११॥
लियै पारषत पहुँचे ताहीँ । धरमराज सूरजसुत जाहीँ ।
धर्मराज गीध कौं बूझै । करि किन बात तोहि जो सूझै ॥१२॥
गीध तबै सो करै बखानौ । अपनौ जन्म करम मै जानौ ।
मैं तो पहिली ब्राह्मण हुतौ । धरमनिष्ठ धनहीनौ सुतौ ॥१३॥
चौरि चुडाली जोरे दाम । असत्री करि पूज्यौ मनकाम ।
मैं याकूँ बहु भाँति सुधार्यौ । मानै नहीँ मोहि इन मार्यौ ॥१४॥
मैं तो देह गीध की पाई । ये सुवटी होइ बन मैं आई ।
तब मैं याकूँ लई पिछानि । मारण चल्यौ वैर मन मानि ॥१५॥
लरत लरत हम पहुँचे जाहीँ । मृत बैष्णव की खोपरी ताहीँ ।
वा खोपरी मैं जल हो भर्यौ । सो वह उच्छिष्ट देह मैं पर्यौ ॥१६॥

सो जल लग्यौ हमारे गात। चढे बिमान स्वरग कूँ जात।
हम अपनी सब तुमहि सुनाई। पुनि करम कीयौ नहिँ काई ॥१७॥

धर्मराजोवाच

तब वै धरम गीध सौं कह्यौ। वैष्णव एक गगतट रह्यौ।
सो निति नेम सौं कर असनान। ध्याय पाँचवी पढै निदान ॥१८॥
तास खोपरी कौ जल छूवै। पछी पलटि देवतन हूवै।
तातैं तुम ऐसे फल पाए। चढि बिवाँन बैकुंठहि धाए ॥१९॥
धरमराइ गण कौं समझावै। भगती धरमनि कैसो गावै।
गीतापाठ सु जो नर करै। नामै लेता सुधाइ सु तरै ॥२०॥
इनना कूँ तुम ह्याँ जिन ल्यावौ। बिन पूछै वैकुंठ पठावौ।
सबै पारषन यूँ समझाए। द्विज दोन्यूँ बैकुंठ पठाए ॥२१॥

दोहा

कहि पंचई अध्याइ इह लछमी सूँ भगवान।
गीता गाइ प्रगट करी है निज कैवल ग्यान ॥२२॥

इति श्रीपद्मपुराणे गीतामाहात्म्ये पचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

६

दोहा

श्रीनारायण जी कहैं फिरिकै अमृत बैन।
पुनि छठ्ठी अध्याइ कौं सुणत होइ सुख चैन ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच। चौपाई

सुनौ एक नूतन इतिहास। गोदावरि निकट द्वीज कौ बास।
नागर न्याति नाम पिपलास। जानसुरति राजा सौं तास ॥ २ ॥
सो नृप अर्थ धरम कौं साधै। काम मोछि च्यारयौ आराधै।
सकल धरम जुत है सब जाति। नृप की बुधि राम रँग राति ॥ ३ ॥
अस्तुति करत हँस पछी ताहीं। निकसे हस उड़त बन माहीं।
हसनि कौं पछी समझावैं। नृपति कीरती सुनहिं सुनावैं ॥ ४ ॥
जौ तुम उड़ौ बहुत नभ माहीं। राजा की गति लहौ न काहीं।
हस कहत पछिन सौं सोइ। जानौ सुरपति ऐसो होइ ॥ ५ ॥

पञ्छी कहै कहाँ उडि जैहौ। नृप की समता कहूँ न पैहौ।
हंस कहै सुणि हो नभचारी। राजा भयौ सुरग अधिकारी ॥ ६ ॥
जो इह राज सुरग कूँ जावै। बैकुंठ लोक तैं उरै रहावै।
रैयक मुनि अग्रिम नहि होइ। बैकुंठबासी कहियै सोइ ॥ ७ ॥
हंसन करी बात सू येह। सुणी जान स्रुत नाकें (करि) नेह।
राजा मन मै कियौ बिचार। हंस करी रिषि अस्तुति सार ॥ ८ ॥
मो तैं अधिक पुन्य है जाकौ। दरसन करौं जाइ मैं ताकौ।
रथ लै साजि सारथी आयौ। रैइक मुनि कै दरसन ध्यायौ ॥ ६ ॥
गाम धाम तीरथ कै माहीं। राजा खोजत फिरै सा ताहीं।
बिराग परसि बाणारसि गयौ। बिप्रनि दान बहुत बिधि दयौ ॥१०॥
सब लोगनि कौं राजा बूझै। रैइक मुनि तुमकौं ह्यां सूझै।
लोकनि कह्यौ न जाणौ काइँ। तब नृप चल्यौ गया कै ताइँ ॥११॥
पित्र पिंड फल गोतमि कीनौ। बिप्रनि दान बौत सो दीनौ।
पुरबासिन कौं बूझी बात। रैइक मुनि जानौ बिख्यात ॥१२॥
लौगनि नृप कौ बात सुनाई। रैइकि मुनि हम सुन्यौ न काई।
तब नृपती आगैं कौं गयौ। जगनाथ कौ प्रापति भयौ ॥१३॥
जगनाथ कौ दरसन पायौ। इद्रदवनि अरु समुदर न्हायौ।
मारकडे कीनौ असनान। बिप्रनि दियौ हैम गज दान ॥१४॥
तब नृप सबकौं बूझै ऐसे। रैइक मुनि कौं जाणौ जैसे।
नृप के आगे सब जु बखानैं। रैइक मुनि कौं हम नहि जानैं ॥१५॥
तब राजा दच्छिण दिसि चल्यो। रसतें लोगन सबहीं मिल्यौ ॥
तहँ तैं पुनि आगैं कौ गयौ। तहँ रामेसर परसत भयौ।
ह्यां हूं रैइक मुनि नहि पायौ। तब राजा पछिछम कौं आयौ ॥१६॥
द्वारावती द्वारिकानाथ। दरसन करिकै भयौ सनाथ।
करि असनान गोमती सागर। बूझै नृप सब ढुंढिय नागर ॥१७॥
तिनहु कही रैइक मुनि नाही। तब राजा उत्तर कूँ जाही।
बदरीबन की सीवाँ आइ। नृप कौ रथ जु चल्यौ नहि काइ ॥१८॥
तब नृपती मनि कियौ बिचारा। सब पृथ्वी रथ फिरयौ हमारा।
अति पुन्यनि मो तैं कोइ और। मेरौ रथ जु थक्यौ इहि ठौर ॥१६॥
जा प्रताप रथ शाकि सौ गयौ। तब नृप उतरि पयादौ भयौ।
आगैं चलि नृप बबी देखी। परबत गुफा तहाँ इक पेखी ॥२०॥

तामैं एक मुनेसुर देख्यौ। तास प्रकास सूर सम पेख्यौ।
करि प्रणाम राजा सूँ कहै। रैयक मुनि सौ ह्यांही रहै ॥२१॥
हाथ जोरि बिनती सो करै। दंड प्रनाम भूमि सौ परै।
तुमरैं दरसन भयौ कृतारथ। धनि जनम पायौ परमारथ ॥२२॥

रैक्य मुनि उवाच

रैइक मुनिसुर भाख्यौ ग्यान। राजा कौ करि अति सनमान।
राजा तुमहू बहुत सयाने। सकल धरम साधक हम जाने ॥२३॥
तेरी गति सब भासै मोहीँ। ज्ञान स्तुती नृप भाखैं तोहीँ।
एइ बिधी मुनि बचन उचारे। आदर करि राजा बैठारे ॥२४॥
रैइक मुनि तब सिख्ख बुलाये। कद मूल लै नृपहि जिमाये।
मुनिवर कह सकोच न कीजै। कछु सेवा की आग्या दीजै ॥२५॥

राजा उवाच

राजा कहै अहो प्रभु मेरे। मैं तौ चरन गहे हैं तेरे।
जातैं तुव कीरति जग भासै। तुमरैं तेज अनँत तम नासै ॥२६॥

रैक्य मुनि उवाच

मुनिवर कहै सुणौ हो राइ। हम तौ पुनि कीयौ नहिँ काय।
कौपिनादि सग्रहन हमारे। तन बिभूति सिर जटा सँवारे ॥२७॥
और हमारैं नहीँ सहाइ। गीता पढौं छठी अध्याइ।
ताकौ है यह पुनि प्रकास। असतुति करैं सकल ससार ॥२८॥
गीता पुनि प्रकट है जासै। तातैं भयौ सूर सम भासै।
तब राजामनि यहै बिचारी। कीनौ पुत्र राजअधिकारी ॥२९॥
जानसुरति सो ऐसो भयो। गीता पाठ करन मन दयौ।
कहै नृपति मुनि येह बिचारौ। देइ ग्यान भौसागर तारौ ॥३०॥
गीता पाठ सिखावौ मोहीँ। सिष्य रूप हौ बूझौं तोहीँ।
तबहीँ कृपा करी मुनिराय। नृप कौं गीता तुरति पढाय ॥३१॥
गीता पाठ कियौ नृप जबहीँ। त्रिकाल द्रष्टि उपजि सौचतहीँ।
ऐसैं रहत बहोत दिन बीते। गुन इद्री कौं बिधि बहु जीते ॥३२॥
येक दिना सौ ऐसे कीनौ। बैंकुंठ भवन (जान) मन दीनौ।
ब्रह्मांड भेदि कै काढे प्राण। तिनहि तुरति आइगो बिवाँण ॥३३॥

पारषतन बहु बचन उचारे। एक बिवाँन मधि बैठारे।
चढि बिवाँन बैकुंठहि गये। रूप चत्रभुज दोऊ भये ॥३४॥

दोहा

नारायणजी सब कह्यौ लछमी सौं समझाइ।
गीता की असतुति करी कही छठी अध्याइ ॥३५॥
इतिश्री पद्मपुराणे गीतामाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः ॥

(७)

चौपाई

श्रीनारायण बोले बाणी। सुनौ लछमी कथा पुराणी।
पाटण नाम नगर एक सोइ। सकुकरण वणयंक एक होइ ॥ १ ॥
एक दिन चल्यौ बिणज ब्यौहार। बहुत बणक चाल्यौ निरधार।
मारग मैं एक बिषधर आयौ। सकूकरण बनिक तिहि खायौ ॥ २ ॥
जब जाँइ छूटै वाके प्रान। बनकनि दीनौ दाग निदान।
आगै जाइ कियौ ब्यौहार। बिणजि लियौ घरि आए सार ॥ ३ ॥
सकुकरण कौ बेटौ आयौ। तिनि ताकूँ बिरतात सुनायौ।
पिता मरयो सो अप्प अकाल। धन वाकौ ल्यौ तुमही बाल ॥ ४ ॥
प्रँतु उहि दुरगति पाई एह। को जनत छूटै वा देह।
बालक बिप्रन बूझै जाय। मेरै पिता सु दुरगति पाय ॥ ५ ॥
धरम रूप मोसौं कहा बात। जातैं तिरै सु मेरौ तात।
कहै बिप्र ऐसे मन धरौ। तुम सब नारायणबलि करौ ॥ ६ ॥
उरद पिसाय लाकरी ल्यायौ। ताकौ माणस देह बणायौ।
स्राध करौ नीकी बिधि साधौ। बिप्र जिमायौ बहुत अराधौ ॥ ७ ॥
स्राध करयौ तिलि अंजुलि दीनी। बिधि सौ पुनि इग्यारी कीनी।
भाई च्यारि हुते सुनि सौइ। बाढ्यौ द्रव्य बच्यौ जो होइ ॥ ८ ॥
एक पुत्र ऐसे कह बात। सरप डस्यौहै मेरे तात।
पिताबैर नहिं लैहै कोइ। ताकौ जीवन मिथ्या होइ ॥ ९ ॥
पिता मरयो है मेरौ जाहीं। मौकूँ ठौर देखावौ ताहीं।
सब व्यौपारी ह्वाँ लै गये। मृतक ठौर देखावत भये ॥१०॥

बबि एक सू देखी जबै। लियाँ कुदारी खोदै तबै।
बाँबी मोसूँ बोल सुणाइ। मेरौ घर क्यौं खोदौ भाइ ॥११॥
बालक तासौं कहै बखानु। सकुकरन कौ सुत मोहिं जानु।
मेरो पिता सरप नै खायौ। ताको बैर लैन हूँ आयौ ॥१२॥
कहै सरपसुत सुत सौ एँ बैन। तेरौ पिता सु मै ही ऐन।
अब तुम एहै मनही धारौ। मोकौं अधम देह तैं तारौ ॥१३॥
पुत्र कहै सौ जतन बतावौ। जाते तुम उत्तम गति पावौ।
सुत सौ पिता कहै सो येह। जाहु पुत्र तुम अपने गेह ॥१४॥
गीतापाठी द्विज कौं ल्यावौ। इच्छा भोजन तिन्हैं जिमावौ।
तुमहीँ आसिक देहैं जबै। अधम देह मै तजिहौं तबै ॥१५॥
पुत्र आपने घर कौं आयौ। असत्री कौं बिरतात सुनायौ।
मेरौ पिता सरप होइ रह्यौ। तिन मोंसों अब ऐसे कह्यौ ॥१६॥
गीतापाठी बिप्र जिमावौ। तिन तैं तुम आसीका पावौ।
गीता की साती अध्याइ। नित्य नेम सो पढै सुभाइ ॥१७॥
जबहि वहै द्विज भोजन करिहैं। मेरे पाप सबै झरि परिहैं।
तबै ताकी त्रिय सौ समुझायौ। बिप्रभोज दीजै मनभायौ ॥१८॥
जातै सुसरदेव गति लहैं। तुम सौं लोग भला सब कहैं।
तब सौ बिप्र न्यौति कै ल्यायौ। तिनकौ इछया भोज करायौ ॥१९॥
निच नेम सौं पाठ सा करै। अध्यॉइ सातई मन में धरै।
दछिना दैकै तिलक सु करै। बेर बेर पायन मैं परै ॥२०॥
हाथ जोडि बिनती सो करै। पिता उधरिबे की मन धरै।
मेरे पिता सु दुरगति पाई। ताहि उधारौ हो मुनिराई ॥२१॥
हिरदै हरषि आसिका दीजै। मुकति होइ सोई बिधि कीजै।
आॅसिका ताहि बिप्र तब दई। पलट्यौ सरपदेह गति भई ॥२२॥
दिव्य बिमान पारषत ल्याए। बैकुंठ लोक ताहि पहुँचाए।

दोहा

श्रीपति श्री सौं यौं कह्यौ ताहि सुनायौ ग्यान।
यह सतमी अध्याय की महिम कही भगवान ॥२३॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे सतीईश्वरसंवादे गीतामाहात्म्ये सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

८

दोहा

कहौं अष्टमी ध्याय कौं फलस्तुति बखान ।
लछिमी सौ सुख पावही कहै आप भगवान ॥ १ ॥

चौपई

एक नरबदा गगा कहिए । माडुव नगर तहाँ सो लहिए ।
एक बिप्र ता माहिँ रहाय । माधौ सरम सु नाम कहाय ॥ २ ॥
धन अपार वाके घर माहीँ । सतति पुत्र येकहू नाहीँ ।
जग्य बहोत सौ किए अनेक । अस्वमेध पुनि कीन्हौ एक ॥ ३ ॥
एकनि कह्यौ सबनि कौ ध्यावौ । अज्या जग्यि करि पुत्र सो पावौ ।
जब तूँ अज्याजिग्य करि लैहै । देवी हरषि पुत्रफल दैहै ॥ ४ ॥
तब उहि बिप्र उहै मत आनी । अजाजिग्य की सबबिधि ठानी ।
बकरा एक मोल करि ल्याए । स्नान सहित मेवा सु जिमाए ॥ ५ ॥
याकौ मारन ल्याए जबै । हस्यौ बहुत बिधि बकरा तबै ।
तासौ बिप्र कहत है ऐसे । अज्यापुत्र तूँ हस्यौ सु कैसे ॥ ६ ॥
तब द्विज कौ बकरा समझावैं । जनम आपनौ बिधि करि गावै ।
पहिलैं जन्म बिप्र मैं हुतौ । अज्याजिग्य कीनौ सौ सुनौ ॥ ७ ॥
मेरे धन सौ हुतौ घनेरौ । जिग्य धरम कीनौ बहुतेरौ ।
मेरै सतति हुई न क्यौ ही । अज्याजिग्य आरभ्यौ यौही ॥ ८ ॥
बिप्रनि कह्यौ वै हमनी धरौ । बकरा होमि जिग्य सौ करौ ।
बकरा मौलि लैन को जावै । ढूँढि नगर बकरा नहिँ पावै ॥ ९ ॥
बकरी एक तुरत की ब्याई । ताकै सुत को मोल मँगाई ।
बकरौ हुतौ तुरत कौ भयौ । थन तै तोरि होम कौ लयौ ॥१०॥
बकरी सौ मन सोच करायौ । सकल सभा कौ बचन सुनायौ ।
पापी अधम दुष्ट द्विज ऐसे । महा कसाई कहिए जैसे ॥११॥
बालक मारि जिग्य बिधि करै । पुत्र निमित्त पाप बिसतरैं ।
ये तो बात बेद नहिँ कहै । मारै पुत्र पुत्रफल लहै ॥१२॥
महा निरदई हौ तुम सबै । तुमरैं सतति होइ न अबै ।
बकरी बात करत ही रही । बिप्रनि बकरा मारचो सही ॥१३॥

बकरा मारि जिग्य जब कीनौ। बकरी श्राप बिप्र कौं दीन्हौ।
ज्यौं तुम कीनी है बिपरीती। तुमरों गला कटौ इहि रीती ॥१४॥
बकरी बचन कहै परमान। तरफराय कै दीनै प्राण।
बहुत दीनां बीते सू जबै। मैं हू देह तजी सो जबै ॥१५॥
जब मोहि बाँधि लै गये जहाँ। धरमराज बैठे हैं तहाँ।
धरमराइ ने धरम बिचारयौ। मौकूँ बाँधि नरक मैं डारयौ ॥१६॥
भुगते नरक बहोत मै जबै। बदर कौ तन पायौ तबै।
बाजीगर नै मोहिं पढायौ। घरि घरि माँगन भीख सिखायौ ॥१७॥
सगरो दिन सो माँगत फिरै। खान पान बिन भूखौ मरै।
ऐसे भ्रमतै जन्म गमायौ। मृतक भयौ कूकर तन पायौ ॥१८॥
एक दिनां चोरी कौं गयौ। रोटी चोरि खान तब भयौ।
एक दिन रोटी देखी खात। निहचै करी डड की घात ॥१६॥
लाठी की दीनी तब ताहीं। कमरी टूटि परयौ भू माहीं।
कष्ट माहि छूटे जब प्रान। घौरा को तन धरयौ निदान ॥२०॥
कठिहारै कै पानै परयौ। फिरत फिरत पुनि भूखाँ मरयौ।
साँझ परै जब बाँधै सोइ। नीर न चार खबिर ना कोइ ॥२१॥
येक दिनाँ तब ऐसो भयौ। भाडेत्याँ भाडे मौ लयौ।
मौ परि चढि तीन्यौं तब चाले। कीच माहिं सो सब मिलि घाले ॥२२॥
मैं तौ धुच्यौ कीच के बीच। ऊपर तै मोहि मारै नीच।
महाकसट मोकौं दुख परयौ। दुखहीं माहिं तुरत ही मरयौ ॥२३॥
भुगते नरक बहुत ही भाई। अज कौ जनम धरयौ अब आई।
में तो मन मै जाणया सोइ। बिप्रनि लीनौ सुखही होइ ॥२४॥
छुरी लेइ तुम भए तयार। बडे कसाई हो निरधार।
बकरा सों ब्राह्मण कहै सोइ। तोहू कौ जिव प्यारौ होइ ॥२५॥
बिप्रनि कौं बकरा समझावै। जीवन सत्ति प्रगट करि गावै।
चिरी चुगत कोइ डगल उठावै। जिव तब चिरिया कौ उडि जावै ॥२६॥
अब तुम कौ इतिहास सुनाऊँ। अपनी देखी गाथा गाऊँ।
कुरुक्षेत्र एक राजा आयौ। स्नान कियौ बहु दरब लुटायौ ॥२७॥
चंद्रसरमाँ जा नाम कहावै। सब बिप्रनि कौ निकटि बुलावै।
नृपती कहि द्विज सों समझावै। उत्तम दान ग्रहन को गावै ॥२८॥

बिप्र कहै नृप ऐसो करौ। काल पुरुष की बिधि बिस्तरौ।
बिप्र बचन राजा कौ आयौ। प्रथम लोह को पुरुष बनायौ ॥२९॥
लालन के नेत्रन सौं राए। कचन के भूषन पहिराए।
सबै अग पूरन भये जबै। राजा न्हान गयौ सो तबै ॥३०॥
राजा न्हाय धरम सौं रस्यौ। कालपुरुष तब कहि कहि हस्यो।
कालपुरुष तब हसतौ देख्यौ। अचिरज एक बहुत ही पेख्यौ ॥३१॥
लोहपुरुष कहुँ हसतौ सुन्यौ। राजा देखि सीस तब धुन्यौ।
राजा तुरति पुनि करि दीनौ। सूते बोली कै द्विज लीनौ ॥३२॥
कालपुरुष हसि बोलै तबै। क्यो रे बिप्र लेहुगे अबै।
कहै बिप्र यासौं करि टेक। मोकौं तो से पचे अनेक ॥३३॥
कालपुरुष द्विज कौं यो बूझै। तेरौ करम तोहि ना सूझै।
ऐसे दान पचत हैं तोही। सो वह पुन्य सुणावौ मोही ॥३४॥
कालपुरुष कौ द्विज समुझावै। अपनी बात प्रकट करि गावै।
कालपुरुष तब ऐसो होइ। फारयौ बिच तै ह्वै गयौ दोइ ॥३५॥
कालपुरुष के हिरदा माहीं। मूरति काल प्रगट भइ ताहीं।
तबहि बिप्र ऐसी मन धरी। अध्याँइ आठईं पाठ सु करी ॥३६॥
कालपुरुष सौ सब सुनि लई। पलटी देह देवगति भई।
बिप्र चुलू भरि जल पुनि डारयौ। कालपुरुष कौं तुरति उदारयौ ॥३७॥
दिब्य बिमान तुरत ही आयौ। ता परि चढि बैकुठ पठायौ।
बकरा भाख्यौ यह इतिहास। बिप्रनि कौं बूझे सो त्रास ॥३८॥
तुम मैं बिप्र होइ जौ कोय। गीता पाठ कर नित्ती सोय।
अध्याँय आठइ मोहिं सुनावो। अधम देह तैं तुरति छुड़ावो ॥३९॥
बिप्र करे सब बेद बड़ाइ। गीतापाठी जाणौं काइ।
ऐसे ही द्विज कहै अनेका। गीतापाठी आसन ऐका ॥४०॥
तब उनि गीतापाठ कराय। अध्याँय आठवी अजहि सुनाय।
बकरा के तब छूटे प्राण। ताकौ आयौ दिव्य बिमाण ॥४१॥

दोहा

ता बिमाण परि बैसि के बकरैं करी पुकार।
होहु बिप्र सब बैसनौ करौ भक्ति निरधार ॥४२॥

इति श्रीगीतामाहात्म्ये सतीईश्वरसवादे अष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

९

नारायण जी कहत हैं अब नवमी अध्याइ।
फल प्रताप जाको प्रगट लछमी कौं समझाइ ॥ १ ॥

चौपाई

दच्छिण देस सूद्र एक कहिए। भाव सुसरमा नाम सो लहिए।
सो पापी कहिए निरधार। खाइ अभिछ्छ करै बिभचार॥ २ ॥
चोरी चुगली झूठौ बोलै। मारे जीव बधिक भयो डोलै।
करै पाप सौ बिबिधि प्रकार। केतक दिन येसै निरधार॥ ३ ॥
एक दिना सो बहोत मद पियौ। पेट न पच्यौ बवन सो कियौ।
फिरि फिरि पीवन लग्यौ निदान। इतनै माहीं छूटे प्रान॥ ४ ॥
मार्यौ जमनि नरक मैं डार्यौ। प्रेत भयो बहु भाँति पुकार्यौ।
तब उनि जोनि प्रेत की पाइ। ताड बृछ्छ के माहिं रहाइ॥ ५ ॥
तेही नगर बिप्र इक रहै। जा माही आनँद सौ लहै।
पाप प्रतिग्रह को धन ल्यावै। सुत दारा कौ आणि रिझावै॥ ६ ॥
महाकृपन ताकी त्रिय होइ। धन सचै खरचै नहि कोइ।
असेही दोन्यू जब मरे। पिसॉच पिसाचिनि होइ अवतरे॥७॥
पहिलै प्रेत रहत जा माहीं। दोन्यो बसे ताड़ बृछ्छ माहीं।
तबै पिसाचनि पति कौं बूझै। ताकौं और जनम की सूझै॥ ८ ॥
तब पिसाच कछु करै बखानौ। जनम पीछिलै की सब जानौ।
कही पिसाचनि पति सूँ येह। तीन बात कौ उत्तर देह॥ ९ ॥
कौन ब्रह्म ऐसौ सो जाना। और करौ अध्यातम ग्याना।
कौन करम कहिए जु प्रमानै। जातै जनम पीछला जानै॥१०॥

दोहा

तीन प्रसन जे मै किए अरजुन किए जु येह।
कृष्ण कहे गीता सु करि अरध स्लोक मैं जेह॥११॥

चौपाई

कियौ प्रस्न पीसाचिनि ऐन। गीता केरा अमृत बैन।
इतनौ प्रस्न सुन्यौ यह जबहीं। बृछ्छ माहिं तैं निकस्यौ तबहीं॥१२॥

प्रेत पिसाचनि सू कहै जबै। कौन बात भाखी तुम अबै।
सो तौ मोको फेरि सुनावौ। श्रवण द्वार अमृत रस प्यावौ ॥१३॥
कहै प्रेतनी को तूँ भाइ। हम तौ बोले सहज सुभाइ।
तुम सौँ तौ मैं कही न काइ। पति अपणा सो बात सुणाइ ॥१४॥
कहै प्रेत सो फिरि को कहौ। मेरे पाप करम कौ दहौ।
कौन करम कौ ब्रह्म सु होइ। अध्यातम हम बूझै सोइ ॥१५॥
अपने पति कौं सहजै बूझी। तुमकौं क्यौ पहिली गति सूझी।
अरजुन कृष्ण को भयो सँवाद। मै नहिं जाण्यौ गीता स्वाद ॥१६॥
गीता नाम सुन्यौ उन जबही। प्रेत देह छाड़ी उन तबही।
गीता गीता उनी प्रकास्यौ। अनजानै सौ पाप बिनास्यौ ॥१७॥

श्लोक

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्म किं कर्म पुरुषोत्ताम।
अधिभूत च किं प्रोक्तमधिदेव किमुच्यते ॥ १ ॥

अरध सिलोक कियौ सवाद। कह्यौ सुन्यौ नहिं जान्यौ स्वाद।
तबै बिमान ताहि छिन आयौ। ता परि चढि बैकुंठ सिधायौ ॥१८॥
रूप चत्रभुज वाके भए। सब देवनि आगे ह्वै लए।
तब देवनि अचरज मन धरयौ। इन तौ पुनि कछू नहि करयौ ॥१६॥
तीरथ बरत भगति नहि कीनी। दान न दीन दया नहि चीनी।
इन तौ पुनि किए नहि भले। कूँन पुनि बैकुंठहि चले ॥२०॥
देवगुरू देवनि समझावै। इन कौ पुन्य कह्यौ नहि जावै।
गीता की नवमी अध्याइ। कही सुनी इन सहज सुभाइ ॥२१॥
सोही सुणो अरध सिलोक। मुक्ति भए जीते तुम लोक।
कहै देवगुरु भलो बतायौ। गीता कौ फल येतो गायौ ॥२२॥

दोहा

अनजानै अरु अनसुनै तिन पाए भगवान।
जानि सुनै पढै सुफल कौ को करि सकै बखान ॥२३॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखडे सतीईश्वरसवादे गीतामाहात्म्ये
नवमोध्यायः।

१०

दोहा

अब दसमी अध्याय की कथा कहत भगवान।
लछमी सौं अति कृपा करि कह्यौ गोप्य यह ग्यान ॥ १ ॥

श्री भगवानुवाच। चौपाई

बाणारसी नग्र के माहीं। बिप्र धीरधी बसै सो ताहीं।
सकल धरम करिकै जस लेवै। प्रेम सहित हर जी कौ सेवै ॥ २ ॥
एक दिनां सौ असौ भयौ। बिस्वेस्वर कैं दरसण गयौ।
गरमी लगी चित्त अकुलायौ। भई मूरछा अति दुख पायौ ॥ ३ ॥
बिस्वेस्वर मदिर परछाहीं। मृतगगनन मैं देख्यौ ताहीं।
सिवगन सिव सूँ ऐसें कह्यौ। आयौ दरसन दुख क्यौ लह्यौ ॥ ४ ॥
महादेव जी चुप होइ रहै। गन सौं बचन एक नहि कहै।
तब गन फेरि बिप्र पै आयौ। सो वह बिप्र मृतग भयो पायौ ॥ ५ ॥
तब गन फेरि रुद्र कौं बूझै। याकौ पुनि तुमै कछु सूझै।
गगा अरु बाणारसि पाइ। तुमरे निकटि मृतक भयो आइ ॥ ६ ॥
कौन दान तप तीरथ करे। याके पुन्य जानि नहिं परे।
याकौ पुनि मोहि समझावौ। मेरे मन आनद बढावौ ॥ ७ ॥

श्रीमहादेवोवाच।

महादेव गन कौं समझावै। द्विज की पिछली गाथा गावै।
येक दिन हम बैठे कैलास। पारबती पुनि बैठी पास ॥ ८ ॥
सकल पारषतगन हैं जाहीं। फूल बाग की सोभा ताहीं।
मेरे दरसन हस एक आवै। ब्रह्मा कौ बाहन सो कहावै ॥ ९ ॥
तबही हस स्याम तन धर्यौ। तजि आकास गमन धर पर्यौ।
उह मारग मेरो गन आवै। पर्यौ हस देख्यौ दुख पावै ॥१०॥
मेरे गन मोसूँ यह उचरे। तुम पै आवत हस सो परे।
स्याम सरीर भयौ है जाकौ। हमकौ भेद बताओ ताकौ ॥११॥
मेरे गन मोसौं येह उचरे। तुम पै आवत हस सो परे।
रुद्र कहै तुम जानत नाहीं। बेगि हस कौं ल्यावौ याहीं ॥१२॥

हसहि तुरति हजूरि लै आए। हस रुद्र कौं बचन सुनाए।
रुद्र कहै क्यो स्याम सरीरा। क्यौ गिर परे कहौ सो बीरा ॥१३॥

हसोवाच

सिव सौ हस बचन उच्चारे। हम आवत हैं दरस तुमारे।
फूले कँवल सरोवर माँहीं। चल्यौ उलगि छाडि मै ताहीं ॥१४॥
फूल उलगि चल्यौ मैं जबही। स्याम होइ गिरि परचो सा तबही।
सो गति हूँ जाणूँ नहि काई। भई बात सो सब समझाई ॥१५॥
रुद्र सोच करि मौनि रहाए। नभ बानी तब बचन सुनाए।
रुद्र सौच छाडौ तुम अबै। हमहि बखानत हैं कहि सबै ॥१६॥

रुद्र उवाच

अतरिख जो बोले बाणी। दरसन देहौ परगट प्राणी।
जबहि रुद्र यह बात सुनाई। रूप चत्रभुज धरि सौ आई ॥१७॥
सख चक्र अरु स्याम सरीरा। महा पारषद गुण गभीरा।
रुद्र कहै हम कौ समझावौ। कथा हस की नीकैं गावौ ॥१८॥

पारषत उवाच

हम का कहैं हस की बात। कहै कमलणी सब बिख्यात।
रुद्र कमलणी बूझी ऐह। कहौ कथा तुम जाणौ जेह ॥१९॥

कमलणी उवाच

कहै कमलणी सुणि सिव ग्यानी। मोपै सुनु तुम बात पुरानी।
इद्र अपछरा मोकौं जानौ। पदमावती नाम परमानौ ॥२०॥
गीतापाठ बिप्र एक करै। ताकै तेज इद्र अति डरै।
इद्रासन डोल्यौ अति भारी। तबहि इद्र एक बुद्धि बिचारी ॥२१॥
मोसो कह्यौ करौ तप भग छल बल करि लगो वाके अग।
तब मैं आई वाके पास। सो वह रए एक ही आस ॥२२॥
अचानिक मै प्रापत भई। वाके अगनि लपटी रई।
कपट रूप मै वा तन भेटी। पिता अग ज्यों लागइ बेटी ॥२३॥
तपसी मोकों दियौ सराप। होय कमलणी भुगतौ पाप।
पच अग ज्यौं लागी मोही। पच अग को कमलणि होही ॥२४॥

कमल चरन दुइ मेरे कहिए। दोई कमल करन सो लहिए।
एक कमल यह मुख सो होइ। पच अग अब ए हैं सोइ ॥२५॥
आसी पासी कमल इ‘‘ न्यारी। मधि एक मोकौ निरधारी।
साठि हजार भँवर सर माहीँ। मेरी बास मत्त ह्वाइ जाहीँ ॥२६॥
सात रिषीसर सोऊ पकरे। मेरी बास त्रिपतिता धरै।
पछी मोहिँ उलत्रन करै। मोरी झाल लगै गिरि परै ॥२७॥
पहलै हस इहाँ जब आयौ। तबै कमलणी बचन सुनायौ।
हस देखिए पछी भले। आए इहाँ कहाँ अब चले ॥२८॥
हस कहे हम हैं नभचारी। मानसरोवर मुकताहारी।
ब्रह्मा के बाहन हैं सबै। तिनमैं मोकौं जानो अबै ॥२९॥
मोती चुगैं मानसर माहीँ। महादेव के दरसन जाहीँ।
स्याम सरीर ह्वाइ गयौ तबहीँ। × × × × ॥३०॥
अकास मधि तै भूमैं आयौ। याकौ भेद कछू नहि पायौ।
तुम इह बात कहौ समझाइ। समझे तै ससै सब जाइ ॥३१॥
ऐसै हस बचन सुनै सबै। उत्तर देइ कमलणी तबै।
अब मैं अपनी कथा सुनाऊँ। जनम पीछले की सब गाऊँ ॥३२॥
देवन के घर उपजी सोइ। देवसुता मम नाम सो होइ।
मैं एक पवई पाली तबै। अंमृत बचन पढै सो सबै ॥३३॥
वाकौं लगी पढावन जबहीँ। मेरौ पुरुष आइ गयो तबहीँ।
उनि माहिँ कह्यो पाठ उठि करौ। पवई मैं मन लागो खरो ॥३४॥
दीन बचन सो कहि कहि भाखे। मै वै बचन एक नहिं राखे।
तब पति मोकाँ दियो सराप। होइ कमलणी भुगतो पाप ॥३५॥
पति के स्राप कमलणी भई। पवई की सुधि नाहीँ गई।
पवई गीता पढती सार। दसवीं ध्याय सरब परकार ॥३६॥
मैं भी पढी दसमि अध्याय। ताकौ ग्यान हिदा मैं आय।
अरु जो मेरे जोति प्रकासी। गीता श्रवण कियॉ को भासी ॥३७॥
हस कहै कछु करौ उपाय। होऊँ सेत स्यामता जाय।
अरु तुम कमलजोनि तें छूटौ। श्राप ताप कौ सासौ तूटौ ॥३८॥
सो कमलणि कहै हम सौं एह। गीता पढै सुनै पुनि तेह।
जो कोई वाकौ दरसन पावै। नासै पाप मुक्ति ह्वाइ जावै ॥३९॥

इतनी बात कही उनि जबहीँ। येक अतीत आय गयौ तबहीँ।
सो वह महापुरुष अति कहियै। जाकैँ दरस मुक्तिपद लहियै ॥४०॥
उन असनान कियौ जल माँहीँ। सालिगराम बिराजे ताहीँ।
गीता की दसवीँ अध्याय। पाठ करी उनि सुनी सुभाय ॥४१॥
हस भयौ फुनि जैसौ हुतो। कमलणि भई देवता सुतो।
दोन्यो हाथ जोरि यौँ कह्यौ। साधु दरस को हम फल लह्यौ ॥४२॥
साधु पुरुष तब बोले येह। तुम्हरी हुती कौन तब देह।
मै तौ हुती कमलणी नारी। स्याम सरीर हस तन धारी ॥४३॥
गीता की दसमी अध्याइ। तुमहि प्रकासी सहज सुभाइ।
मैं तो देवसुता फिरि भई। पलट्यौ हस स्यामता गई ॥४४॥
हसनि आशिक देहु गुसाई। अपने अपने लोकनि जाहीँ।
महापुरुष तब दई असीस। मनसा बाचा बिस्वाबीस ॥४५॥
हस तबै ब्रह्मा पै जाई। कमलणि पलटि देवगति पाई।
महादेव जी बोले ऐसैँ। अपने गण समझाए तैसैँ ॥४६॥
जिन गीता पढि हस उधारयो। और कमलणी को तन तारयो।
सो वह बिप्र साध हो तबै। मेरे निकट मृतक भयो अबै ॥४७॥
लछमी सौँ नारायण कहै। गीता पढि सुणि जो फल लहै।
महापातकी जो जन होइ। तिनके सगि तिरे जन जोइ ॥४८॥

दोहा

जो दसवीँ अध्याय कौँ पढि सुणि पावै स्वाद।
तिनहि देखि पापी तिरे मतिका इ करौ बिबाद ॥४९॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखडे सतीईश्वरसवादे गीतामाहात्म्ये
यथामतिकथनो नाम दशमोध्यायः ॥१०॥

११

दोहा। श्री भगवानुवाच

नारायण जी कहत है लछिमी सौँ सुभ बैन।
सुनौ अध्याय अग्यारही होय ग्यान के नैन ॥१॥

यैक सुणो पिछलो इतिहास। दछिछण देस नदी एक भास।
सुगभद्र सो नाम कहावै। ताकै निकट नगर एक गावै ॥२॥

सुनंद नाम राजा है जाहीं। सेवै साध भक्ति मन माहीं।
तहाँ एक हरिमंदिर राजै। नारायण लछमी सौं बिराजै ॥ ३ ॥
पढ्यौ बिप्र तहँ सेव करावै। राजा नितप्रति दरसन आवै।
निरपति पुनि सेवा मन धरै। अध्याँय ग्यारही पाठ सो करै ॥ ४ ॥
अध्याँय ग्यारही बिप्र सो भनै। राजा याकौ नितही सुनै।
ऐसैं काल बहुत चलि जाहीं। कथा सुणत सेवा के माहीं ॥ ५ ॥
सेवा करि राजा घरि चले। अतित बिदेसी आए भले।
तब अतीत नृप कौं समझावैं। बिश्रांम करन कौं ठौर बतावैं ॥ ६ ॥
तब राजा सुख दीनौ धाम। तहाँ जाइ कीनौ बिश्राम।
तब राजा सीधौ पहुचायौ। सो सब सत निमाजन गायौ ॥ ७ ॥
पुत्र सहित नृप दरसन आयौ। मन्त्रि सहित सतनि सिर नायौ।
नृप महत सौं गोष्ठी करै। बाकी कुँवर खेलतो फिरै ॥ ८ ॥
तहाँ प्रेत ने बालक मारयौ। वाको सेवक आनि पुकारयौ।
चाकर रोवत आए सबै। राजा क्यो बैठे हो अबै ॥ ९ ॥
इतनि बात नृप चिंतित भयौ। ग्यान ध्यान सब बीसरि गयौ।
जद्यपि गीता सुणि मन धरतौ। हरि भगतन की सेवा करतौ ॥१०॥
तौ पुनि पुत्रसोग दुख पायौ। नृप दासन कौ बचन सुनायौ।
तुम दरसन कौ यह फल पायौ। येक पुत्र थो सौउ मरायौ ॥११॥
एक बैष्णव तब बचन उचारयौ। कैसैं मुवौ किनै वह मारयौ।
सत महत नृपति मिलि सबै। मृतक पुत्र पै आऐ तबै ॥१२॥
देख्यौ पुत्र प्रेतनहि पायौ। तबहि सत एक बचन सुनायौ।
संतै कही प्रेत सौं ऐसैं। क्यौं रे बालक मारयौ कैसैं ॥१३॥
सब सौं प्रेत कही निरधारै। मैं तौ ऐसे गिले हजारैं।
त्यौंही एक नृपति सुत खायौ। याकौ कह तुम सोच बढायौ ॥१४॥

वैष्णव उवाच

ध्याय ग्यारहो तोहि सुनाऊँ। प्रेतदेह ते तुरत छुड़ाऊँ।
तेरे मारे जीव अनेक। मुक्ति होहि सुणि गीता एक ॥१५॥
करौ दया कै सीतल नैन। पुत्र जियै नृप पावै चैन।
अपनी बात पीछली कहौ। प्रेत भए तुम ह्यां क्यौं रहौ ॥१६॥

प्रेतोवाच

पहिलें जनम बिप्र मै होता। महादलद्री हल कौ जोता।
मारग माहि खेत मैं करचौ। रोगी बिप्र आनि तहँ परचौ ॥१७॥
वाकी देह दुख्खता घनै। खान गीध सो लागै तनै।
नोचै गीध माँस चुनि खाहीं। म्हारे दया न आवै काहीं ॥१८॥
बाँभन परचौ पुकारै जबै। मैं पुनि ठाढौ देखूँ तबै।
सो वह दीन छीन तन ताहीं। वाकौं रिस्स भई कछु नाहीं ॥१६॥
बिप्र एक तिहि मारग आयौ। द्विज कूँ देखि महादुख पायौ।
मो सूँ कह्यौ कसाई सो है। महा निरदई राकस हो है ॥२०॥
कहै बिप्र सुग़ रे द्विज हाली। दुखी देखि तै दया न पाली।
कहन सुनन कोँ द्विज निरधारै। करम करै जेसें चिडारै ॥२१॥
ऐसे तीन करम कै करता। हम देखे नरकन में परता।
चोरनि घेरचौ है नर कोइ। ताहि छाडि कै भागै जोइ ॥२२॥
घेरचौ सिघ जानि दुख पावै। सुनत पुकारि न जाइ छुड़ावै।
तीजो लगै और कौ प्रेत। जाइ छुड़ावै नहि करि हेत ॥२३॥
ऐसे पाप तीन जो करै। कुभीपाक नरक मैं परै।
अरु जो इनकी दया बिचारै। आप तिरे औरन कूँ तारै ॥२४॥
दुरबल दया करै जौ कोइ। ताकौ अस्वमेध फल होइ।
हाली कौं द्विज दियौ सराप। होई राकस भुगतौ पाप ॥२५॥
मोकौं स्राप दियौ द्विज ऐन। तब मैं पूछे वाकौं बैन।
तुमरे स्राप प्रेत तन धरिहूँ। कौन करम कैसैं उध्धरिहूँ ॥२६॥
कहै प्रेत सौं बिप्र सयानौं। ताहि तिरबै की जुगति बखानौं।
अध्याँय इग्यरही गीता केरो। सुणतै पाप कटैंही तेरौ ॥२७॥
राकस कही कथा सू सबै। पढ्यौ सत पूछत है तबै।
नृपती कहौ सुनौ महराज। गीता पढे करौ सब काज ॥२८॥
प्रेत उधारौ सुतहि जिवावौ। मेरे मन आनद बधावौ।
अध्याँइ इग्यारही सत सुनाइ। जल अजुली असेष कराइ ॥२९॥
गीता पढि तब वाहि सुनायो। प्रेतैं पलटि देवगति पायो।
पाए जीव मुक्ति भए सबै। देह चत्रभुज धारी तबै ॥३०॥

मृतक पुत्र राजा कौ जीयौ। सुदर रूप चत्रभुज कीयौ।
रूप चत्रभुज सबनि बनाए। दिवि बिवाँन सबही कूँ आए ॥३१॥
राजा तबे प्रेत कौं बूझै। मेरो पुत्र कौन तोहि सूझै।
प्रेत कहै सुनि हो नृप येह। सुदर रूप चत्रभुज देह ॥३२॥
पुत्र पुत्र कहि नृपति बुलावै। तबै पुत्र राजहि समझावै।
कै एक बेर पिता तू मरौ। मै भी पिता भयो हूँ तेरौ ॥३३॥
राजा मेरो प्रेत सुभाइ। जाके भए देवगति पाइ।
याकैं सग सुणी मैं गीता। करम कटे अब भयौ न चीता ॥३४॥
सुणि राजा जाके कुल माहीं। एक वैष्णव उपजै काहीं।
एकोतर सौ पुरुषा तारै। तूँ राजा चिंता क्यो धारै ॥३५॥
गीता सुणि ग्यारही अध्यॉइ। बैकुंठ लोक पहूँचे जाइ।
बैकुंठनाथ कौ दरसन पाऊँ। तेरौ कुल सब मुक्त कराऊँ ॥३६॥
तब राजा नमीस्का कियौं। चढि बिमान बैकुंठहि गियौ।
तब राजा द्विज सौं यौ कहै। अब मेरी गति कैसे लहै ॥३७॥
कहै बिप्र सुनि हो नृप येह। तुम्हरैं सतति नाहीं तेह।
अब तुम गीता निति प्रति कहौ। अध्यॉय ग्यारही नीकैं गहौ ॥३८॥
गीता पढौ सकलप करौ। मुक्ति होय भौसागर तिरौ।
राजा अपने घर कौं आयौ। अध्यॉय ग्यारही पाठ करायौ ॥३९॥
अतित सबै दीसतर गए। राजा गीता पढते भए।
गीता पढ़ि सकलप करावैं। सो जल तुलसी मै पधरावै।
सो जल तुलसी माथे धरियौ। मुक्ति होय राजा सौ तिरियौ ॥४०॥

दोहा

ऐसें गीता पाठ करि, नृप कैं उपज्यौ ग्यान।
मुकति भयो ससार सूँ, प्रगट लह्यौ भगवान ॥४१॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखडे सतीईश्वरसवादे एकादशोध्याय ॥११॥

१२

दोहा

नारायण जी कहैं तहँ लछमी सौं फिर बात।
सुनो द्वादसमि अध्यॉय अब फल बरणूँ विख्यात ॥ १ ॥

श्री भगवानुवाच

दक्षिण देस नगर सुखधाम । राजा तहाँ नद सू नाम ।
वाही नगर पुरुष एक कहिए । अति बिषई बेस्यारत लहिए ॥ २ ॥
एक दिनाँ बिषयासक्त भए । दोनूँ देवी के मँड गए ।
मदहि पीवैं माँसही खावै । बिषैभोग मैं जनम गमावैं ॥ ३ ॥
बूझैं बात सबन सौ कहैं । हम सेवग सेवा मैं रहैं ।
हम देवी की सेवा करैं । झूठहि बोलि पेट सो भरैं ॥ ४ ॥
येक बिप्र पुनि देवी सेवै । मनसा बाचा तन मन देवै ।
अस्तुति करी बहोत बिधि जबै । भई भवानी परसन तबै ॥ ५ ॥
देवी कहै माँगि द्विजराजा । करौं मनोरथ पूरण काजा ।
बिप्र कहै देवी यों कीजै । धन अरु सपति मोकों दीजै ॥ ६ ॥
देवी कहै सबै मै करिहौं ।
मेरो कहूयौ एक व्रत धारौ । प्रथम देहु पापनि कौं तारौ ॥ ७ ॥
तब वह बिप्र गयौ गुरु पासी । गुर सूं कीनौ बचन प्रकासी ।
मैं देवी कौं बहोत रिझायौ । देवी बर दीनौ मन भायौ ॥ ८ ॥
देवी आग्या दीनी तेइ । दोऊ पापी तारौं ऐइ ।
कही कृपा करि मो सौं तैसैं । बिसई पतित तिरैं पुनि जैसैं ॥ ९ ॥
सिख कौ बचन गुरू सुनि लियौ । तब बिचारि कै उत्तर दियौ ।
अध्यॉइ ग्यारही पाठ करायौ । उणहि सुणाय मुक्ति पहुँचायौ ॥१०॥
वही बिप्र फिरि आयौ तबै । बात कही देवी सौं सबै ।
गुरुदेवहि मो आग्या दीन्ही । सीस चढाइ मानि मैं लीन्ही ॥११॥
अध्यॉइ बारही पाठ कराऊँ । इन पापिन कौ मुकति पुंचाऊं ।
तब देवी फिरि बोली ऐसैं । यह अध्यॉइ सुनि उधरै कैसैं ॥१२॥
गीता की एकै अध्याइ । महापातकी क्यौं तिरि जाइ ।
बिप्र भवानी सौं यौं कहै । श्रीभगवान बचन है इहै ॥१३॥
देवी कहै इहै मन धारौ । गीता पढि इह पापिन तारौ ।
तब द्विज गीतापाठि बुलाए । गीता अक्षर उनहि सुनाए ॥१४॥
अध्यॉइ बारई उनै सुनाई । सुनतहि तबै देवगति पाई ।
दिव्य बिवॉन सुरग तैं आए । ता परि चढि बैकुंठ सिधाए ॥१५॥
देवी तबै बिप्र सौं कहै । अध्यॉय बारही एक फल लहै ।
निरे पातकी बिषई दोइ । मद अरु मॉस खात है सोइ ॥१६॥

पाप करम सब बेगि बिलाइ। गीता सुनत देवगति पाइ।
तुम अब गीता मोहि सुनावौ। मेरो नाम बैष्नवी गावौ ॥१७॥
तब देवी सौ ऐसै कियौ। बिप्रहि राज नगर को दियौ।
भई भवानी अतर्ध्यान। बिप्र गयौ अपनै घरि जान ॥१८॥
वह राजा कैं मन यह आइ। मेरे सतति भई न काइ।
देहौं राज देखि द्विज काइ। करौ तपस्या बन मैं जाइ ॥१९॥
राजा बात बिचारी जबै। एक मारग द्विज आयौ तबै।
राजा कहै बिप्र ह्यॉं आवौ। सुखी होइ यह राज करावौ ॥२०॥
हौ तौ करौं तपस्या ऐन। करि हरि भजन लहौं सुख चैन।
सिंघासन नृप आसन दीनौ। आप जाइ बन मैं तप कीनौ ॥२१॥
देवी राज बिप्र कौं दीनौ। राजा कौ मन बिरकत कीनौं।
बिप्र राज कौ सब सुख लयौ। ता पीछे बैंकुठहि गयौ ॥२२॥

दोहा

यह अध्याइ जु बारवीं भाखी श्रीभगवान।
लछमी सौं प्रभु कृपा करि दियौ सु गीता ग्यान ॥२३॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तर० सतीईश्वरसवादे द्वादशोध्याय. ॥१२॥

१३

दोहा

गीता कौ निज ग्यान फल फिरि बरनैं भगवन।
अध्यॉइ तेरही प्रगट करि लछमी सौं परमान ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच। चौपाई

दखिण देश एक नगर बखानौ। हरीपुरी सु नाम सौ जानौ।
पुनिपूर्न राजा सौ ताहीं। उत्तम लोग बसैं ता माहीं ॥ २ ॥
ताही नगर बसै एक नारी। मौस खाइ मद छकि अति भारी।
येक पुरुष सूँ बात बनाय। दौन्यौ मिली आप बन जाय ॥ ३ ॥
वा बन मै वह बैठि रहाइ। पथ निहारत रैनि गमाइ।
ह्वां प्रीतम तब कोइ न आयौ। ब्याकुल भई रोइ दुख पायौ ॥ ४ ॥

दौरि दौरि बृछ्छन कौं बूझै। मेरौ प्रीतम तुम कौं सूझै।
देख्यौ होइ तौ देहु बताइ। तुमकूँ देहौं लाख बधाइ ॥ ५ ॥
इतनैं ही एक सिंघ जु आयौ। तब उनि जान्यौ प्रीतम पायौ ॥ ६ ॥
वाके पग की बाजी धुनी। सो वह बैस्या काननि सुनी।
सिंघ प्रगट भयौ आगैं आइ। तब वह बैस्या खरी डराइ।
सिंघ कहै बेस्या सौं तबै। तो कौ भछ्छिन करिहौं अबै ॥ ७ ॥
गणिका कहै सिंघ सौं भाइ। बिन अपराध मोहिं क्यौं खाइ।
जन्म पीछले की कहा बात। काकी अग्या मोकौं खात ॥ ८ ॥
सिंघ आपनी कथा सुनावै। गनिका कौं नीकों समझावै।
पहिलें जनम बिप्र मैं होतो। लोभी लपट छूनौं सो तो ॥ ९ ॥
जुवा खेल अरु चोरी करै। ज्यूं त्यौं करि परद्रव्य जु हरै।
द्रव्यहि निमिति एक दिन प्रात। झाखड़ि पडौ पथ मैं जात ॥१०॥
परत प्राण छूटे ततकाल। जम मारै बाँधे बेहाल।
धरमराय पै मोहिं लै गए। धर्मराइ कछु बूझत भए ॥ ११ ॥
बूझै धरम कौन है येह। लोभी अधम ब्राह्मण तेह।
करम देखि बोले जमराइ। बन कौ सिंघ करौ अब जाइ ॥१२॥
सिंघ कियौ अरु बोले तबै। तोसौं बात कहत हौं अबै।
बहिरमुखी पापी जो कोइ। तिनकौं खाव अग्यॉई होइ ॥१३॥
साधू वैष्णव जे हरिदास। जाहु कहे मति उनकैं पास।
महापापणी गनिका एह। करौं अहार खाउं तुम देह ॥१४॥
यौं कहि गणिका सिंघ नैं खाइ। तब जम ताहि बाँधि लै जाइ।
धर्मराय तब अग्या दीन्ही। पापजोनि चंडाली कीन्ही ॥१५॥
धर्यौ बहुत दिन पाप सरीर। एक दिन गई नरबदा तीर।
तहाँ एक संत गीता भणै। अध्यॉय तेरही नितप्रति गुणै ॥१६॥
अध्यॉय तेरह सुणि चंडलि सबै। छूटे प्राण तुरत ही तबै।
देवदेह सो तबही पाइ। चढि बिवॉन बैकुंठहि जाइ ॥१७॥
पूछै बिप्र ताहि धौ तबै। कौन पुनि ऐसी भइ अबै।
चंडाली बिप्र सौं समझायौ। तुमही गीता पाठ करायौ ॥१८॥
सो मैं सुणी तेरही ध्याइ। नासे पाप देवगति पाइ।
चंडाली पुनि संत सौं बूझै। याकौ पाप तुमैं कछु सूझै ॥१९॥

ज्यूं यह सिंघ मुकतिफल पावै । चढि बिबांन बैकुंठहि जावै ।
पहिले इन मोंहिं भछुछन करी । तो मैं पापी जोनि तें टरी ॥२०॥
कहै सत सुनि हो चंडाली । मैं तो दया बहुत ताहि पाली ।
स्लोक एक कौ पुनि सो देहुँ । सिंघ उधारि मुक्तिफल लेहुँ ॥२१॥
तब उहि सत कियो उपगार । स्लोक येक फल दीयौ सार ।
पलटी सिंघ देवतन भयौ । चढि बिबॉन बैंकुठहि गयौ ॥२२॥
महा पापणी ही चंडाली । गीता सुणि बैंकुठहि चाली ।
संत चढे वह दिब्य बिबान । महामुकत पाई परवान ॥२३॥

दोहा

षष्ठौ स्लोक अरु फल दयौ पायौ पद निरवान ।
पापीहूं हरिपद लहै कहै सचि भगवान ॥ २४ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे गीतामाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

१४

दोहा

अध्यॉय चवदही कौं कहत उत्तम फल सो भाखि ।
नारायण के अति निकट लक्ष्मी हरिरस चाखि ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

उत्तर देश नगर इक कहिये । कासमीर नामै सो लहिये ।
ता नगरी मैं राजा रहै सूरिजबरम नाम सो लहै ॥ २ ॥
सिंगल दीप नगर एक कहिए । नाम नरेंद्रसु ताकौ लहिए ।
दोन्यौ नृपति मित्रता करी । अति सनेह बुधि निहचै धरी ॥ ३ ॥
सिंघल दिप राजा सो तबै । बसत रसाल सा पठाई सबै ।
मोति लाल चुनी बहु रूप । दरियाई घोरे सु सरूप ॥ ४ ॥
कास्मीर के राजा तबै । लिये बुलाइ राजघर सबै ।
कहा हमारै बसत रसाल । सो उनकौ भेजै ततकाल ॥ ५ ॥
मत्री कहै सुनौ हो राइ । और हमारे बसत न काइ ।
स्वान पठावौ बिबिधि प्रकार । तिनसूं राजा करै सिकार ॥ ६ ॥
स्वान दोइ सिंगार करावौ । सोना कै गहिणे पहिरावौ ।
पाटंबर की झूल सा कीन्ही । अरु सुखपाल चढण कों दीन्ही ॥७॥
देखि स्वान रीझ्यौ नृपराइ । मित्र भली यह भेट पठाइ ।
सकल बसत सो हमरैं याहीं । स्वान हमारे एकौ नाहीं ॥ ८ ॥

सिंघल दीप नृपति सौ सबै। चले सिकार करण कूँ तबै।
ताकै सग नृपति हौ एक। होउ बदी अरु कीन्ही टेक ॥ ६ ॥
जाको स्वान जा करै सिकार। सोई जीतै होइ प्रकार।
सुसो एक उठि भागौ तबै। ता परि कूता छोडे सबै ॥१०॥
सिघल दीप नृपति के स्वान। सुसा दौर कै गह्यो निदान।
तब राजा को चाकर कहै। नृप कौ स्वान सुसा कौं गहै ॥११॥
स्वान सोर सुनि डरपन लागौ। मुख तैं सुसा छूटि करि भागौ।
स्वान सुसा कौ पीछो कर्यौ। सुसा एक खाडी मैं पर्यौ ॥१२॥
स्वान पर्यौ पुनि खाड़ी माहीँ। ऐक तपोधन बेवो ताहीँ।
सुसा स्वान तन छूटे तबही। देव बिवाँन आय गया जबही ॥१३॥
रूप चत्रभुज तिनके भये। चढि बिवाँन बैंकुठहि गये।
पीछे सौ नृप आवे ताहीँ। सुसा स्वान मृतक है जाहीँ ॥१४॥
उनकौं राजा पूछै तबै। तुम हौ कौण कहौ सो अबै।
तब वह कहै नृपति सौं येह। हमहैं स्वान सुमा की देह ॥१५॥
तब उनि नृप कौं आसिक दई। तुमरे सग हमें गति भई।
राजा कहै सुणौ रे भाइ। मैं तो पुनि कछु कियो न काइ ॥१६॥

जब हम यहि षाड़ा मैं परै। सो जल छुवत तुरति उध्धरे।
इतनी कहि बैकुठहि गए। तपसी कौं नृव पूछत भए ॥१८॥
तपसी बोले सुन हो राइ। सुश्रा स्वान यह गति कौं पाइ।
तुम या जल की महिमा जानौ। कहो प्रभू मोहि करहि बखानौ ॥१६॥

तपसी उवाच

तपसी तब राजा सूँ कहैं। पहिली हमरे गुरु ह्याँ रहैं।
कृष्णदास वासूँ सब कहैं। दास किसोरी मोसों लहैं ॥२०॥
हम गुरु सिष्य दोउ पग धोवैं। गीता पढि मन के मल खोवैं।
अध्याँय चौदही पाठ सु करैं। पग प्रछ्छालन तामैं धरैं ॥२१॥
कहै तपस्सी नृप सौं सोइ। सो जल परसि मुकत भये दोइ।
राजा कहै पुनि कृत सोई। तुम चरणौदिक पावै जोई ॥२२॥
पूरब भाग उदै होइ आवै। साधन कौ चरणोदिक पावै।
इननै पुनि कौन जो कर। तुम चरणोदिक लै उध्धरे ॥२३॥

कहै साधु राजा सौं तबै। इनकी बात सुनौ तुम सबै।
पहिले जन्म बिप्र सो हुतौ। अब यह स्वान भयौ है सु तौ ॥२४॥
याकैं हुतीं असतिरी जेह। सोई सूसि भई है तेह।
परी चूक पति ने दुरकारयौ। इन बिष दै अपनो पति मारयौ ॥२५॥
आप मरयौ इन दुरगति पाइ। जमदूतन बाँधी लै जाइ।
धर्मराइ पै जम लै गए। सुधर्मराजा पूछत भए ॥२६॥
पाप करम के करता येह। धरमभिष्ट अपराधी तेह।
धर्मराय सराप सो दीनौ। पापी बिप्र स्वान सो कीनौ ॥२७॥
अरु वाकी अस्त्री सौं कह्यौ। तिनहूँ जन्म सुसी का लह्यौ।
हाथ जोरि बूझी तब ऐसें। हमरा मुक्ति होइगी कैसें ॥२८॥
धर्मराय तब इन सौं कहै। बन मै एक तपस्वी रहै।
हाथ पाव वह निति ही धोवै। गीता पढि मन कै मल खोवै ॥२९॥
कर्मजोग तुम उहाँ जु जैहौ। वह जल छुवत मुकत तब ह्वै हो।
धर्मराइ कीन्हौ उपगार। तातैं मुकति लही सुखसार ॥३०॥
करि दडवत नृपति घर आए। गीतापाठि साधु सिर नाए।
अध्यॉय चवदमी नितही सुनै। राजा सुनि सुनि मन मैं गुनै ॥३१॥

दोहा

कही अध्यॉय सु चवदमी लछमी सौं निज ग्यान।
परम ग्यान गीता प्रगट कह्यौ आप भगवान ॥ ३२ ॥

इति श्री पद्मपुराणे उत्तरखडे उमामहेश्वरसंवादे गीतामाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

१५

दोहा

बहुरि लछ्छमी सौं कहत श्रीनारायण भाखि।
अध्यॉय पद्रही कौ जु फल प्रगट पुरातम साखि ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

गौड देस अति उत्तम कहियै। नगर सुभाद्र नाम सो लहियै।
नरसिघ नाम सो राजा जानौ। मत्री ताकौ सरभ बखानौ ॥ २ ॥

नृपती मन्त्रि प्रतीत सु मानै। बिस्वासी अति प्रीतम जानै।
राजा सबसों करै बडाइ। मेरौ सौ प्रधान ना काइ ॥ ३ ॥
मत्री मन में कपट बिचारै। दाव बनै राजा कौं मारै।
कितक दिनाँ बीते सू तबै। एक दिनाँ नृप सूतौ जबै ॥ ४ ॥
सुत दारा सब सोइ रहाहीं। पहरू च्यारहुं जाग्या नाहीं।
जब परधान महल में आए। राजलोक सब सोवत पाए ॥ ५ ॥
पुत्र सहित नृप मारे तबै। राजा भयो आपहू तबै।
स्वामिघात करि राज कराई। एक दिन भयौ कालबस आई ॥६॥
छरदी कारिक मर्‌यो सो नीच। तातैं पाई महा कुमीच।
जम मारे बाँधे सो सबै। धरमराइ पै लै गए सबै ॥ ७ ॥
धरमराइ तब गन सौं बूझै। याको करम तुम्हैं पुनि सूझै।
महापातकी सब मिलि भाख्यौ। नरक अघोर माहिं लै नाख्यौ ॥ ८ ॥
नरक अघोर भुगति जब आयौ। घोरे को अवतार जु पायौ।
सिंघल दीप जन्म भयो जाकौ। देह सरूप मोल बहु ताकौ ॥ ९ ॥
बनिक एक ब्यौपारी आयौ। घोरौ देखि बहुत सुख पायौ।
घौरैं मोलि लिये सो सबै। त्याही मोल लियो एह तबै ॥१०॥
घौरैं लेइ बणिक घर आयौ। नगर नृपती कौं जाइ सुनायौ।
घौरैं मोलि बहुत नृप लये। जाके घौरें फेरन गये ॥११॥
वाकैं घौरैं फेरे सबै। यह घौरे सिर फेर्‌यो तबै।
माथो फेरत नृपती देख्यौ। पूछे पंडित महा बिसेख्यौ ॥१२॥
कारन कौन सीस इन ढोर्‌यो। मोहिं देखि अपनौ मुख मोर्‌यौ।
कोइ कहै नृपतिहि सीस नवायौ। कोइ कहै इण सौं न मनायौ ॥१३॥
राजा बोले बिप्रनि ताहीं। ज्यूं तुम कहौ बात यौं नाहीं।
लियौ मोलि अब क्यौ हूँ होइ। एक दिन चढि सिकार गयो सोइ॥१४॥
सो वह घोरा ऐसें धावै। पसु पछी कोइ भाजि न जावै।
तीरनु पच्छी मार्‌यो जाहीं। घौरें चढि पकर्‌यो सो ताहीं ॥१५॥
रीझै नृपति महा सुख पायौ। धूप देखि तरकै तरि आयौ।
तहाँ एक तपसी जु रहावै। सिख कों गीता पाठ करावै ॥१६॥
घौरौ बाँधि बृछ्छ की छाँहीं। तृषावान नृपती गए जाहीं।
सीतल जल राजा जब पीयौ। सुख पायौ निद्रा चित दीयौ ॥१७॥

मुनि सिख कौं गीता जु पढावै। पढै नहीं सूखेल बनावैं।
ताकौं जतन करै सौ तात। स्लोक दियो लिखि बृछि के पात॥१८॥
पात हाथ मैं लीन्हें फिरै। अछर घोखै पाठ सु करै।
घोरौ बँध्यौ हुतौ जिह ठाहीं। पात उड्यौ सो याकौ ताहीं॥१९॥
तन परस्यौ अर देख्यौ नैन। घोरैं मुक्ति लही सौं ऐन।
इतने ही मैं राजा आयौ। मर्यौ अस्व देख्यो दुख पायौ॥२०॥
घोरो पलटि देवतन भयौ। चढि बिबाँन सो नभ मैं गयौ।
राजा मन मैं चिंत उपजाइ। यह घोरौ किन मार्यो भाइ॥२१॥
देवदेह धरि घोरौ कहै। राजा कौ सब ससौ दहै।
तेरो अस्व हुतौ मैं भाइ। भयौ मुक्त ऊँची गति पाइ॥२२॥
चढ्यौ बिबाँन पारषत पास। करिहूँ निज बैकुंठहि बास।
नृपती कहै सुनौ अस्व भाइ। कौन पुनि तैं यह गति पाइ॥२३॥
देवदेह धरि अस्व बखानै। याकौ अरथ सत सब जानै।
राजा तब तपसी कौं बूझै। याको पुनि तुमै कछु सूझै॥२४॥
राजा सौं तब साधु बखाने। भयो मुकत साँइही भल जाने।
बिमान मधि तैं बचन सुनायौ। एक पात मोपै उड़ि आयौ॥२५॥
मेरे तन लागो सो तबै। वामैं अछिछर देखे सबै।
अछिछर देखि मुकतिफल पायौ। चढि बिमान सुरलोकहि आयौ॥२६॥
तबैं तपोधन बोले बाणी। जो इह कारहिं सत परमाणी।
गीता की पनरही अध्यॉइ। सिखहि पढाऊँ सहज सुभाइ॥२७॥
सो सुत चचल पढै न काइ। पोथी छाड़ि खेलनैं जाइ।
तब मैं पात बृछ्छ कौ लीन्हौ। अरध सिलोक ताहि लिखि दीन्हौ॥२८॥
तातैं उड्यौ पात सू ऐन। छूवै अस्व अरु देख्यौ नैन।
यह सब गीता के परताप। मुकत भयौ सब नासे पाप॥२९॥
तपसी कौं नृप बूझे सोइ। पहले जनम कौन इह होइ।
कौन करम इह मेरैं आयौ। मौल लेत क्यौं सीस डुलायौ॥३०॥
सो वह बात न जाणी काइ। मेरे मन सदेह रहाइ।
साधु कहै सो अबै बखानौं। तूँ राजा हो यह परधानौं॥३१॥
तोहि मारि इन लीन्हो राज। करै मनोरथ पूरन काज।
जब यह मर्यौ बाँधि जम लीन्हौ। धर्मराय पै ठाढौ कीन्हो॥३२॥

बहोत दिना नरकन मैं रह्यौ । सिंघल दीप अस्व तन लह्यौ ।
लियो मोलि तब तुमरे आयौ । तुमै देखि इन मूड हलायौ ॥३३॥
तुम सौं कह्यौ न जायौ मोही । मोकौं खबर पीछली होही ।
इतनी कहि बैकुंठहि जाइ । तब राजा की सेना आइ ॥३४॥
राँज सत कौं कियो प्रणाम । गीता पढि सारे सब काम ।
मान भाव तपसी कौं दयौ । राजा अपने घर कौं गयो ॥३५॥
पुत्रहि राजतिलक सो दीन्हौं । तपसी होइ आप तप कीन्हौं ।
पढै पनरही सौ अध्याइ । चढि बिबांन बैकुठहि जाइ ॥३६॥

दोहा

कहैं लछमि सो प्रगट करि यह गीता की साखि ।
भगत उधारन करन कौं भगवान् अप मुख भाखि ॥ ३७ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखडे सतीईश्वरसवादे गीता माहात्म्ये पचदशोध्याय ॥ १५ ॥

१६

दोहा

श्री भगवान् उवाच ॥ चौपई ।

.... । . . .. .. ।
.... । .... ॥ १ ॥

सोरठ देस नगर एक कहियै । नाम पुनिव्रत ताहि सु लहियै ।
खडगबाहु राजा सो लहियै । सकल धरम कौ साधक कहियै ॥ २ ॥
होहिं जिग जाके नगर माहीं । बहु बिधि खभ रुपे ता माहीं ।
अतित बिप्र कौं नीकैं मानै । सकल धरम नीकी बिधि ठानै ॥ ३ ॥
धरम रूप परजा सौ कहियै । कर हरिभगति बैर नहि लहियै ।
हाथी घौरे सबही घनै । सैना सरस कहत नहिं बनै ॥ ४ ॥
हाथी येक भवन तैं छोटौ । दिव्य देह देखत कौ मोटौ ।
घरि पारै अरु नम्र उजारै । चढै महावत ताकौं मारै ॥ ५ ॥
बधन बाँधन देइ न काइ । तब राजा मन चित उपाइ ।
नावँ महावत जेते होइ । राजा बोलि लिये सब सोई ॥ ६ ॥
इह हाथी बस करै जो कोई । देहूँ द्रव्य माँगही सोई ।
याके सबै निघटि नहि जाइ । वाकौं देखि भगै सौ भाइ ॥ ७ ॥

महल बजारि हाट सब पारै। माणस पकडि चीर सो डारै।
कबहूँ निकसै बन मैं जबै। बन के बृछ्छ गिरावै सबै॥ ८॥
बन के पसु पछी सब मारै। नगर मैं आइ बिपति पुनि पारै।
राजा के मन चिंता भई। याकौं बसि को करिहै दई॥ ९॥
देखि दुखी परजा सो सबै। राजा दुख मान्यौ सौ तबै।
कछु उपाइ जो ऐसौ होइ। बंधन बँध्यौ रहै गज सोइ॥१०॥
येक दिन गज नगरी मैं आयौ। एक साधु ता सनमुख ध्यायौ।
लोक कहैं साधुहि समझाइ। वा मारग अब तू जनि जाइ॥११॥
यह हाथी माणस कौं मारै। गढ अरु कोट पलक मैं पारै।
तोकौं यह मारेगो भाइ। ताकौं हम कौं पाप न काइ॥१२॥
तबहि साधु सब कौ समझावै। हाथी मेरे निकटि न आवै।
भजन प्रताप मोहिं बल भारौ। कहा करेगौ पसू हमारौ॥१३॥
साधु सुँ लोग नगर को भाखै। भजन न जाणै चीरि सो नाखै।
अध्याय सोलहो गीता केरो। पढ्यो साधु अरु हस्यौ घनेरौ॥१४॥
लोगन सुँ साधु बचन उच्चारै। हरि तैं बिमुख ताहि गज मारै।
मै तौ हौं हरि जी कौ दास। मेरे है निज ग्यान प्रकास॥१५॥
मेरे एक ग्यान पुनि सोइ। बिना मिंच मारै नहिं कोइ।
जो पै बिधना यहै बिचारी। तौ इह बात टरै नहिं टारी॥१६॥
महा रोस करि हसतै ध्यायौ। साधु जहाँ कौ तहाँ रहायौ।
हाथी निंकरि आय गयो तबै। सत निजर भरि देख्यौ जबै॥१७॥
हाथी निजर सत मैं दीनी। सूड पसारि चरण रज लीन्ही।
देखै लोग नग्र के सबै। निहचै जान्यौ मार्यो अबै॥१८॥
हाथी चरणरजै सिर धरी। धरती लागि डंडवत करी।
करि प्रनाम मग ठाढौ रह्यौ। तबहि साधु वासूँ यौं कह्यौ॥१९॥
मै तौ तोहि पिछाण्यौ अबै। पहिले पाप किए तुम सबै।
अब मैं तोकों तुरति उधारौं। गज कि देह तैं तुरतहि तारौं॥२०॥
तू मन मैं चिंता मति करै। त्यौं त्यौं गज पायन फिरि परै।
चरनरेणु जब सीस चढाई। लोगनि नृप कौं बात सुनाई॥२१॥
अचिरज एक सुन्यौ नृपराइ। जो हाथी बस होइ न काइ।
सौ हाथी येक साधू आगै। हाथ जोरि कै अग्या मांगै॥२२॥

इतनी सुनत नृपति तहँ आयौ। हाथी साध पै ठाढौ पायौ।
हाथी कौ साधु सु बुलावै। साध बचन सुनि अगें आवै ॥२३॥
गज नै तब नीचौ सिर कीन्हौ। साधू कर मसतक पर दीन्हौ।
राम मंत्र उपदेस जा दीन्हौ। अध्यॉय सोलही पाठ जा कीन्हौ॥२४॥
इतनी कहि वापैं जल डारयौ। अधम देह तैं तुरत उधारयौ।
दिव्य देह धरि चढ्यौ बिबॉन। कछु राजा सौं भाख्यौ ग्यॉन ॥२५॥
सुनि राजा तुमरै पुर माहीं। यहै जानि कै बास कराहीं।
धरम रूप यह नगरी सबै। मेरी मुकति होइगी अबै ॥२६॥
पुनि रूप कोई ह्यॉ आवै। सो मेरौ उध्धार करावै।
सा इह साध उपगारी भयौ। अध्यॉय सोरही कौ फल दयौ ॥२७॥
मेरे पातक नासे सबै। बैकुंठ लोक में जाऊं अबै।
चढि बिबॉन बैकुंठहि गयौ। गज सौ मुकतिपराइन भयौ ॥२८॥
तब राजा सतचरननि परयौ। हाथ जोरि कै परसन करयौ।
सोई मंत्र कहौ प्रभु मोही। महादुष्ट गज ज्यूं बस होही ॥२९॥
कौन मंत्र पढि जल सो डारयौ। अधम गजहि यह तुरतहि तारयौ।
नृप सूं बात संत कहि येह। निति पढा गायत्री जे दह ॥३०॥
और सोरही जो अध्याइ। पाठ करौ गीता चित लाइ।
गज कौं पुनि दियौ मैं येह। गज ने मुक्ति लही पुनि देह ॥३१॥
राज बहौरहि साधु का बूझै। गज हो कौन तुमै पुनि सूझै।
राजा सों संत भाखै तेह। पहिले जन्म बिप्र हौ येह ॥३२॥
गुर के सरण भेष लिया जाइ। गुर नै बिद्या बहुत पढाइ।
तीरत कौं गुर चाले जबै। रह्यौ सिष्य तिहि ठौर सा तबै ॥३३॥
सिष्य तबै बहु पदवी पाइ। पढ्यो सलोक नग्र कौं आइ।
त्यौं त्यौ मन मैं चढ्यौ गुमान। मो सम और नहीं कोइ आन ॥३४॥
तीरथ करकैं श्री गुर आये। समाचार रब सिख ने पाये।
सिखि कै मन मैं ऐसी आई। उठि कै मिलों न तो महिमाई ॥३५॥
कमठ रूप कौ इनके ध्यान। नैन मूंदि कै रह्यौ निदान।
तब गुर वाकै मन की जानी। मोकौं देखि भयो बुगध्यानी ॥३६॥
तब गुर कह्यो सुन रे मतिमंद। गुर तैं बिमुख लहौ दुख द्वंद।
आँखि मूंदि कै बैठि रहायौ। मोहिं देखि माथौ न हिलायौ ॥३७॥

नमसकार गुर कौं नहि कर्यौ। आपनि प्रभुता कौं मन धर्यौ।
गुरू सराप दियो सू जबै। ह्वै गज पाप करैगो सबै ॥३८॥
तब इन गुरु कौं बूझी सबै। मेरी मुक्ति होयगी कबै।
तुमरे बचन ब्रिथा नहिं काइ। मै गजदेह धरौंगो जाइ ॥३९॥
तब गुरु वाकौ कियौ उपाइ। गीता पढ सोलही अध्याइ।
ताकौ पुनि तोहि कौं देहै। चढि बिबाँन बैकुठै जैहै ॥४०॥
सो मैं पढी सोरही ध्याय। वाकौ पुनि दियो सुख पाय।
हाथी पलटि देवतन भयौ। चढि बिबाँन बैकुठहि गयौ ॥४१॥
नृपति कहै सुनो हो म्हाराजा। तुम तै होइ हमारौ काजा।
तुम मेरे गुरु हौ निरधार। गीता मोहिं पढावौ सार ॥४२॥
तबही सत कियो उपगार। गीता नृपहि पढायौ सार।
अपनो पुत्र राजि बैठायौ। राजा आप सु बनहि सिधायौ ॥४३॥
राजा पढै सोलही ध्याइ। मनसा बाचा प्रीति लगाइ।
गीता पढि निरमल जब भयौ। चढि बिबाँन बैकुठहि गयौ ॥४४॥

दोहा

कह्यौ सोलही ध्याय कौ फल सो सबै बनाय।
श्री भगवान जु आपही लछमी सौं समझाय ॥ ४५॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखडे सतीईश्वरसवादे गीतामाहात्म्ये षोडशोध्याय. ॥ १६ ॥

१७

दोहा

अध्याॅय सतरही को जु फल कह्यौ लछमि समझाइ।
श्री नारायण जु कहत हैं सब सतन के भाइ ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

मडलीक राजा एक कहियै। दूसासन यह नाम सु लहियै।
येक देस कौ राजा आयौ। गज लरने कौं ख्याल बनायौ ॥ १ ॥
गज हारे सोइ नृपती हारै। गज जीते सोइ जीत बिचारै।
होड बदी बहु द्रव्य लगाए। ऐसैं राजा हाथि लराए ॥ २ ॥

हाथी लरे बहुत बिधि जबै। परदेसी गज जीत्यौ तबै।
दूसासन कौ हाथी हार्यौ। हार्यौ होड सोच मन धार्यौ ॥४॥
हाथी हार्यौ छोडै प्राण। फरकी खाई तीन निदान।
मडलीक राजा पछितावै। हाथी हार्यौ अति दुख पावै ॥ ५ ॥
हाथी हाँर्यो द्रव्य पुनि गयो। गज मेरो सो अति दुखि भयो।
सब मिलि कहँ राज गज मर्यौ। राजा सोच आप मन धर्यौ ॥ ६ ॥
ऐसे सोच बहुत दिन कर्यौ। सोच माहिं राजा पुनि मर्यौ।
ताहि बाँधि जमपुर लै गये। धरमराय तब बूझत भये ॥ ७ ॥
धरमराइ राजा गज कर्यौ। गज के मोह माहिं यह मर्यो।
सो राजा तब हाथी भयौ। सिंघल दीप जन्म तब लयो ॥ ८ ॥
नृप कैं हाथी हैं सौ और। तिन मे येह भयौ सिरमौर।
मनही मन सो सोचत रहै। जन्म पीछला की सुधि लहै ॥ ९ ॥
मैं हाथी सूं मोह लगायौ। तातैं जन्म गजै को पायो।
ऐसे बार बार पछितावै। रोवत रहै घास नहिं खावै ॥१०॥
परदेसी द्विज नृप कैं आये। राजा के अति मगल भाये।
कहै बिप्र सब कछु है मेरैं। हाथी माँगण आयो तेरैं ॥११॥
कबित कथा कहि कहि मन हर्यौ। बहुत भाँति नृप परसन कर्यौ।
राजा अति प्रसन्न तब भयौ। दूसासन वह हाथी दयौ ॥१२॥
हाथी कौं द्विज घरि लै आयौ। हाथी दाणो घास न खायौ।
नृप के सबै महावत आये। और नगर के बैद बुलाये ॥१३॥
तबही नृपति बैद कौं बूझै। याको रोग तुमैं कछु सूझै।
बैंद कहे इह रोगी नाहीं। वाकै चिंता है मन माहीं ॥१४॥
बिप्र कहै सुणि हो नृपराइ। यह तो दाणो घास न खाइ।
बैद महावत लीन्हें साथी। आये नृपति देखणै हाथी ॥१५॥
तब राजा बैदन कौं बूझै। याको रोग तुमैं कछु सूझै।
कहै बैद येह रोगी नाहीं। चिंता रोग बढ्यौ मन माहीं ॥१६॥
चिंता रोग महा दुखदाई। ताकौ वोषदि लाग न काई।
राजा कहै न बोलै काहीं। दाणौ पाणी खात जू नाहीं ॥१७॥
राजा सूं गज बोलै ऐसैं। माणस बोलै भाषा जैसैं।
राजा तुमही धरम प्रबीन। बिद्या बेद सदा लयलीन ॥१८॥

धर्म जुगति अरु भगति प्रधान। दयावत द्विज दै सुखदान।
जो तुम राजा पूछत अबै। तौ हूँ बात कहूँगो सबै ॥१९॥
ये द्विज हरि कौं भोग लगावै। सोई प्रशाद पारषत पावै।
हम याके नाहीं अधिकारी। पाप रूप सो जोनि हमारी ॥२०॥
चरणोदिक अरु इह प्रशाद। पावै याहि होइ जो साध।
बिप्र कहै अपणो गज लीजै। ऐसो दान न हमकों दीजै ॥२१॥
कहै नृपति सुणि हो द्विजराइ। हम तौ कपट कियौ नहिं काइ।
हम तो दियो तुमहि गजदान। क्यौं ही होइ हमारे जान ॥२२॥
तब गज कहै सुनौ हो राइ। तुम मन में निज कलपो काइ।
एक ओर परमारथ करौ। मेरौ कह्यो हिदा मैं धरौ ॥२३॥
तबहि बिप्र सूँ गज यूं कहै। तुमरैं गिता की पुस्तक रहै।
कहै बिप्र गीता है मेरैं। इछ्या भई सुनन की तेरैं ॥२४॥
अध्यॉय सतरही तुम ऊचारौ मोकौं अधम देह तैं तारौ।
अध्यॉय सतरही जबै सुनाई। सुनत गयद मुगति तब पाई ॥२५॥
दिव्य बिवॉन सुरग तैं आयौ। ता ऊपर गजराज चढायौ।
तब गज नृप की अस्तुति करै। धनि धनि द्विज कौं उच्चरै ॥२६॥
तुम मोहिं गीता ध्याय सुनाई। तुम्हरे सग मुकति मैं पाई।
तुम दोऊ हौ सुरग'धिकारो। मन क्रम बच हौ पर उपगारी ॥२७॥
अब तो हम बैकुंठहि जात। तब राजा बूझी यक बात।
पहिले जन्म कौण तुम तात। मोहिं कहो सब अपणी बात ॥२८॥
गज बोलै धरि देह अनूप। पिछली कथा सुणौ हो भूप।
पहिले जन्म नृपति हम आहीं। गज सूँ मोह कियो मन माहीं ॥२९॥
धरमराय तब बोले येह। याहि धरावौ गज की देह।
मडलीक मनि राजा सो तौ। दूसासनै नाम पुनि होतौ ॥३०॥
येक नृपति मेरे घरि आयौ। अपणो हाथी आणि लरायौ।
मेरो गज हार्यौ अरु मर्यौ। ताकौ सोच बहुत मैं कर्यो ॥३१॥
सोच माहिं मैं भी तब मर्यौ। तातैं हाथो कौ तन धर्यौ।
अब हम सुणि सत्रहि अध्याय। सुख सरूप बैकुंठहि जाय ॥३२॥
राजा गयौ आपणे घरै। बिप्र आपणी कृत्य सो करै।
निति प्रति गीतापाठ करावै। राजा द्विज मूकनी रहावै ॥३३॥

दोहा

सुणै सत्रही ध्याइ कौं पापीहू तिर जाइ।
कही आप भगवान ही लछमी सौं समझाइ ॥३४॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखडे सतीईश्वरसवादे गीतामाहात्म्ये सप्तदशोऽध्याय ॥१७॥

(१८)

दोहा

येह अध्याय अठारवी ताकौ सुनौ बखान।
गंगा जल सम पुनित यह कहै सत्य भगवान ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

चौपई

लछमी सौं बोले भगवान। ध्याय अठारहवी को ग्यांन।
ज्यौं गगा सब नदी माहीं। द्वारावति उत्तम सब ठाहीं ॥१॥
परबत मैं उत्तम कैलास। रिसनि मैं नारद है जास।
सकल मुनिन मैं उत्तम ब्यास। गजन मध्य अहिरावत तास ॥३॥
सब असुरन मै ज्यौं प्रहलाद। अध्यातम बिद्या सब स्वाद।
कामधेन गउवन मैं जैसें। अध्याय अठारही जानौ तैसैं ॥४॥
जो कछु याको फल निरधार। सुनौ लछमी तुम सब सार।
सिखर सुमेर सकल सुखदाइ। तहा इद्र देवन को राइ ॥५॥
बरुण कुमेर बिपुलि सो देवा। ब्रह्मलोक की करैं जु सेवा।
एक दिन बैठ इद्र सुर माही। तहाँ उरबसी निरिति कराही ॥६॥
सबहि देवगण नाचैं गावैं। सुख बिलास मैं मगन रहावैं।
लिये बिवांन पारषत आये। एक चत्रभुज कौं धरि ल्याये ॥७॥
सर्वं देव मिलि ताकों देखैं। रूपरासि है इद्र बिसेखैं।
सुरपति कौं मन कहै बिचारी। इद्रासन कौ यह अधिकारी ॥८॥
मानि लेहु तुम बचन हमारौ। याकौ इद्रासन बैठारौ।
वाकौ तेज देखि तब सबै। उठ्यौ इद्र आसन तैं तबै ॥९॥
वाहि बिवाँन तैं तुरति उतार्यौ। याकौं इद्रासन बैठार्यौ।
तबहि इद्र सुरगुर कौ बूझै। याको पुनि तुमै कछु सूझै ॥१०॥

यह है कौन कहा इन कीन्हौ। जिनि मेरो इद्रासन लीन्हौ।
जिग्य दान तप व्रर्त न कीन्हो। सदाव्रर्त कौ दान न दीन्हों ॥११॥
सो बिस्वँनाथ जु परसे नाहीँ। देवालय इन किये न काहीँ।
गो गज पृथिवी दई न दाना। इच्छा भोजन दियो न नाना ॥ १२ ॥
कुवा बावरी नहीँ कराई। अभै दान दीयो नहिँ काई।
इतना मे साँ एक न कीनौ। क्यौं मेरो इद्रासन लीनौ ॥ १३ ॥
तुम प्रभु तीन काल की जानौ। याको मोसौं करौ बखानौ।
गुपत पुन्य इह कौन करायौ। जातैं इन इद्रासन पायौ ॥ १४ ॥

बृहस्पति उवाच

सुरगुर कहै सुनो सुरराइ। याकौ पुनि न जाणौ काइ।
पूछौ जाइ जगतगुर स्वामी। श्रीनारायण अंतर्जामी ॥ १५ ॥
गए इंद्र सब देवन साथ। जाय जुहारे त्रिभुवननाथ।
करत डंडवत बहोत प्रणाम। बिनती करि कीनौ मन ध्यान ॥ १६ ॥
पूछी इंद्र बात सो तबै। दीनदयाल कहो प्रभु सबै।
च्यारि पारषद तुमरे आये। एक चत्रभुज कौवै ल्याये ॥ १७ ॥
ह्वाँ तें मो कौं तुरत उठायौ। वाकौं सिंघासन बैठायौ।
वाको तेज झलाहल भारी। सो मैं देखि न सक्यौ सहारी ॥ १८ ॥
अस्वमेध सौ कीन्हे जबै। इद्रासन पायौ मैं तबै।
इन तौ पुनि नहीँ कोइ कीन्हो।
क्यौं करि मो इद्रासन लीन्हौ ॥ १९ ॥

श्रीभगवानुवाच

तब हसिकै बोलै भगवान। सुनो इंद्र तुम उत्तम ग्यान।
उत्तम पुनि गोप्य कियौ सोइ। सो जानत हौं और न कोइ ॥ २० ॥
अध्यॉय अठारही गीता केरी। सो पढि भगति करी है मेरी।
कामबासना माहिँ रहाइ। छोडि मुकति सो दुरगति पाइ ॥ २१ ॥
यह तो गीता नितही पढै। अध्यॉय अठारही मन मैं रढै।
एक दिनाँ इन छाड़ी देह। मेरैं उपज्यौ अधिक सनेह ॥ २२ ॥
तबै पारषत मैं जु पठाए। दिव्य बिबॉन लियै सौ आए।
कह्यौ संत सौं चढौ बिबाँन। बिकुंठ बुलायौ श्रीभगवान ॥ २३ ॥

नहीं मुकति चाहत हौं तेरी । भोग करन की इछ्छा मेरी ।
तब मैं क्यौं भोग करवावौ । इंद्रलोक याकौं लै जावौ ॥ २४ ॥
राज भोग सो तुम्ह सब कीज्यौ । विषय भोग याकौं कर दीज्यौ ।
भोगबासना पूरन होइ । पीछैं मुकति पाइहै सोइ ॥ २५ ॥
फेर बुलाइ याहि मैं लैहौं । सायुंज मुकति आपनी दैहौं ।
प्रभु कौं इंद्र डंडवत कीन्हीं । श्रीनारायण आग्या दीन्हीं ॥ २६ ॥
आये इंद्र आपने धाम । वाकौं भोग दिये भरि काम ।
इंद्र चत्रभुज कौं यूं कहयौ । भुगतौ भोग जु मन कौ चहयौ ॥ २७ ॥
श्रीनारायण बोले बाणी । सुणी लछ्छमी सो पटराणी ।
अध्याय अठारही को फल गायौ । सो तुमकौं नीकैं समझायौ ॥ २८ ॥

दोहा

इह अध्याय अठारही पढै नेम सौं सोइ ।
वह नारायण रूप है भक्ति मुक्ति फल होइ ॥ २९ ॥
सहँस एक अरु पाँच सत इकसट उपरी आन ।
भाषा जसवत सिंघ रच्यौ करयौ उमा भगवान ॥ ३० ॥

सोरठा

महाराज जसराज रघुबसी गजसिंघसुत ।
कलि महि सुमरन काज यह महात्म भाषा रच्यौ ॥ ३० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखडे स ीईश्वरसवादे अष्टादशोऽध्याय ॥ १८ ॥

दोहा

श्री नारायण कहत है लछमी सूं समझाइ ।
गीता की महिमा कहौं सुणत पाप सौ जाइ ॥ १ ॥

श्री भगवानुवाच । चौपई

श्रीनारायण फिर कै कहै । तासूं लछमी अति सुख लहै ।
साध वैष्णव गीता पढै । अध्यांय अठरही मन मैं रढै ॥ २ ॥
सहस जग्नि अश्वमेध करावै । गीतापाठी सो फल पावै ।
कपिला कोटि दिये फल होइ । बर्त करे चद्राइण सोइ ॥ ३ ॥
तीरथ ब्रत बहु भाँति करावै । सो फल गीतापाठी पावै ।
पाठ करन कौं ठोर है जास । ताके नाम करौं परकास । ४ ॥

गंगा तुलसी सालिगराम। नदी तीर के तपसी धाम।
गउसाला बट पीपल तरैं। गीता पाठ नित्त प्रति करैं॥ ५॥
उत्तिम ठौरै पाठ कराइ। कलि कै दोष लिये नहिँ काइ।
दुख कलेस सो निकट न आवैं। छूटै बध मुकति सो पावै॥ ६॥
साधन च्यारि करै जो कोइ। ताकूँ कलि जुगति पै न सोइ।
गीता पढै नित्य परबीन। जोनि तिनि बनैतौ पुरबीन॥ ७॥
अमावस पून्यौ एकादसी। पढै कामना पूरै जीसी।
पुनि सहस्र करैँ गउदान। ताको सम फल होय निदान॥ ८॥
जिहि सराध मैं पाठ जो करै। ताके पितर सबै उध्धरैं।
अध्याँय अठारहवी को स्लोक। पढै सुनै पावै सुरलोक॥ ६॥
गीता पढि सुणि कारिज करै। सोइ सबै विधि ता उर धरै।
गीता पढि श्रोता समझावै। गऊदान अछिछ्र प्रति पावे॥ १०॥
जातैं जीव मुगतिफल पावै। छहौ जतन प्रगट करि गावै।
गगा गीता ग्यानी साध। कपिला अरु तुलसी आराध॥ १०॥
एकादसी बर्त मन धरैं। मुक्ति होइ भवसागर तिरै।
लक्ष्मी सूँ बोले भगवान। अर्जुन कूँ दीनो इह ग्यान॥ १२॥
सुनि अर्जुन आनँद पद पायौ। गोप्य ग्यान मैं तुमहि सुनायौ।
च्यारि बेद पढि सुणि फल सोई। गीता श्रवण किये फल होई॥ १३॥

दोहा

अठदस षट नौ च्यारि मिलि यही बिचार बिचारि।
एक नाव सब ऊपरै राम नाम उर धारि॥ १४॥

इति श्रीगीतामाहात्म्ये इतिहासकथा सपूर्ण। सवत् १६२८ का मीति आसोज सुद ७ अदितिवार के दिन लिखित वैष्णव रुगनाथदास निरजनी नग्र कुचामण मधे स्वपठणार्थं॥

परिशिष्ट

प्रतीकानुक्रम

भाषाभूषण

(सख्याएँ छदो की है)

दोवा

प्रबोध नाटक

आनद विलास

अनुभवप्रकाश

अपरोक्ष सिद्धात

सिद्धातबोध

सिद्धातसार

छूटक दोहा

अभिधान

भाषा-भूषण

[सख्याएँ छंदों की हैं]

स्वर वर्ण

ट–वर्ग

ठ–वर्ग

त–वर्ग

तुहिन–हिम, बरफ १७५
तृपति–(तृप्ति) तुष्टि, संतोष १४
तो–(तव) तुम्हारे ७३
तो ७४
तो–तव, तुम्हारे १५५

थ वर्ग

थाप–स्थापित कर, समझकर १९
थोरोई–थोड़ा ही १४२

द वर्ग

दई–दैव १०६
दरस–दर्शन १०६
दामिनि–विद्युत, बिजली २०६
दीप–(द्वीप) टापू, (जंबू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौंच, शाक, तथा पुष्कर) १२७
दीपति–(दीप्ति) वृद्धि १७
दुति–(द्युति) कांति, आभा ७९
दुति–(द्युति) कांति, आभा १४१
दुराइ–छिपाई जाय ६५
दुराएहूँ–छिपाने पर भी १३
दुरावैं–निषेध करने से, छिपाने से ९२
दुरैं–छिपने पर, निषेध होने से ९१
दुरै–छिपाकर १८१
दूजी–द्वितीय, दूसरी ७३
दृग–नेत्र, आँखें ९२
देखिबो–देखना ७१
देय–देता है १३०
दैन–दायिनी, देनेवाली १३२
दौर–दौड़, प्रयास ११७

ध वर्ग

धनंजय–अर्जुन १-८६
धनुष–कमान, भौहें ६९
धरक्यो–धड़कने लगा २०५
धर्मनिधि–धर्मराज ७९
धाम–निवास, घर १३७
धुनि–(ध्वनि) बाँग, आवाज १६१

न वर्ग

नवत–नमित होते हैं, झुकते हैं १२५
नवल बधू–नई बहू ७९
नवोढा–नवविवाहिता १५६
नाइ–नवाकर, झुकाकर २
नारि–नायिका ६
निंदा–जुगुप्सा ३६
निदान–अततोगत्वा, अंत में १९२
निधान–निधि, खजाना १६०
निधि अंजन–सिद्धांजन, वह अंजन जिसे आँखों में लगा लेने से भूमि में गड़ा धन दिखाई पड़ने लगता है १६०
निर्गुन–निर्गुण ब्रह्म, गुणरहित १९१
निषेध्यो जाइ–निषिद्ध किया जाय १९३
निहचै–निश्चय १४
नीकें–भली भाँति ७८
नीबी–(नीवि) फुँफुदी १६१
नीरतरंग–पानी का लहरा २०६
नेह–(स्नेह) प्रेम, तेल ९६
नेह–(स्नेह) तेल, प्रेम ११४
नेह–[स्नेह] प्रेम, तेल १४३
नैन–[नयन] नेत्र, (नय+न) नीति रहित ११०
न्यारे–(निराकृत) पृथक् ११६
न्हाइ–स्नान करके, नहाकर १६२

पवर्ग

पंकज–कमल ५५
पंकज–कमल (रात को बंद हो जाता है) १७६
पंकजमुखी–कमल के समान मुखवाली ४४
पतित–पापी, नीच १०२
पद–सार्थक शब्द १३६
पद–शब्द १६६
पदमराग–(पद्मराग) माणिक, लाल १६८
परंपरा–श्रृंखला १३५
पर–परायण, तक १३६
पर–अन्य ६४
पर–अन्य की, दूसरे की १८०
परतिछ–(प्रत्यक्ष) वर्तमान १८६
परपंच–(प्रपंच) संसार, सृष्टि २
परबाम–दूसरे की स्त्री १०
परस–स्पर्श १६१
परसत–स्पर्श करते ही १६१
परिहार–परित्याग १३४
पर्जस्त–(पर्यस्त) पर्यस्तापह्नुति नामक अर्थालंकार ६३
पल्लव–किसलय, कल्ला ४२
पाइ–(पाद) पैर ६८
पाइ–(पाद) पैर १८०
पाठ–अर्थात् मूल २०७
पानि–(पाणि) हाथ ४२
पानि–(पाणि) हाथ १३८
पार–अंत १५५
पारद–पारा (जो स्थिर नहीं रहता) १५६
पीय–(प्रिय) प्रियतम, नायक ७१
पीय–(प्रिय) नायक २००
पीव–प्रिय; पी पी करनेवाला पपीहा १६६
पुर–नगर ७२
पूरबगुन–(पूर्व+गुण) पहले का गुण १७२
पूर्बापर–(पूर्वापर) आगे पीछे ७६
पेखि–देखो ४४
प्रकास–(प्रकाश) प्रकट रूप से २७
प्रकास–(प्रकाश) स्पष्ट ४६
प्रताप–तेज, धूप ८४
प्रतिबंधक–प्रतिबंध रखनेवाला, रोक करनेवाला ११०
प्रतीति–बोध ३६
प्रतीति–बोध ५७
प्रफुलित–विकसित, प्रसन्न ६३
प्रबीन–(प्रवीण) कुशल, चतुर १२
प्रबीन–(प्रवीण) चतुर, दक्ष २०६
प्रमान–(प्रमाण) सिद्ध ४३
प्रमानि–मानो, समझो १८५
प्रसन्न–खिला हुआ, हर्षयुक्त ५५
प्रस्ताइ–प्रस्तुत ही ६६
प्रस्तुत–अर्थात् उपमेय ६१
प्रान–(प्राण) प्राणतत्व, जीवन ३
प्राननिवास–प्राणों में बसनेवाले प्राणप्रिय १०७

फ

फरक–(अ० फर्क) अंतर १७४
फुरै–स्फुटित, व्यंजित ९३
फुरै–स्फुरित हो, प्रकट हो १४५
फेर–पुन , फिर १६४

'य' से 'ष' वर्ण तक

स

ह

दोवा

अ वर्ग

अचिरज (आश्चर्य) ८
अनग–कामदेव २
अनुराग– प्रेम २०
अरुन–(अरुण) लाल १७
अलि–भ्रमर (कुचाग्र) ३६
आसव–मदिरा ४७
आहि–है १८
इकबार–एक साथ ४
इहिँ–इस २५
इहि-इसे, इसको ८
उरोज–स्तन, कुच ३८
उसीसौ–(उत् + शीर्ष) सिरहानी, तकिया ४०
ओर–(अपर) अन्य २६
और–अन्य (प्रकार की) २५

क

कचन–सुवर्ण (ज्योति) १५
कटी–टाँकी (तराजू) ५४
कटि–कमर ३३
कठिन–कठोर, कड़े ४१
कठिनता–कठोरता १६
कन–(कण) ६
करामात–चमत्कार ४३
करार–(अ०) चैन २८
कल–चैन ३०
कल–चैन ५३
कलि–कलिका, कली ३१
कवल–कमल (नेत्र) ४०
कवल–कमल (मुख) १७
कवल–कमल (कुच) ३६
कसौटी–एक प्रकार का काला पत्थर जिस पर रगड़कर सोने की परख की जाती है (काली रात) १५
कारी–काली ५
कालिंद्री–कालिदी, यमुना १
कुभ–कलस, घडे (के समान) १०
कुच–स्तन, उरोज (शिव) १०
कुच–स्तन, उरोज ३१
कूँ–को ३
कृस–(कृश) क्षीण, छोटी ३

ख

खजन–खजरीट नामक पक्षी (नेत्र) ४३
खरौ–अत्यत १०
खुलै–विकसित हुए, खिले ४
खौरि–स्तनों पर चंदन का लेप १०

ग

गवन–(गमन) जाने १३
गहि–पकड़कर २
गहि लेइ–ग्रस्त कर ले ४४
गात–(गात्र) शरीर ६
गात–(गात्र) शरीर, अग ४१

घ

घटि–कमी ५४

च

चद–चद्रमा (मुख) ४०
चद–चद्रमा (मुख) ४६
चकवा–चक्रवाक (स्तन के उपमान) ४६
चोप–उमग ७
चोप–उमग ३३

छ

छकाइ–मत्त (कर देता है) ४७

छकि जाहिँ–मस्त हो जाते हैं, उन्मत्त हो जाते हैं ८
छाँह–छाया ३६
छाप करि–मुद्रा अंकित करके ३६

ज

जावक–(यावक) महावर २३
जुगल–(युगल) दो ३४
जुरे–जुडे हुए, मिले हुए ४६
जोत–(ज्योति) कांति ५
जोत–(ज्योति) प्रकाश ४८
जोबन–(यौवन) युवावस्था ८

ट

डंडी–डाँड़ो, तराजू की डंडी जिसमें पलडे बाँधे जाते हैं ५४
डहडह्यो–खिला हुआ प्रफुल्ल ३१

त

तऊ–तिसपर भी, तब भी १६
तनक–(तनु) थोड़ा, तनिक २८
तरसैं–तरसते हैं ५३
तरुनाप्रो–तारुण्य, युवावस्था ६
तरुनि–(तरुणी) युवती, नायिका ३६
तातैं–उस कारण, उससे १३
ताहि–उसको १८
तिय–(स्त्री) नायिका ६
तिलकलीक–टीके की रेखाएँ ६
तिलरी–तीन लडियों कालला़ट पर पहनने का आभूषण, टीका ५४
तिहि–उसमें ३४
तीय–(स्त्री) नायिका ४६
तीर–बाण (कटाक्ष) २३
तुव–(तव) तुम्हारे २२
तैं–से ४१
त्यौर–(अ० तौर) प्रकार २५
त्रिवली–पेट में पड़ने वाली तीन परतें २

द

दतछ्छत–दाँतों का क्षत २२
दई–दैव १२
दरपन–(दर्पण) आईना २६
दरसैं–दर्शन ५३
दरसै–दिखलाई पड़ने पर, निकलते ही ४
दामिनि–विद्युत् , बिजली ४८
दुतिगात (गात्रद्युति) शरीर की काति, ज्योति १५
दुरावन–छिपाने २४
दुरै–छिपती है ७
द्योसन–दिवस, दिन ५३
द्रिग– (दृग) नेत्र १३
द्रिग–(दृग) नेत्र ५४

ध

धनुष फूल–(कामदेव का) फूल का धनुष २८
धीर–स्थिर १७
धीर–धीरज २२
धौरी–धवल, उजली १५

न

नखछत–(नखक्षत) नखचिह्न (नखाकृति द्वितीया का चद्रमा) १०
नटसाल–बाण की गाँसी जो टूटकर देह में रह जाय ५२
निर्गुन–(निर्गुण) सत्त्व, रज और

सम तीनों से रहित, निराकार अर्थात् पतली ३८
निरजन–निर्लिप्त, मायारहित, अजन-रहित, बिना काजल के ३८
निरलेप–(निर्लेप) निर्लिप्त, विषय वासना की आसक्ति से रहित, अग-राग के लेप से रहित ३८
नूतन–नया, टटका ७
नैन–(नयन) नेत्र १
नेह–(स्नेह) ७
नेह–(स्नेह) २७
नैक–थोड़ा ११

प

पकज–कमल ४
पचबान–(पचबाण) उन्मादन, तापन, शोषण, स्तभन तथा समोहन नामक कामदेव के पाँच बाण १४
पघिरयो–पिघला, द्रवित हुआ ११
पर–पख, पराया (व्यजना) ५५
परसे–स्पर्श किए २६
परसैं–स्पर्श ५३
परे–पडे, डूबे ३०
पला–पलडे ५४
पल्लव–किसलय, कल्ला ३१
पहुप–(पुष्प) फूल ३१
पानि–(पाणि) हाथ ३१
पाय–(पाद) पैर १६
पिक–कोयल ४८
पीय–प्रिय (मेह) ५
पीय–(प्रिय) नायक १६
पीर–पीड़ा ५१
पीरी–पीली ५
पुहमी–(पृथिवी] भूमि ३
पून्यो–पूर्णिमा (वयः सधि) ६
पूरन–(पूर्ण) ३२
पूरन ससि–पूर्णमासी का चद्रमा ४५
पोए–पिरोए हुए २३

फ

फेन–झाग १

ब

बढि–वृद्धि ५४
बदन–मुख ६
बदन–मुख १७
बदन–(वदन) मुख ३१
बरुन–(वरुण) जल अर्थात् बादल अजन २१
बलि—बलिहारी २२
बस–(वश) वशीभूत ४३
बाम–(वामा) स्त्री, नायिका १४
बारिज–कमल (मुख) ३४
बाल–बाला, नायिका २३
बाल (बाला) नायिका ४३
बिंदू–बिदी ४४
बिजुरी–विद्युत्, बिजली (आभा) ३४
बिजुरीजोत– (विद्युत् + ज्योति) बिजली का प्रकाश ३
बिधि–ब्रह्मा ४०
बिरवा–पौधा ५०
बिस–(विष) १८
बिस–(विष) जहर ४२
बुझे–जलकर कोयला बने हुए, काले ७
बैन–(वचन) बोली १६
ब्रिछ्छ–(वृक्ष) पेड १६

भ

भजै–भाग रहा है ३३
भस्म–भभूत १०
भाल–ललाट २३
भीर–भीड़, समूह १७
भौंर–भ्रमर (भौंह) १७
भ्रुव–भौंहैं ५४

म

मद–धीमी, फीकी ३२
मद–मद्य, नशा ४७
मध्या–शैशव और यौवन की वयः संधि से युक्त नायिका ६
मनोज–कामदेव ३८
मरिबो–मरना ११
माल–माला, हार ५२
माहिं–मध्य, में ३३
मीन–मछली (नेत्र) ३४
मुक्तमाल–मोतियों की माला १
मुक्तमाल–मोतियों की माला (गगा) १०
मोती–मुक्ता (आंसू)
मोर–मेरा, मुझे ४९
म्रिगमद–(मृगमद) कस्तूरी ३५
म्रिगमद–(मृगमद) कस्तूरी ४४

'य' से 'श' तक

यामैं–इसमैं (गरमी मैं) ३
रबि–सूर्य (तारुण्य) ६
रस–आनद २७
राका–पूर्णिमा की रात ३२
रात–(रक्त) लाल १३
रातैं–अनुरक्त १३
रीझि–प्रसन्न होकर ३१
रोस–(रोष) क्रोध १७
लगै–लगे रहने पर, प्रीति करने पर १८
लाल–नायक (के) २३
लाल–मानिक २३
लाल–मानिक (रोष) २३
लाल–प्रिय, नायक ४३
लोचन–नेत्र ४६
वापै–उसपर, उससे ३५
श्रमजल–स्वेद, पसीना ९

स और ह

सचु–सुख २७
सज्जन–स्वजन, प्रियतम ५४
सतर–वक्र, टेढी १७
सम–सदृश ३२
समाधान–परितोष ११
सरबस– (सर्वस्व) ३६
सरसात–बढती हैं ३६
सरोवर–सर, तालाब ३६
ससि–(शशि) चद्र (बालपन) ६
सिंघ–सिंह (कटि) ३३
सिव–(शिव) १०
सुजान–प्रिय, नायक २६
सुध–चेतना २५
सुध–स्मरण ४७
सुधारस–अमृत १६
सुरत–केलि, कामक्रीड़ा ९
सूकति–सूखती है, क्षीण होती है ५०

सूकै–सूख जाता है ३
सूकै–सूखता है, क्षीण होता है ४६
से–सदृश १६
सेत–(श्वेत) ६
स्याम–(श्याम) श्रीकृष्ण १
स्याम–(श्याम) काले ३६
स्यामता–कालिमा २१
स्रवन–(श्रवण) कान ४०
स्वास–(श्वास) साँस (विरहजन्य) १६
हरि–हे कृष्ण २१
हरिन–हरिण, मृग (नेत्र) ३३
हरीरी–हरी भरी (प्रसन्न) ५
हिय–हृदय, वक्ष स्थल १
हीय–हृदय १६
हुतो–था ५२
हेत–अभिप्राय २७
ह्वाँहि–वहाँ ही, वहीं १२

प्रबोध नाटक

स्वर वर्ण

अँदेस–(फा० अँदेशा) सशय ७
अँध्यारो–अधकार, अज्ञान ११ ग०
अतहकरन–(अतःकरण) विचार और भावना का स्थान ११ ग०
अग्निहोत्री–अग्निहोत्र करनेवाला, अग्निहोत्र द्वारा होमाग्नि को सुरक्षित रखनेवाला ४ ग०
अनितता–(अनित्यता) क्षण भगुरता, नश्वरता ११ ग०
अनीति–नीतिविरुद्ध, अन्याय ४ ग०
अपजीवै–आत्मजीवन अपना जीवन ४ ग०
अपनपौ–अपनापन, आत्मस्वरूप ४ ग०
अपबस–अपने वश में ४ ग०
अबिद्या– (अविद्या) माया ४ ग०
अभिषेक–तिलक १० ग०
अरथ–(अर्थ) निमित्त, लिये ४ ग०
अलंकार–भूषण ११ ग०
अलप–(अल्प) नगण्य, कम ४ ग०
अष्टाग प्रनाम–साष्टाग नमस्कार, शरीर के आठो अगो से किया जानेवाला अभिवादन ४ ग०
आकासब्रिछ्छ– (आकाश + वृक्ष) अनहोनी बात, काल्पनिक ४ग०
आतमग्याँन–(आत्मज्ञान) अध्यात्म ज्ञान, आत्मा तथा परमात्मा के सबध की जानकारी १६
आपनपौ–अपनापन, आत्मबोध ४ग०
आयबल–(आयुर्बल) आयुष्य, जीवन १७
आयुध–हथियार ६
आसा-लडुवा–आशा के लड्डू अर्थात् मिथ्या आश्वासन ४ ग०
इतही–इधर ही ४ ग०
ईरषा–(ईर्ष्या) ४ ग०
उत–उधर ४ ग०
उदधि–समुद्र १७

उदोत–(उद्योत) दीप्त, प्रकाशित १
उद्दित–(उद्यत) प्रस्तुत ४ ग०
उद्दिम–(उद्यम) उद्योग, प्रयास ४ ग०
उद्दिम–(उद्यम) उद्योग, प्रयास ६ ग०
उननि–उन सबो ने ११ ग०
उपचार–उपाय ११ ग०
उपजाइ–उत्पन्न करके ४ ग०
उपरैना–उत्तरीय, दुपट्टा ४ ग०
एकता–ऐक्य ४ ग०
और–(अपर) अन्य ४ ग०
ओषधि–जड़ी,बूटी १७

कवर्ग

करि–(स० कृत्वा) से ४ ग०
कहा–क्या ४ ग०
कहा–क्या ११ ग०
कहायौ–कहलवाया ६ ग७
कापालिक–मनुष्य की खोपड़ी लिए रहनेवाले शैवमत के तांत्रिक साधु ६ ग०
कारजाकारज–(कार्य+अकार्य) करणीय अकरणीय, उचित-अनुचित। ४ ग०
काहे तैं–क्यो, किस कारण ४ ग०
किहिं–किस ५
कुसलात–कुशलता ४ ग०
कौ–के लिये, में ४ ग०
क्रिति क्रिति–कृतकृत्य ११ ग०
खिति–(क्षिति) पृथ्वी १७
खेत्रग्य–(क्षेत्रज्ञ) जीवात्मा ११ ग०
गमायौ–गँवाया, खोया ११ ग०
गाढे–दृढता से, मजबूती से ४ ग०
ग्रसि–खाकर ११ ग०

च

चलन–व्यवहार ४ ग०
चारवाक–(चार्वाक) भौतिकता तथा नास्तिकता को माननेवाला ४ ग०
चिदानँद–चैतन्य तथा आनदमय ४ ग०
चिबुक–ठोड़ी ४ ग०

छ

छय–(क्षय) नाश ४ ग०
छाडी–छोड़ (दिया है) ४ ग०
छाड़ी–छोड़ दिया ८ ग०
छै–(क्षय) नाश ४ ग०

ज

जगत–(जगत्) ससार १
जतन–(यत्न) उपाय ४ ग०
जतन–(यत्न) उपाय ११ ग०
जमनका–(जवनिका) नाटक का बाहरी परदा ३ ग०
जमनेमादिक–(यम, नियम आदि) ४ ग०
जमादिक–(यम+आदिक) इन्द्रिय-निग्रह आदि ११ ग०
जराव–जडाऊ ४ ग०
जलनिधि–समुद्र १६
जा–जिस ४ ग०
जागिबौ–जागना, जागरण की स्थिति में आना ४ ग०
जान–जाननेवाले, ज्ञाता २

जानबी–जानना ११ ग०
जाहुगी–जाओगी ६ ग०
जुगत–(युक्त) उचित ११ ग०
जुदो–(फा० जुदा) पृथक्, अलग ४ग०
जुध्ध–(युद्ध) ११ ग०
जेते–जितने ४ ग०
जोग–(योग्य) ४ ग०
जोत–(ज्योति) १
जोबराज–(युवराज) ११ ग०
ज्यौं–जिससे ३ ग०

ठ

ठौर–स्थान ४ ग०

ड

डडनीति–राजनीति ४ ग०
डरिबौ–डरना ११ ग०

त

तऊ–तब भी ४ ग०
तत्वमसी–(तत्+त्वम्+असि) ११ग०
तनावनि–(अ० तिनाव) रस्सी, डोरी ४ ग०
तरग–पानी की लहर १६
तरक–(तर्क) तर्कशास्त्र ११ ग०
ता–उस ४ ग०
तातें–उससे ४ ग०
तापस–तपस्वी ४ ग०
तामसी–तमोगुण वाली ६ ग
तितनैं–तत्क्षण, उसी समय ३ ग०
तितनें–तत्क्षण, इसी समय ४ ग०
तेई–वेही ११ ग०
तेऊ–वे भी ४ ग०
तेही–वेही ४ ग०
तैं–से ४ ग०
तैं–तुम ४ ग०
तोकौं–तुमको ४ ग०
तोकौं–तुझको ४ ग०
तोत–थोथा, मिथ्या १
तोरन–(तोरण) बाहरी द्वार ४ ग०
त्रिपति–(तृप्ति) ४ ग०
त्व–तू ११ ग०

द

दभिक–अहकारी ४ ग०
दई–की ४ ग०
दखन–(दक्षिण) ४ ग०
दम–इन्द्रियों का दमन ११ ग०
दानमति–दानशील, दानी २
दारुन–(दारुण) भीषण ११ ग०
दिगबर–जैन यति ६ ग०
दीखित–(दीक्षित) ४ ग०
दीनी–दी (है) ४ ग०
दुरयो–छिपा ११ ग०
देहली–दहलीज, चौखट ४ ग०
द्रव्य–वस्तु ४ ग०
द्वद–(द्वद्व) दो विरोधी तत्त्व १६

ध

धर्मी–स्वभाव वाला ११ ग०
धीरज–धैर्य २
धोक–प्रणाम करना, सिर झुकाना ४ ग०

न

नवखड–भरत, किंपुरुष, भद्र, हरि, हिरण्य, केतुमाल, इलावृत,

कुश तथा रम्य नामक पृथ्वी के नब खड १७
नामा—नामक ४ ग०
नास—(नाश) ३ ग०
निच्चि—(नित्य) १
नित्ति—(नित्य) १०
निबृत्ति—(निवृत्ति) सासारिक जीवन से वियुक्ति । ४ ग०
निबित्ति—ससार से वियुक्ति ११ ग०
निरजन—मायारहित, निर्विकार ४ ग०
निरबिचार—(निर् + विचार) अवि-वेक ६ ग०
निरमूल—(निर्मूल) नष्ट ४ ग०
निरासी—आशारहित ४ ग०
निषेद—(निषेध) वर्जन ११ ग०
निस्चै—(निश्चय) ४ ग०
निस्चै—(निश्चय) ४ ग०
नीकैं—(व्यक्त) अच्छी तरह ४ ग०
नीकें—अच्छी तरह से, ठीक-ठीक ४ ग०
नीकौ—सकुशल, भला चगा ४ न०
नीप—लीपकर ४ ग०
नेष्ठावान—(निष्ठावत्) निष्ठावान् निष्ठा या श्रद्धा से युक्त ३
न्यारौ—(निराकृत) निराला, विलक्षण ४ ग०
न्यारो—पृथक्, भिन्न ११ ग०

प

पदारथ—(पदार्थ) ११ ग०
पदारथग्यॉन—(पदार्थज्ञान) शब्दार्थ का बोध ११ ग०
पयादा—पदाति, पैदल चलने वाले १० ग०
परैं—आगे, ऊपर, बढकर ११ ग०
पापकारी—पाप करनेवाला, पापी ४ ग०
पावनी—पवित्र करनेवाली, पुनीत १० ग०
पाषडनि—पाखडियों ६ ग०
पासनि—(पाश) बधों में, फदों मैं ४ ग०
पीस्यौ—पीस (डाला गया), कुचला (गया) ११ ग०
पुरबासी—नगर के निवासी ४ ग०
पै—पर ४ ग०
पैंड—डग, कदम ६
प्रतिछ्छ—(प्रत्यक्ष) ४ ग०
प्रतीत—प्रतीति, विश्वास १
प्रबृत्ति—(प्रवृत्ति) सासारिक जीवन में अनुरक्त ४ ग०
प्रबोध—यथार्थ ज्ञान ४ ग०
प्रब्रिच्चि—(प्रवृत्ति) ११ ग०
प्रसग—निमित्त, हेतु ४ ग०
प्रसाद—अनुग्रह ११ ग०
प्रसेदकन—(प्रस्वेदकण) पसीने की बूँदे ४ ग०
प्रापति—(प्राप्ति) ४ ग०
प्रापत—(प्राप्त) ११ ग०

फ

फेरि—पुनः, फिर ११ ग०

ब

बउध—बौद्ध ४ ग०
बधि—वध्य, जिसका वध किया जाय ११ ग०

बधिक–वध करनेवाला ११ ग०
बन्यौ–होने जा रहा है ६ ग०
बसि–वश में ६ ग०
बसि–वशीभूत, वश में ४ ग०
बसि–बश में ४ ग०
बाइ करि–वायु द्वारा ४ ग०
बाचसपति–(वाचस्पति) बृहस्पति ४ ग०
बाम–(वामा) रमणी ६
बारानसी–(वाराणसी) काशी ४ग०
बिंब–मडल (सूर्य का) १७
बिकलप–(विकल्प) भ्रांति, भ्रम ११ ग०
बिगरबेहू–बिगाड़, अनिष्ट ४ ग०
बिजै–(विजय) ६ ग०
बिबेक–(विवेक) सम्यज्ञान ३ ग०
बिरुध्धी–विरुद्ध ११ ग०
बिषै–(विषय) में १
बेग–शीघ्र ११ ग०
बैसेसक–वैशेषिक दर्शन ११ ग०
बौध–(बौद्ध) बौद्ध धर्मावलबी ६ ग०
बोध्धन–बौद्धों ४ ग०
बौहोत–बहुत, अधिक ४ ग०
बौहौत–बहुत, अधिक ४ ग०
बौहौत–बहुत ११ ग०
ब्रतात–(वृत्तात) कथा ४ ग०
ब्रह्मंड–(ब्रह्मांड) सपूर्ण विश्व १७

भ

भँवर–चक्करदार ४ ग०
भजि–भगकर ११ ग०
भाजैंगे–भग जाएँगे, भागेंगे ४ ग०
भानेज–(भागिनेय) बहन का लड़का, भानजा ४ ग०
भार–उत्तरदायित्व ११
भार–बोझ ११
भास–प्रतीति ११ ग०
भिख्या–(भिक्षा) भीख ४ ग०
भीर–जमाव ६
भूरि–अधिक ४ ग०
भै–भय ४ ग०
भै–(भय) ४ ग०

म

मईत्री–(मैत्री) ६ ग०
मच्छर–(मत्सर) ईर्ष्या ११ ग०
मछ्छर–(मत्सर) ४ ग०
मति–बुद्धि (विवेक की पत्नी) ४ ग०
मरजाद–(मर्यादा) सीमा १७
महूरत–(मुहूर्त) एक दो घड़ी ४ग०
मानिनी–मानवती, मान करनेवाली ४ ग०
मारकड–(मार्कडेय) अपने तपोबल से अनतकाल तक जीवित रहनेवाले एक प्राचोन ऋषि १७
मारतंड–(मार्तंड) सूर्य १७
मुदिता–प्रसन्नता ६ ग०
मूरतिवत–मूर्तिमान्, साक्षात् ४ ग०
मूरतिवान–(मूर्तिमान्) साक्षात्, प्रत्यक्ष २
मृतैन–मृतों, मरे हुए ४ ग०
मृगतिसना–(मृगतृष्णा) मृगमरीचिका ६ ग०
मृगत्रिष्णा–(मृगतृष्णा) मरुस्थल

तथा ऊसर भूमि में कड़ी धूप पड़ने के कारण जल की लहरो की मिथ्या प्रतोति, मृगमरीचिका १
मोपै–मुझसे ४ ग०
मोप–(मोक्ष) मुक्ति ४ ग०
मोह–अज्ञान, भ्रम ३ ग०
म्रित–(मृत्यु) ११ ग०
म्रितका–(मृत्तिका) मिट्टी

'य-र ल' वर्ण

याकी–इसकी १
याकौं–इसको ३ ग०
यौ–ऐसा ४ ग०
रटौ–निरतर रट (लगा रहा हूँ) ग० ११
रहिबौ–रहना ६ ग०
राढ–जड़, गँवार ४ ग०
रूपे–(रूप्य) चाँदी १
लऔं–लिए ४ ग०
लयैं–लिए ३ ग०
लज्या–(लज्जा) लाज ४ ग०
लीबे–लेने ४ ग०
लीबो–लेना ११ ग०
लेख–भाग्यरेखा १२
लेगो–लेगा ४ ग०
लोक–जन, लोग ३ ग०
लोकों–लोगो ४ ग०

स

सति–सत्य ४ ग०
सत्ति–(सत्य) १०
सनमुख–सामना (करने के लिए) ६ ग०
सम–(शम) शमन ११ ग०
समसत्ति–समस्त १
सर–(शर) बाण (लाल कमल, अशोक, आम की मंजरी, चमेली और नील कमल नामक कामदेव के पाँच बाण) ६
सरबग्य–(सर्वज्ञ) ४ ग०
सरबथा–(सर्वथा) ११ ग०
सराध–(श्राद्ध) ४ ग०
सस्त्र–(शस्त्र) ६ ग०
सहज–सुगमता से, सरलता से ८
सहजैं–सुगमता से ही ४ ग०
सहाइ–सहायक ६ ग०
सहाय–सहायक ४ ग०
साखि–साख्य दर्शन ११ ग०
सात्तुकी–(सात्विकी) सत्त्वगुण से सपन्न ६ ग०
सार–तत्व १३
सारे–(श्याल) पत्नी का भाई, साला ४ ग०
सिखा–(शिखा) दीपक की लौ, टेम ४ ग०
सुं–(सह) से ४ ग०
सुइछ्छाचारी–(स्वेच्छाचारी) इच्छानुसार कार्य करनेवाला ११ ग०
सुनि–सुनो ४ ग०
सुनि–सुनो ४ ग०

सुपन–स्वप्न ४ ग०
सुलगन–(सु+लग्न) शुभ मुहूर्त १०
सूत्रधार–नाट्य का सचालक, प्रधान नट २ ग०
सेस–शेषनाग १७
सौंदर्ज–(सौंदर्य) ६ ग०
सौंह–शपथ ४ ग०
सौद्र–(शुद्र) ४ ग०
हितू–हित चाहनेवाला ४ ग०
हिरदौ–(हृदय) ११ ग०
हुते–थे ४ ग०
हूबै–होने ४ ग०
हेत–(हेतु) निमित, लिये ४ ग०
होइगी–होगी ४ ग०
होइगौ–होएगा ४ ग०
ह्या–यहाँ ४ ग०
ह्वाँ–वहाँ ४ ग०
ह्वाँ–वहाँ ४ ग०

आनद विलास

स्वर

अंतहक्रन–(अत.करण)। ११९
अन–(अन्न)। १२६
अबुज–कमल। ३६
अचिरज–आश्चर्य। ११
अचैन–अशात। २८
अचि–अति, अत्यधिक। १६६
अधिष्ठान–आधार। ८६
अनिरबचन–अनिर्वचनीय, जिसका वर्णन न हो सके। १०४
अनीति–अन्याय, अत्याचार। ४२
अनुग्रह–कृपा। ८०
अपघात–अभयघात। २०
अपरिग्रह–सगत्याग ६७
अबध्य–जिसका वध निषिद्ध हो। १६
अबिद्या–(अविद्या) माया। ५३
अरि–शत्रु। ११
अलि–भ्रमर, भौंरा। ३६
अष्टांग–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि नामक योग के आठ अग। ६२
अस्ति–विद्यमानता। ६६
अस्ते–(अस्तेय) चोरी न करना ६६
आघ्रण–(आघ्राण) सूँघना। ३६
आचारिज–(आचार्य) ८६
आनदविलास–आनंद का फैलाव, ग्रंथनाम १६७
आवरन–(आवरण) आच्छादन ५३
आसरै–आश्रय १०६
आसिरै–(आश्रय) आधार ५५
आस्रै–आश्रय १०५
आहि–हो ९१
आहि–(अस्ति) है। १४१
इक–एक १५५
उज्वल–(उज्ज्वल) निर्मल, स्वच्छ ७७

उड्डाण–उड्डीयान मुद्रा, श्वास बाहर करके पेट को पीठ से सटाना ७२
उदासी–विरक्त ४
उद्दोत–(उद्योत) प्रकाश १०६
उपरम–विरक्ति, निवृत्ति ५९
एकदंत–एक दाँतवाले (गणेश) १
एकिक–एक एक ४१
ऐन–ठीक २८
कचाई – कमी, अनुभवहीनता, अज्ञानता ७१

क वर्ग

कटाछि–(कटाक्ष) दृष्टि ८३
कदाचि–(कदाचित्)। ११८
करमेंद्री–(कर्मेंद्रिय) जीभ, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ नामक काम करनेवाली इंद्रियाँ ३६
करुवौ–कड़वा ९५
काज–कार्य १३
कानि–मर्यादा ४८
कारण देह–शरीर का एक भेद, वेदांत के अनुसार सुषुप्तावस्था का वह कल्पित शरीर जिसमें इंद्रियों की क्रियाशीलता तो नहीं रहती परंतु अहंकार आदि का संस्कार रहता है १२१
कारन–(कारण) निमित्त। १३
कित्त–किस ओर, किधर १७८
कुंभक–प्राणायाम की तीन विधियों में द्वितीय ७३
कौतक–(कौतुक) खेल २०
क्रीयमान–(क्रियमाण) किया जाने वाला १५७
क्रीयमाण–(क्रियमाण) किया जाने वाला १३२

खेचरी–एक मुद्रा, जिसमें जीभ को उलट कर तालू से लगाते हैं और दृष्टि को भौंहों के बीच मस्तक में ७२

गज–हाथी ४०
गजबदन–हाथी के मुँह वाले (गणेश) १
गनपति–(गणपति) गणेश १
गवरीनंद–गौरी के पुत्र (गणेश) १
गुमान–गर्व १८०
गुरुकानि–गुरुत्व की मर्यादा २१

चिरिया–चिड़िया, पक्षी। १०
चिरी–चिड़िया १०
चेसटा–(चेष्टा) शरीर के अंगों की गति या क्रिया १९३

छठैं–छठी ५९
छिन–(क्षण) ७९

जऊ–यद्यपि १७७
जग्यास–जिज्ञासा, ज्ञान प्राप्त करने की कामना ५८
जम–(यम) संयम ६४
जानि–जानो, समझो ३६
जालंधर–मुद्रा विशेष। श्वास रोककर (कुंभक में) कंठ को संकुचित

•कर उसके मूल में ठुढ्ढो लगाना ७२
जित–जिस ओर, जिधर १८४
जिहाज–जहाज १७६
जीवनमुकत–(जीवन्मुक्त) आत्मज्ञान द्वारा जीवित दशा में ही सांसारिक प्रपंच से मुक्त १५६
जुगति–(युक्ति) ७८
जुदौ–(फा० जुदा) पृथक्, भिन्न १४६
जोइ–देखो २३
जोइ–देखकर ६१
जोइ–देखो ६१
जोग हठ–(हठयोग) योग की एक विशेष रीति ६२
जोति–(ज्योति) ८७
जोब–जो + अब २००

ठ + तवर्ग

ठँढि–ठंढी, शीतल १३७
तत–(तत्त्व) । ७८
ततहीँ–वहाँ १८४
तद–तब, इसके बाद ५
तात–पिता ६
तितिष्या–(तितिक्षा) सहन शक्ति । ५६
तित्त–वहाँ १८४
तुछ–(तुच्छ) १८६
तुछि–(तुच्छ) निकृष्ट ३०
तेजस–सृष्टि के पाँच मूलतत्त्वों में से एक, अग्नि १०८
तोत–व्यर्थता ४१
तौन–वह ११३
त्राटक–किसी बिंदु को निर्निमेष देखना
त्रिगुनबध–सत्त्व, रजस् तथा तमस् नाम के तीन गुणों से युक्त या बँधा हुआ १८३
थाँघी–भेदिया ४६
थिर–(स्थिर) दृढ ४३
दड्डवत–दंडे के समान पृथ्वी पर लेटकर किया हुआ नमस्कार १६३
दगध–(दग्ध) १५८
दम–निग्रह ५८
दिढ–(दृढ) ७६
दून–(द्विगुण) दुगुना ७
देहगुन–शरीर की स्वाभाविक क्रियाएँ १६४
दौर–भ्रमण ७४
धनि–(धन्य) १६६
धरा–पृथ्वी १०८
धाम–निवास ५४
धारणा–योगसाधना में मन की वह स्थिति जिसमें केवल ब्रह्म की ओर ही ध्यान रहता है । ६४
धुनि–(ध्वनि) ३८

धेय-(ध्येय) ७६
धोती-(धौति) आँतों को साफ करने के लिये कपडे की धज्जी मुंह से पेट में उतारना और पानी पीकर उसे धीरे धीरे बाहर निकालना ७१
ध्यान-चित्त को एकाग्र करके ब्रह्म की ओर लगाने की क्रिया ६४
नित अध्यासन-नित्य स्मरण ७७
निदान-अत १६
निदान-परिणाम ४६
निरगुन-(निर्गुण) सत्त्व, रज तथा तम नामक तीनों गुणों से रहित १४५
निहचै-(निश्चय) २२
निहचै-(निश्चय) ४४
नीकउ-अच्छा ही ६
नून-(न्यून) कम ७
नेती-नाक में डोरा डालकर मुंह से निकालना ७१
नैक-तनिक भी १७०
नैम-(नियम) ६४
नैमु-नियम ६८
नैमु-(नियम) ६४
न्यौली-पेट की नलियों को घुमाकर साफ करने की क्रिया ७१

प

पचभू-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश नामक पाँच मूलतत्त्व १२३
पछ्य-(पक्ष) पाख २०१
पट-वस्त्र ३
पतग-फतिंगा ३७
पदारथ-(पदार्थ) वस्तु तत्त्व ५६
परदछिछ्ना-(प्रदक्षिणा) परिक्रमा १६२
परमानद-आनदस्वरूप ब्रह्म २
पास-(पाश) बधन १०५
पिछानि-पहचानो, जानो १२२
पित-(पित्त) ६५
पितर-(पितृ) मृत पूर्वपुरुष २५
पीत-पीला ६५
पुदगल-शरीर, देह ४०
पुन-(पुण्य) २२
पुर-नगर १८३
पूरक-प्राणायाम की तीन विधियों में प्रथम, ७३
पूरब-(पूर्व) पहले ६३
पूरि-पूर्ण होकर १५५
पेखियै-देखिए १५३
प्रणीध्यान-(प्रणिधान) चित्त की एकाग्रता ६६
प्रतीति-विश्वास १६८
प्रत्याहार-इद्रिय निग्रह ६४
प्रपच-ससार, सृष्टि ७
प्रपच-दृश्यमान जगत जो माया तथा नानात्व का प्रदर्शन मात्र है ६६
प्रसाद-अनुग्रह १६०
प्राणायाम-श्वास और प्रश्वास की गति का निरोध ६४

प्रारंबध–(प्रारब्ध) वह कर्म जिसका फल भोग आरंभ हो गया है १३२
प्रीयता–प्रिय लगता ९६

ब

बंछित–(वाछित) चाहा हुआ १३४
बटाऊ–पथिक, राहगीर १७१
बसकरन–वश में करने की प्रक्रिया ५८
बसत–वस्तु का ५९
बसती–(वस्ति) गुदा द्वार से पानी आँत में चढाकर नाभि के नीचे का भाग स्वच्छ करना ७१
बहुरि–पुनः, फिर १०८
बाइ–वायु १०८
बान–अभ्यास, आदत ४६
बानि–टेव, अभ्यास १३६
बास–बस्ती १७१
बिकलता–व्याकुलता, बेचैनी ३०
बिकलप–(विकल्प) न करने का विचार ४३
बिछेप–(विक्षेप) दूसरे के रूप में प्रतीत होना, किसी का रूप जान पड़ना १०१
बिराम–विश्राम ८
बिषैं–(विषय) पर ४
बिषै– (विषय) में २०१
बिहवल– (विह्वल) व्याकुल ३०
बीभछ–(बीभत्स) १९४
बैंन–(वचन) वाणी १४
ब्याससूत्र–ब्रह्मसूत्र ३
ब्रह्मविद्या–ब्रह्मज्ञान ७८
ब्रिध–(वृद्ध) १५३

भ

भइ–हुई १९६
भरम–(भ्रम) भ्रांति ९९
भसत्रा–(भस्त्रा) श्वास के वेग से फेफड़े को स्वच्छ करना ७१
भाइ–भाव ७७
भाइ–भाव, प्रकार १०९
भासि–भासित होता है ९६
भासई–भासित होता है, ज्ञात होता है १०
भास्य–(भाष्य) प्रत्युत्तर की विस्तृत व्याख्या, ३
भिन–(भिन्न) १५४
भिन्य–भिन्न, पृथक् ५१
भूत–सृष्टि रचना के मूल द्रव्य १०९

म

मछ्छर–(मत्सर) १२
मछ्छर–(मत्सर) ३१
मद-अहंकार, मदिरा २९
ममता–ममत्व, ९
महाप्रकास–ब्रह्म ज्ञान १८९
महाबेध–मुद्रा विशेष ७२
माँझि–(मध्य) में ३४
माँहि–(मध्य) में १८८
माहिरे–(अ० माहिर) तत्वज्ञ, कुशल ७१
मुद्रा–विशेष प्रकार का अंगविन्यास ७२

मुमषि–(मुमुक्षा) मुक्ति की इच्छा ५८
मुहि–मुझे, मुझको १०
मूलबँध–एक मुद्रा जिसमें मूत्र और मल द्वार के मध्य भाग को दबाकर अपान वायु को ऊपर चढाना ७२
मोष–(मोक्ष) मुक्ति ५८
मोहि–मुझसे ९९

र+ल+व+ष

रक–दरिद्र, धनहीन ४७
रस–आनंद २००
रसना–वह स्वाद जिसकी अनुभूति जीभ से की जाय ३६
रसरी–रस्सी, डोरी ९३
रावरे–आप, श्रीमान् १६८
राह–राहु १०६
रूपौ–रजत, चाँदी ३४
रेच–रेचक, प्राणायाम की तीसरी विधि श्वास को धीरे धीरे बाहर करना ७३
लकरी–लकड़ी ८५
लकरी–लकड़ी १६४
लखाइ–दिखाई पड़ता है २९
लछिछन–(लक्षण) १०३
लक्ष्यन–(लक्षण) १४२
लेखि–जानो, समझो ८१
लोइ–(लोक) लोग १२०
वाहि–उसको, उसी को १५३
विपरीताख्या–विपरीत करिणी मुद्रा विशेष ७२
षट–छह ३२
षटक्रम–षट्कर्म नेती, धोती, बस्ती, न्योली, भस्त्रा और त्राटक नामक योग के छह कर्म ७०

स+ह

सकर–शंकराचार्य
संकलप–(सकल्प) करने का निश्चय ४२
सचित–पूर्वजन्म का अर्जित १३२
ससय–(सशय) सदेह १३५
ससै–(सशय) सदेह १४८
सकति–(शक्ति) १०१
सकति–(शक्ति) १२७
सच्चिदानद–सत्, चित् और आनद युक्त परमात्मा १४३
सति–सत्य ८३
सत्ता–अस्तित्व १४४
सथूल देह–(स्थूल) भौतिक और नश्वर शरीर १२१
सद्योमुकत–तत्काल मुक्त, तत्क्षण मुक्ति पानवाला १६७
सपरस–(स्पर्श) ३६
सम–शमन ५८
समाध–(समाधि) १८४
समाधि–ब्रह्मचिंतन मे पूर्ण तल्लीनता की स्थिति ६४
समापत–(समाप्त) अत १६७
सरनैं–शरण में १०
सांभवी–एक मुद्रा ७२
साछी–(साक्षी) १७२

साद्रिस–(सादृश्य) समानता ९४
साध–(श्रद्धा) उत्कट अभिलाष १८४
साधन–उपकरण ५७
साबास–(शाबाश) शाबाशी, प्रशंसा, साधुवाद ८९
साबासि–(शाबाशी) प्रशंसा, धन्यवाद ५१
सिंहार–संहार १४२
सिगरे–(समग्र) संपूर्ण ९०
सिगरौ–(समग्र) संपूर्ण १८२
सिध–(सिद्ध) ६०
सीत–(शीत) ठंढक ३
सुक–(शुक) सुग्गा १०
सुकल–(शक्ल) सुनी २०१
सुक्र–(शुक्र) वीर्य १३०
सुचि–(शुचि) पवित्र ६७
सुछिछम–सूक्ष्म १०९
सूछिम देह–(सूक्ष्म) लिंग शरीर जो सूक्ष्म पंच महाभूतों से युक्त है १२१
सुत रजनीस–(रजनीश सुत) चंद्रमा के पुत्र बुध, बुधवार २०१
सुभाइ–स्वभाव १६६
सुर–(स्वर) ३८
सुवा–(शुक) सुग्गा १०
सूं–से १९
सूर–(सूर्य) १२७
सोइ–नहीं ११९
सोगपुत्र–पुत्रशोक १७१
स्रवन–(श्रवण) ७७
हरनी–हरिणी, मादा हिरन ३८
हरुवाई–गुरुत्वहीनता, हलकापन २२
हित्त–हित, भलाई ५१
हुती–थी ५०
हुते–थे १ ९
हेत–(हेतु) कारण १७
हेत–(हेतु) कारण १००
ह्यांऊं–यहाँ भी ९१
ह्वां–वहाँ ७६

अनुभव प्रकाश

अ

अतहकरन–(अंतःकरण) १६
अकर्ता–कर्तृत्वरहित १९
अखंड–जिसके खंड न हो सके, पूर्ण
अगम्य–अकल्पनीय, जो बोधगम्य न हो २६
अचित–(अचिंत्य) चिंतन से परे, अचिंतनीय २३
अज–अजन्मा, स्वयंभू २२
अधार–(आधार) आश्रय १९
अनंत–अपरिमित, निस्सीम १९
अनादि–जिसका आदि न हो २१
अनिरवचन–(अनिर्वचन) वर्णनातीत, अकथनीय ४
अनुभौपरकास – (अनुभवप्रकाश) ग्रंथ का नाम २६
अपार–जिसका पार न हो, असीम १९

चेतनस्वरूप–परम चेतना सपन्न ७
चेतना–बोध ७
चेष्टा–शरीर के अगों की गति, क्रियाशीलता १३

ज

जड–जिसमें चेतनता न हो १७
जड़ता–जड़ होने का भाव, अज्ञानता ७
जसवत–जसवतसिंह २६
जानिश्री–जानो २
जीवपनौ–जीव का गुण, जीवन तत्त्व १०
जौरवर–(फा० जोरावर) शक्तिशालिनी २

त

तातैं–उससे ३
तेज–पचतत्त्वो मैं तृतीय तेज या अग्नि तत्त्व २
तौब–तौ + अब १६

थ

थूल–(स्थूल) २१

द

दयौ–दिया २

ध

धर–(धरा) पचतत्त्वों में पंचम पृथ्वी तत्त्व २
धरम–(धर्म) गुण । १६
धौं–न जाने १
ध्याता–(ध्यातृ) ध्यान करनेवाला २५
ध्यान–अत.करण में ले आने का भाव २५
ध्येय–ध्यान करने योग्य २५

न

नारी–नाड़ी, धमनी १२
नित्त–(नित्य) शाश्वत २१
निबाह–(निर्वाह) ८
निबिसेस–(निर्विशेष) विशेषता से रहित २४
निरजन–निर्बिकार, माया से निर्लिप्त २०
निरतर–अतर से रहित, व्यापक २२
निरगुन–(निर्गुण) सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों से रहित ७
निरधारौ–(निर्धारण) निश्चित १७
निरबध– (निर्बंध) बधनरहित, मुक्त २१
निरलेप–(निर्लेप) अनासक्त निर्लिप्त २०
निरबान–[निर्वाण) मुक्त २३
निरवैव–(निर् + अवयव) अवयवरहित, निराकार २३
निरब्वधि–अवधि (सीमा) से परे, कालातीत २३
निरुपाधि–उपाधिरहित २३
निगुन–(निर्गुण) सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों से रहित २०
निसधि–(निस्संधि) सबधरहित २१
निसेष–(निश्शेष) अनवशिष्ट २२
निहचै–(निश्चय) ६
नीकैं–भली भाँति १

न्यारौ–(निराकृत) पृथक १७

प

परिमान–(परिमाण) मात्रा २२
पवन–पचतत्त्रो में द्वितीय वायुतत्त्व २
पहिचानिबी–पहचानो ३
पानी–पचतत्त्वों में चतुर्थ जलतत्त्व २
पारै–(पारद) एक प्रकार का द्रव पदार्थ १५
पूरन–(पूर्ण) युक्त २०
पूरनता–(पूर्णता) ७
पोषक–पालन करनेवाला १६
प्रतच्छ–(प्रत्यक्ष) १०
प्रतिबिंब–छाया १
प्रमाननौ–प्रमाणित किया जाय १४
प्रलै–(प्रलय) सृष्टि का तिरोभाव, महानाश २५
प्रानबाय–(प्राणवायु) श्वास ११

फ

फुनि–(पुन) फिर १२
फेर–पुनः, फिर १
फेर–पुन , फिर १७
फेर–अतर १७

ब

बध–बधन, माया २५
बखान–वर्णन, प्रसिद्धि ८
बर–(वर) वरदान २
बहुरधौ–पुनः, फिर ११
बिब–प्रतिमा १०
बिचारे–विचारने १५
बिभु–(विभु) सर्वव्यापक २२
बिसेस–(विशेष) विशेषता २४
बिस्वसुरूप–(विश्वस्वरूप) जो सपूर्ण विश्व का आधार हो १६
ब्रह्मप्रतिबिंब–माया २

भ

भई–हुई, उत्पन्न ७
भरम–(भ्रम) भ्राति ११

म

मया–स्नेह १०
मरम–(मर्म) तत्त्व १६
मानिबी–मानो ३
मानबीयै–मानो ही ७
मायिक–मायायुक्त, भ्रातिमय १७
मोच्छ–(मोक्ष) मुक्ति २५
मोह्यौ–मोहित हुआ, भ्रमित हुआ २

र+ल+व

रावरौ–आपका ८
रैन–(रजनी) रात्रि ८
लच्छ–(लक्ष्य) दृश्य, प्रत्यक्ष २०
लहियै–प्राप्त कीजिए ४
लेह–लेकर, लो १८
वार–नदी का इस ओर का तट १२
वाहि–उसका ५

स+ह

संघात–मिश्रण (शरीर के अन्य तत्त्वो का) ११
सधि–सबध, मिश्रण २१
सत–(सत्) सत्य ५
सरन–(शरण) आश्रय १
साछी–(साक्षी) सब कुछ देखनेवाला २०

अपरोक्षसिद्धांत

स्वर वर्ण

आहि–है ११
इतौ–इतना १८
इतौ–इतना ५७
ईस्वर–(ईश्वर) ब्रह्म ९३
ईस्वरता–ईश्वर का गुणधर्म ४३
उदोत–(उद्योत) ३६
उपमान–उपमानप्रमाण, वह प्रमाण जो उपमान द्वारा यथार्थ तक पहुँचाने में सहायक होता है ८८
उरझे–उलझन में पडे, माया के जंजाल में फँसे ६२
ऐन–(अयन) शिशिर और ग्रीष्म ऋतुओं की छह मास की अवधि, शिशिर ऋतु के अयन को दक्षिण अयन और ग्रीष्म ऋतु के अयन को उत्तर अयन कहा जाता है ८२
ओरा–(उपल) करका, बिनौली ७८
और–(अपर) अन्य १६

क

कभूँ–कथमपि, कभी १६
कभू –कभी ६०
करता–(कर्ता) जनक २
करतार–(कर्तार) सृष्टि करनेवाला ३५
करमप्रबृत्ति–(कर्म + प्रवृत्ति) कर्म के प्रति आसक्ति ४
करमफल–(कर्म + फल) किए हुए कर्मो का परिणाम १८
करमबिचार–(कर्म + विचार) जीव का हेतु भूत कार्य ३
कर्ता–(कर्तृ) करनेवाला, कर्ता ५८
कर्मजाल–कर्मों का बधन ६१
कल्प–काल का एक विभाग जो ब्रह्मा का एक दिन माना जाता है८१
कह–क्या ५३
कारज–(कार्य) किसी कारण का अनिवार्य परिणाम, उत्पाद्य १
कारन–(कारण) उत्पादक १
कारनदेह–कारण शरीर, माया में चेतन का प्रतिबिंब ६८
कहि–कैसे २७
किनर–(किन्नर) देवयोनि के अतर्गत माने जानेवाले एक प्रकार के प्राणी ७६
किहि–किस ४६
कोइक–क्वचित्, कोई ३६
क्रम–(कर्म) २२
क्रीयमान–(क्रियमाण) किये जानेवाले वे कार्य जिनसे वर्तमान परिस्थिति में परिवर्तन हो जाता है ५६

ख

खड–भरत, किंपुरुष, भद्र, हरि, हिरण्य, केतुमाल, इलावृत, कुश और रम्य नामक पृथ्वी के नवखड८१

ग

गध्रब–(गधर्व) एक देवयोनि ८०
ग्याता–(ज्ञाता) १४
ग्यानप्रकास–(ज्ञानप्रकाश) ज्ञान का बोध ३४

ग्यानरूप–(ज्ञानरूप) तत्त्वज्ञान-स्वरूप ३३

ग्रह–सौर मडल के सूर्य, चद्र, मंगल बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु नामक ग्रह ८०

घरी–(घटी) घड़ी २४ मिनट का समय ८२

च

चितसमरत्थता–(चित्तसमर्थता) ७५

छ

छिनु–(क्षण) १८

छूटै–मुक्त हो जाय १००

ज

जंगम–चर पदार्थ ८०

जच्छिय–(यक्ष) देवयोनि में माने जाने वाले एक प्रकार के प्राणी जो कुबेर के सेवक माने जाते हैं ७६

जगजार–(जगज्जाल) सासारिक प्रपच ६०

जड़–चेतनारहित ३०

जतन–(यत्न) अध्यवसाय ६३

जलचर–पानी में रहनेवाले जीव ७८

जाग्रत–जागरण की स्थिति ६४

जाति–समष्टि, एक प्रकार के अनेक का समूह ६०

जाहि–जिसको ५४

जिय–जी, अत करण ३४

जीव–जीवात्मा १६

जुग–(युग) सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि ८२

जुदौ–(फा० जुदा) पृथक्, भिन्न १६

जोइ–देखो, समझो १४

त

तऊ–तब भी ५१

तम–तमोगुण, प्रकृति के सघटक तीन गुणों में तृतीय ८७

तर्क–अनुमान ६०

तुच्छ–(तुच्छ) हीन ४६

तेई–वेही १०

तेऊ–वे भी ६७

थ

थलचर–(स्थलचर) पृथ्वी पर रहनेवाले जीव ७६

थूल–(स्थूल) स्थूल शरीर, भौतिक और नश्वर शरीर ६६

थावर–(स्थावर) अचर पदार्थ ८०

द

दरसन–(दर्शन) पूर्व मीमासा, उत्तर मीमासा, न्याय, वैशेषिक, साख्य और योग ६१

दामिनि–विद्युत्, बिजली ७८

दिसि–(दिशि) दिशाएँ ८३

दुर्ग–दुर्गम स्थान, गढ ८१

दूजौ–(द्वितीय) दूसरा, अन्य ५१

दोऊ–दोनों को (कर्म तथा अविद्या) ३२

द्रिगन–(दृग) नेत्रों से, आँखों से १८

द्रिष्टिविकार–दृष्टिदोष ४७

द्वीप–जंबु, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश,

की भ्राति जिसके कारण मनुष्य इस अवास्तविक विश्व को वास्तविक और ईश्वर से भिन्न अस्तित्ववान् समझना है ६३
मित्त–(मित्र) २१
मुगति–(मुक्ति) मोक्ष ४
मोछ–(मोक्ष) मुक्ति ६२

अत स्थवर्ण

र

रज–(रजस्) रजोगुण, प्रकृति के तीन गुणो में द्वितीय ८७
रस–चतुर्थ तन्मात्रा जल का गुण ८४
रागद्वेष–रुचि- अरुचि,-प्रीति-घृणा ४२
राछस–(राक्षस) असुर, दैत्य ८०
रीति–कार्यप्रणाली ४६
रूप–तृतीयतन्मात्रा, तेज का गुण ८४
रैन–(रजनी) रात्रि, रात ८२

ल

लेख–मानो, समझो ५२
लौं–पर्यंत, तक ८२

व

वा–उस ६७
वाकिबिचार–वाक्यविचार ८६
वाके–उसके, उसकी ४६
वाहि–उसको ५४

स

संचित–पूर्वजन्म में अर्जित वह कर्म जिसके अनुसार इस जन्म में किसी विशेष परस्थिति में जन्म होता है ५६
सबछछर–(सवत्सर) बर्ष, वसंत आदि छह ऋतु, ८२
ससै–(सशय) सदेह ६
ससै–(सशय) सदेह ६०
सत–(सत्) सत्त्वगुण, प्रकृति के तीन गुणो में प्रथम ८७
सपनै–स्वप्न ६४
सपरस–(स्पर्श) द्वितीय तन्मात्रा, वायु का गुण ८४
सबै–(सर्व) सपूर्ण १
सब्द–आकाश का गुण ८४
सब्दजाल–शब्दाडबर ४४
सब्दब्रह्म–(शब्दब्रह्म) नाद ही ब्रह्म ८४
सब्दस्रवन–शब्द प्रमाण, आप्त प्रमाण ८८
समद्रिष्टि–(समदृष्टि) सबको एक समान देखना ४६
साछी–(साक्षी) साक्षी, चेतन आत्मा ६३
सामानि–(सामान्य) ६२
सास्त्रग्यँ–(शास्त्रज्ञ) ३७
सिधि–(सिद्धि) ७२
सिध्धात–(सिद्धात) पूर्वपक्ष के खंडन के अनतर स्थिर मत ८६
सिष–(शिष्य) ६
सुतत्र–(स्वतत्र) स्वाधीन ५४
सुमिरिति–(स्मृति) धर्मशास्त्र ८६
सुषुप्ति–घोर निद्रा ६४

सूछिमदेह –(सूक्ष्मदेह) सूक्ष्मशरीर, मन, बुद्धि, चित्त तथा अंहकार का समूह ६९

वेदांत

सूछिमदेह–(सूक्ष्मदेह) सूक्ष्मशरीर ६९

स्रवन–(श्रवण) (गुरु के उपदेश को सुनना ७

स्वछ्छ–(स्वच्छ) निर्मल ७५

स्वेच्छाचारी–अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करनेवाला ५५

ह

हुते–थे ५८

सिद्धांतबोध

अवर्ग

अंतहकरन–(अंतःकरण) १ ग०

अकरता–(अकर्ता) कर्म से विरत १ ग०

अकास–आकाश, जिसका शून्यत्व रूप है १ ग०

अगोचर–जो इंद्रियों द्वारा प्रत्यक्ष न हो सके ६

अद्वीत–(अद्वैत) द्वैत का अभाव, विश्व या आत्मा के साथ तादात्म्य १ ग०

अध्यातम–(अध्यात्म) आत्मा-परमात्मा विषयक ७

अनादिता–आदि न होने का भाव, अनंतता, नित्यता १ ग०

अनुग्रह–कृपा १ ग०

अपनपौ–स्वयं अपने को १ ग०

अपान–अधोवायु ३

अपारता–अनंतता, असीमता १ ग०

अबिद्या–(अविद्या) माया, अज्ञान १ ग०

अवकास–(अवकाश) शून्यता, रिक्तता १ ग०

अवैव–(अवयव) १ ग०

आगममारग–शास्त्रसमत रीति १ग०

आवरन–(आवरण) सत्य रूप को ढकने की शक्ति १ ग०

आसका–(आशंका) संशय १ ग०

आहुत–(आहुति) हवन सामग्री को अग्नि में डालकर पूजन करना १ स०

इ

इंद्री–(इंद्रिय) शरीर के अवयव जिनके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है १ ग०

इष्ट उपासन–आराध्य देवता की आराधना १ स०

उ

उपजनौ–उत्पन्न होने का भाव, उत्पत्ति १ ग०

उपबास–(उपवास) निराहार रहना ५

उष्न–(उष्ण) गरम १ ग०
ऊरध–(ऊर्ध्व) ऊपर ४

ए

एकत–एकत्र, एक स्थान पर ५

क

कपरा–(कर्पट) कपड़ा १ ग०
कर–हाथ ४
करत्रित्व–(कर्तृत्व) कर्ता का गुण १ ग०
कहा–क्या, कैसे १२ दो०
काठ–काष्ठ १ ग०
काम–वासना, जल रस गुण के कारण १ ग०
कारज–(कार्य) किसी कारण का अनिवार्य परिणाम १ ग०
कारन–(कारण) निमित्त १ ग०
कुजर–हाथी १०
कुभक–प्राणायाम विधि के तीन प्रकारो में दूसरा ३
क्रोध–रोष, तेज तीक्ष्णता के कारण १ ग०
गतिरोध–गति का निरोध ३
गरुवाई–(गुरुता) गुरुत्व, बड़प्पन २
गहै है–ग्रहण करती है १ ग०
ग्यॉन–(ज्ञान) तत्वज्ञान १ ग०
ग्याँन इद्री–(ज्ञानइद्रिय) श्रवण, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण-नामक पाँच इन्द्रियाँ जिनसे ज्ञान प्राप्त होता है १ ग०
ग्यौंनसरूप–(ज्ञानस्वरूप) चिन्मय ६
घट–घड़ा १ ग०
घरा–(घट) घड़ा १ ग०
घ्राण–नासिका, पृथ्वी गध गुण के कारण १ ग०

च

चलतौ–प्रवाहयुक्त, बहता हुआ। १ ग०
चैतन्य–चेतनायुक्त, सभी प्रकार की सवेदनाओं का स्रोत और समस्त प्राणियों का मूलतत्व १ ग०
च्यार–चार १ ग०

छ

छत्रपत्ति–(छत्रपति) महाराज २
छीन–(क्षीण) ५

ज

जग–जगत् २
जड़–चेतनारहित १ ग०
जम–(यम) सयम, निग्रह ३
जराइ–जलाकर, तपाकर ४
जलपनौ–जलतत्व, जल का गुण या भाव १ ग०
जही–जहाँ ७
जाइगौ–जायगा १ ग०
जाग–(याग) धार्मिक अनुष्ठान, यज्ञ २
जातैं–जिससे ६
जानि–जानो, समझो १ न०
जप जाप–जपने की क्रिया १ स०
जिहाँ–जहाँ १ ग०
जीव–प्राण १ ग०
जीवनमुक्ति–जीवित दशा में ही

पचभूत–सृष्टि के पाँच मूल तत्त्व १
पचभूत आतमक–(पंचभूतात्मक) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश नामक पाँच मूलतत्वों से युक्त १ ग
पँचागनि–(पचाग्नि) चारो ओर आग जलाकर सूर्य की धूप में साधना की जाती है। चारो ओर की चार और सूर्य में पचाग्नि है ४
पग–(पद) पैर, पांव का चिह्न (हाथी के पैरों के चिह्न में सभी प्राणियों के पैरों के चिह्न समा सकते हैं) १०
पट–वस्त्र, कपड़ा १ ग०
परदछिछन–(प्रदक्षिणा) परिक्रमा ५
परमारथ–(परम + अर्थ) वास्तविक आत्मज्ञान, अलौकिक सत्य १ ग०
परस–(स्पर्श) १ ग०
परस्यौ–स्पर्श किया, सपर्क किया १०
पाँच गुन–(पंचगुण) शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गध नामक पाँच गुण १ ग०
पाइ–(पाद) चरण १ (दोहा)
पाथर–पत्थर १ ग०
पार–अत, सीमा १ ग०
पिंड–शरीर १ ग०
पूरक–प्राणायाम विधि के तीन प्रकारों में पहला ३
प्रतछछ–(प्रत्यक्ष) १ ग०
प्रतिछछ–(प्रत्यक्ष) १ ग०
प्रत्याहार–इद्रियनिग्रह ६
प्रपच–दृश्यमान जगत जो माया का प्रदर्शन मात्र है, सृष्टि १ ग०
प्रस्ताव–विषय, मतव्य १ ग०
प्रानअयाम–(प्राणायाम) श्वास और प्रश्वास की गति का निरोध ३
प्रियता–प्रियत्व, प्रिय लगने का भाव १ ग०

फ

फुनि–पुन., फिर ४
फेरि–पुन:, फिर १ ग०

ब

बंध्यौ–अवरुद्ध, जो बहता न हो १ ग०
बस्तैं–वस्तु–वस्तुएँ १ ग०
बादर–(वारिद) मेघ, बादल १ ग०
बासना–गध, विषय १ ग०
बिंब–छाया १ ग०
बिखैं–(विषय) १ ग०
बिछ्छ–(वृक्ष) पेड़ १ ग०
बिछ्छेप–(विक्षेप) अविद्या की वह शक्ति जिससे मिथ्या अन्य रूप की प्रतीति होती है १ ग
बिरुध्ध–(विरुद्ध) विरोध, भिन्नता १ ग०
बिरुध्धता–(विरुद्धता) भिन्नता १ ग०
बिषै–(विषय) में १ ग०
बिषै–(विषय) ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त पदार्थ १ ग०

बिसेषनं–(विशेषण) ८
बोध–ज्ञान १ ग०
बौहौत–बहुत १ ग०
ब्यौहार–(व्यवहार) क्रिया, प्रचलन १ ग०
ब्रह्म–ब्राह्मण, पुरोहित २
ब्रह्मअनुग्रह–ईश्वर की कृपा १ स०

भ

भासै–भासित, प्रकाशित होता है १ ग०
भूमिपति–(भूमिपति) राजा २

म

मच्छुर–(मत्सर) १ ग०
मन–सज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञान का आतरिक अग १ ग०
मद–अहकार, वायु उन्माद गुण के कारण १ ग०
मोह–आसक्ति, आकाश शून्य के कारण रूप १ ग०
मायिक–मायाजनित, अवास्तविक १ ग०
मिथ्या–असत्य, निरर्थक १ ग०
मुक्ति–मोक्ष १ ०

र

रसना–जीभ, जल रस गुण के कारण १ ग०
रीतैं–रीतियाँ, प्रकार १ ग०
रूप–आकृति ६
रेचक–प्राणायाम विधि की तीसरी क्रिया ३
रेत–बालू १ ग०

ल

लयैं–लिये, कारण १ ग०
लेखै–गणना, विकार १ ग०
लोभ–मत्सर, पृथ्वी वास गुण के कारण १ ग०

व

वाच–(वाच्) वचन १ ग०
वाहि–उसको, उसे १२ दो०
वेदात–दर्शन १ ग०

ऊष

षट सास्त्रनि–(षट् शास्त्र) षड्दर्शन, साख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमासा और वेदात नामक छह प्रमुख शास्त्र २

स

सँधैं–सध्या, जो प्रात, मध्याह्न और सायम् की जाती है १ स०
ससै–(सशय) भ्रम १ (दोहा)
सगुन–(सगुण) सत्व, रज और तम तीनो गुणों से युक्त साकार ब्रह्म १ ग०
सनान–(स्नान) मार्जन, नहाना १ स०
समाधि–ब्रह्मचिंतन में पूर्ण लीनता ६
साधन–साधना ६
सिधाँत बोध– (सिद्धातबोध) ग्रथ नाम ११ दो०
सीत–(शीत) ठंढ १ गद्य
सुचिता–(शुचिता) पवित्रता ७
सुबर्न–(सुवर्ण) सोना १ गद्य

सूक्यौ–सूखा हुआ १ गद्य
सूछिम–(सूक्ष्म) १ गद्य
सून्यत–(शून्यता) १ गद्य
सौ–(सदृश) समान १ गद्य
स्रवन–(श्रवण) कान, आकाश शब्द गुण होने के कारण १ गद्य
स्रुतिसार–वेद के मूलभूत तत्त्व ११ दो०
स्रौन–(श्रवण) ७
हर्यौ–हरा १ ग०
हुते–थे १ ग०
होम–हवन, यज्ञ १ स०

सिद्धातसार

अ

अग–शरीर के अवयव ८७
अंडज–सर्प, पक्षी आदि प्राणी जो अडे से उत्पन्न होते हैं १२
अंतहकरन–(अत करण) मन, बुद्धि चित्त और अहकार १७
अकरता–(अकर्ता) कर्म न करने-वाला ६।
अकरन–अकरणीय १४७
अचभौ–आश्चर्य, विस्मय १४
अडोल–न चलना १४४।
अतिरिकन–(अतिरिक्त) ९७
अदेख–अदृश्य १३३
अध्यातमपाठ – (अध्यात्मपाठ) आत्मा या परमात्मा सबधी ज्ञानशास्त्र का पारायण ७८
अनंत–जिसका अंत न हो, अवि-नाशी १६०
अन–(अन्न) अनाज १४०
अनबसै–वासस्थान छोड़ देना १३१
अनमानन–अवमानना, असमान १६५
अनमाननो–न मानना १७१
अनित–अनित्य, नश्वर १४७
अनिरबचन–(अनिर्वचनीय) जिसको वचन से न कहा जासके, अवर्ण-नीय ९९
अनुग्रह–ईश्वर की कृपा ४
अनुभव–प्रत्यक्ष ज्ञान १०९
अनुमान–न्याय शास्त्र के अनुसार चार प्रकार के प्रमाणों में दूसरा १७२
अप–आप, स्वयम् १६२
अपन्यारे–अपने से भिन्न १०६
अपपास–(अप + पार्श्व) अपने निकट ८९।
अपबस–अपने अधीन ३६
अपमाहि–अपने में ९६।
अपरिग्रह–सग्रह न करना ७६
अपरोछ–(अपरोक्ष) प्रत्यक्ष १७९
अबिछिन–(अविच्छिन्न) व्यवधान रहित १०
अबिद्या–(अविद्या) अज्ञान, माया ८
अबिद्याजाल–अज्ञान के फँदे में १६१
अबिद्यारूप–अज्ञान का स्वरूप १००

ग्रहस्थ-ब्रह्मचर्य के अनतर विवाह करके दूसरे आश्रम में रहनेवाला ३४
ग्रिह-(गृह) घर २३
ग्रिहस्थाचार-गृहस्थ का आचार-व्यवहार १२३
ग्रिहस्थावास-गृहस्थाश्रम १३५

घ

घोखैं-रटने से १६६
घ्रान-(घ्राण) नासिका २०

च

चाल-गति वृत्ति ६७
चित-चेतन ९३
चित-(चित्) चेतन १६८
चेतनि-चित्, ज्ञान १
च्यारौं-चारा १२

छ

छक्यौ-तृप्त हुआ ३५
छाँह-छाया, साया १३६

ज

जड़-अचेतन ९३
जतन-(यत्न) ८६
जतन-(यत्न) १२९
जम-(यम) अहिंसा, सत्यवचन अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह नामक यम के पाँच प्रकार ७६
जम-(यम) सयम, इद्रिय निग्रह, योग का प्रथम अग ६५
जरायुज-गर्भाशय से उत्पन्न, पिंडज १२
जस-(यश) कीर्ति ३२
जसु-(यश) ३६
जाग्रत-जागरण १२६
जाननौ-ज्ञान ८४
जानि-जानो, समझो १२५
जुरो-मिला ४५
जोग-(योग) २४
जोग-योग दर्शन ६६
जोति-(ज्योति) ११४
जोबन-(यौवन) युवावस्था ३५

ठ

ठाँव-(स्थान) उपयुक्त स्थान १३१

ड

डोल-चलना १४४

त

तन-शरीर ८७
तम-अधकार १००
तास-उसको १६८
ताहि-उसको (ब्रह्म) को १
तुरिया-(तुरीय) आत्मा की चौथी अवस्था जिसमें वह ब्रह्म के साथ तदाकार हो जाती है। असप्रज्ञात समाधि की अवस्था १७४
तूँ-जीवात्मा ६४
तेज-अग्नि, पाँच मूल तत्वों में से तृतीय ६
तोतैं-तुझसे ११०
त्यौर-प्रकार १३८

त्र

त्रिगुन-(त्रिगुण) सत्व, रज और तम

निरबिकार–(निर्विकार) किसी प्रकार के विकार या परिवर्तन से रहित १५८
निरबिसेस–(निर्विशेष) विशेषता से रहित ६
निरबिसेस–(निर्विशेष) विशेषता रहित १५८
निरलेप–(निर्लेप) निलिप्त, असग १५८
निरवार–निवारण कर, हटाकर १३
निरवार–निराकरण ७
निरपाधि–उपाधिरहित, विवेचक या भेदक गुण से रहित १५४
निवारि सकै–निवारण कर सके १५४
निस्च–(निश्चय) १७
नीकैं–पूरी तरह १८५
नीच–नीचे की ओर १३७
नीर–जल, पाँच मूल तत्त्वों में से चतुर्थ ९
नैम–(नियम) ७९
नैमु–नियम, योग का द्वितीय अग ६५
न्यात–(ज्ञाति) सबधी, नातेदार ३१
न्याधि–नद्ध, नधे हुए, युक्त १४३
न्यारौ–पृथक्, भिन्न ९३

प

पँच अगनि–(पचाग्नि) १३६
पचतत्त्व–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश नामक पाँच तत्त्वों की समष्टि ११
पंचीक्रित–(पचीकृत) पचीकरण, पाँचों तत्त्वों का समिश्रण जिसमे फिर अन्य प्रकार के पदार्थों का निर्माण होता है ११
पदारथ भावना–पदार्थ की भावना जिसमें हो, सप्रज्ञात १७५
परप्रकास–(पर+प्रकाश) अन्य की ज्योति से सयोजित) १००
परमानंद–(परमानद) ब्रह्मानद, ब्रह्म के अनुभव का सुख १६९
परमानँद–चरम आनद १४८
परस–(स्पर्श) त्वचा का गुण १९
परिदछिना–(प्रदक्षिणा) परिक्रमा १३८
पवन–प्राणवायु ८०
पार–सीमा, अत १८६
पास–(पाश) फदा ५०
पुत–(पुत्र) ३७
पूरन–(पूर्ण) ११४
पूरब–पूर्वक ७०
पेंच–युक्ति ८०
पुरबासी–नगर के निवासी ४०
पूरक–बाहर से श्वास भीतर खींचना, प्राणायाम के तीन अगों में पहला ८०
पूर्वपछ्छ–(पूर्वपक्ष) किसी तर्क का प्रथम आक्षेप १५०
पूर्वपछ्छ–(पूर्वपक्ष) किसी तर्क का प्रथम आक्षेप १७०
पैपान–(पयस्+पान) दूध पीना १४०

रसना–जीभ २०
राउ–राजा, नरेश ४१
रिति–(ऋतु) १३६
रीझि–प्रसन्न होकर ५७
रेच–रेचक, श्वास को अवरुद्ध करना प्राणायाम के तीन प्रकारो मे तीसरा ८०
रोध–निरोध १४२

ल

लकरा–लकड़ा, लकड़ी का बड़ा टुकड़ा ४७
लछना–(लक्षणा) एक शब्दशक्ति जो मुख्यार्थ मे बाधा आने पर लक्ष्यार्थ तक पहुँचाती है १५१
लेह–लो ६१
ल्याइ–लाकर, खींचकर ६६

व

व्यापि–(व्याप्य) ११२

स

सकलप–(सकल्प) निश्चय १७
सञ्चित–देखिए १५
सग–आसक्ति ७५
सजम (संयम) ३४
सन्यास–चतुर्थ आश्रम, असग जीवन व्यतीत करना १३५
सउपाधि–(सोपाधि) उपाधियुक्त, विशिष्ट विशेषण से युक्त १६१
सकति–(शक्ति) १०१
सक्ति–(शक्ति) ८
सगुण–(सगुण) साकार ईश्वर ५
सत–(सत्) सत्य १
सत–(सत्) सत्य, वास्तविक ६६
सतअसत–सत्यासत्य न सत्य असत्य ६६
सति–(सत्य) ३७
सति–सत्य ७४
सतिता–(सत्यता) वास्तविकता ११
सबिसेस–(सविशेष) बिशेषता से युक्त ६
सगुन–(सगुण) साकार ब्रह्म १६३
सत–(सत्) सत्य १६८
सत्रपति १७४
सब्द–(शब्द) न्यायशास्त्र के अनुसार चार प्रकार के प्रमाणों में चौथा १७१
सब्दारथ–शब्द और अर्थ १५१
समान–सामान्य १७७
समाधि–ब्रह्मचिंतन में पूर्णलीनता योग का आठवाँ और अंतिम अग ६८
समेत–सहित १०३
समै–(समय) १८४
साबास–(फा० शाबाश) वाह वाही १८१
सिगरे–(समग्र) सपूर्ण १११
सिद्धातसार–(सिद्धातसार) ग्रथनाम १८४
सिषि–(शिष्य) चेला १५०
सुकृत–पुण्य १२५
सुजन–(सज्जन) १२८
सुदेस–(स्वदेश) मातृभूमि १३४
सुपन–(स्वप्न) १२६
सुखोपति–(सुषुप्ति) प्रगाढ निद्रा १२६

सरूप-(स्वरूप) २
साधन-साधना ६१
सिहात-प्रसन्न हो जाती है २६
सुचित्त-स्थिरचित्त, शात ८०
सुजन-(स्वजन) परिवार के व्यक्ति ३७
सुपन-(स्वप्न) ३८
सुभाइ-(स्वभाव) १६
सुभाइ-स्वभाव ३
सूर-बली ३५
सोक-(शोक) दुख १२६
स्रवन-(श्रवण) अध्ययन १५१
स्वाध्याय-अध्ययन मनन ७८
स्वेदज-जूँ खटमल आदि जीव जो पसीने से उत्पन्न होते हैं १२

ह

हय-घोडा ४२
हुतौ-था ३८
हेत-(हेतु) निमित्त, कारण ६८

छूटक दोहा

अ

अनुग्रह-कृपा, प्रसाद १४
अपहाथ-अपने हाथ में, अपने अधिकार में ३०
अभागिनि-पति से वियुक्त, आत्मा २६
अमाइ-अँट सकता है, समा सकता है २४
अरूप-आकृति रहित, निराकार ३४
अष्टाग-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि नामक योग के आठ अग १

आ

आबरन-(आवरण) अविद्या की एक शक्ति २७

इ

इछ्छा-(इच्छा) ३२

उ

उद्दिम-(उद्यम) उद्योग, प्रयास २६

ए

एक-अद्वैत ६

क

करतापनौ-कर्ता का धर्म, कर्तृत्व ३१
करम-(कर्म) २५
कलसरी-जिनका चैन न रह गया हो, सुखरहित २६
कहन-वाणी १७
कहि-कहो ३१
कहियै-कहना (वाणी) १६
कार्नानि-कानों (से सुना हुआ) १६
कारनदेह-कारणशरीर २५
कितिक-कितनी २९
कुसुभ-कुसुभ अर्थात् कुसुमी रग ३
कूवत-(अ० कूवत) शक्ति १६
क्रियमाण-किए जानेवाले कर्म २६

ख

खेवनहार-खेनेवाला, मल्लाह २

ग

गुन-(गुण) १३
गुननि-गुणों (सत्त्व, रज और तम) ३४
गुनवत-गुणवान्, गुणी १३
गुनहगार-(फा०) दोषी, अपराधी ४

ग्याँनप्रियता–(ज्ञानप्रियता) तत्त्वज्ञता ३२

ग्यानि–ज्ञानी ३५

ग्यानी–(ज्ञानी) तत्वज्ञ ७

च

चलन–गति १७

चलन–चलने की क्रिया (गति) २०

चीन्हैं–पहचानते या ज्ञान प्राप्त (नहीं करते) २

चेतना–चेतन का धर्म ३२

छ

छीन–(क्षीण) ११

छूटै–मुक्त हो जाय ६

ज

जगत–सृष्टि ७

जतन–(यत्न) प्रयत्न, प्रयास २६

जाग–जागरण १

जानि–जानो, समझो ३५

जैं–जिसमें २६

जोत–(ज्योति) चमक ७

त

तन सूछम–सूक्ष्मशरीर, लिंगशरीर जो सूक्ष्म पच महाभूतों से युक्त है। २५

ताप–लपट ७

तेइ–वेही २९

त्रिगुन–(त्रिगुण) सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों की समष्टि १३

थ

थवैलो–१५

थूलसरीर–(स्थूलशरीर) गोचर पिंड २६

द

दिख्यौ–देखा हुआ ३६

दिष्ट उदोत–भाग्योदय हो जाता है, जन्म सार्थक हो जाता है ३६

देखन–दृष्टि १७

द्वैत–आत्मा और परमात्मा की भिन्नता का भाव ९

न

नग–नगीना, रत्न ७

नाईं–नहीं २९

निगुन–(निर्गुण) निराकार ब्रह्म ३४

निरगुन–(निर्गुण) ३२

निस्चै–(निश्चय) ८

निस्चै–(निश्चय) ३६

नैकौ–तनिक भी १९

नौरस–शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत २८

न्यारे–(निराकृत) भिन्न ८

प

परमारथ–(परमार्थ) २८

परे–पृथक् ३४

पाइनिभानि–पैर तोड़कर १८

पाछैं–पीछे, उसके बाद १

पार–दूसरा किनारा २

पार–अंत ११

पारावार–आर पार, सीमा ११
पिउ–(प्रिय) प्रियतम, ब्रह्म २९
पैँम–प्रेम १
पोट–गठरी, बोझ १८
प्रकास–(प्रकाश) तेज। ३२
प्रक्रित–(प्रकृति) सृष्टि ३३
प्रतछ–(प्रत्यक्ष) ३६
प्रारब्ध–पूर्वजन्मकृत वे कर्म जिनके भोग का आरंभ हो गया है २६

फ

फुनि–पुनः, फिर १
फेर–उलट-पलट। २२

ब

बचनबिलास–(वचनविलास) वाणी का मनोरंजन मात्र २८
बिस्व–(विश्व) संपूर्ण सृष्टि ३३
बिहार–विलास ३३
बेर–बार, समय२२
बैराग–(वैराग्य) सांसारिक विषय-वासनाओं से विरक्ति १
बौराइ–पागल होकर, विवेक रहित होकर २९
ब्यापि गयो–व्याप्त हो गया २१

भ

भाईं–अच्छी लगीं२९
भाई–(भाव) भाता हैं। ८
भावते–प्रिय १०

म

मतैं–मत के अनुसार ३६
मैं–अहम्, अहंकार। १२
मैदान जितै–विजय प्राप्त करे, सफलता प्राप्त करे। ६

र

रस–आनंद। २८
रस–(रसो वै सः) आनंद, ब्रह्म ही आनंद है। २८

ल

लीक–चिह्न, रेखा। ६
लोकनि–लोगों। १२

व

वार–इस ओर का किनारा। २

स

संसार–सांसारिक जीवनचक्र। ३३
सगुन–(सगुण) साकार ब्रह्म। १४
सत–सत्य। २७
सत–सत्य। ३२
साँच–सत्य, वास्तविक ज्ञान। ३६
साध–(साध्य) जिसकी साधना की जाय। २४
साधिन–साधन। २४
सामर्थ्यता–(सामर्थ्य) शक्ति। ३१
सुनन–श्रवण। १७
सूती–सोई हुई, अज्ञान ग्रस्त। २९
स्वरूप–अपना रूप। २३
स्वरूप–आकृति। ३४

ह

हरि–ईश्वर। १०
हास–हास्यास्पद। २८
हियौ–हृदय। २१
हेत–(हेतु) कारण, उद्देश्य। १०

श्रीभगवद्‌गीता (टीका भाषा)

अ

अतहकरन–(अंतःकरण) मन २।६४

अच्छर–(अक्षर) जो क्षर न हो, विकाररहित ३।१५

अतिक्रमि–अतिक्रमण करके, पार करके ८।२८

अधिभूत–क्षर, विनाश को पानेवाला ८।४

अधिष्ठान–ठहरने के स्थान ३।४०

अधैन–(अध्ययन) ११, ४८

अनंतवीर्य–अनंत सामर्थ्य ११।१९

अनआरंभ–(अनारंभ) न ग्रहण करना ३। ४

अपरिग्रह–संग्रहरहित ६।१०

अप्रमेय–जिसे ठीक ठीक न समझा जा सके १।१२

अबस–(अवश) विवश ३।५

अबिग्येय–(अविज्ञेय) जो न जाना जा सके १३।१६

अर्थ–लिये ११९, १०।१

असती–अपतिव्रता, पति के व्रत का पालन न करनेवाली १।४२

असक्त–अलीन, न लगा हुआ ३।७

अहितू–शत्रु, विरोधी २।३६

आबरन–(आवरण) ढकने का भाव ३।४०

आबरै–ढके हुए ३।३८

आवेसकरि–(आवेश करि) प्रवेश कर के, लगाकर १२।२

आभासक–आभासित करनेवाला १३ १५

आराम–रमण करना, लीन होना ५।२४

आस्रए हैं–अवलंबन किए हुए हैं ४।१०

इ

इंद्रियाराम–इंद्रियों में रमनेवाला ६।१६

इष्ट–समुचित ३।१२

इह–यह लोक ४।४०

उ

उघारो–खोला २।३२

उदकक्रिया–जल देना, तर्पण १।४२

उदित–उद्यत, तत्पर १।४६

उधार–(उद्धार) ६।५

उनमेष–(उन्मेष) आँख खोलना ५।६

उपरम–त्याग ६।२५

उप्रांत–(उपरांत) अनंतर १२।८

उरै–बाद में, तदनंतर ४।४

ए

एकपनो–एक सा रहना, समान बना रहना २।४८

ओ

ओछे–छोटे ६।१८

ओर लौं–अंतिम सीमातक २।१७

औरहूँ–अन्य भी १ ६

क

कंठसोष–(कंठशोष) गले का सूखना १।२९

निहपाप–(निष्पाप) पापरहित ४।३०

प

पर–परे ३।४२
पिणपिंड–श्राद्ध का पिंड १।४२
पुनराब्रिति–(पुनरावृत्ति) पुनः आना ८।१६
पुर–नगर, शरीर ५।१३
पोए–पिरोए ७।७
प्रग्या–(प्रज्ञा) बुद्धि २।५७
प्रणव–ओंकार ७ ८
प्रतिसब्द–(प्रतिशब्द) प्रतिध्वनि १।१६
प्रत्यवाय–विघ्न २।४०
प्रबृत्यौ–प्रारभ हुआ १।२०
प्रमाण करैं–मान्यता देना है ३।२१
प्रारब्ध–जिन कर्मों का भोग आरंभ हो गया है, स्वभाव ३।३३

ब

बलातकार–(बलात्कार) जबर्दस्ती, बरबस ३।३६
बसत–(वस्तु) २।५७
बाजित्र–(वादित्र) बाजे १।१३
बिश्वरूप–सर्वरूप ११।१६
बिषै–(विषय) में १।१

भ

भाज–भाग ११।३६।
भामना–(भावना) उन्नति ३।११
भुवैहै–भ्रमता है, चक्कर खाता है १।३०
भूत–जीव, प्राणी, लोग २।३५
भोगता–(भोक्ता) भोगनेवाले ३।१३

म

मगसिर–(मार्गशीर्ष) अगहन १०।३५
मछ्छर–(मत्सर) ४।२२
महत–प्रकृति १४।३
ममुच्छु–(मुमुक्षु) मोक्ष चाहनेवाले ४।१५
मामू–(मातुल) मामा १।२६
माछिन मैं–(मत्स्य) मछलियों में १०।३१
मानस–मन से उत्पन्न १०।६
मुवे–(मृत) मरे २।११
मेधा–(धी धारणावती मेधा) बुद्धि और धारणावाली वृत्ति १०।३४
मेह–(मेघ) बादल ३।१४
मोसों–मेरे साथ ४।१०
मोह–भ्रम २।२

र

रहस्य–गुप्ततत्त्व ४।३
राखै–रक्षा करता है, बचाता है २।४०
राख्यौ–रक्षित किया १।१०
रातौ–अनुरक्त ३।१७

ल

लिपत–(लिप्त) होना, लगना ४।१४

स

सकर–मिश्र, मिलावट १।२४
सक्त–लगा हुआ ३।२५
सजन–(सज्जन) अच्छे लोग ४।८

सनातन–सदातन, सदा रहनेवाला २।२४
सबहूँ–सभी १।१६
सांख्य–आत्मतत्त्व का दर्शन २।३६
सारिखै–(सदृश) समान १।४
सिरात–ठंढे पड़ रहे हैं १।२६
सुकृती–(सुकृति) पुण्यात्मा २।३२
सुखेन–सुख से ५।३
सूर–(शूर) वीर १।६
सेनानी–सेनापति १०।२४
सैन्य–सेना १।२
सजिकै–(सर्ज) बनाकर ३।१०
स्वधा–पितरों को दिया जानेवाला पदार्थ ६।१६

ह

हविष्य–हवि, आहुति ४।२४
हुतौ–था २।१२

श्रीमदभगवद्गीता (भाषा दोहा)

अ

अक्षर–जिसका क्षरण न हो, अविकृत, अपरिवर्तनीय ११।३७
अज–जन्म से रहित १२।३
अजिन–मृगचर्म ६।११
अजै–अजय, जिसे जीता न जा सके। ३।२०
अधवास–नीचे (भूलोक में) निवास ६।४०
अधिकाइ–बढकर १२।२
अध्यातम नित–नित्य परमात्मा लीन १५।५
अनकर–बिना कर्म किए रहना ३।८
अनित्त–(अनित्य) नाशवान् १८।२२
अपार–सबसे परे १८।५१
अमर–देवता १०।२२
अमीरस–(अमृतरस) १०।१८
अवरुढिहै–विवश करेगो १८।६०
अवरेषि–समझो १३।१२
अवरेखि–देखकर, विचारकर ११।३८
असग–वैराग्य १५।३
अस्व–(अश्व) घोड़ा १०।२७
अस्वत्थ–पीपल १५।१
आड़ि–आश्रय ५।१२
आतमराम कों–अपने को १८।१६
आदित्त–(आदित्य) अदिति के पुत्रों में १०।२१
आन–(अन्य) और १८।६०
आन–(आनि) लाकर ७।१६
आरंभ–कर्तापन का अभिमान १२।१६
आलकसी–आलसी १८।२८
आसु–(आशु) शीघ्र ३।२२

इ

इकोसो–एकांत ६।१०
इस्थित–(स्थित) १३।३१

उ

उच्चैश्रवा–(उच्चैःश्रवा) इंद्र का घोड़ा १०।२७

उत्ताल–तीव्रता से चलने वाला, १०।३१
उद्योत–प्रकाशित, उत्पन्न १३।२७
उनमान–समान ६।६
उपावनहार– उत्पन्न करनेवाला १०।३४
उषन–(उष्ण) १७।६
उसन–(उष्ण) गरम १२।१८
उस्तुति–(स्तुति) प्रशसा १२।१६
उर्ध–(उर्ध्व) ऊपर १५।१

ए

एह–यह १३।३

ऐ

ऐरावत–इद्र का हाथी (उज्ज्वल) १०।२७
ऐस्वर–(ऐश्वर्य) ११।८

क

कंचन–(काचन) सोना १०।३६
कबि ताहिँ–कवियो मे १०।३७
कमलासन–ब्रह्मा ११ १५
करतार–कर्तार, निर्माता ११।३७
करि–करो ११।३३
कलित्र–(कलत्र) पत्नी (पति के लिए), पति (पत्नी के लिए) १३।१०
कैधो–अथवा १८।२४
को–कोई ११।५५
कौरौन–(कौरवन) कौरवों १।१६
क्रम–(कर्म) १८।२६

ख

खार–(क्षार) १७ ८

ग

गाहि (अवगाहि) थहाकर ८।१२
गोइ–रखकर २।२६

ज्ञ

ज्ञातार–ज्ञाता, जानने वाला १८।१८

च

चक्र–(चक्र) ११।१७
चाइ–(चाहि) देखकर, समझकर १।१२
चार मनु–इसके मूलश्लोक के 'पूर्वे चत्वार' को सनकादि चार से जोड़ा गया और मनु १४ कहे गए हैं। लोकमान्य तिलक चतुर्व्यूह को मानते हैं। पर अन्य आरभिक चार मनु को लेते हैं जो ये हैं–स्वयभुव, स्वारोचिष, औत्तमि और तामस १०।६
चाह–इच्छा, अपेक्षा १२।१६
चाहि–देखकर ११।५०
चिंतवन–(चितवन) चिंता, विचार १ २१
चीत–(चित्त) ८।७

छ

छमि यहि–क्षमा करें ११।४१
छिनक–क्षणभर को, अध्रुव १७।१८
छुट्यो–मुक्त ५।३
छोहु–प्रेम १।११

ज

जच्छ (यक्ष , एक प्रकार के देवता १७।४

नरनाह–(नरनाथ) राजा (अर्जुन) १०।३९

निदान–अन्त में १८।६९

निधान–रखे जाने का स्थान ११।१८

निरधार–निर्धारित रूप में, निश्चयही ११।३२, १५।१२

निवान–(निम्न) दीन, आर्त ७।१६

निवर–निवारण १८।३७

निसप्रही–(निष्पृही) इच्छारहित २ ७१

निस्चिल–(निश्चित) ३।१२

नीत–नीति (या नित-नित्य) ६।१६

नेत–सकल्प ३।११

प

पटतर–समान, सदृश ११।४३

पटु–पट, वस्त्र २।२२

पतग–पतिंगा, फतिंगा ११।२९

परबृत्ति–(प्रवृत्ति) १८।३१

परमता–परमगति १३।२६

परले–उस (ओर का) ७।१३

परलै–प्रलय ११।२

परवान–(प्रमाण) १८ ७८

परसत नाहिं–स्पर्श नहीं करता, लिप्त नहीं हता १३।३३

पराइ गयो–भाग गया ११।२४

परिमान–(प्रमाण) ९ १५

पलाव–पलायन, भागना १८।४४

परसाद–(प्रसाद) कृपा १८।७६

पहरक–एक पहर १६।१०

पहिलीबार–प्राचीनकाल मे प्रथम १७।२२

पाछै–पीछे, लिए ६ २१

पार–परे ११।३७

पास–(पाश) बधन, अर्थात् मध्य ११।२९

पिछान–पहचाने ७।७

पिरान–(प्राण) १।९

पीव–प्रिय (ब्रह्म) ८।३

पुहवी–पृथ्वी २।३७

पुहुमी–(पृथ्वी) १५।१३

पूत–(पुत्र) ११।२६

प्रकार–प्रकट १८।८१

प्रजन–सतानोत्पत्ति १०।२८

प्रनवँ–प्रणवौं, प्रणाम करती हूँ ११।३९

प्रनवाखर–ओंकार ८ १३

प्रसाद–प्रसन्नता १७।१६

√फास–(पाश) बधन ४।९

ब

बदन–मुख ११।२७

बनाइ–भली भाँति ३।१

बर्न–(वर्ण) अक्षर १०।२५

बसन–(बसन) वस्त्र ११।११

बसाइ उठ्यो–जिसमें गध आने लगी हो १७।१०

बाक बिलास(वाग्विलास) वाणी विलास १८।८१

बाद–(वाद) सिद्धांत, तत्त्वनिर्णय का मत १० ३२

बापरो–बेचारा ११।४१

बार–देर १८।२९

सत–सत्व (बिभूतिमत् सत्वम्)
१० ४२
सतुति–(स्तुति) प्रार्थना। ११।२१
सनबध–(सबध) १५ ८
समारि–सम्हलकर १।२०
सभै–सबै, सबही ११।२०
समदैव–एक सा फल देनेवाले ५।२
समार–(समर) स्मारक १०।३४
समोइ–मिलाकर २।७१
सर–जलाशय १०।२४
सरल–सारल्य, सरलता, ऋजुता
१६।८
सरलमन–सौम्य १७ १६
सरस–रस्य रसयुक्त १७ ८
सरैन–पूरा नहीं होता १८।१५
ससि–(शशि) सोम १५।१३
सस्त्रधर–(शास्त्रधर) शस्त्रधारी
१०।३१
साख–(साक्ष्य) आधार १३।५
साज–सज्जा से, तैयारी से १।१
सातकौ–सात्विक भी १७।१२
सातिक–(सात्विक १७।८
सातुकी–(सात्विकी १७।४
सातौऋषि–भृगु, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ ये पुराने सप्तर्षि हैं १०।६
साधन–(साधुन), साधुओं, विरक्तो
३।२
साध्य–एक प्रकार के देवता १७ २२
सार–सात्विक १८।४७
सिंघ–(सिंह) १०।३०
सिथराइ–शिथिल होता है १।२८
सिमरत–स्मरण करता हूँ १८।१०
शुच–(शौच) पवित्रता १६।४
सुदेम–सुदर १० २३
सुर–देवता १८।४१
सुरत–(स्मृति) १८।७४
सुश्रूषा–(शुश्रूषा) सुनने की
इच्छा १८।६८
सू–सो, वह, उसे ११।४१
सूर–(शूर) वीर १।४
सैन–(शयन) सोना ११।४२
स्रवग–(श्रवण) कान १५ ६

ह

हकार–(अहकार) १३।७
हते–थे १।२५
हनिराखे–मार रखा है, पहले ही मार डाला है ११।३३
हरि लेइ–हरण कर लेता है, वश में कर लेता है, मुझे पिय है १२ १५
हि–निश्चय ही १८।५५
हिमअधार–हिमालय १०।२५
ही–थी १५।२०
हृद–(हृत) हृदय को हितकारी
१७।८
हेतुबादि–हेतु के सिद्धांत से युक्त, युक्तियुक्त १३।५
हौन–होना १४।२१
ह्वै–होकर, करके १८।८०

गीतामाहात्म्य

अ

अकोर–करोड़ो, अनगिनत ५.४
अग्याँह–आगे (होकर) ४२।१३
अघोर–(घोर) भीषण १५.८
अचाँनीक–अचानक, सहसा १७-२३
अछिछुर प्रति–प्रत्येक अक्षर के पाठ से १९।९
अज्या–(अजा) बकरी २।७
अज्याजिग्य–(अजायज्ञ) अजबलि, देवी को बकरे की बलि देना ८४
अज्यापाल–(अजापाल) बकरी पालनेवाला २।७०
अतित, अतीत–यति, सन्यासी ११।२
अनत–विष्णु ३।१०
अपछरा–(अप्सरा) १०।२०
अविगत–जहाँ जाना कठिन हो, जिसे पाना कठिन हो ३।३०
अभिछुछु–(अभक्ष्य) ९।२
अभिषेक–सींचना, छिड़काव ११।२९
अरध–(अर्ध) आधा ९।२२
अष्टादस–(अष्टादश) १८ (पुराण) १९।१३
असतरि–(स्त्री) पत्नी ७।१६
असत्री–(स्त्री) पत्नी १२.२५
असरम–आश्रम ४ १६
अहिरावत–(ऐरावत) इद्र का उज्जवल हाथी १८।३
आँही–हैं, थे १७।२६
आणि–आकर ९।६
अग्यारही–ग्यारहवीं ११.१
आसिक–(आशा) आशीर्वाद १।४६

इ

इद्रदवनि–इद्रदमनी (नदी) ६।१४
इग्यारी–अगियारी, अग्निदाह १।८
इन्नाकूँ–इनको ५।२०
इसिलोक–(श्लोक) ६।२२

उ

उचिष्ट–(उच्छिष्ट) जूठ, अपवित्र (जल) ५, १५
उदारयौ–(उधारयो) उद्धार किया ८।३४
उपगरी–(उपकारी) १६।२७
उपगार–(उपकार) ११।२९
उरै–आगे ६।७
उलागि–उल्लंघन करके १८।१४
ऊभज–उजड गया ३।०५

ए

एकौतर सौ–(एकोत्तरशत) १०१, १०।२५

ऐ

ऐन–ठीक १।३१

ओ

ओर–अत, सीमा ३।१४
और–अन्य, पूर्व ९।८

क

कँवर–(कुमार) राजपुत्र ११।८
कठिहारै–लकड़िहारा ८।१९
कदे–(कदा) कभी १३।१४
कपिला–सीधी गाय १६।२ अ
कबित्थ–(कवित्व) कविता १७।१९

कमठ—कच्छप १६।३६
कमरी—कमर ८।१८
कमलणी—(कमलिनी) १०।१६
कमला—लक्ष्मी ३।२
कर—हाथ १०।२५, १६।२४
कसट—(कष्ट) ८।२१
कह्यौ भयौ—कहा हुआ, भगवान् का कहा, भगवत्कथित १८।३०
काई—कुछ भी १।३३
काज—लिये
काणि—मर्यादा ३।३०
कामधेन—(कामधेनु) १८।४
कारिज—(कार्य) १६।१६
काहो—कुछ भी ४।१६
कुमीच—(कुमृत्यु) बुरी मौत १५।७
कुमेरै—कुबेर (ही) १८।६
कुवा—(कूप) १८।१३
कूकर—(कुक्कर) कुत्ता ८।१६
कृत—(कृत्य) कर्म १७।३२
कृपन—(कृपण) कजूस ६।७
को—कौन—२।१८
कोटवाल—(कोटपाल) कोतवाल ३।३१
कौपीन—लँगोटी ६।२७

ख

खंखर—जिसमे जलतत्त्व एकदम न रह गया हो, अत्यत सूखा ४।६
खभ—(स्तभ) खमे १६।३
खडगबाहु—(खड्गबाहु) १६।२
खबीर—खाने की वस्तु (या खबरि—टोह, देखभाल) ८।१६
खरो—अत्यत ४।६
खाई—हार गया १७।५
खाड्डी—खड्ड, गड्ढा १८।१३
खायो—काट लिया १।२८
खेवो—खेदा, भगाया १४।१३
ख्याल—खेल १७।२

ग

गऊन—गायों (में) १८।८
गऊसाल—(गोशाला) १६।८
गजसिंघ—गजसिंह जसवतसिंह के पिता १८।३१
गयंद—(गजेन्द्र) गजश्रेष्ठ १७।२५
गावै—गाया जाता था, कहा जाता था, प्रसिद्ध था १।२
गिले—खाए ११।१८
गुणौ—समझे, विचारे १३।१६
गोप्य—छिपाने योग्य १०।१
गोष्ठी—वार्तालाप ११।८
ग्रेह—(गेह) गृह, घर ७।१४

घ

घटाइ—(चढाइ) धारण कर १२।१७
घरि—घर को ११।६
घाले—डाल दिया ८।२०
घुस्यौ—घुस गया, फस गया ८।२१

च

चँद्रसरमा—(चद्र शर्मा) ८।२६
चद्राइण—चांद्रायण (चान्द्रायणिक) वह व्रत जिसमे चद्रमा के घटने बढने के अनुसार आहार घटता बढता जाता है १६।२ अ

ताँई–लिये, हेतु ३३।१८,६।१७
ताँही–वहाँ १।३७, ३।१०
ता–उसे १९ ६
तात–पिता, ७।६
तास–(तस्य) उसकी जान पहचान ६।२
तास–तैसे, १८।३
तीन–१ दुःख पाना, २ द्रव्य जाना, ३ हाथी का मरना, १७।५
तीरत–(तीर्थ) देवस्थान दर्शन १६।३३
तो–था १३।६
तोरि–छुडाकर ८।१०
त्रिपति–तृप्ति १०।२७

थ

थक्यौ–रुक गया, ६।१६
थन–(स्तन) ८।१०
थो–था ११ ११

द

दायौ हो–(चिता में) जलाया गया था ५।७
दरब–(द्रव्य) धन ८।२५
दहौ–जलाओ, ६।१५
दाग–दाह सस्कार ७।३
दाणो–दाना, १७।१३
दारा–स्त्री, पत्नी ६।६
दाव–घात, १५।४
दीसतर–(देशातर) अन्य देश ११।४०
दुःखना–पीड़ा, वेदना, ११।१८
दुरकार्यौ–दुतकारा, बुरा भला कहा, १४।२५
दूसासन–(दुःशासन), १७।२
देवगुरु–बृहस्पति, ६।२२
देवतन–देवता का शरीर, दिव्य देह, ५।८
देह–देहु, दीजिए ६।६

ध

धन–(स्तन), ८।१०
धरम–धर्मराज, यमराज, ५।१७
धरमभिष्ट–(धर्मभ्रष्ट) पतित, ५।१३, १४।२७
धरमराय–धर्मराज १३।११
धरि पारै–(सूँड से) धरकर पटक देता था। १६।५
धर्मराज–यमराज का दूसरा नाम ५।१२
धुन्यौ–पीटा ८।३०
धौरा–(धौरेय) बैल, ८।१८
ध्याय–(अध्याय), ११।१
ध्यावै–धावे, दौड़ता था। १५।१४

न

नग्र–(नगर), १६।५
नद्दी–(नदी) । १८।२
न बने–न हो सके, १६।६
नरबदा–नर्मदा (नदी) १३।१६
नरहरी–(नरहरि) नृसिंह, विष्णु १।१२
नाखै–डालता है १६।१४
नाख्यौ–डाल दिया १५।८
नायौ–झुकाया १६।३७
नारायण बलि–अकाल मृत्यु के मृतक का फूस का पुतला बनाकर

दाह और श्राद्धादि करना। यह नारायण आदि पाँच देवताओं को उद्देश्य मानकर की जाती है ७।६

नाव–(नाम) १६।१३

निजर–नजर, दृष्टि १६।१७

निति–(नित्य) १६।६

निदान–परिणाम, फल १७ ५

निदान–अंत में १।६

निरति–(नृत्य) नाच १८।६

निरधारे–निर्धारित हुए ११।२१

निरपति–(नृपति,) राजा ११ ४

निहचै–(निश्चय) ८।१७

नीकें–भली भाँति १०।१८

नीकाँ–भली भाँति १३।६

नीमसकार–(नमस्कार) अभिवादन ११।३७

नेम–(नियम) १८।१६

नो–६ (नवधा भक्ति)। १६ १३

नोधा–नवधा भक्ति ५।१६

न्याति–(ज्ञाति) जाति ६।२

न्हाई–नहाई, स्नान किया ३।१८

प

पंछी–(पक्षी) १०।२७

पग पछ्छालन–(पद प्रक्षालन) पैर धोने से हुआ जल, चरणोदक १४, २१

पचे–पच गए ८।३१

पटराणी–(पट्टराज्ञी) राजा के साथ सिंहासन पर बैठने की अधिकारिणी रानी १८।२८

पठाई–भेजी १४।४

पठे-पढता था १८।२२

पतिग्रह–(प्रतिग्रह) दान ६।६

पधरावै–डाले, चढाए ११।४०

पन्नई–मैना की जाति की चिड़िया, १०।३३

पयादो–(पदाति) पैदल चलनेवाला ६।२०

परधानो–(प्रधान) मन्त्री १५।३०

परबी–(पर्व) पुण्यतिथि, १६।६

परमगति-मोक्ष १ ३५

परवान–(प्रमाण) १३।२३

परसन–(प्रश्न), १६।२६

परसि–स्पर्श करके, दान करके ६।१०

पलटि–पहले का शरीर छोड़कर, बदलकर ५।८

पलोटै–चापे, दबाए, १।१३

पाटम्बर–रेशमी वस्त्र, १८।७

पानै–(पाणि) हाथ ८।१६

पाप जौनि–(पापयोनि) १३।१५

पारषत–(पार्षद) यम के गण ५।११

पारषति–(पार्षद) गण, ३।२६

पारै–गिरा देना है १६।१२

पासि–(पाश) फंदा ३।२७

पिछाणि–पहचान, १।१४

पिछाण्यौ–पहचान लिया १६।२०

पिछीलै–पिछले, पूर्व ६।६

पुंचाऊँ–पहुँचाऊँ १२।१२
पुनिपूरन–(पुण्यपूर्ण) १३।१
पुन्नि–(पुण्य), ५।१६
पुन्निकत–(पुण्यकृत) १६।२
पुरातम–(पुरातन) प्राचीन १।४५, १५।१
पैं–पास, ११।१२
प्रंतु–(परतु) ७।५
प्रथवी–(पृथ्वी), पृथिवी। १८। १२
प्रयाग, पिराग–(प्रयाग) ६।१०
प्रसन–(प्रश्न), १।१९
प्राग–(प्रयाग) ३।१८
प्रापत भई–पहुंची १०।२३

फ

फनपति–(फणिपति) शेषनाग १।१३
फर–फड़, पण, दाँव, बाजी। १७।५
फलगो–(फल्गु) नदी। ६।१२
फलस्तुति–(फलश्रुति) सुनने का फल ८।१
फुरमायौ–मुझे अपनी मनोगति बताओ, जो इच्छा हो सो कहो ४।१९
फूस–सूखा सरपत, १।२६

ब

बँबि–बाँबी, सर्पबिल, ७।११
बबी–सोती, छोटा सोता ६।२०
बइलि–बैल, १।५
बड़–(वट) बरगद, ३।१६
बदी–प्रतिज्ञा के वचन कहे १४।६
बदेसी–(विदेशी) परदेशी, ११।६
बमेखी–(विमर्श) विचार कर ३। १६, ४।८
बरत–(व्रत) ६।२६
बवन–(वमन) उल्टी, कै ६ ४
बसन–(वस्तु), १४।४
बहौरहि–फिर से १६।३२
बाँमन–(ब्राह्मण)। ११।१६
बाणारसि–(वाराणसी) काशी, ६।१०
बाद–सिद्धांत, तत्त्व ज्ञान (में) १८।४
बावरी–(वापिका) वह बावड़ी, वह कूपाकार जलाशय जिसमें जल तक जाने को सीढ़ियाँ बनी हों १८।१३
बास–जंघ, १०।२७
बिचुल–बहुत से, १८।६
बिणज–(वणिज्) वाणिज्य, ७।२
बिप्रीति–(विपरीति) ८।१३ अ
बिरकत–(विरक्त) १२।२२
बिस्वा बीस–परिपूर्ण, १०।४५
बीधी–(विधि) प्रकार १६।६
बुगध्यानी–(वकध्यानी) बगुले सा ध्यान लगाने वाला, १६।३६
बूजै–पूछता है, २।११
बृत्त–(व्रत) १८ ११
बेइल–बैल, १।७
बेर बेर–बार बार, ७।२०
बैसि–बैठकर, २।८
बैद–(वेद) ८।१८
बैसनव–(वैष्णव) विष्णुभक्त, ५।७
बैसनौ–(वैष्णव), ८।३६

बैसि—(वैश्य) बनिया, ४।५
बैसि—बैठकर, ८।३६
ब्रत—(व्रत), १६।२ अ

भ

भछिछ—(भक्ष्य) भोज्य १३।७
भछिछन—(भक्षण) खाना १३।७
भजि गयो— भाग गया २।६
भनै—कहता है, २।१५
भरि काम—इच्छा भर, जैसी इच्छा हो सा भोग, १८।२७
भाखड़ि—भहराकर १३।१०
भाडेत्याँ—भाडे पर लेने वाले ८।२०
भाव सुसरमा—(सो) भावशर्मा, ६।२
भिखिछुक—(भिक्षुक), १।२५
भिष्टि—भ्रष्टता, पातित्य ५।२
भुस तुस—भूसा और कराई, १।२७
भेवा—(भेद) रहस्य, १।४०
मंडलीक—(माडलीक) मडल (१२ राजाओं) का अधिपति १७।२
मड—मादर, १२।३

म

मति—मत, नहीं, २।१७
मनकाम—मन की इच्छा ४।११
मनसान—मन से, ३।२८
मसतक—(मस्तक) सिर, १६।२४
महत—साधुओं का गुरु ११।८
महिं—में १८।३१
मनि—मन में ८।६
माडुव—पद्म पुराण में आमर्दक नाम दिया है। मर्दक से माडुव हो गया जान पड़ता है ८।२
मान भाव—समान की भावना, १५।३४
मारेगो—मारेगा १६।१२
मारी—पीटा ५।४
मिंच—मीच (मृत्यु) १६।१६
मुकताहारी—मोती चुगनेवाले १०।२६
मुकति पराइन—(मुक्तिपरायण) मुक्ति में लीन १६।२८
मुन्नि—मौन १०।१६
मूड़—सिर, माथा १५।३२
मूरि—(मूल) जड़ ३।१०
मैं सौ— मेरे समान १८।१३
मोपरि—मुझपर १८।२०
मौलि—मोल ८।६
म्हाराजा—साधु महाराज १६।४२
म्हारे—मेरे ११।१८

र

रई—रही १०।२३
रठे—रटता था १८।२२
रबिसुत—यमराज ३।३४
रसते—रास्ते में ६।१६
रसोल—(रिसाल) कर (यहाँ भेंट) १४।४
रस्यौ—रसमय हुआ, लीन हुआ ८२६

रहाए–रह गए १०।१६
राज भोग–राज्य का भोग १६।२५
राजि–(राज्य) राज्य के सिंहासन पर १६।४३
रिझावै–प्रसन्न करता था ६।६
रिषीसर–(ऋषीश्वर) १०।२७
रिसीन–ऋषियों (में) १८।३
रीतौ (रिक्त) खाली ३।८
रुपे–रोपित हैं, लगे हैं १६।३
रेण–(रेणु) धूल १६।२१
रेणि–(रेणु) धूल १।१
रैइक–(रैक्य) ६।६
रैयक–रैक्य ६.७

ल

लाल–माणिक ८।२८
लिपै–लिप्त हो, लगे १६।६
लूलै–जिसके पैर बेकार हों १।२५

व

वासूँ–उसको १४।२०
वोषदि–(ओषधि, औषध) दवा १७।१७
षट–६ दर्शन १६।१३

स

सकुकरण–(शंकु कर्ण) ७।१
ससे–(सशय) १०।३१
सकति–(शक्ति) देवी ८।४
सदाबृत्त–(सदाव्रत)
समरन–सुमिरन (स्मरण) १८।३१
सराध–(श्राद्ध) ३।१६
सरिमौर–सिरमौर, शिरोमणि १७।६
सरूप–सुदर १४।४
सर्स–(सरस) बढ़कर १६।४
सहस०–एक हजार पाँच सौ इकसठ १८।३०
सहस–(सहस्र) हजार १६।२
सहारी सम्हाल (न सका) १८।१८
साद–(साधु) मत १७।२१
सादू–(साधु) १।४६
साव–श्रद्धा, इच्छा ३।१६
साध–(साधु) १६।२३
साधन–(साधुन) साधुओं का १४।२३
साधन–प्रकार १६।६
सायुज–सायुज्य (मुक्ति) वह मुक्ति जिसमें मुक्त भगवान् के अग में युक्त हो जाता है १८।२६
सारे–पूर्ण किए १५।३४
सालिगराम–(शालग्राम) १०।४१
सासौ–घोर कष्ट १०।३८
सिख–(शिष्य) १५।१५
सिखि (शिष्य) चेला १६।३५
सिख्य–(शिष्य) १४।२१
सिर–(शिर) माथा १५।१२
सिरावै–पूरा करे ४।११
सिलोक–(श्लोक) ६।११
सीधौ–भोजन पकाने का कच्चा अन्न ११।७
सुखपाल–आसन से बैठने की पालकी–१४।७
सुध–(शुद्ध) ११।७
सुरग–(स्वर्ग) ३।२१
सुरगुर–(सुरगुरु) बृहस्पति १८।१०

सुरराइ–(सुरराज) इन्द्र १८।१५
सुवटा–सुग्गा १।३७
सुवटी–सुग्गी ५।६
सुवा–(शुक) सुग्गा १।३८
सुसर–(श्वसुर) ७।१६
सुसी–खरही १४।२५
सुसो–(शश) खरहा १४।१०
सूजै–दिखाई देती है २।११
सूर–सूर्य ६।२१
सूरजसुत–सूर्यपुत्र, यमराज ५।१२
सूरिज वरम–(शौर्य वर्मा) १४।२
सेवग–(सेवक) दास ११।१६
सैंती–से ४।१२
सैन–(शयन) शय्या ३।२७
सौंराए–सँवराए, बनाए ८।२८
सौ–सैकड़ों (के समान) १३।६
सौक–एक सौ ५।४
सौग–शोक ११।११
सौ भाइ–सौ भाव से, सौ प्रकार से १६।७
स्वान–(श्वान) कुत्ता १४।६

ह

हजुरि–(हजूर) शिव के सामने १०।१३
हल कौ जोता–हल जोतनेवाला, किसान ११।१७
हसती–(हस्ती) हाथी १६।१७
हाली–तुरत ११।२१
हाली कै–(हालिक) किसान का११।२५
हिरदा–(हृदयो) १।१०
हुँती–थी १४।२५
हुती–थी १।३५
हे–थे १४।१४
होड–स्पर्धा, प्रतिद्वद्विता १४।८
होहै–होगा, ११।२०
हौ–था २।१२
ह्रिदा–(हृदय) १७।२३
ह्वै–होकर १६।३७

शुद्धिपत्र

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३।३	बातन	बात न
७४।६	बैरी	पैरी
७४।१३	मध्या	मुग्धा
१११।१४	डारिबो	डरिबो
११५।१२	नाव	गाव
११५।१२	गाव	नाव
१२०।१६	बसतन	बसत न
१२३।२२	तुम	तू
१२६।६	यति	मति
१३४।८	इहिं	इहिं
१३५।१५	जाती	जाति
१३८।६	कैलपायौ	कै लखा यौ
१५०।३	मृत्यं	मर्त्यं
१५०।५	लैयानि	लैं मानि
१७३।२१	प्रमान	प्रमान
१७३।३१	उयय	उदय
१६१।शीर्ष	बोध	सार
१८४।१२	केबल	केवल
१८६।३	विषै	बिषैं
१८६ ८	बयापिक	ब्यापिक
१८७।६	घोखें	धोखें
१८६।शीर्ष	सिद्धातसार	छूटक दोहा
१८६।७	देस्यौ	देख्यौ
१६०।२	१५	१४
१६०।१६	स्वरूपा	स्वरूप
१६१ शीर्ष	सिद्धातसार	छूटक दोहा
१६१।२२	बाही	वाही